हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास

खण्डः 1–3

खण्ड – 1 : भाषा का उद्‌भव और विकास
2 : हिन्दी साहित्य का आदिकाल
3 : हिन्दी साहित्य का मध्यकाल

आंध्र प्रदेश सार्वत्रिक विश्वविद्यालय
1990–91

पाठ्य निर्माण मंडल

H-769
4-12-93

चैयरमैन :
डॉ. के. विश्वनाथ रेड्डी

सम्पादक :
डॉ. एस.टी. नरसिम्हाचारी

लेखक :
डॉ. बिजेन्द्र नारायण सिंह
डॉ. चंद्रभान रावत
डॉ. वैंकटरमण राव
डॉ. विजय राघव रेड्डी
डॉ. विष्णु स्वरूप
डॉ. दीलिप सिंह
डॉ. शशि मुदिराज
डॉ. सरोज पाण्डेय

Dr. BRAOU
LIBRARY
Dr. B. R. A. O. U. LIBRARY
H-769
4-12-93
491.43

संयोजक :
डॉ. यशवंत जाधव

BRAOU

प्रभारी
हिन्दी विभाग
आन्ध्र प्रदेश सार्वत्रिक विश्वविद्यालय
हैदराबाद

मुद्रण
आर्ट वेव्स,
ऑफसेट प्रिंटर्स,
मलकपेट, हैदराबाद.
फोन: 44323

प्राक्कथन

स्नातक स्तर पर हिन्दी भाषा और साहित्य का अध्ययन करने के लिए पुस्तकों का अभाव नहीं है। ऐसी स्थिति में सहज ही यह प्रश्न उठता है कि इस नई पुस्तक की क्या आवश्यकता है। पाठों के विभाजन, क्रम और शीर्षकों से स्पष्ट पता चलता है कि एक विशेष दृष्टिकोण से इस पुस्तक की रचना हुई है। वह है, सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ और दृष्टि। सामाजिक संदर्भ और दृष्टि से भाषा और साहित्य के बाह्य स्वरूप, विकास और प्रगति का बोध होता है तो सांस्कृतिक संदर्भ और दृष्टि के द्वारा भाषा और साहित्य की आंतरिक प्रकृति एवं चेतना की गतिविधि तथा उनके विकास-प्रसार का आकलन कर सकते हैं। एक के द्वारा लौकिक मूल्य-व्यवस्था से और दूसरे के द्वारा भाववादी मूल्य-व्यवस्था से अवगत होते हैं। इस दृष्टि का पाठ-रचना में पूर्ण निर्वाह हो पाया है, यह कहा नहीं जा सकता, लेकिन प्रयत्न अवश्य हुआ है।

भाषा, साहित्य, सामाजिक जीवन और संस्कृति इन चारों को एक दूसरे से अलग करके देखा-परखा नहीं जा सकता। भाषा और साहित्य, किसी राष्ट्र या जाति के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन के अंग हैं। भारत की भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि जहाँ उसका सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन मूलतः एक सूत्रता में बँधा हुआ है, प्रादेशिक जीवन की सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्थाओं में कुछ वैशिष्ट्य भी परिलक्षित होता है। इस कारण तमिल संस्कृति, तेलुगु संस्कृति आदि पर विचार करते हुए प्रादेशिक भाषा साहित्यों के साथ उसका संबंध जोड़ा जा रहा है। हिन्दी की स्थिति इससे कुछ भिन्न है। वह उत्तर भारत के अनेक प्रदेशों की भाषा है। इन हिन्दी प्रदेशों की समष्टि को इतिहास में "मध्य देश" की संज्ञा दी गई है। उसके सामाजिक जीवन और सांस्कृतिक चेतना को अखिल भारतीय सामाजिक जीवन और संस्कृति से अलगाना कठिन है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि अनेक जातियाँ बाहर से आकर इस मध्य देश में प्रविष्ट हुईं। उनके सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन के संगम और समन्वय के द्वारा भारतीयता का विकास-प्रसार हुआ।

मध्य देश में प्रचलित और विकसित वैदिक भाषा, लौकिक संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश और हिन्दी भाषा-साहित्यों की सुदीर्घ परंपरा इस बात का प्रमाण है। हिन्दी भाषा और साहित्य के प्रस्तुत अनुशीलन में प्रादेशिक सामाजिक-सांस्कृतिक तत्वों की चर्चा कम है, व्यापक भारतीय दृष्टि को ही ग्रहण किया गया है।

BRAOU

प्रथम खंड में हिन्दी भाषा और साहित्य की भूमिका के रूप में भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन और भाषा-साहित्यों पर सामान्य विचार किया गया है। भारतीय जीवन के विकास की गति-विधि के समग्र आकलन के लिए लोक संस्कृति और साहित्य का ज्ञान भी आवश्यक है जो इस खंड का एक विचारणीय अंश है। हिन्दी भाषा और साहित्य को परंपरा के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखने और समझने की आवश्यकता भी इस खंड के पाठों से स्पष्ट हो जाती है। संदर्भ के अनुसार सैद्धांतिक सामग्री भी दी गई है।

हिन्दी भाषा पर विचार करते समय उस की प्रकृति, उसके विभिन्न रूप, उसकी बोलियाँ, उनका ऐतिहासिक विकासक्रम, उनका साहित्यिक प्रयोग, खडी बोली हिन्दी की नवीन प्रायोजनक मूलक शैलियाँ, उसके आधुनिकीकरण के प्रयत्न-सभी पहलुओं का ध्यान रखा गया है। छात्र को भाषा के ऐतिहासिक और आधुनिक दोनों संदर्भों से परिचित होना आवश्यक है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास पर नई दृष्टि से विचार-विमर्श करने का प्रयास किया गया है। यह इतिहास-लेखन शुद्ध साहित्यिक न होकर सामाजिक-सांस्कृतिक है। साहित्य के इतिहास में युग की सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों को पृष्ठभूमि के रूप में प्रस्तुत करने से काम नहीं चलता, युग की साहित्यिक चेतना और प्रवृत्तियों या काव्यधाराओं के साथ उनका संबंध-स्थापन भी होना चाहिए। साहित्य के इतिहास में सौंदर्य-संवेदना के विकास-परिवर्तन की आधार भूमि सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना की गतिशीलता है। प्रस्तुत इतिहास-लेखन की दूसरी विशेषता, युग की साहित्यिक प्रवृत्तियों का विश्लेषण है; न कि साहित्यकारों के कृतित्व की आलोचना।

पाठ अनेक विद्वानों के द्वारा लिखे गये हैं। इसलिए दृष्टि, विचारधारा और भाषा शैली में एकरूपता संभव नहीं है। सूक्ष्म दृष्टि से पाठों का अध्ययन करने पर यह वैविध्य छात्रों के लिए लाभदायक ही होगा। पाठों की रचना में जो मौलिकता, गहराई और व्यापकता है, उसके लिए लेखक साधुवाद के पात्र हैं।

...ादक

BRAOU

विषयानुक्रमणिका

पृष्ट संख्या

खण्ड–1: भाषा का उद्भव और विकास

इकाई–1	:	भाषा और साहित्यः सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भ	1
इकाई–2	:	भारत की बहुभाषिक स्थिति	7
इकाई–3	:	भारत की प्राचीन और आधुनिक भाषाएँ	27
इकाई–4	:	भौगोलिक हिन्दी क्षेत्र का ऐतिहासकि परिप्रेक्ष्य	42
इकाई–5	:	हिन्दी की बोलियाँ और विभाषाएँ	52
इकाई–6	:	हिन्दी की प्रमुख साहित्यिक बोलियाँः ब्रज और अवधी	62
इकाई–7	:	खड़ीबोली हिन्दी का ऐतिहासक विकास और प्रसार	73
इकाई–8	:	हिन्दी के विविध रूप– हिन्दी, उर्दू, हिन्दुस्तानी और दक्खिनी	85
इकाई–9	:	प्रयोजनमूलक हिन्दी और उसकी विभिन्न शैलियाँ	98
इकाई–10	:	हिन्दी भाषा के आधुनिकीकरण के प्रयत्न	110
इकाई–11	:	हिन्दीतर प्रांतों और विदेशों में हिन्दी भाषा और साहित्य	131

खण्ड–2: हिन्दी साहित्य का आदिकाल

इकाई–1	:	साहित्य का इतिहासः दृष्टिकोण और स्वरूप	137
इकाई–2	:	हिन्दी साहित्य का इतिहासः दृष्टिकोण–काल विभाजन और नामकरण	145
इकाई–3	:	आदिकालः सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भ	155
इकाई–4	:	आदिकालः साहित्यिक प्रवृत्तियाँ और काव्यधाराएँ	166

खण्ड–3: हिन्दी साहित्य का मध्यकाल

इकाई–1	:	भक्तिकालः सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भ	183
इकाई–2	:	भक्तिकालः साहित्यिक चेतना और प्रवृत्तियां	194
इकाई–3	:	भक्तिकालः काव्यधाराएँ और काव्यरूप	206
इकाई–4	:	रीतिकालः सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भ	229
इकाई–5	:	रीतिकालः काव्यधाराएँ, काव्य–रूप और भाषा	242

BRAOU

BRAOU

इकाई-1: भाषा और साहित्यः सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ

1.0 विषय प्रवेश
1.2 पाठ का उद्देश्य
1.3 पाठ-परिचय
    1.3.1 मूल पाठ
    1.3.2 भाषा समाज और संस्कृति
    1.3.3 भाषा के प्रकार
    1.3.4 साहित्य, समाज और संस्कृति
    1.3.6 मूल्यांकन
1.4 पाठ का सारांश
1.5 पारिभाषिक शब्द-अर्थ
1.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
    1.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न
    1.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न
1.7 नमूने के प्रश्नोत्तर
    1.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर
    1.7.2 'ब' श्रेणी के प्रश्नोत्तर
1.8 पठनीय पुस्तकें

1.0 विषय प्रवेश

BRAOU

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। सामाजिकता का यह तत्व मनुष्य ही नही पशु, पक्षी क्रिमि-कीट आदि सभी प्राणियों में किसी न किसी रूप में मिलता है। प्राणी मात्र अन्य प्रणियों से जुड़े बिना नहीं रह सकता इसके लिए वह शारिरिक चेष्टाओं, ध्वनियों आदि संकेतों से अपनी आवश्यकता को अन्यो तक पहुंचाता है। अन्यों से जुड़ने का यह व्यापार संप्रेषण कहलाता है। मनुष्य में संप्रेषण की आवश्यकता ने ही सामाजिकता को जन्म दिया और सामाजिक संगठन कार्यकलाप तथा व्यवहार ने ही धीरे-धीरे सभ्यता और संस्कृति का विकास किया। मनुष्य जाति के संप्रेषण के साधनों में सर्वाधिक आधुनिक, पूर्ण और प्रचलित साधन है भाषा इसीलिये भाषा एक सामाजिक व्यापार है। इस पाठ में भाषा से लेकर संस्कृति तक की मानव की विकास यात्रा को प्रस्तुत किया गया है।

1.1 पाठ का उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ से आप चार प्रमुख तत्वों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे- भाषा, साहित्य, समाज और संस्कृति। इन चारों के बीच के सम्बन्ध को समझे बिना किसी भी साहित्य का अध्ययन पूर्ण नहीं कहला सकता।

1.2 पाठ परिचय

प्रस्तुत पाठ में कुछ ऐसे शब्दों का विश्लेषण किया गया है जिनसे गुजरे बिना किसी भी साहित्य और कला का अध्ययन सम्भव नहीं है ये चार शब्द हैं भाषा, साहित्य, समाज और संस्कृति। वास्तव में ये चार शब्द नहीं है बल्कि चार इकाइयाँ हैं जिनसे बंधकर ही मनुष्य का विकास हुआ है और मनुष्य जीवन को अर्थ मिला है। प्रस्तुत पाठ में इन चारो के आपसी सम्बन्ध और उनसे जुड़ी हुई संधारणाओं का विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

1.3 मूल पाठ

1.3.1 भाषाः भाषा की परिभाषा

भाषा मनुष्य के संप्रेषण का सर्वाधिक विकसित, प्रयुक्त, और प्रचलित माध्यम है। मानव मात्र के लिए प्राप्त विशिष्ट स्वरयंत्र द्वारा प्रसारित होने वाले सार्थक ध्वनि संकेतों की समष्टि भाषा है। इस परिभाषा में कुछ तत्वों पर विचार पशु को भी प्राप्त है लेकिन मनुष्य का इस स्वर यंत्र पर ऐसा अधिकार है कि वह कुछ इच्छित ध्वनियाँ निकाल सकता है। ध्वनि संकेत पशु भी देता है लेकिन मनुष्य के ध्वनि संकेत अर्थवान होते हैं। भाषा प्रतीकों की व्यवस्था है। ये प्रतीक मौखिक और लिखित दोनों प्रकार के होते हैं। अर्थात एक शब्द के साथ एक विशिष्ट अर्थ का जुड़ना प्रतीक है। जैसे 'पानी' कहने के साथ ही हिन्दी भाषी के मानसपटल पर पानी का अर्थ स्पष्ट हो जाएगा क्योंकि इस शब्द और उसके प्रतीकार्थ को वह जानता है। प्रतीक भाषा के साथ मौखिक और लिखित दोनों रूपों में जुड़ते हैं। भाषा की विशेषता यह है कि वह इन प्रतीकों का एक विशिष्ट क्रम में प्रयोग करती है। भाषा का सीखना अर्थात उस क्रम को सीखना भाषा इन प्रतीकों का व्यस्थित क्रम है अर्थात संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, कारक चिन्ह आदि का व्यवस्थित प्रयोग ही भाषा के अन्तर्गत आएगा जैसे 'पढ़ने वाला लड़का जा रहा है।' यह एक पूर्ण रचना वाला वाक्य है। इस वाक्य में शब्दों का क्रम बदल देने से अर्थ या तो विवृत हो जाएगा, परिवर्तित हो जाएगा या समाप्त हो जाएगा।

1.3.2 भाषा समाज और संस्कृति

भाषा का प्रयोग समाज ही में होता है। वस्तुतः भाषा की उत्पत्ति ही सामाजिकता के लिए हुई। मनुष्य को कुछ अभिव्यक्त करना है तो उसको ग्रहण करने वाला भी। यह ग्राहक पक्ष ही समाज है भाषा एक विशिष्ट समुदाय के बीच जन्म लेती है उस समुदाय के बीच व्यवहार होते होते उसका विकास होता है। यदि उसमें ही लिपि का प्रयोग होने लगे तो भाषा का स्वरूप स्थिर हो जाता है। अनेक रूपों में अनेक स्तरों पर और अनेक प्रकार की अभिव्यक्तियों को सम्पन्न करने के कम में भाषा का विकास होता चलता है। भाषा, उसके विकास और समाज के अन्तः सम्बन्ध को समझने के लिए एक उदाहरण आवश्यक है। शिशु पहले पहल रोने और हंसने मात्र से अपनी अनुभूति और आवश्यकता को प्रकट करता है। धीरे धीरे अपने आसपास की वस्तुओं के नाम गुण और उनके उपयोग से वह परिचित होता है। अपनी अनुभूतियों और आवश्यकताओं को शब्दों में प्रकट करना भी उसे आने लगा है। अब वह परिवार से बाहर मित्रों, सम्बधियों, पाठशाला, महाविद्यालय और अन्य ऐसी सामाजिक संस्थाओं से जुड़ने लगता है। अब वह भाव और विचार से आगे बढ़कर ज्ञान और चिन्तन तक से गुजरने लगता है। इसके साथ ही वह भाषा प्रयोग के भी अधिक जटिल स्तरों को सीखता है इस प्रकार भाषा वही है चाहे वह हिन्दी हो या तेलुगू हो लेकिन एक सरल शब्द से लेकर जटिल संवेदनाओं की अभिव्यक्ति की क्षमता उसमे है। मनुष्य अपने विकास के क्रम में उसे अर्जित करता है इसके साथ ही भाषा मनुष्य के विकास के क्रम में समृद्ध होती चलती है। दोनों में क्रिया प्रतिक्रियात्मक सम्बन्ध है यही कारण है कि नागरिक सभ्यता से दूर आदिवासी कबीलों में भाषा का स्वरूप सरल होता है और शब्दावली सीमित होती है जबकि एक सभ्यसमाज में भाषा का स्वरूप जटिल होता चलता है।

BRAOU

किसी समाज के आचार के प्रतिमानों का समग्र रूप होता है संस्कृति। संस्कृति के अन्तर्गत समाज की आकांक्षाएँ उपलब्धियाँ और मूल्य परिगणित होते हैं अर्थात किसी समाज में स्थित राजनैतिक व्यवस्था, धार्मिक विधान, कलात्मक सृजन, यान्त्रिक व्यवस्था कानून और दण्डविधान तथा भाषा इन सबका समन्वित रूप है संस्कृति। भाषा संस्कृति का एक अंग है लेकिन अपनी विकासशील प्रवृत्ति के कारण यह संस्कृति का भी विकास करती है अर्थात किसी जाति की संस्कृति उसके साहित्य में प्रकट होती है और साहित्य भाषा में, इस प्रकार तीनों में अन्योन्यात्मक सम्बन्ध है।

इससे स्पष्ट हो गया कि भाषा एक निरन्तर विकासशील और परिवर्तनशील प्रक्रिया है यह अपनी प्रकृति में समाजिक और अपनी प्रक्रिया में सांस्कृतिक होती है।

1.3.3. भाषा के प्रकार

भाषा के मुख्यतः दो रूप है मौखिक और लिखित। किसी भी भाषा का आरम्भ मौखिक रूप में होता है। लिपि के आविष्कार से भाषा का रूप स्थिर और व्यस्थित हो जाता है इसके बाद इसका व्याकरण बनता है।

क्षेत्र की विविधता के आधार पर भाषा के और भी अनेक प्रकार है जैसे बोली, अवभाषा, उपभाषा, मानकभाषा आदि। भाषा का आरम्भिक रूप जो एक सीमित क्षेत्र में प्रयोग होता है बोली कहलाता है जैसे हिन्दी का विभिन्न क्षेत्रों में स्थानीय और आरम्भिक अवधि, ब्रज, बुन्देली आदि बोलियों के रूप में विकास हुआ। लेकिन आज ये बोलियाँ भाषा के स्तर को पहुँच गई हैं भाषा का वह रूप जिसके नियम स्पष्ट होते हैं, जिसकी शब्दावली व्याकरण का स्वरूप अधिक निश्चित और स्थिर हो जाता है जो साहित्यिक और ज्ञानात्मक क्षेत्रों में प्रयुक्त होने लगती है उसे मानक भाषा कहा जाता है। साहित्य की भाषा प्रायः यही होती है इस प्रकार भाषा के और भी दो प्रकार होते हैं व्यावहारिक और साहित्यिक। प्रयोजन की दृष्टि से भी भाषा के कुछ प्रकार हैं जैसे मिश्रित भाषा, गुप्त भाषा, कृत्रिम भाषा इत्यादि जब दो अलग अलग भाषा समुदायों के व्यक्ति परस्पर सम्पर्क के लिए ऐसी भाषा का व्यवहार करने लगते हैं कि उसमें दोनों की भाषाओं के शब्द हों और जिसके रूप काम चलाऊ हो तो उसे मिश्रित भाषा कहते हैं। गुप्त भाषा और कृत्रिम भाषा का विकास कुछ विशिष्ट प्रयोजन से होता है जैसे जासूसी, व्यावसायिक, तस्करी, ठगी इत्यादि के लिए सम्पूर्ण विश्व की एक भाषा के आदर्श के रूप में कई भाषाओं से शब्द लेकर एक कृत्रिम भाषा बनाई गई जिसका नाम 'एस्पिरान्तों है लेकिन यह अधिक लोकप्रिय नही हो सकी। कारण यह कि भाषा मनुष्य अपने जन्म से ही अपने परिवेश से संस्कारों के साथ ग्रहण करता है और इसीमें उसकी सहज स्वाभाविक का निर्माण होता चलता है। परिवेश के इसी अभाव के कारण कृत्रिम भाषा मातृभाषा के समान नही अपनायी जा सकती।

BRAOU

स्वपरीक्षणार्थ प्रश्न –

1) भाषा क्या है?
2) भाषा समाज और संस्कृति से किस तरह सम्बन्धित है ?
3) भाषा के विभिन्न प्रकारों का परिचय दीजिए।

1.3.4 साहित्य, समाज और संस्कृति

भाषा विचारों की वाहिका और भावाभिव्यक्ति का साधन है। साहित्य भाषा में ही प्रकट हो सकता है। बाबू श्याम सुन्दर दास के शब्दों में 'जिस प्रकार चित्र के लिए रेखाएँ और मूर्ति के लिए प्रस्तर की काट-छाँट अनिवार्य है, उसके बिना चित्र और मूर्ति की सत्ता ही नहीं हो सकती, उसी प्रकार भाषा के बिना साहित्य का अस्तित्व भी सम्भव नहीं है।" भाषा शब्द और अर्थ का समन्वय है और साहित्य इस समन्वय का विशिष्ट उपयोग है इसी कारण संस्कृत में साहित्य की परिभाषा "शब्दार्थौ सहितौ काव्यं" के रूप में ही दी गई है। साहित्य भाव और विचार का समुच्चय है ये भाव और

विचार उसे समाज से ही प्राप्त होते हैं जिन्हें रचनात्मकता में ढ़ालकर वह समाज को ही लौटाता है। इस प्रकार साहित्य समाज और संस्कृति में अन्योन्यात्मक और विकासशील सम्बन्ध है। इसी कारण साहित्य की परिभाषा में 'सहितस्य भावः साहित्यम" कहा गया है। अर्थात समाज का हित ही साहित्य का लक्ष्य है। साहित्य एक सामाजिक कर्म है और संस्कृतिक प्रक्रिया है। साहित्य न केवल समाज की वर्तमान स्थिति को चित्रित करता है बल्कि उसके अतीत मूल्यों को स्वस्थ रूप में अपनाते हुए भविष्य के लिए नए मूल्य देता है इसी कारण साहित्य संस्कृति का विधायक तत्व ह।

1.3.5 साहित्य और साहित्येतिहास

एक सामाजिक और सांस्कृतिक व्यापार होने के कारण साहित्य का इतिहास लिखा जाना आवश्यक है। सामान्य इतिहास जहाँ तथ्यों और घटनाओं को लेकर चलता है वहाँ साहित्य के इतिहास में रचनाओं का महत्व होता है लेकिन ये रचनाएँ समाज की सास्कृतिक घटनाएँ हैं इसीलिए साहित्य के इतिहास में साहित्यिक प्रवृत्तियों, तत्कालीन ऐतिहासिक परिस्थितियों और रचनात्मक विशेषताओं का समन्वित विवेचन किया जाता है। संक्षेप में साहित्य समाज और संस्कृति के अन्तः सम्बन्ध तथा साहित्येतिहास के स्वरूप को समझने के लिए हजारी प्रसाद द्विवेदी का यह प्रसिद्ध उद्धारण देखा जा सकता है। "साहित्य का इतिहास पुस्तकों, उनके लेखकों और कवियों के उद्‌भव और विकास की कहानी नहीं है। वह वस्तुतः अनादि काल प्रवाह में निरन्तर प्रवाहमान जीवित मानव समाज की विकासकथा है। ग्रंथ और ग्रंथकार, कवि और काव्य, सम्प्रदाय और उसके आचार्य उस शक्तिशाली प्राणधारा की ओर सिर्फ इशारा-भर करते हैं। वे ही मुख्य नही हैं। मुख्य है मनुष्य। जो प्राणधारा नाना अनुकूल प्रतिकूल अवस्थाओं में बहती हुई हमारे भीतर प्रवाहित हो रही है, उसको समझने के लिए हम साहित्य का इतिहास पढ़ते हैं।"

1.3.6 मूल्यांकन

इस प्रकार भाषा और साहित्य के अन्तःसम्बन्ध को देखने से स्पष्ट होता है कि यह अपने आप में स्वतन्त्र नहीं है साहित्य भाषा में प्रकट होता है और समाज और संस्कृति के साथ जुड़कर ही इसका विकास होता है इसी कारण भाषा का इतिहास साहित्य के इतिहास से जुड़कर ही अर्थ पा सकता है और साहित्य का इतिहास समाज व संस्कृति के इतिहास का एक पक्ष होता है। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि शिष्ट साहित्य से इतर लोकभाषा के रूप में भी भाषा का विकास होता है और यह भी संस्कृति का ही एक अंग है।

BRAOU

स्वपरीक्षणार्थ प्रश्न :

1) साहित्य और समाज का क्या सम्बन्ध है?
2) साहित्य किस प्रकार संस्कृति में योगदान देता है?
3) साहित्येतिहास और सामान्य इतिहास में क्या अन्तर है?
4) साहित्येतिहास किस तरह संस्कृति का इतिहास बनता है।

1.4 पाठ का सारांश

इस पाठ में चार इकाइयों की चर्चा करते हुए उनके अन्तः सम्बन्ध पर विचार किया गया है। ये चार इकाइयाँ है भाषा, समाज, संस्कृति, और साहित्य। भाषा मनुष्य के संप्रेषण का सर्वाधिक विकसित और प्रतीको की व्यवस्था है भाषा अर्थपूर्ण ध्वनि संकेतों का व्यापार है उसका विकास समाज के भीतर ही होता है। लिपिबद्ध होकर भाषा का रूप स्थिर हो जाता है समाज के आचार विचार के प्रतिमानों का समग्र रूप है संस्कृति भाषा संस्कृति का ही एक अंग है और साहित्य के माध्यम से भाषा संस्कृति को अभिव्यक्त करती है इस प्रकार भाषा साहित्य, समाज और संस्कृति में अन्योन्यात्मक सम्बन्ध उसके अनेक प्रकार है साहित्यिक भाषा और बोलचाल की भाषा में अन्तर होता है। साहित्य केवल लिखित

रूप में ही नही होता बल्कि मौखिक रूप में लोकभाषा के माध्यम से भी लोक साहित्य के रूप में विकसित होता है। मनुष्य के सभी प्रकार के क्रिया कलापों का एक ऐतिहासिक विकासक्रम है। साहित्य भी एक सामाजिक और सांस्कृतिक प्रक्रिया है इसीलिए इसका भी एक इतिहास होता है जिसमें रचनाएँ ही घटनाएँ होती हैं। एक विशिष्ट दृष्टिकोण से और विशिष्ट पद्धति से रचनाओं, रचनाकारों और उनके युगीन सन्दर्भ को स्पष्ट करते हुए उनकी परम्परा को लिपिबद्ध करना ही साहित्य का इतिहास है।

1.5 पारिभाषिक शब्द-अर्थ

सम्प्रेषण = भेजना, पहुँचाना, एक से दूसरे तक भाव पहुँचाना।
प्रतीक = किसी भाव, ध्वनि, चिन्ह या वस्तु का किसी विशेष अर्थ में निश्चित हो जाना।
अन्योन्यात्मक = एक दुसरे पर आश्रित

1.6 आभ्यासार्थ प्रश्न

1.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न

निम्न लिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 250 शब्दों में लिखिए :

1) भाषा को समाज एवं संस्कृति के संदर्भ में विवेचित कीजिए।
2) साहित्य एवं सामाज और संस्कृति के साथ सम्बन्ध सोदाहरण निरूपित कीजिए।

1.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न

निम्न लिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग शब्दों में लिखिए:

1) भाषा के प्रकार स्पष्ट कीजिए।
2) भाषा की परिभाषा दीजिए।
3) साहित्येतिहास की अवधारणा पर प्रकाश डालिए।

BRAOU

1.7 नमूने के प्रश्नोत्तर

1.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर (250 शब्दों में)

प्रश्न :भाषा के समाज एवं संस्कृति के संदर्भ को विवेचित कीजिए?
उत्तर :भाषा का प्रयोग समाज ही में होता है। भाषा की उत्पत्ति ही समाज में हुई। संप्रेषण की प्रक्रिया दो पक्षों के बीच ही होती है, और भाषा सम्प्रेषण का सर्वाधिक विकसित माध्यम है। समाज ही भाषा का विकास नहीं करता बल्कि भाषा भी समाज के विकास में योग देती है। वह इस प्रकार कि भाषा साहित्य का माध्यम होने के कारण संस्कृति का अंग होती है, और संस्कृति के रूप में भाषा समाज के मूल्यों, मानदण्डों, विचारों और आकांक्षाओं को अभिव्यक्त और विकसित करती है।

समाज की रचना और प्रकृति के साथ भाषा की रचना और प्रकृति में परिवर्तन होता है। एक सभ्य नागरिक समाज की भाषा जटिल और अनेकस्तरीय होती है, लेकिन आदिवासी, सभ्यता से दूर, सीमित परिवेश में रहने वाले कबीले की भाषा सरल, एकस्तरीय होती है, उसकी शब्दावली भी सीमित होती है। सभ्य समाज में भाषा के जितने अधिक प्रयोग-क्षेत्र होंगे, उतने अधिक उसके प्रकार विकसित होंगे- जैसे साहित्यिक भाषा, प्रशासनिक भाषा, बोली, गुप्त भाषा आदि।

समाज में भाषा के विकास को बच्चे के उदाहरण से समझा-जा सकता है। शिशु हंसने और रोने की क्रियाओं से अपनी आवश्यकता प्रकट करता है। धीरे-धीरे वह अपने आसपास के वस्त-जगत से परिचित होने लगता है। वस्तुओं के नाम जानकर, उनका अपनी आवश्यकता और अनुरूची के अनुसार प्रयोग कर, धीरे-धीरे वाक्य-रचना सीखते है बच्चा परिवार में बड़ा होता है। परिवार की सीमा से निकलकर जब वह पाठशाला, अड़ोस-पड़ोस के बच्चों से जुड़ता है तो उसका अनुभव-क्षेत्र और बढ़ जाता है, साथ ही भाषा-प्रयोग में अधिक शब्द, अधिक जटिल वाक्य-रचना शामिल होती जाती है। इसके बाद बड़ा होकर वह अलग-अलग अवसरों पर, अलग-अलग स्तरों पर भाषा-प्रयोग करने लगता है, और, उसकी संवेदना और परिवेश के अनुसार उसकी भाषा भी विकसित होती चलती है। इस प्रकार भाषा मनुष्य की अर्जित वस्तु है जिसे वह समाज से प्राप्त करता है और फिर भाषा में साहित्य और अन्य व्यवहारों के द्वारा समाज का विकास करता है।

1.7.2 'ब' श्रेणी के प्रश्नोत्तर- (125 शब्दों में)

प्रश्नः भाषा के प्रकार स्पष्ट कीजिए।

उत्तरः भाषा के प्रमुखतः दो रूप है। मौखिक और लिखित। भाषा का आरम्भ मौखिक रूप में ही होता है। लिपि के प्रयोग-से धीरे-धीरे वह स्थिर होने लगती है। उसका व्याकरण बन जाता है। भाषा जब व्याकरण बद्ध होकर परिनिष्ठित हो जाती है तो 'मानक भाषा' बन जाती है। इस प्रकार विकास की स्थितियों- व्याकरण और लिपि के आधार पर भाषा के प्रकार हैं- बोली और भाषा। प्रयोजन की दृष्टि से भाषा के प्रकार हैं- कार्यालयीन सम्पर्कभाषा, गुप्त भाषा, कृत्रिम भाषा, मिश्रित भाषा आदि। भाषा के स्वरूप के आधार पर दो प्रकार होते हैं- साहित्यिक भाषा और बोल चाल की भाषा। अजकल भाषा के सामाजिक संदर्भ पर बहुत काम हो रहा है। सामाजिक व्यवहार की दृष्टि से भाषा की विविध शैलियाँ बताई गई हैं जैसे घर में बोली जाने वाली भाषा, बाहर प्रयोग होने वाली औपचारिक भाषा- लेकिन ये भाषा की शैलियाँ हैं, प्रकार नहीं।

1.8 पठनीय पुस्तकें

हिन्दी भाषा का सामाजिक संदर्भः
संपादक- रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव,

BRAOU

इकाई-2: भारत की बहुभाषिक स्थिति

2.0 विषय प्रवेश
2.1 पाठ का उद्देश्य
2.2 पाठ परिचय
2.3 मूल पाठ
    2.3.1 भारत का भौगोलिक स्वरूप
    2.3.2 भारत की भौगोलिक स्थिति का भारतीय जन जीवन पर प्रभाव
    2.3.3 भारत में विभिन्न भाषा परिवार और भाषाएँ
    2.3.4 प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत में भाषाओं की स्थिति
    2.3.5 आधुनिक भारत में भाषाओं की स्थिति
    2.3.6 भारत की बहुभाषिक स्थिति और उसमें हिन्दी का स्थान
    2.3.7 भारत के संविधान में भाषाओं की स्थिति
    2.3.8 भाषा संघ एवं आधुनिक जीवन में बहुभाषा ज्ञान की आवश्यकता और हिन्दी की भूमिका
2.4 पाठ का सारांश
2.5 पारिभाषिक शब्द-अर्थ
2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
    2.6.1 (अ) श्रेणी के प्रश्नोत्तर (250 शब्दो में)
    2.6.2 (ब) श्रेणी के प्रश्नोत्तर (125 शब्दों में)
2.7 नमूने के उत्तर
    2.7.1 (अ) श्रेणी के नमूने के उत्तर (250 शब्दों में)
    2.7.2 (ब) श्रेणी के नमूने के उत्तर (125 शब्दों में)
2.8 पठनीय-पुस्तकें

2.1 पाठ का उद्देश्य

भारत बहुभाषी देश है। यहां अनेक बोलियाँ और भाषाएँ है। इस पाठ के द्वारा भारत का भौगोलिक स्वरूप, उसका भारतीय जन जीवन पर प्रभाव, विभिन्न भाषा परिवार और भाषाएँ, मध्यकालीन भारत में भाषाओं की स्थिति, आधुनिक भारत में भाषाओं की स्थिति, संविधान में भाषाओं की स्थिति की विस्तृत जानकारी दी गई है।

BRAOU

2.2 पाठ-परिचय

भारत एक विशाल देश है। जहाँ विभिन्न धर्म, जाति, भाषा और संस्कृति का रूप समाया हुआ है। इस देश पर भौगोलिक स्थिति का, यहाँ की प्रकृति और वातावरण का अगाध प्रभाव पड़ा है। हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा और राजभाषा है। भारत के मध्यकाल और आधुनिक भारत में भाषा की स्थिति, इस में हिन्दी का स्थान, संविधान में हिन्दी की स्थिति के संबंध में परिचय इस पाठ में दिया गया है।

2.3 मूलपाठ

2.3.1 भारत का व्यापक भौगोलिक स्वरूप

भारत एशिया महाद्वीप के दक्षिण में दो प्रायद्वीपो, अरब प्रायद्वीप एवं हिन्द चीन (Indo China) जिस के अंतर्गत आजकल बर्मा, मलया, सिंगपूर, थाइलैंड, कंबोडिया, लाओस और वियतनाम आते है, प्राय द्वीप के बीच स्थित है। राजनैतिक दृष्टि से भारत, पाकिस्तान व बंगला देश भले ही आजकल अलग अलग देश क्यों न हों, भूगोल और इतिहास की दृष्टि से ये तीनों देश एक ही उप महाद्वीप (Sub-Content) "भारतवर्ष" के अंग माने जाते है। आकार की दृष्टि से भारत वर्ष रूस को छोड़ शेष यूरोप जितना बड़ा है, उतना बड़ा है। क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत वर्ष का भूभाग ग्रेट ब्रिटेन से लगभग 15 गुना है। भारत के उत्तर-पूर्व, उत्तर तथा उत्तर पश्चिम में हिमालय की पर्वमालाएं तथा दक्षिण पूर्व, दक्षिण एवं दक्षिण पश्चिम में समुद्र, बंगाल की खाड़ी, हिंद महासागर और अरब सागर हैं जिन में अनेक द्वीप पुंज हैं। धर्म एवं संस्कृति की दृष्टि से भारत का प्रभाव संपूर्ण दक्षिण एवं दक्षिण पूर्व एशियाई देशों तक व्याप्त है। इस समस्त भूभाग से युक्त भारत को प्राचीन काल में बृहत्तर भारत की संज्ञा दी गयी है। सांस्कृतिक संपन्नता एवं प्राचीनता की दृष्टि से भी भारत शेष सभी यूरोप, एशिया, आफ्रिका, एवं आस्ट्रेलिया उप महाद्वीपों में अग्रणी माना जाता है। इन विशिष्ट भौगोलिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों तथा भारत में विद्यामान विविध प्रकार के धर्म, प्रजाति एवं भाषा परिवारों के कारण भारत मात्र एक देश या राष्ट्र ही नहीं अपितु अपने में एक उपमहाद्वीप भी कहलाता है।

प्रजातिगत गठन (Racial structure) की दृष्टि से भी भारत में विविधता पायी जाती है। भारत कई नस्ल, प्रजाति, जाति, उप जातियों का संगम माना जाता है। प्रारंभ से ही बाहर से समय समय पर यहाँ कई जातियाँ आती रहीं और यहीं अपनी स्थिर निवास बनाती रहीं। इस प्रकार यहाँ कई जातियाँ का मिश्रण भी होता रहा। इस मिश्रण के बावजूद अब भी उन के आकार-प्रकार, रूप-रंग, भाषा, रहन-सहन एवं आचार विचार आदि के आधार पर मानव विज्ञान (Anthropology) की दृष्टि से इन का वर्गीकरण किया जा सकता है।

आस्ट्रिक प्रजाति के बाद अब से लगभग पाँच हजार वर्ष भूमध्य सागर के प्रांत से द्रविड प्रजाति ने आकर भारत में स्थिर निवास कर लिया था। चूँकि यह प्रजाति भूमध्य सागर के प्रांत से आयी थी, इसलिए इस प्रजाति के पूर्वजों को "मेडिटेरेनियन" भी कहा जाता है। इस प्रजाति ने नगर सभ्यता की नींव डाली थी। कहते हैं कि सिंधु घाटी की सभ्यता के प्रवर्तक ये ही लोग थें। दक्षिण भारत की तेलुगु, तमिल, मलयालम और कन्नड बोलनेवाले, मध्य भारत की गोंडी, परजी, एवं पूर्वी भारत की माल्टो भाषा बोलनेवाले आदि इस प्रजाति के माने जाते हैं। नवीन शोध से यह पता चला कि स्पेन एवं फ्रांस के बीच के पहाड़ों में रहनेवाले "बास्कू" प्रजाति के लोगों की भाषा एवं द्रविड़ भाषाओं में अनेक साम्य हैं। इस से इस बात की प्रामाणिकता सिद्ध होती है कि द्रविड लोग भूमध्य सागर के प्रांत से सदियों पहले यहाँ पहुँचे थें।

द्रविड लोगों के बाद भारत में मंगोल प्रजाति के लोगों का आगमन हुआ जो आज कल भारत के उत्तर पूर्वांचल के सिक्किम, अरुणाचल प्रदेश, असम, मेघालय, त्रिपुरा, मिजोरम, मणिपुर व नागालैंड में रह रहे हैं। ये चीनी-तिब्बती भाषा परिवार से संबंधित तिब्बती-बर्मा उप शाखा से संबद्ध सैकड़ों भाषाएँ बोलते हैं। इन्हें हमारे पुराणों में किरात कहा गया है।

मंगोल प्रजाति के लोग पूर्वोत्तर दिशा से भारत में आये तो लगभग उसी समय पश्चिमोत्तर दिशा से आर्य प्रजाति के लोगों ने भारत में प्रवेश किया। कहा जाता है कि ये लोग ई.पू.1500 वर्ष के आस पास यहाँ आये थें। उत्तर भारत की आर्य परिवार की भाषाएँ, पंजाबी, हिन्दी, असमीया, बंगला, ओड़िया, गुजराती एवं मराठी बोलनेवाले आर्यों के वंशज माने जाते हैं।

BRAOU

2.3.2 भारत की भौगोलिक स्थिति का भारतीय जन जीवन पर प्रभाव

भारत की भौगोलिक स्थिति, उस के आकार एवं उस की सीमा का प्रभाव भारत के निवासियों के रहन-सहन, खान-पान, वेषभूषा, दर्शन, राजनीति, इतिहास, भाषा एवं साहित्य पर स्पष्टतः झलकता है। इस देश के प्रत्येक प्रादेशिक विभाग की जिसे प्रकृति ने बाँध रखा है, अपनी अलग अलग कहानी भी है और समग्र रूप से पूरे देश की अपनी अलग पहचान भी है। प्राचीन काल से ही भारत का पश्चिमी तथा पूर्वी एशियाई देशों (अरब, फारस, अफगनिस्तान, श्रीलंका, बर्मा, कंबोडिया, जावा, चीन, तिब्बत आदि) के साथ कूटनीतिक, व्यापारिक तथा सांस्कृतिक संबंध चला आया है। भारत की मध्य वर्तीय स्थिति के कारण यह संभव हो पाया है। शताब्दियों से एक निश्चित भूभाग में रहने के कारण यह संभव हो पाया है। शताब्दियों से एक निश्चित भूभाग में रहने के कारण विभिन्न जाति/प्रजातियों (आर्य, द्रविड, आस्ट्रिक, मंगोल, ईरानी, यूनानी, शक, हूण, मोगल, यूरोपीय) तथा विभिन्न धर्म के होते हुये भी यहाँ के वेषभाषा, आचार-विचार, रीतिरिवाज तथा खान-पान में काफी साम्य दिखाई पड़ता है।

भारतियों के सामाजिक दार्शनिक, नैतिक तथा आर्थिक विकास में हिमालय ने विशेष प्रभाव डाला है। हमारे ऋषि, मुनि, हिमालय की कंदराओं में जाकर चिंतन करते तथा समाधि लगाते रहे और इस के उत्तुंग निर्मल शिखरों से जीवन में उत्साह ग्रहण करते रहे।

उत्तर में हिमालय के कारण मानसून की हवाएँ देश की सीमा से बाहर नहीं जा पाती और इस प्रकार बर्फ, वर्षा के पानी से बनी नदियाँ अपने साथ उपजाऊ मिट्टी लाकर समस्त उत्तरी भारत को उर्वर बनाती रही हैं। उपजाऊ प्रदेश होने के कारण एक और यह भूभाग विदेशी आक्रमण कारियों के आकर्षण का केंद्र बना रहा तो दूसरी ओर यहाँ के लोगों के पास पर्याप्त अवकाश प्राप्त होने के कारण साहित्य, कला, दर्शन के उत्कर्श को अवसर मिलता रहा। इसलिए संसार प्रसिद्ध विश्वविद्यालय जैसे, तक्षशिला, एवं नालंदा यहाँ स्थापित हो सके। समस्त भारत को प्रभावित करने वाले आर्य ग्रंथ, शास्त्र, स्मृति, पुराण तथा बौद्ध और जैन ग्रंथों के अधिकांश इस भूभाग की देन है। लागभग सभी धार्मिक क्रांतियों या धर्म सुधार के आंदोलन का प्रचार प्रसार इसी क्षेत्र से हुआ। साथ ही बड़े बड़े साम्राज्यों का उत्थान-पतन इन्हीं मैदानों में हुआ और बड़े बड़े निर्णायक युद्ध भी यहीं हुए।

पठारी प्रदेश के गर्म जलवायु के कारण यहाँ के लोगों को कठिन परिश्रम करना पड़ता है। भौगोलिक दृष्टि से अलग होने के कारण इस प्रांत में एक ऐसी सभ्यता-संस्कृति विकसित हुई जो उत्तरी भारत की सभ्यता-संस्कृति से बहुत सी बातों में भिन्न थी। इसी प्रकार इस प्रदेश की भाषाओं में भी भिन्नता दिखाई पड़ती है।

समुद्र के तट को लोग प्राचीन काल से समुद्र मार्ग से विदेशों में जाकर व्यापार करते रहे। यहाँ के बंदरगाहों के माध्यम से भारत के अन्य देशों के साथ राजनैतिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक संबंध स्थापित हुए। चीन, जावा, सुमात्रा, कंबोडिया, श्रीलंका आदि देशों में यहाँ से व्यापारी ही नहीं गये बल्कि अनेक बौद्ध भिक्षु भी गये। उन्होंने विदेशों में भारतीय संस्कृति का प्रचार किया। सांस्कृतिक संपर्क के परिणामस्वरूप बृहत्तर भारत की संकल्पना सामने आयी।

प्राकृतिक, सामाजिक, भाषिक, रीतिरिवाज तथा धर्म संबंधी पृथकता के होते हुए भी भारत को एक राष्ट्र तथा एक इकाई के रूप में स्वीकार किया जाता रहा है। वो स्मित ने ठीक ही कहा है कि, "भारत में वेष-भूषा, वर्ण, रीतिरिवाज संबंधी विभिन्नताओं में भी एक अखंड सार्वभौम एकता है। भारत की एकता में विविधता को स्वीकार करते हुए आज हम सामाजिक संस्कृति का विकास कर पाये है।

BRAOU

2.3.3 भारत में विभिन्न भाषा परिवार और भाषाएँ

ऊपर हमने देखा है कि शारीरिक गठन, रंग, रूप, रीतिरिवाज, आचार विचार आदि के आधार पर भौतिक एवं सांस्कृतिक मानव विज्ञानी (Physical and Cultural Anthropologist) मानवों का वर्गीकरण प्रजातियों में करते हैं। और भारत में प्रमुख रूप से (1) नीग्रोइड/नीग्रोटक, (2) आस्ट्रोलाइड/आस्ट्रिक (कोल) या निषाद (3) द्रविड़ (4) आर्य, और (5) मंगोल या किरात प्रजाति के लोग समय समय पर आये और इन जातियों का यहाँ संगम हुआ। मानव विज्ञानियों की भाँति भाषाविज्ञानी (Linguists) भाषायी तत्वों, ध्वनि, शब्द, शब्दार्थ, वाक्य के निर्माण एवं उनके विन्यास के साम्य व वैषम्य के आधार पर मानव की भाषाओं का वर्गीकरण करते हैं और काल क्रम में उन में हुए परिवर्तनो को दृष्टि में रखकर मूल भाषाओं का ऐतिहासिक पुनर्निमाण (Historical reconstruction) कर भाषाओं को कुछ परिवारों में विभाजित करते है। सदियों के सह जीवन के कारण उन बाहर से आये हुए लोगों की जातिगत विशिष्टताएँ न कायम रह पायी और न उन की भाषाएँ विशुद्ध रूप में रह पायीं। उन तमाम जातियों में सम्मिश्रण इस कदर हुआ कि आज नस्ल के संदर्भ में या भाषा की दृष्टि से उन के मूल रूप को पहचानना मुश्किल हो गया है। जहाँ तक भारत की भाषाओं और उन भाषाओं को भाषावैज्ञानिक दृष्टि से भाषा परिवारों में बाँटकर विश्लेषण करने का सवाल है, उभी भाषाविज्ञानियों में मतैक्य नहीं है। वैसे मोटे रूप से कहा जाता है कि भारत में आस्ट्रो- एशियाटिक परिवार, द्रविड परिवार, चीनी-तिब्बती परिवार और इंडो-यूरोपियन परिवार की सैकड़ों भाषाएँ बोली जाती हैं। इन परिवारों के नामकरण के पीछे कोई निश्चित आधार नहीं है। साथ ही इस नामकरण में अतिव्याप्ति व अव्याप्ति का दोष भी है। जाति के आधार पर भाषाओं का निर्धारण व नामकरण करने का भ्रामक विचार भी इस मे निहित है। अनेक मानव जातियों एवं उन को भाषाओं एवं भाषाई दक्षता के अध्ययन करने के उपरांत अब मानव जाति भाषा विज्ञानी (Ethno Linguistic) इस निष्कर्ष पर पहुँच गये हैं कि मानव को जाति एवं उस की भाषा में कोई सापेक्ष संबंध नहीं है। इसी तरह यह कहना सत्य संगत नहीं है कि अमुक भाषी परिवार की भाषाएँ बोलनेवाले जन जातियों से भिन्न होते हैं। अगर ऐसा होता तो छोटे नागपूर प्रांत के द्रविड भाषाएँ बोलनेवाले जब जन जातीय कहलाते हैं तो द्रविड़ भारत के द्रविड़ भाषाएँ बोलने वाले जैसे तमिल भाषी को भी जन जातीय कहना पड़ता।

आस्ट्रो एशियाटिक भाषा परिवार को ही कुछ लोग कोल परिवार और कुछ लोग मुंडा भाषा परिवार भी कहते हैं। कुछ विद्वान उन्हें आस्ट्रोनीशियन, पोलीनीशियन, मलानोशियन, मुंडा, मानखेमर आदि वर्गो में बाँट देते है। इस परिवार की भाषाओं का क्षेत्र आश्चर्य जनक रूप से विस्तुत है। मध्य भारत से लेकर असम प्रदेश तक, फिर बर्मा होते हुए कंबोडिया और इंडोनीशिया तक, पुनः पूर्वी आफ्रिका के समीप मालगासी (पुराना नाम मदगास्कर) द्वीप से लेकर आस्ट्रेलिया के पूर्व में फिजी द्वीप तक परस्पर मिलती भाषाएँ फैली हुई हैं। (शर्मा रामविलास 1981)

द्रविड़ परिवार की भाषाओं का क्षेत्र प्रमुख रूप से भारत है। भारत में भी दक्षिण भारत में द्रविड़ भाषाएँ बोलनेवाले केंद्रित हैं। मध्य भारत में पूर्वीभारत में भी द्रविड़ भाषाएँ बोलनेवाले आदिवासी लोग रहते हैं। पश्चिमोत्तर भारत के बलुचिस्थान (अब पाकिस्तन) में भी द्रविड़ भाषा ब्राहुई बोली है। नवीन शोधों से यह पता लग गया है कि भूमध्य सागर के पास खास कर वर्तमान स्पेन व फ्रांस के बीच के इलाके में रहनेवाले "बास्कू" जाति के लोगों की भाषा में ओर द्रविड़ भाषा में अनेक साम्य है।

चीनी-तिब्बती नाम का कोई भाषा परिवार है कि नहीं, यह बात वैसे ही विवादास्पद है जैसे आस्ट्रो-एशियाटिक परिवार की बात। चीनी-तिब्बती परिवार संसार के प्रमुख परिवारों में से है। जन संख्या की दृष्टि से इंडो-यूरोपियन परिवार के बाद इस का दूसरा स्थान है। किसी एक आदि भाषा से विशाल चीन-तिब्बती समुदाय की भाषाओं की उत्पत्ति दिखाना दुष्कर है। तिब्बत और बर्मा में बोलीजानेवाली भाषाओं की उत्पत्ति दिखाना दुष्कर है। तिब्बत और बर्मा में बोलीजानेवाली भाषाओं को इस समुदाय की शाखा के अंतर्गत रखा गया है। भारत के उत्तर पूर्वांचल में तथा हिमालय की उपत्यकाओं में

BRAOU

इस शाखा से संबद्ध अनेक भाषाएँ बोली जाती है। इन्हें डा.राम विलास शर्मा नागा भाषाएँ नाम से अभिहित करते हैं।

संसार के अधिक संख्याक लोगों के द्वारा बोली जानेवाली भाषाओं को इंडोयूरोपियन भाषा परिवार में सम्मिलित किया जाता है। इंडिया से यूरोप को जोड़कर यह नाम रखा गया है। इंडो और यूरोपियन दोनों शब्दों में अति व्याप्ति दोष है। क्यों कि न तो समस्त भारत में केवल इसी परिवार की भाषाएँ बोली जाती हैं और न यूरोप में। ईरानी भाषा समुदाय का विशाल क्षेत्र मध्य तथा पश्चिम एशिया में फैला हुआ है। और यह क्षेत्र न भारत में है और न यूरोप में। किन्तु इस क्षेत्र में बोली जानेवाली भाषाएँ इस परिवार की मानी जाती हैं। अतः इंडोयूरोपियन नाम में अव्याप्ति दोष भी है।

उपर्युक्त भाषा परिवारों को कुछ उप परिवारों, शाखाओं व उप शाखाओं व वर्गों में बाँट कर उन के अंतर्गत भाषाओं का वर्गीकरण भाषाविज्ञानियों ने प्रस्तुत किया है। इस प्रकार के भाषाओं के वर्गीकरण में भी एकरूपता नहीं पायी जाती। फिर भी इन परिवारों से संबद्ध भारत में प्रचलित भाषाओं का बहु प्रचलित वर्गीकरण की रूपरेखाएँ यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं।

आस्ट्रो-एशियाटिक परिवार के अंतर्गत मोल ख्मेर एवं मुंडा शाखा की भाषाएं भारत में बोली जाती हैं। मोनख्मेर शाखा में भी दो वर्गों की भाषाएँ ही हमारे देश में बोली जाती है। वे वर्ग हैं- खासी वर्ग की भाषाएँ एवं निकोबार वर्ग की भाषाएँ। भाषा विज्ञानियों ने मुंडा शाखा से संबद्ध भाषाओं का जो वर्गीकरण प्रस्तुत किया है सो निम्न प्रकार है :-

मुंडा शाखा

कोरापुर मुंडा समूह	मध्य मुंडा समूह	उत्तर मुंडा समूह
सवर	खरिया	कुरूख
गोरूम	जुआड	संथाली
गुतब		मुंडारी
रेमो		हो
गता		कोरवा

BRAOU

द्रविड परिवार में कितनी भाषाएँ हैं और उन्हें कितने समूहों में बाँटा जाए और किस समूह में क्या क्या भाषाएँ आती है, इस में अभी भाषा विज्ञानी निश्चित मत स्थापित नहीं कर पाये। नयी नयी भाषाओं का पता अभी लगाया जा रहा है। जैसे जैसे नयी नयी भाषाओं का अध्ययन व विश्लेषण हो रहा है, वैसे वैसे वर्गीकरण में परिवर्तन किया जा रहा है। प्रख्यात द्रविड़ भाषा विज्ञानी प्रो. भद्रिराजु कृष्णमूर्ति के अनुसार द्रविड़ भाषा परिवार का वर्गीकरण निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है:

द्रविड परिवार

दक्षिण द्रविड़	मध्य	द्रविड़	उत्तर द्रविड़
कन्नड	तेलुगु	कोरगा	कुरूख
तोड	कुई	पर्जी	माल्टो
कोट	कुवी	कोय	ब्रहुई
कोडगु	कोड	कुरुवा	
मलयालम	गोंडि	इसला	
तमिल	कोलामी	मुंडा	
बदग	नाइक	पेंगू	
तुलु	ओल्लारी	गदब	

चीनी-तिब्बती परिवार की भाषाओं की संख्या एवं उन भाषाओं की विविधता की दृष्टि से अधिक समृद्ध कहा जा सकता है। इस परिवार को कुछ उप परिवारों, शाखाओं और समूहों में विभाजित कर भाषाओं का वर्गीकरण किया जाता है। भारत में इस परिवार के उप परिवार तिब्बती-बर्मी की भाषाएँ बोली जाती हैं। ग्रियर्सन ने अपने भरत के भाषा सर्वेक्षण में उल्लेख किया कि भारत में इस उप परिवार से संबंधित 113 भाषाएँ और 82 बोलियाँ प्रचलित हैं।

इंडो यूरोपियन परिवार के अंतर्गत इंडो-आर्यन का जो उप परिवार है उस से संबंधित भाषाएँ भारत में बोली जाती हैं। इन भाषाओं की यह विशेषता है कि इन की बोलीगत भेद पाये जाते हैं। अधिक विस्तृत भूभाग में अधिक संख्यक लोगों के द्वारा प्रयुक्त होने के कारण इन में अधिक बोलीगत अंतर पाया जाता है। इन भाषाओं का वर्गीकरण ग्रियर्सन, सुनीतिकुमार चटर्जी, धीरेन्द्र वर्मा आदि भाषा-विज्ञानियों ने प्रस्तुत किया। पुराना वर्गीकरण होने के बावजूद ग्रियर्सन का वर्गीकरण अधिक प्रचलित है। ग्रियर्सन के आधार पर इस परिवार की भाषाओं को निम्न प्रकार से वर्गीकृत जाता है :

इंडो - यूरोपियन परिवार

इंडो - आर्यन उप परिवार

बाह्य शाखा

उत्तर पश्चिम समूह	दक्षिण समूह	पूर्वी समूह
लहंदा	मराठी	ओड़िया
सिंधी		बिहारी
		बंगला
		असमीया

बीच का शाखा

बीच का समूह
पूर्वी हिन्दी
(अवधी, बघेली, छत्तीस गढ़ी)

आंतरिक शाखा

मध्य समूह	पहाड़ी समूह
पश्चिमी हिन्दी	पूर्वी पहाड़ी/नेपाली
हिन्दुस्तानी, दक्खिनी,	
बांगरू, ब्रज, कन्नौजी, बुंदेली	पश्चिम पहाड़ी
पंजाबी	
गुजराती	
भीली	
खांदेशी	
राजस्तानी	

BRAOU

2.3.4 प्राचीन एवं मध्य कालीन भारत में भाषाओं की स्थिति

ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि भारत में अनेक भिन्न भिन्न भाषाएँ बोली जाती है। प्राचीन काल में भी यहाँ भिन्न भाषाएँ प्रचलित थीं। प्राचीन कालीन साहित्य एवं अन्य आधारों से ज्ञात होता है कि उस समय इन भाषाओं का समाज में उचित स्थान प्राप्त था और इन भाषाओं के बोलनेवालों को समान आदर प्राप्त था। भिन्न भाषा भाषियों के आपसी संपर्क के कारण एक भाषा दूसरी भाषा से प्रभावित होती रही। यह प्रक्रिया आज तक विद्यामान है। इस कारण से हमे सुदूरवर्ती भाषाओं में ध्वनि, शब्द, वाक्य रचनागत समानताएँ देखने को मिलती हैं। इसलिए भारत को एक भाषा क्षेत्र (India a linguistic area) भी कहा जाता है। भाषागत ये समानताएँ हमें प्राचीन साहित्यों में और तद्वारा

भारतीय पुराणों में एवं संस्कृति में परिलक्षित होती हैं। नरकासुर वर्तमान अरुणाचल में राज्य करता था तो हिडिंबा और उस के पुत्र घटोत्कच हिडिंबापुर (वर्तमान नागालैंड में स्थित डीमापुर) में रहते थे। और बभ्रुवाहन मणिपुर के थे। इसी प्रकार रूक्मिणी एवं उलूपू आदि का संबंध उत्तर पूर्वांचल से जोड़ा जाता है। आज भी आसाम की जन जाति "कार्बी" लोगों में महिलाओं के नाम के साथ उलूपी के समान अंत में "पी" लगता है जैसे रंगपी। कार्बी भाषा में रामायण भी मौजूद है। इसी प्रकार बौद्ध जन जाति "सामटी" में रामायण प्रचलित है। यहाँ की अनेक जन जातियाँ बौद्ध धर्म के महायान और हीनयान के थेरवाद संप्रदाय के अनुयायी हैं। जहाँ तक प्राचीन काल के संस्कृत साहित्य का संबंध है, नाटकों में उन-उन प्रांतों के अनुसार भाषा बदलती थी। राजा और ऋषि लोग संस्कृत में संवाद करते तो स्त्री और सेवक प्राकृत में वार्तालाप किया करते थे। जैन और बौद्ध धर्मों का प्रचार और उनके धार्मिक ग्रंथों की रचना प्रजा की भाषा में होती थी। फिर भी ये लोग वैदिक पंडितों से शास्त्रार्थ सस्कृत में करते थें। संस्कृत के साहित्यकार और पंडित अपनी और रचनाओं में सहज रूप से मागधी, शौरसेनी, महाराष्ट्री आदि प्राकृतों का प्रयोग करते थें। भरत मुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में अनेक देशी भाषाओं का उल्लेख किया। हेमचन्द्र आदि विद्वानों ने उस समय के पंडितों की प्राकृत और संस्कृत भाषा में प्रयुक्त अन्य देशीय भाषा के शब्दों की व्याख्या की और उनके अर्थ के प्रतिपादन में देशी नाममाला जैसे निघंटुओं की रचना की। तेलुगु के श्रीनाथ जैसे कई कवियों ने अपने बारे में गर्व से यह कहा कि वे कई भाषाओं के ज्ञाता हैं। कन्नड के आदि कवि एवं रत्न त्रय पंप, रत्न एवं पोत्न तेलुगु भाषी माने जाते हैं तो पाल्कुरिकि सोमनाथ तेलुगु और कन्नड़ दोनों के महा कवि माने जाते हैं। कर्नाटक के राजा श्री कृष्णदेवराय ने जिस की मातृभाषा तेलुगु मानी जाती है, तेलुगु में "आमुक्त माल्यद" काव्य की रचना की। दक्षिण भारत में बहुत समय तक संस्कृत और प्राकृत भाषाएँ राजभाषाओं के रूप में प्रचलित थीं। फिर भी संस्कृत के समान अति प्राचीन तमिल भाषा में, कन्नड भाषा में जिसका प्राचीन साहित्य 9 वीं शताब्दी से उपलब्ध है और तेलुगु में जिसका आदि काव्य 11 वीं शताब्दी का माना जाता है, अविच्छिन्न गति से साहित्य की रचना होती रही। उन दिनों जनता के उपयोगार्थ द्रविड़ भाषाओं में शिलालेख लिखवाये जाते थे। शासन के क्षेत्र में साहित्य, संस्कृति एवं विज्ञान आदि क्षेत्रों में संस्कृत और प्राकृतों का बोलबाला रहा।

14 वीं शताब्दी के विद्यापति और कबीर ने अपनी रचनाओं में जिस भाषा का प्रयोग किया उससे पता चलता है कि उन दिनों सभी भाषाओं का चाहे वे किसी क्षेत्र से संबंधित क्यों न हों उन सब का आदर होता था। कबीर ने उन दिनों उत्तर भारत में प्रचलित सभी भाषा रूपों का प्रयोग किया तो विद्यापति ने ऐसी भाषा का प्रयोग किया जिसे लेकर आज कुछ लोग उसे मैथिली कहते हैं तो कुछ लोग बंगला का पुराना रूप। 16वीं शताब्दी की मीराबाई ने अपने पदों के लिए जिस भाषा रूप का चयन किया उसे गुजराती भी कहा जाता है और राजस्थानी भी।

BRAOU

मध्यकाल में मुगलों के शासन में फ़ारसी के राजभाषा होने के कारण समस्त भारतीय भाषाओं में विशेषकर प्रशासनिक शब्दावली में बहुत संख्या में फ़ारसी के शब्द पहुँच गये। सूफी संप्रदाय के कारण उत्तर भारत की सभी भाषाओं में न केवल साहित्य में फ़ारसी प्रक्रिया का प्रवेश देखा जाता है बल्कि साहित्यिक भाषाओं में भी फ़ारसी का और इसके द्वारा अरबी एवं आदि पश्चिम एशिया की भाषाओं का प्रभाव मिलता है।

जहाँ तक मध्यकाल में देशी भाषाओं में साहित्य निर्माण का प्रश्न है दक्षिण भारत की भाषाओं में संस्कृत के महाभारत, भागवत और रामायणों का अनुवाद संपन्न हुआ। दक्षिण की तमिल, तेलुगु और कन्नड में उत्तर भारत की देशी भाषाओं की तुलना में पहले पहल पौराणिक, ऐतिहासिक और विविध शास्त्रों से संबंधित ग्रंथ सामने आये और इन भाषाओं में उन्हीं दिनों गद्य साहित्य का विकास भी हुआ। परिणाम स्वरूप हम देखते हैं कि महाभारत की रचना तमिल और कन्नड भाषाओं में 10 वीं शताब्दी में और तेलुगु में 11 वीं शताब्दी में हुई तो मराठी में 13 वीं ओड़िया में 14 वीं में, बंगला में 15 वीं और असमिया में 16 वीं शताब्दी में। अन्य आर्य भाषाओं में 18 वीं शताब्दी तक अलग ग्रंथ के रूप में महाभारत की रचना नहीं हुई। शास्त्र विषयों से संबंधित रचनाएँ तो इन भाषाओं में बहुत बाद में निकलीं। इस से स्पष्ट होता है कि संस्कृत भाषा का प्रभाव प्राचीन काल से लेकर

आजतक न केवल आर्य परिवार की भाषाओं में बल्कि आर्येतर भाषाओं में भी अक्षुण्ण रहा है। इस से एक राष्ट्रीय साहित्य और राष्ट्रीय एकता की नींव दृढ़ हो गयी है।

ऊपर हमने देखा कि प्राचीन काल में और मध्याकाल में साहित्य की रचना में भिन्न भिन्न भाषाओं का प्रयोग होता रहा और एक ही रचना में भिन्न भिन्न भाषाओं को मिलाकर मिश्र भाषा का भी प्रयोग होता रहा। कबीर के दोहों में और सिक्खों के धर्म ग्रंथ "गुरु ग्रंथ साहिब" में भाषा का सम्मिश्रण और अन्य भाषाओं का योगदान आश्चर्य जनक रूप से हुआ है। ऐसी रचनाओं को समाज में अधिक आदर ही मिला। किसी ने यह नहीं कहा कि इन में संकर भाषा का प्रयोग हुआ है इसलिए ये त्याज्य हैं। संकर भाषा का प्रयोग न केवल उत्तर भारत की रचनाओं में हुआ बल्कि दक्षिण भारत की भाषाओं जैसे तमिल, तेलुगु, और मलयालम में भी हुआ जिसे "मणिप्रवाल" शैली कहते हैं। इस के विपरीत शुद्ध भाषा का, भाषा के शुद्धतावाद से प्रभावित होकर, "उच्च तेलुगु" जानु तेलुगु, "उच्च कन्नडम" के नाम से संस्कृत शब्दों का बहिष्कार करते हुए तेलुगु और कन्नड में रचित साहित्य का समाज में कोई आदर नहीं मिला। इससे यह प्रमाणित होता है कि भाषा के नाम पर अलगाववादी दृष्टिकोण रखनेवालों का तिरस्कार हमारा समाज प्राचीन काल से ही करता आ रहा है।

16 वीं शताब्दी के बाद से पाश्चात्य देशों से भारत में आये पुर्तगाली, डच, फ्रेंच और अंग्रेजी के उपनिवेश के दिनों में उन उन स्थानों में वहाँ की भाषाओं में इन भाषाओं के अनेक शब्द लिये गये। भिन्न धर्मावलंबी मुस्लिम शासकों के काल में भी एवं धार्मिक असहिष्णुता के दिनों में भी हमारे देश में उनको भाषा और साहित्य को आदर मिलता रहा और अनेक भारतीयों ने भी उन भाषाओं में साहित्य की रचना कर उनका आदर किया। न केवल उन भाषाओं को और साहित्यों को यहाँ आदर मिला बल्कि उन भाषाओं के संपर्क से हिन्दी को एक मिश्र शैली जो उर्दू या हिन्दुस्तानी के नाम से विकसित हुई; उस का साहित्य भारत की अन्य भाषाओं के साहित्य के समान समृद्ध हुआ है। इस प्रकार की भाषा सहिष्णुता के कारण और अन्य भाषाओं को समान आदर के साथ देखने की दृष्टि के कारण सदियों पहले से लेकर गत शताब्दी के अंत तक बिना पढ़े लिखे लोग भी यहाँ तक वृध्द महिलाएँ भी रामेश्वरम से लेकर बद्रीनाथ तक और पुरी से लेकर द्वारका तक तीर्थ यात्राएँ आसानी से करते रहे और इन तीर्थ स्थानों में भारत की सभी भाषाओं को जाननेवाले लोग रहते थे।

2.3.5 आधुनिक भारत में भाषाओं की स्थिति

आधुनिक भारत में भाषाओं की जो स्थिति है, उसे दो दृष्टिकोणों से प्रस्तुत किया जा सकता है।

1. भाषा परिवारों को आधार बना कर उन परिवारों से संबद्ध भाषाएँ भारत में कहाँ कहाँ बोली जाती है और उन का साहित्यिक महत्व आदि क्या है।
2. राज्यों को आधार बना कर राज्य विशेष की प्रमुख भाषा और उस प्रमुख भाषा के साथ साथ उस राज्य में व्यवहृत अन्य अल्प संख्याकों की भाषाएँ कौन-कौन-सी हैं और उनका आपसी संबंध क्या है। आगे दोनों आधारों को दृष्टि में रखकर आधुनिक भारत में भाषाओं की स्थिति पर क्रमशः प्रकाश डाला जा रहा है।

भाषा परिवारों के अनुसार हमारे देश में आष्ट्रो-एशियाटिक भाषाएँ बोलनेवालों की संख्या 61,92,495, द्रविड़ परिवार की भाषाएँ बोलनेवालों की संख्या 10,74,10,820, चीनी-तिब्बत परिवार की भाषाएँ बोलनेवालों की संख्या 31,83,801, और इंडो-युरोपियन परिवार की भाषाएँ बोलनेवालों की संख्या 32,17,20,700 हैं। ये आंकडे 1961 की जनगणना से संबंधित हैं। देश की जन संख्या में इन का प्रतिशत क्रमशः इस प्रकार है- 1.05, 24.47, 0.73 और 73.30 है। 1961 के सर्वेक्षण के अनुसार इन चारों परिवारों से संबद्ध कुल 1652 भाषाएँ देश में बोली जाती थी। एक लाख और उस से अधिक संख्यक लोगों के द्वारा बोली जानेवाली भाषाओं की संख्या 33 भी हैं। इन भाषाओं की यह भी विशेषता है कि एक भाषा बोलनेवाले किसी एक प्रदेश तक या एक भौगोलिक इकाई तक सीमित नहीं है, इन का फैलाव एकाधिक प्रदेशों तक व्याप्त है।

आस्ट्रो-एशियाटिक भाषाओं में संथाली प्रमुख भाषा मानी जाती है जिस के बोलनेवालों की संख्या करीब 40 लाख है। संथाली लोग बिहार के छोटा नागपुर संथाल परगना में अधिक संख्या में है। लेकिन वे लोग ओड़ीसा, असम एवं पश्चिम बंगाल में भी निवास करते है। मुंडारी भाषी दक्षिण बिहार में और कुछ लोग असम-में रहते हैं। हो भाषा भाषी बिहार के सिंग भूमि में केन्द्रित है और उन के साथ ही खरिया और भूमिज भाषा भाषी भी रहते हैं। मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र सीमा में कुरुख भाषा भाषी रहते हैं। सबर भाषी ओड़ीसा में तथा आंध्र प्रदेश में ओड़ीसा की सीमा प्रांत में रहते हैं इस परिवार की किसी भी भाषा में लिखित साहित्यिक परंपरा नहीं हैं। फिर भी अपार लोक साहित्य हैं। 19 वीं सदी में ईसाई मिशनरियों ने इस परिवार की कुछ प्रमुख भाषाओं में बाइबिल का अनुवाद किया तथा इन भाषाओं को रोमन लिपि में अंकित करने की परंपरा प्रारंभ की। इन भाषाओं के व्याकरण और शब्द कोशों के निर्माण भी अंग्रेजों ने किया। सवर भाषा के व्याकरण और कोश ग्रंथों का निर्माण कर तथा उस भाषा में साहित्य की रचना कर गिडुगु वेंकट राममूर्ति ने उस भाषा की अपार सेवा की। अब इन में से कुछ भाषाओं में पाठ्य पुस्तके और छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ प्रकाशित होने लगी हैं। लेकिन अभी इन में से कुछ भाषाएँ एकाधिक लिपियों में अंकित की जाती है जैसे, संथाली रोमन और बंगला लिपि में, सवर ओड़िया, तेलुगु एवं रोमन लिपि में।

खासी वर्ग की भाषाओं में 4 लाख आबादीवाली खासी प्रमुख भाषा है जो मेघालय में बोली जाती है। यह रोमन लिपि में लिखी जाती है। पहले यह बंगला लिपि में लिखी जाती रही। इस भाषा में अब साहित्य की रचना हो रही है। बी.ए.स्तर तक खासी भाषा नार्थ ईस्टर्न हिल युनिवर्सिटी शिलांग एवं गुवाहाटी विश्व विद्यालय में पढ़ाई जाती है। इस भाषा में फिल्मों का निर्माण भी हुआ है। इस वर्ग की दूसरी भाषा निकोबारिस है जो निकोवार द्वीप मे बोली जाती है। यह भी रोमन लिपि में अंकित की जाती है। इस में पाठ्यपुस्तकें निर्मित हैं।

द्रविड परिवार की भाषाओं में चार भाषाएँ तेलुगु, तमिल, कन्नड, और मलयालम संपन्न हैं जिन में भव्य साहित्यिक परंपरा है और विपुल साहित्य भी उपलब्ध है। इन की अपनी अलग लिपियाँ हैं। शेष द्रविड भाषाएँ जो लगभग 23 है, इन में लिखित साहित्यिक परंपरा नहीं है। किंतु इन में विपुल लोग साहित्य है। अभी अभी इन में से कुछ भाषाओं में पाठ्य पुस्तकें आदि निर्मित की जा रही है। उत्तर द्रविड समूह को तीनों भाषाओं कुरुख, माल्टी और ब्राहुई में से अंतिम भाषा पाकिस्तान के बेलुची राज्य में बोली जाती है। कुरूख भाषा जिसे कुडुक भी कहते है बिहार के छोटा नागपुर और रांची के समीप बोली जाती है माल्टो भाषा ओड़ीसा बंगाल के बीच मे, राजमहल पहाड़ों में एवं संथाल परगणा में बोली जाती है।

मध्य द्रविड भाषा में साहित्यिक भाषा तेलुगु के अतिरिक्त गोंडी, कोंड, पेंगु, मंड, कुई, कुवी, कोय, कोलायी, नयकी, जपर्जी, गदब, ओल्लारी आदि 15 जन जाति की भाषाएँ सम्मिलित है कहते हैं कि मूल द्रविड भाषा से 9-12 सदी में तेलुगु अलग हुई और इस का संपर्क दक्षिण द्रविड भाषाओं से अधिक हो जाने के कारण इस में दक्षिण द्रविड भाषाओं के लक्षण अधिक दिखाई पड़ते हैं। फिर भी शब्द और संरचना की दृष्टि से यह मध्य द्रविड भाषा समूह की सभ्य समाज की भाषा थी जब कि गोंडों का राज यहाँ कायम था। गोंडी आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र एवं मध्य प्रदेश के विस्तृत भूभाग में लगभग बीस लाख लोगों के द्वारा बोली जाती है। आंध्र प्रदेश के आदिलाबाद, महाराष्ट्र के यवतमाल चंद्रपुर, वर्धा, नागपुर एवं मध्य प्रदेश के बस्तर जिलों में यह बोली जाती है। तीनों राज्यों में गोंडी भाषा प्रारंभिक स्तर पर पढ़ाई जाती है। इस भाषा में पाठ्यपुस्तकें निर्मित की गयी हैं। लेकिन आंध्र प्रदेश में यह तेलुगु लिपि में और बाकी दो राज्यों में देवनागरी लिपि में पढाई जाती है। इन दोनों लिपियों के अतिरिक्त यह रोमन लिपि में इसाई मिशीनिरियों के द्वारा प्रचारित की जाती है। रोमन लिपि में गोंजी बायबिल एवं व्याकरण ग्रंथ उपलब्ध भी है। गोंड भाषा आंध्र प्रदेश के विशाखपट्टनम, विजयनगरम के पहाड़ी इलाकों में ओड़ीसा के कोरापुर जिले में बोली जाती है। पेंगों पेंग ओड़ीसा-आंध्र की सीमावर्ती इलाके में और मुंडा ओड़ीसा मध्य प्रदेश की सीमा में बोली जाती है। कुई भाषा ओड़ीसा के फुभणी एवं गंजाम जिले में आंध्र के विशाख जिलों में बोली जाती है। कुवी भाषा वरंगल, खम्मम, पूर्व और पश्चिम गोदावरी एवं ओड़ीसा के कोरापुर जिले में बोली जाती है। कुछ लोग इसे

Dr. BRAOU LIBRARY
Acc. No: H-769
Class No: 491.43 HIN

गोंडी की बोली भी मानते हैं। लेकिन नवीन शोध से ज्ञात हुआ कि यह गोंडी की बोली नहीं है। कोलामा भाषा आंध्र प्रदेश के आदिलाबाद एवं महाराष्ट्र के यवतमाल वर्धा जिलोंमें बोली जाती हैं। अंग्रेजी में इस भाषा का व्याकरण एवं कोश उपलब्ध हैं। महाराष्ट्र के कुछ जिलों में तथा उस से सटे हुए आंध्र प्रदेश के करीमनगर और आदिलाबाद जिलों में नइकोस बस्तर में पर्जी, श्री काकुलम में गदब, कोरापुर में ओल्लारी बोली जाती हैं। अब इन सभी भाषाओं का भाषावैज्ञानिकों द्वारा विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है, व्याकरण ग्रंथ लिखे जा रहे हैं और लोक साहित्य संकलित किया जा रहा है।

दक्षिण द्रविड समूह में तीन साहित्यिक भाषाएँ तमिल, कन्नड़ और मलयालम है जिन की भव्य साहित्यिक परंपरा है। तमिल और कन्नड में तो शिलालेख आदि ईस्वी के प्रारंभिक सदियों में से प्राप्त हुए हैं। शेष पाँच भाषाएँ तुलु, तोद, कोट, कोडगु और बदग में लिखित साहित्य उपलब्ध नहीं है। इन म तुलुगु बोलनेवाले जन जाति के नहीं है शेष जन जाति के माने जाते हैं। केरल के कासरगोड तथा कनाटक के दक्षिण कनरा जिले के मंगलूर एवं उडिपि में तुलुगु भाषी रहते हैं। तुलुगु कन्नड़ मलयालम एवं रोमन लिपि में लिखी जाती है। इसे कूर्गी भी कहते हैं। तोद और कोट दोनों भाषाएँ तमिलनाडु के नीलगिरि पहाडों में बोली जाती है। कहते हैं कि दक्षिण द्रविड़ समूह की भाषाएँ मूल द्रविड़ भाषा से ई.पू. 1500–11000 के बीच अलग हुई है। यह भी कहा जाता है कि सींधु घाटी सभ्यता द्रविड सभ्यता थी और वहाँकी खुदाई में प्राप्त अवशेषों पर अंकित चित्र लिपि द्रविड का प्राचीन रूप था।

तिब्बती–चीनी परिवार की भाषाओं से भारत में भोटिया, सार्वनामिक हिमालय, असार्वनामिक हिमालय, मिरि, बोडो, नागा, कुकी–चिन और बर्मा समूह की लगभग पैंसठ प्रमुख भाषाएँ बोली जाती हैं। दस हजार से कम लोगों के द्वारा बोली जानेवाली और अनगिनत भाषाएँ भी है जो पूर्वोत्तर भारत में बोली जाती है। भोटिया समूह की भाषाएँ उत्तर प्रदेश, के पश्चिमोत्तर भाग के एवं हिमाचल प्रदेश के पहाडों में सार्वनामिक और असार्वनामिक हिमालय समूह की भाषाएँ उत्तर प्रदेश के तराई, उत्तर बिहार, उत्तर बंगाल के तराई इलाकों एवं सिक्किम में बोली जाती है। मिरि समूह को अधिकांश भाषाएँ अरुणाचल प्रदेश एवं कूच बिहार में बोली जाती है। बोड़ो समूह की भाषाएँ असम, मेघालय एवं त्रिपुरा में नागा समूह की भाषाएँ मणिपूर, मिजोरम तथा उनके सीमावर्ती इलाकों में और बर्मा समूह की भाषा त्रिपुरा बंगला देश की सीमा में बोली जाती हैं। इन में से सात भाषाएँ ऐसी है जिन की बोलनेवालो कि संख्या एक लाख और उस से अधिक है – जैसे (1) मणिपुरी– 7,80,870, (2) बोड़ो– 5,09,006. (3) गारो– 4,11,532., (4) मिलो– 2,70,312, (5) त्रिपुरी–2,68,948, (6) कार्बी– 1,98,973, (7) मिरि– 1,80,684 थे अकडे 1971 के जनगणना से संबंधित है। इन में मणिपुरी में प्रचीन व आधुनिक साहित्य उपलब्ध है। यह मणिपुर राज्य की राज भाषा है। इस की अपनी प्राचीन लिपि भी रही है। कई वर्षो से मणिपुरी में एम.ए. की पढ़ाई हो रही है। पी.एच.डी. के लिए 'शोधप्रबंध' प्रस्तुत किये जा रहे हैं। केन्दीय साहित्य अकादमी के द्वारा प्रति वर्ष मणिपुरी साहित्यकारों को पुरस्कृत भी किया जाता है। बोड़ो भाषा में अलिखित रूप में बड़ी मात्रा में धार्मिक साहित्य जिस में मंत्र भी सम्मिलित है उपलब्ध है। पहले बोड़ो भाषा असमीया लिपि में लिखी जाती रही। 10–15 वर्ष पहले से यह देवनागरी लिपि में लिखी जा रही है। यह एस.एस.सी. तक पढ़ाई जाती है और पढ़ाई की माध्यम भाषा भी है। गोरो मुख्यतः मेघालय में बोली जाती है। रोमन लिपि में लिखी जाती है। पाठ्य पुस्तकें एवं संदर्भ ग्रंथ तथा ईसाई धर्म प्रचार साहित्य इस में उपलब्ध है। मिलोजो जो भाषा मिज़ोरम राज्य के राज काज की भाषा है। रोमन लिपि में लिखी जाती है। बी.ए. तक इसकी पढ़ाई हैती है। एम.ए. में मिज़ों भाषा की पढ़ाई की व्यवस्था की जा रही है। लोक साहित्य, प्रचार साहित्य एवं काव्य साहित्य मिड़ो में इन दिनों अधिक मात्रा में प्रकाशित हो रहा है। मिजो लोगों की साक्षरता का प्रतिशत भारत में मलयाल भाषियों के बाद दूसरे स्थान पर है। त्रिपुरी, कार्बी एवं मिरि में लोक साहित्य है। इस का संकलन व प्रकाशन का कार्य चल रहा है। रोमन लिपि के अलावा कार्बी असमीया लिपि में त्रिपुरी बेंगला लिपि में लिखी जाती है। शेष 58 भाषाओं में से लगभग 20 भाषाएँ स्कूलों में किसी न किसी स्तर पर पढ़ायी जाती हैं और सभी रोमन लिपि में लिखी जाती हैं।

BRAOU

भारत में बोली जानेवाली इंडो-यूरोपियन परिवार की भाषाओं से भोली, खादेसी और लहंदा को छोड़ लगभग शेष सभी भाषाओं में लिखित साहित्य की परंपरा है। साहित्यक भाषाओं में सिंधी, पंजाबी, मराठी, गुजराती, हिन्दी, ओड़िया, बंगला, असमिया और नेपाली गिनायी जाती है जिन में प्राचीन व आधुनिक साहित्य विपुल मात्रा में उपलब्ध है। सिंधी और नेपाली को छोड़कर शेष भाषाओं के लिए भाषावार प्रदेश भी बने हैं।

नेपाली देवनागरी में और सिंधी अरबिक एवं देवनागरी में लिखी जाती है। हिन्दी की अनेक बोलियों में भी साहित्यिक परंपरा रही है जैसे, ब्रज, अवधी, मैथिली और राजस्थानी आदि में। भोजपुरी बोली बोलनेवाले न केवल भारत में हैं अपितु विदेशों में अधिक संख्या में बसे हुए हैं। मैथिली स्कूली स्तर तक पढ़ाई का माध्यम है और विषय भी है। स्नातकोत्तर कक्षाओं में भी मैथिली की पढ़ाई की व्यवस्था है। राजस्थानी में भी स्कूली स्तर पर पढ़ाई की व्यवस्था है। इन दिनों हिन्दी की बोलियों में भी साहित्यिक रचना हो रही है। वैसे प्रत्येक बोली में अपार लोक साहित्य है जिस का अध्ययन व प्रकाशन संपन्न किया जा रहा है। हिन्दी की बोली कही जानेवाली मैथिली मानक हिन्दी से अधिक दूर की दिखाई पड़ती है जब कि पंजाबी जो अलग भाषा मानी जाती है हिन्दी की निकट की लगती है।

इन भाषाओं के अतिरिक्त उर्दू भाषा का जो हिन्दी की एक शैली मानी जाती है, समस्त भारत में बड़ा महत्व है। इस में अधिक आधुनिक साहित्य ही नहीं, उपयोगी साहित्य भी उपलब्ध है। इन भाषाओं के अतिरिक्त दर्दिक उप शाखा से सबद्ध भाषा कश्मीरी भाषा कश्मीर में बोली जाती है। 13 वीं सदी से इस के साहित्य की रचना हो रही है। जम्मू में आर्ट परिवार की जोगरी भाषा का व्यवहार होता है जिस में आज कल साहित्य का निर्माण किया जाता है। मराठी की बोली कहलानेवाली कोकणी भाषा गोवा की प्रमुख भाषा है। इस में भी साहित्य की रचना डोगरी के समान तेज गति से हो रही है। जोगही एवं कोकणी को केंन्द्रय साहित्य अकादमी मान्यता देकर प्रति वर्ष इन भाषाओं की उत्तम रचनाओं को पुरस्कृत कर रहीं है। कोकणी भाषा गोवा के अतिरिक्त पड़ोसी प्रदेश महाराष्ट्र एवं कर्नाटक में व्यवहत है। यह भी तीन लिपियों में लिखी जाती है- रोमन - देवनागरी- एवं कन्नड़।

राज्यों को आधार बना कर भारत की भाषाओं की स्थिति पर विचार करते है तो हमे पता चलेगा कि कोई भी एक भाषा एक ही प्रदेश तक सीमित नहीं है। कई प्रमुख भाषाएँ ही नहीं अपितु छोटी-छोटी भाषाएँ भी एक से अधिक राज्यों में बोली जाती हैं। किसी किसी राज्य में भाषाओ की संख्या अत्यधिक है तो किसी में कम भी है। मध्य देश की भाषा होने एवं अन्यान्य एतिहासिक-राजनीतिक कारणों से जिस की स्थिति के बारे में आगे विचार किया जा रहा है हिन्दी प्रत्येक प्रदेश में बोली व समझी जाती है इन का विवरण नीचे चार्ट में दे रहे हैं। प्रत्येक राज्य में भाषाओं का जो क्रम दिया गया है वह संख्या के अनुपात से दिया गया है। इस में हिन्दी का उल्लेख नहीं किया गया क्यों कि हर प्रदेश में इस के बोलनेवाले हैं।

क्र.सं.	राज्य का नाम	भाषाओं की संख्या	भाषाओं के नाम
1.	असम	15	असमिया, बंगला, बोड़ो, कार्बी मिशिङ, राभा, दिमासा, कछारी, देउरी, विष्णुप्रिया, कोछ, मेछ, लालुड, गारो, मार
2.	मेघालय	7	गारो, खासी, राभा, कोछ, असमीय, बंगला, नेपाली
3.	त्रिपुरा	7	बंगला, त्रिपुरी, जमातिया, रियाड, कुकी, चकमा, मग

BRAOU

4.	मणिपुर	10	मणिपुरी, ताखूल, काबुई, थादौ मार, पाइत, माओ, वाइके, जौउ, मिज़ो
5.	नागालैंड	14	रियाड, कोन्याक, आओ, सेमा, अंगामी, लोथा, सांडतम, फोम, चाड, खियमडन, मिमिचुडर, जेलियाड, चेखेसाड, रेढमा
6.	मिज़ोरम	6	मिजो, चकमा, लखेर, रियाड, नेपाली
7.	अरुणाचल प्रदेश	13	मिजु, गोलाड, निशि, वाडवू आदि नोक्ते, मोनपा, तगिन, बडनी, मिनियोड, आपातानी, ताडसा, असमीया
8.	आंध्र प्रदेश	7	तेलुगु, तमिल, कन्नड, मराठी, ओडिया मलयालम, गुजराती
9.	तमिलनाडु	6	तमिल, तेलुगु, कन्नड, मलयालम, गुजराती, मराठी
10.	केरल	5	मलयालम, तमिल, कन्नड, तेलुगु, मराठी
11.	कर्नाटक	6	कन्नड, तेलुगु, तमिल, मराठी, मलयालम, गुजराती
12.	जम्मू–काश्मीर	3	उर्दू, कश्मीरी, पंजाबी
13.	पंजाब	1	पंजाबी
14.	हिमाचल प्रदेश	2	हिन्दी, पंजाबी
15.	हरयाणा	2	हिन्दी, पंजाबी
16.	राजस्थान	4	हिन्दी, पंजाबी, गुजराती, बंगला
17.	गुजरात	5	गुजराती, मराठी, पंजावी, मलयालम, तमिल
18.	महाराष्ट्र	8	मराठी, गुजराती, कन्नड, तेलुगु, तमिल, मलयालम, पंजाबी, बंगला
19.	मध्य प्रदेश	9	हिन्दी, तेलुगु, मराठी, ओड़िया, बंगला, पंजाबी, गुजराती, मलयालम, तमिल
20.	उत्तर प्रदेश	5	हिन्दी, पंजाबी, बंगला, मराठी, मलयालम
21.	बिहार	7	हिन्दी, बंगला, ओडिया, पंजाबी, तेलुगु, गुजराती, मलयालम

BRAOU

22.	पश्चिम बंगाल	6	बंगला, ओड़िया, तेलुगु, पंजाबी, गुजराती, तमिल
23.	ओड़िसा	6	ओड़िया, तेलुगु, बंगला, पंजाबी, गुजराती, मलयालम

2.3.6 भारत की बहुभाषिक स्थितिः उस में हिन्दी का स्थान

प्राचीन काल में भारत बहुभाषी देश रहा। कभी भी राजनैतिक इकाई/भूभाग एक भाषी नहीं रहा। इसी प्रकार कोई भी भारतीय भाषा किसी एक प्रदेश तक सीमित नहीं रही। यह बात केवल भाषा तक सीमित नहीं थी। एक भाषा का साहित्य दूसरे भाषा के क्षेत्र में भी विकसित व प्रोत्साहित होता रहा। उर्दु साहित्य का श्रीगणेश गोलकोंडा से हुआ। हिन्दी साहित्य में दक्खिनी हिन्दी साहित्य का एक नया आयाम ही जुड़ गया जिस का संबंध दक्षिण भारत से है। कमो बेशी में हिन्दी साहित्य की भी यही स्थिति है। हिन्दी क्षेत्रों के अतिरिक्त अन्य अहिन्दी क्षेत्रों में भी आज हिन्दी में साहित्य रचा जा रहा है।

आधुनिक समय में भारत की बहुभाषिक स्थिति को दो दृष्टिकोणों से देखा जा सकता है। एक राज्य के हिसाब से; अर्थात् किस राज्य में उस राज्य की राज भाषा (बहु संख्यक लोगों की भाषा) के अतिरिक्त और कितनी भाषाएँ प्रचलित हैं। कुछ राज्य ऐसे हैं जिनमें राज्य की भाषा और हिन्दी उर्दू के अतिरिक्त एक से लेकर छह भाषाएँ तक बोली जाती हैं। जैसे–

छह भाषाएँ	महाराष्ट्र	गुजराती, कन्नड, तेलुगु, तमिल, मलयालम, पंजाबी
चार भाषाएँ	1. आंध्र प्रदेश	तमिल, कन्नड़, मराठी, ओड़िया
	2. कर्नाटक	तेलुगु, मराठी, तमिल, मलयालम
	3. मध्य प्रदेश	मराठी, ओड़िया, बंगला, तेलुगु
	4. तमिलनाडु	तेलुगु, कन्नड, मलयालम, गुजराती
दो भाषाएँ	1. असम	बंगला, ओड़िया
	2. बिहार	बंगला, ओड़िया
	3. ओड़िया	तेलुगु, बंगला
	4. उत्तर प्रदेश	पंजाबी, बंगला
एक भाषा	1. गुजरात	मराठी
	2. हरयाणा	पंजाबी
	3. हिमाचल प्रदेश	पंजाबी
	4. जम्मू कश्मीर	पंजाबी
	5. केरल	तमिल
	6. राजस्थान	पंजाबी
	7. पश्चिम बंगाल	ओड़िया

भाषाओं को आधार बना कर अर्थात् एक भाषा बोलनेवाले अपने प्रदेश के अतिरिक्त और कितने प्रदेशों में अधिक संख्या में रह रहे हैं, इस का विवरण भी हमें भारत की बहुभाषिक स्थिति को स्पष्ट कर देता है। जैसेः

BRAOU

पंजाबी	6 राज्य	हरयाणा, हिमाचल प्रदेश, जम्मू कश्मीर, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र
तेलुगु	5 राज्य	तमिलनाडु, कर्नाटक, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, ओड़ीसा
ओड़ीसा	5 राज्य	पं.बंगाल, असम, बिहार, मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश
बंगाल	5 राज्य	असम, बिहार, ओड़ीसा, उत्तर प्रदेश मध्य प्रदेश
मराठी	4 राज्य	गुजरात, मध्य प्रदेश, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश
कन्नड	3 राज्य	आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, महाराष्ट्र
मलयालम	3 राज्य	तमिलनाडु, कर्नाटक, महाराष्ट्र
गुजराती	2 राज्य	महाराष्ट्र, तमिलनाडु

ऊपर बतायी गयी बहुभाषिक स्थिति के अलावा राज्य के निवासियों के वैयक्तिक स्तर पर जो बहुभाषिक है उस पर विचार करते हैं तो हम पाते हैं कि राज्यों के सीमावर्ती इलाकों में रहनेवाले व्यक्ति प्रकृत्या एक से अधिक भाषाओं के ज्ञाता होते हैं। बचपन से ही इन का संपर्क दो भाषाओं से होने के कारण ये सहज रूप से द्विभाषी/बहुभाषी हो जाते हैं।

देश की इस बहुभाषिक स्थिति के संदर्भ में आगे हम हिन्दी के स्थान व उस के व्यवहार क्षेत्र के बारे में संक्षेप में विचार करेंगे। जैसे कि उपर संकेत दिया जा चुका है कि देश के प्रत्येक भाषा क्षेत्र में खासकर सामान्य जनता में हिन्दी का प्रयोग विद्यामान है भले ही उस हिन्दी का रूप मानक/परिनिष्ठित हिन्दी रूप से थोड़ा बहुत भिन्न हो। मध्य देश के विशाल भूभाग की भाषा होने तथा अन्य सांस्कृतिक व राजनीतिक कारणों से उसे यह स्थान मिला है। डा.ब्रजेश्वर वर्मा (1979) कहते हैं कि भाषाओं के इतिहास में यह असाधारण उदाहरण है कि आधुनिक हिन्दी के बोली रूप को उसके जन्म काल से ही अंतर प्रांतीय भाषा का दायित्व वहन करता पड़ा। हिन्दी की इस भूमिका के कारण ही विदेशी भाषा भाषी नवागत राजनीतिक शक्तियों को मध्य काल में मुस्लिम शासकों को, तथा आधुनिक काल में अंग्रेज शासकों को जनता से संपर्क के लिए सामान्य राजकाज प्रमुखतः निचले स्तर के प्रशासनिक कार्य के लिए हिन्दी के प्रयोग को स्वीकार करना पड़ा। इतिहास इस बात का साक्षी है। 19 वीं सदी के राजनीतिक आंदोलन के संचालन में हिन्दी ने जन माध्य म की भूमिका निभायी और साहित्येतर क्षेत्रों में भी प्रवेश कर लिया।

हिन्दी के बहुभाषी परिवेश का सब से अधिक महत्वपूर्ण तत्व स्वयं उस के एतिहासिक विकास में निहति है। मध्यकाल में विदेशियों ने उसे अपनाया देश के दूर दूर तक उसे पहुँचाया, साहित्य का माध्यम बनाया। कालांतर में उन की संस्कृति का रंग उस पर चढ़ने लगा। साहित्यक माध्यम बनकर जन सामान्य से अलग होते होते राज संपर्क से साहित्यिक गोष्ठियों के द्वारा मंजकर उस का रूप ही नहीं, आठरहवी सदी में उस का नाम भी बदल गया पहले जबाने उर्दू ए मुअल्ला और अंत में उर्दू। परवर्ती काल में राष्ट्र पिता महात्मा गाँधी ने राष्ट्रीय एकता के संदर्भ में भाषा ऐक्य के लिए हिन्दुस्तानी के नाम से उसे पूरे भारत में प्रचारित करने का आंदोलन उठाया। गाँधी जी का

यह विश्वास था कि हिन्दी भाषी समाज के बोली भेदों का अतिक्रमण करने वाली सामान्य बोलाचाल की भाषा हिन्दी-हिन्दुस्तानी है न कि साहित्यिक उच्च हिन्दी या साहित्यिक उर्दू।

जन संपर्क भाषा के अतिरिक्त साहित्यिक भाषा के रूप में भी हिन्दी का सार्वदेशिय स्तर पर विकास हो रहा है। इस दृष्टि से भी भारत के बहु भाषिक समाज में उस का स्थान विशिष्ट कहा जाएगा, क्योंकि भारत की कोई ऐसी भाषा नहीं है जिस में भारत के भिन्न भिन्न भाषियों के द्वारा साहित्य रचा जा रहा हो-शिवाय हिन्दी के।

2.3.7 भारत के संविधान में भाषाओं की स्थिति

भारत का संविधान 26 जनवरी 1950 से लागू किया गया। संविधान के निर्माताओं ने भारत की बहुभाषिक स्थिति एवं उस में हिन्दी के स्थान को दृष्टि में रखकर ही संविधान का निर्माण किया। इस कारण अन्य देशों के संविधानों की तुलना में भारत का संविधान बृहदाकार का माना जाता है। भाषाओं को लेकर जो अनुच्छेद हमारे संविधान में दिये गये हैं, वे भी अधिक एवं विस्तृत व्याख्याओं से युक्त है। भाषाओं से संबंधित अनुच्छेदों के अध्ययन से राजभाषा के संबंध में स्पष्टतः चार प्रकार की व्याख्याएँ मिलती हैं, वे निम्न प्रकार हैं। जब हम हिन्दी की संवैधानिक स्थिति पर विचार करते हैं, तब भारत की संपूर्ण स्थिति को जानने के लिए राज्यों की राजभाषाओं की स्थिति पर भी विचार करना आवश्यक होता है। अतः आगे इनको साथ लेकर विचार किया जा रहा है।

1. संघ राजभाषा एवं राज्यों की राजभाषाओं को अलग अलग व्यवस्था और उनकी व्याख्याएँ।
2. संसद और राज्यों के विधान मण्डलों की भाषाओं पर व्यख्याएँ।
3. उच्चतम न्यायालय एवं न्यायालयों की भाषा नीति पर व्याख्याएँ।
4. संघ और राज्यों के बीच के एवं आपस में राज्यों के बीच के पत्र-व्यवहार के लिए राजभाषा पर व्याख्याएँ।

1. संघ और राज्यों की राजभाषाओं की स्थिति :

1. संघ की राजभाषा देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी है। (343-1) कोष्टोकों में जो संख्याएँ दी गयी है वे संविधान के अनुच्छेदों से संबंधित हैं। 2. सन् 1965 तक अंग्रेजी संघ की राजभाषा के रूप में पचलित रहेगी। (120-2 और 343-1) 3. इस अवधि में भी अर्थात् सन् 1965 के पहले भी राष्ट्रपति आदेश के द्वारा किसी काम के लिए अंग्रेजी के अलावा हिन्दी के प्रयोग की अनुमति दे सकते हैं। (343-2) 4. संसद को यह अधिकार है कि वह सन् 1965 के बाद भी राजकाज में अंग्रेजी के प्रयोग को जारी रखने की व्यवस्था कर सकती है। (343-3) 5. संघ राजभाषा की प्रचार वृद्धि करना एवं उसका विकास करना संघ का कर्तव्य होगा। 6. राज्यों में उस राज्य की प्रमुख भाषा (वहाँ के अधिकांश निवासियों की मातृभाषा) राजभाषा होगी। 7. एक राज्य में एक से अधिक राजभाषाएँ हो सकती है। 8. राज्य की राजभाषा हिन्दी भी हो सकती है। 9. यह जरूरी नहीं है कि हिन्दी प्रदेशों में ही हिन्दी राजभाषा हो। अहिन्दी भाशी राज्य भी अपनी इच्छा से हिन्दी को अपने राज्य की राजभाषा स्वीकार कर सकते हैं। 10. यह भी जरूरी नहीं है कि अष्टम अनुसूची में उल्लिखित एवं संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त असमीया, बंगला, गुजराती, हिन्दी, कन्नड, कश्मीरी, मलयालम, मराठी, ओडिया, पंजाबी, संस्कृत सिंधी, तमिल, तेलुगु और उर्दू इन 15 भाषाओं में से ही कोई भाषा या भाषाएँ राज्य की राजभाषएँ हों. उस राज्य विशेष में प्रचलित किसी प्रमुख भाषा या भाषाओं का उस राज्य के राजकाज में प्रयोग करने की अनुमति राष्ट्रपति दे सकते हैं। (347) (11) जब तक किसी राज्य का विधान मंडल विधेयक पास करके यह निर्णय नहीं लेता कि उस राज्य की राजभाषा क्या हो, तब तक उस राज्य में अंग्रेजी राजभषा के रूप में चलती रहेगी।

BRAOU

2. संसद और राज्यों के विधान मंडलों में राजभाषाओं की स्थितिः

1. संसद की कार्यवाही संघ की राजभाषा हिन्दी अथवा अंग्रेजी में हो सकती है। 2. संसद की कार्यवाही में हिन्दी के साथ साथ अंग्रेजी को भी समान स्थान दिया गया है। 3. संसद की कार्यवाही हिन्दी और अंग्रजी को छोड़कर किसी अन्य भाषा में नहीं हो सकती। 4. अंग्रजी या हिन्दी न जाननेवाले सदस्य सभापति/अध्यक्ष की अनुज्ञा पाकर अपनी मातृभाषा में सदन में बोल सकते हैं। (120-1) 5. राज्य के विधान मंडलों की कार्यवाही उस राज्य की राजभाषाः राजभाषाओं में हो सकती है। 6. अंग्रजी में भी हो सकती हैं। 7. हिन्दी में भी हो सकती है। 8. उपर्युक्त भाषाओं में से किसी भी भाषा को न जानने वाले सदस्य सभापति/अध्यक्ष की अनुज्ञा पाकर अपनी मातृभाषा में सदन में बोल सकते हैं। (120-1)

3. उच्चतम और उच्च न्यायालयों में राजभाषओं की स्थिति

1. उच्चम न्ययालय में तब तक अंग्रजी का प्रयोग चलता रहेगा जब तक संसद इसके लिए कोई दूसरी व्यवस्था न कर दे। (348-1) 2. संसद चाहे तो विधि द्वारा दूसरी व्यवस्था कर सकती है। अर्थात् अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी के प्रयोग का या अंग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी के प्रयोग का या और किसी अन्य व्यवस्था का आदेश पारित कर सकती है। 3. लेकिन अंग्रजी भाषा में प्रस्तुत विधेयकों, अध्यादेशों आदि के पाठों को ही प्राधिकृत पाठ माना जाएगा। (348-2) 4. उच्च न्यायालय में तब अंग्रेज़ी का प्रयोग चलता रहेगा जब तक राज्यपाल इसके लिए कोई दूसरी व्यवस्था न कर दें। 5. राज्यपाल चाहें तो राष्ट्रपति की पुर्वानुमति से अपने राज्य के उच्च न्यायालय में हिन्दी भाषा या उस राज्य की राजभाषा के प्रयोग की अनुमति दे सकते है. 6. लेकिन विधेयकों, अधिनियम आदि के प्राधिकृत पाठ अंग्रेजी में होंगे।

4. संघ एवं राज्य तथा राज्य एवं राज्य के बीच के राजकाज में राजभाषाओं की स्थिति।

1. राज्य के अंतर्गत राजकाज उस राज्य की राजभाषा में होगा, लेकिन राज्य और संघ के बीच का राजकाज संघ राजभाषा में होगा। 2. इसी प्रकार राज्यो के बीच आपस में जो पत्र व्यवहार होगा, वह भी संघ की राजभाषा में होगा। (34") 3. लेकिन यदि दो अहिन्दी राज्यों की राजभाषाएँ एक ही हो, तो भी वे राज्य आपसी पत्र व्यवहार अपने राज्य की राजभाषा में नहीं कर सकते। अर्थात् पांडिचेरी और तमिलनाडु के बीच का पत्र व्यवहार तमिल मे या पश्चिम बंगाल और त्रिपुरा के बीच बंगला में अनुमीत नहीं है।

राज भाषा के रूप में हिन्दी के विकास का उत्तरदायित्व संघसरकार को सौपते हुए संविधान में अनुच्छेद 351 में कुछ निर्देश दिये हैं। वह इस प्रकार है :-

"हिन्दी भाषा का प्रसार वृद्धि करना, उसका विकास करना ताकि वह भारत की समाजिक संस्कृति के सभी तत्वों को हस्तक्षेप किये बिना हिन्दुस्तानी अष्ठम अनुसूची में उल्लिखित अन्य भारतीय भाषाओं के रूप, शैली और पदावली को आत्मसात करते हुए तथा जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो वहाँ उसके शब्द भंडार के लिए मुख्यतः संस्कृत से तथा गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करना संघ का कर्तव्य होगा।"

BRAOU

2.3.8 भाषा संघर्ष, आधुनिक जीवन में बहुभाषा ज्ञान की आवश्यकता और हिन्दी की भूमिका

भारत जैसे बहु भाषा-भाषी समाज का विकास तभी संभव होगा जब उस की सभी भाषाओं की समृद्धि हो तथा भारत की जन तांत्रिक प्रणाली तभी पुष्ट होगी जब संबद्ध राज्यों का शासन तंत्र उस प्रदेश की जन भाषा में हो, इस दृष्टि से तथा जनता की माँग पर भारत सरकार ने 1956 में बड़े पैमाने पर भारत के राज्यों का पुनर्गठन भाषावार राज्यों के आधार पर किया।

1956 के बाद में भी सरकार ने इसी नीति के आधार पर महाष्ट्र, गुजरात, हरयाणा, नागालैंड, अरुणाचल प्रदेश एवं मिज़ोरम राज्यों का निर्माण किया। अब देश में कुछ सीमाविवादों को छोड़ सभी प्रमुख भाषाओं जैसे, कश्मीरी, पंजाबी, गुजराती, मराठी, कन्नड, मलयालम, तमिल, तेलुगु, ओड़िया, बंगला और असमीया के लिए अलग अलग राज्य निर्मित हैं। सात राज्य दिल्ली, हरयाणा, हिमाचल प्रदेश, राजस्तान, मधायप्रदेश, उत्तर प्रदेश और बिहार हिन्दी भाषा से संबद्ध हैं। इनके अलावा अनुसूची के बाहर की चार भाषाओं के लिए भी भाषावार राज्यों का निर्माण हो चुका है। वे है- मणिपुरीः मणिपुर, मिजोः मिज़ोरम, कोंकणीः गोवा, नेपालीः सिक्किम। तमिल तमिलनाडु के अलावा पांडिचेरी में, बंगला पश्चिम बंगला के अलावा त्रिपुरा में बहु संख्यक लोगों की भाषा है।

अपने अपने राज्य की भाषा/भाषाओं का सर्वांगीण विकास व प्रचार-प्रसार करने के पूरे अधिकार राज्य प्रशासन को दिये गये हैं। संघ सरकार की तरफ से भी राज्य सरकार को इस कार्य के लिए करोड़ों रुपयों का अनुदान दिया गया। हिन्दी समेत समस्त भारतीय भाषाओं के अध्ययन के लिए कई संस्थाएँ कई योजनाओं पर कार्य कर रही है। इन सब के बावजूद हमारी भाषाओं को वह प्रतिष्ठा नहीं मिल पा रही है जो अवांछित है। इस के कारणों में से प्रमुख है- अंग्रेजी का वर्चस्व, अंग्रेजी के प्रति हमारा अत्यधिक मोह, अंग्रजी के स्थान पर भारतीय भाषाओं के प्रतिस्थापन से विकास की गति मे पिछड़े जाने की आशंका और इस आशंका से चिंतित यह विचार कि अभी भारतीय भाषाओं का विकास नहीं हो पाया। दूसरा प्रमुख कारण है भाषायी अस्मिता, भाषा निष्ठा के कारण दूसरी भाषाओं के प्रति द्वेष के दृष्टिकोण का विकास और अंत में भाषासंघर्षों का उदय और उन के विस्फोटक परिणाम और फलतः विघटनकारी तत्वों के द्वारा संकीर्ण भाषिक, धार्मिक एवं प्रादेशिक भावनाओं का देश में फैलाना। इस प्रकार की संकीर्ण मनोवृत्ति एवं भाषा संघर्षों के कारणों में से आर्थिक विषमता एक प्रबल कारण है।

भाषा संघर्ष पर गौर करेंगे तो हम पाएँगे कि यह मूलतः चार आयामीय है। जैसेः (1) हिन्दी हिन्दी की बोलियाँ, (2) दो प्रमुख भाषाओं के बीच संघर्ष आसमीया, बंगला, मरीठी कन्नड, पंजाबी हिन्दी, उर्दु हिन्दी और ओड़िया तेलुगु, मराठी कोंकणी/कन्नड, (3) प्रमुख भाषा जन जाति की भाषा असमीया बोड़ो/कार्बी, हिन्दी बिहार एवं मध्य प्रदेश की जन जाति की भाषाएँ और (4) हिन्दी अंगेज़ी।

पहले बताया गया है कि भारत बहु भाषा भाषी राष्ट्र है। एक सर्वेक्षण के अनुसार भारत में 1652 भाषाएँ बोली जाती है। इन में से अष्टम अनुसूची में उल्लिखित 15 भाषाओं को छोड़ शेष सभी प्रायः अल्प संख्यकों की भाषाएँ मनी जाती है जिन में से अधिकांश जन जाति के लोगों के द्वारा प्रयुक्त की जाती है। देश की जन जातियों में खास कर उत्तर पूर्वांचल की अनुसूचित जन जातियों में जो जातिगत व भाषागत निष्ठा व संचेतना जागृत हुई उस के पीछे वहाँ बसे हुए प्रभावशाली आर्य भाषा समुदायों के प्रभावों से अपनी जाति व भाषा को बचाते हुए अपनी निजी जातिगत, भाषागत अस्मिता को बनाये रखने की प्रबल अकांक्षा काम कर रही है। इस आकांक्षा के कारण भी प्रमुख भाषा और जन जाति की भाषाओं में संघर्ष देखने को मिलता है। चौथा आयाम है हिन्दी और अंग्रेजी संघर्ष का। वास्तव में यह संघर्ष उतना जोरदार नहीं जितना समझा जाता है। यह संघर्ष वास्तव में तब जोरदार व कारगर होता जब समस्त भारतीय भाषाएं एक तरफ होकर अपनी दांव प्राप्त करने के लिए एक जुट हो कर विदेशी भाषा अंग्रेजी से टक्कर लेती। असलियत में हमारा अंग्रेजी के प्रति

BRAOU

जो मोह बढ़ता जा रहा है, उस से हमारी भाषाओं को उचित स्थान दिलाने की प्रक्रिया में गति क्रमशः धीमा होती जा रही है। भारत की भाषाएँ आपस में संघर्ष रत होकर अपने विकास को प्रायः कुंठित भी कर रहीं हैं।

भारत की प्रगति के लिए समस्त भारतीय भाषाओं का विकास करना आवश्यक है। भाषाविवादों को समाप्त करने के लिए एक से अधिक भारतीय भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करना भी चाहिए। साथ ही भारत जैसे बहुभाषा देश में एक सामान्य भाषा की आवश्यकता और उसकी भूमिका को भी भूलाया नहीं जा सकता। वह स्थान और कार्य के बल हिन्दी के द्वारा संपन्न हो सकता हैं। संविधान में सभी भारतीय भाषाओं को राष्ट्रभाषा की संज्ञा दी गई है। अन्यथा हिन्दीत्तर भाषा-भाषी भारत के नागरिक नहीं हो सकते। लेकिन स्वतंत्रता-संग्राम के समय से हिन्दी को एक विशिष्ट अर्थ में राष्ट्रभाषा कहा जा रहा है। अर्थात् वह समस्त भारतीय जीवन और उसकी सामाजिक संस्कृति को प्रतिबिम्बित करने वाली भाषा है और उस दिशा में उसे विकसित होना है। हिन्दी संघ की राजभाषा या प्रशासन की भाषा है जिनका लक्ष्य संघ और राज्यों तथा विभिन्न राज्यों को एक सूत्र में गूँथना है। प्राचीन काल में संस्कृत मध्य काल में फारसी और आधुनिक काल में अंग्रेजी भारत के शिक्षित बुद्धि जीवी वर्ग की संपर्क भाषाएँ या संप्रेषण की भाषाएँ रहीं हैं। स्वतंत्रता के बाद की अंग्रेजी उच्च शिक्षा ही नहीं, अन्य स्तरीय विचार-विनिमय की भाषा बनी हुई है। प्राचीन काल में और एक हद तक मध्यकाल में संस्कृत की तरह हिन्दी अंग्रेजी का स्थान ग्रहण कर के जब अखिल भारतीय विचार-वाहिका बनेगी तभी वह सही अर्थ में भारत-भारती बनेगी। हिन्दी की एक अखिल भारतीय भूमिका व्यवहारिक भाषा के रूप में भी है। सामान्य हिन्दी-हिन्दुस्तानी, भारत के सभी प्रदेशों में वाणिज्य-व्यापार, यात्रा आदि के लिए प्रयुक्त हो रही हैं।

2.4 सारांश

इस पाठ में भारत के भौगोलिक स्वरूप का विवरण प्रस्तुत करते हुए यह बताया गया है कि भारत के जन जीवन उस की संस्कृति व धर्म पर उस का क्या प्रभाव पड़ा। कितनी जातियों के संगम से भारत का समाज निर्मित हुआ। और कौन कौन जातियों ने यहाँ आकर शरण ली और भारत की मुख्यधारा के अंग बन गयीं। भारत में प्रचलित विभिन्न भाषा परिवारों का तथा उन के अंतर्गत गिनायी जानेवाली भाषाओं को विशद भाषावैज्ञानिक व्याख्य इस पाठ में की गयी है। इतनी विविध भाषाओं के प्रयोग होने के बावजूद उन के आपसी संपर्क के कारण सदियों से उन के बीच में जो आदन प्रदान होता रहा उस के कारण दूरवर्ती एवं अलग परिवार की भाषाओं में विद्यमान समान अभिलक्षणों का संकेत करते हुए इस बात की पुष्टि करने का प्रयास किया गया कि भारत एक भाषा क्षेत्र है। बाद में प्राचीन व मध्य कालीन भारत में भाषाओं की जो स्थिति थी उस पर प्रकाश डाला गया। साथ ही इस का विवरण दिया गया कि उन दिनों में किस प्रकार सभी भाषाओं को आदर मिलता था और साहित्य के क्षेत्र में भी कैसे एक भाषा के साहित्यकार दूसरी भाषा के साहित्य की सर्जना में भी सक्रिय रहते थे। इस संदर्भ में संस्कृत और फारसी और अन्य विदेशी भाषाओं का हमारे समाज में क्या भूमिका रही इस की चर्चा की गयी। आधुनिक भारत में व्यवहत विविध बहु संख्यक एवं अल्प संख्यक भाषाओं के केंद्रीकरण व फैलाव का विवरण प्रस्तुत करते हुए उन की लिपियों को विविधता, उन के साहित्य, अध्यापन में उन का स्थान, और कब ये अलग अलग भाषाएँ अपनी मूल भाषा से अलग हुई और कैसे विकसित हो रही हैं आदि पर विस्तार से चर्चा की गयी है। इस के बाद इस पर विचार किया गया है कि भारत की बहुभाषिक स्थिति कितने प्रकार की है, किस किस राज्य में प्रमुख भाषा के अतिरिक्त अन्य कौन सी भाषाएँ अधिक संख्या में बोली जाती है। इसी प्रकार प्रमुख भाषाओं को आधार बना कर वे अपने मूल राज्य के बाहर किस-किस राज्य में कितनी तादात में व्यवहृत है इस का भी विवरण दिया गया। इस बहुभाषी भारतीय समाज में हिन्दी का क्या स्थान है, इस पर ऐतिहासिक प्रमाण प्रस्तुत करते हुए वर्तमान समय में उस के महत्व पर प्रकाश डाला गया। अंत में भारत के संविधान में हिन्दी तथा अन्य भाषाओं की स्थिति को स्पष्ट करते हुए भारत में भाषायी संघर्षों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया और इस बात पर जोर दिया गया कि वर्तमान समय में विकास शील भारत को प्रगति करने के लिए भारत की भाषाओं का विकसित होना आवश्यक है। बहुभाषा भाषी भारत में एकता स्थपित करने के लिए हिन्दी की महत्वपूर्ण भूमिका है।

BRAOU

2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न

निम्न लिखित प्रश्नों के उत्तर 250 शब्दों में लिखिए।

1. भारत के भौगोलिक विभाजन का संक्षेप में परिचय देते हुए प्रजातिगत गठन का विवरण प्रस्तुत कीजिए।
2. भारतीय जन जीवन पर भौगोलिक स्थिति के प्रभाव पर प्रकाश डालिए।
3. प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत में भाषा साहित्यों में विद्यमान समन्वयवादी दृष्टिकोण को सोदाहरण समझाइए।
4. मध्य द्रविड भाषा समूह की भाषाओं की वर्तमान दशा-दिशा पर प्रकाश डालिए।
5. भारत के बहुभाषिक परिवेश में हिन्दी की भूमिका को स्पष्ट कीजिए।
6. संविधान के संघ और राज्यों की राज भाषाओं के जो विवरण दिया गया उसे संक्षेप में प्रस्तुत कीजिए।
7. "भारत में भाषायी संघर्ष" पर विचार कीजिए।

2.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न

निम्न लिखित प्रश्नों के उत्तर 125 शब्दों में दीजिए।

1. भारत की भाषाओं को कितने भाषा परिवारों में वर्गीकृत किया जाता है। वे क्या हैं।
2. मध्य प्रदेश में बोलीजाने वाली प्रमुख भाषाओं का उल्लेख कीजिए।
3. तेलुगु आंध्र प्रदेश के अतिरिक्त किन किन अन्य राज्यों में अधिक संख्या में बोली जाती है।
4. भारत के संविधान की अष्ठम अनुसूची में सम्मिलित भाषाओं का उल्लेख कीजिए।

BRAOU

2.7 नमूने के उत्तर

2.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर

प्रश्नः भारत के भौगोलिक स्वरूप का संक्षेप मेंपरिचय दीजिए।
उत्तरः भारत का भौगोलिक स्वरूप इतना विस्तृत और इतना वैविध्य पूर्ण है कि इसे उप महाद्वीप की संज्ञा दी जाती है। भारत के भूगोल का विभाजन दो दृष्टियों से किया जा सकता है- 1. भूवैज्ञानिक दृष्टि से और 2. भू-आकृति विज्ञान की दृष्टि से। पहले के अनुसार तीन विभाग किये जाते हैं (1) प्राय द्वीपीय भारत, (2) हिमालय पर्वत मालाएँ, (3) गंगा-सिंधु ब्रह्मपुत्र का मैदानी इलाका। दुसरे के अनुसार भारत का विभाजन 8 भागों में किया जाता है। वे हैः (1) उत्तर की पर्वत मालाएँ (2) उत्तर की नदियों का समतल मैदान, (3) राजस्थान का मरूस्थल, (4) मध्य अधित्यका, (5) दक्षिण का प्राय द्वीपीय पठार, (6) पूर्वी सागर तटीय प्रदेश, (7) पश्चिमी सागर तटीय प्रदेश, (8) सागर और सागरों में स्थित द्वीप।

प्रजाति गठन की दृष्टि से भारत के लोगों को मोटे रूप से पाँच जातियों में वर्गीकृत किया जा सकता है। कहते हैं कि बहुत पहले जब दक्षिण प्रायद्वीप का पठार दक्षिण अमरिका, अफ्रीका, कोडार आदि के लोगों को नीग्रोइड जाति के वंशज कहा जाता है। बाद में आस्ट्रिक प्रजाति के लोग भारत में आये जिन्हें हमारे पुराणों में निशाद कहा गया। वर्तमान समय के मूंडा भाषाएँ, खाँसी और निकाबारीस भाषाएँ बोलने वालों को आस्ट्रिक प्रजाति से जोड़ा जाता है। कहते हैं कि अब

से लगभग पाँच हजार वर्ष पहले द्रविड लोग भारत आये। इस समय चार प्रमुख द्रविड भाषाएँ बोलने को तथा मध्य भारत, पूर्व भारत में द्रविड़ भाषाएँ बोलने वाले एवं ब्राहुई (पाकिस्तान) भाषियों को द्रविड़ कहा जाता है। बाद में पश्चिमोत्तर की दिशा से आर्य लोग और पूर्वोत्तर की दिशा से मंगोल प्रजाति के लोग यहाँ आये। पूरे उत्तर भारत में आर्य परिवार की भाषाएँ बोलनेवालों को आर्य प्रजाती के कहते हैं। इसी प्रकार पूर्वोत्तर भारत में बसी हुई तमाम जन जातियों को जो चीनी-तिब्बती परिवार की भाषाएँ बोलते है, मंगोल प्रजाति के लोग कहते हैं। इस प्रकार भारत में (1) नीग्रोइड (2) आस्ट्रिक (3) द्रविड़ (4) आर्य और (5) मंगोल जातियों के लोग रहते है। प्रजातिगत गठन इन्हीं पाँचों से हुआ है।

2.8 पठनीय पुस्तकें

1. पांडेय शंभुनाथ (1977) : भारतीय जीवन और संस्कृति, आगरा, केंन्द्रीय हिन्दी संस्थान

2. राधाकृष्ण बूदराज (1985) : भारत देशमः बहुभाषा स्थिति, भारत देशमः प्राचीनाधुनिक भाषलु

3. रेड्डी विजय राघव पोली (1982) : पूर्वाचल की भाषिक स्थिति और माध्य भाषा की समस्या (चक्र मुद्रित) केंद्रीय हिन्दी संस्थान, हैदराबाद केन्द्र द्वारा सितंबर 79 में आयोजित संगोष्ठी में प्रस्तुत पत्र

4. रेड्डी विजय राघव पोली (1982) : उत्तर पूर्वाचल में धार्मिक स्थिति और बौद्ध धर्म - रेलभारती, वर्ष-4 अंक 1-2, गुवाहाटी, पूर्वोत्तर सीमा रेल्वे

5. रेड्डी विजय राघव पोली (1984) : राजभाषा हिन्दी की वर्तमान दशा-दिशा, रेल भारती, वर्ष 5 अंक 7-8, गुवाहटी, पूर्वोत्तर, सीमा रेल्वे.

6. विधि और न्याय मंत्रालय(1973) : भारत का संविधान-1 जनवरी 1973 तक संशोधित, नई दिल्ली, भारत सरकार

7. वर्मा ब्रजेश्वर (1979) : अंतः क्षेत्रीय बहुभाषी परिवेश और हिन्दी की प्रादेशिक भूमिका (चक्रमुद्रित), केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, हैदराबाद.

8. शर्मा रामविलास (1981) : भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी - खंड 3, नयी दिल्ली, राजकमल प्रकाशन

9. Nigam, R.C. (1972) Language hand book on Mother Tongues in Census - CENSUS OF INDIA - 1971, New Delhi, Registrar General, INDIA.

10. Shapiro C. Micheal x Schiffman F. Marold (1981) Language and Society in South Asia, - Delhi, Motilal Banarasi Dass.

11. Sharma Gopal P. x Suresh Kumar (1977) INDIN BILINGULISM, - Agra, Kendriya Hind Sarsthan

BRAOU

इकाई-3: भारत की प्राचीन और आधुनिक भाषाएँ

3.0 विषय प्रवेश
3.1 पाठ का उद्देश्य
3.2 पाठ-परिचय
3.3 मूल पाठ
3.3.1 भारतीय आर्यभाषा
3.3.2 प्राचीन आर्यभाषा
3.3.3 मध्यकालीन आर्यभाषा
3.3.4 आधुनिक आर्यभाषाएँ
3.3.5 आर्येतर जातियाँ और भाषाएँ
3.3.6 आर्य-अनार्य संपर्क
3.4 पाठ का सारांश
3.5 पारिभाषिक शब्द् अर्थ
3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
3.6.1 (अ) श्रेणी के प्रश्न (250 शब्दों में)
3.6.2 (ब) श्रेणी के प्रश्न (125 शब्दों में)
3.7 नमूने के प्रश्नोत्तर
3.7.1 (अ) श्रेणी के प्रश्नोत्तर (250 शब्दों में)
3.7.2 (ब) श्रेणी के प्रश्नोत्तर (125 शब्दों में)
3.8 पठनीय पुस्तकें

3.1 पाठ का उद्देश्य

BRAOU

इस पाठ में भारत की प्राचीन और आधुनिक भाषाओंका परिचय दिया जा रहा है। भारतीय भाषाओं का ऐतिहासिक मूल्यांकन इस पाठ में किया जा रहा है। इस पाठ के द्वारा आप भारत की, विभिन्न भाषाएँ, विशेष प्रांत जातियों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। इस पाठ के अध्ययन से आप -

- भारतीय आर्यभाषाओं के स्वरूप को जान सकेंगे।
- प्राचीन आर्यभाषाएँ कौनसी है, कहाँ बोली जाती है, इसे जान सकेंगे।
- मध्यकालीन आर्यभाषाओं का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- आधुनिक आर्यभाषाएँ कौनसी और कितनी है, यह जानेंगे।
- प्राचीन और आधुनिक भाषाओं का स्वरूप, उसकी विशेषाता को अच्छी तरह से पहचान पाएंगे।

3.2 पाठ-परिचय

भारत एक बहुभाषिक देश रहा है और आज भी है। संविधान में भारत की पंद्रह भाषाओं की सूची दी है। "साहित्य आकदमी" बाईस भारतीय भाषाओं की सूची दी है। इससे भारत की भाषा गत विविधता स्पष्ट हो जाती है। इन भाषाओं के अतिरिक्त भी कुछ आदिवासियों की भाषाएँ और बोलियाँ हैं, जिनको इन सूचियों में स्थान नहीं दिया गया है। संविधान ने जिन भाषाओं की परंपरा बहुत पुरानी है और इनमें समृध्द साहित्य भी मिलता है। इन भाषा वर्गों में परस्पर आदान-प्रदान भी होता रहा है। इसलिए सबका एक सामान्य रूप और आधार भी विकसित हो गया है। वाक्य रचना तो प्रायः समान हो गई है। भारतीय भाषाओं के ऐतिहासिक विकास क्रम को समझना भाषा और साहित्य के विद्यार्थि को आवश्यक है। आगे के पृष्ठों में भारतीय भाषाओं को ऐतिहासिक क्रम में समझने का प्रयत्न किया गया है।

भारत के सुदीर्घ इतिहास को देखने से पता चलता है कि यहाँ भाषा, संस्कृति और साहित्य की कम से कम दो धारा प्रवाहित रही आर्य और आर्येतर। आर्येतर धारा में भारत के आदिवासी तथा द्रविड़ जातियाँ आजाती हैं। आर्य धारा में भारत में आए हुए विविध समुदायों की भाषाएँ और संस्कृतियाँ परिगणित की जा सकती है। सुदीर्घ ऐतिहासिक संबंध और संपर्क के फलस्वरूप इन धाराओं में भाषागत, सांस्कृतिक और साहित्यिक समानता आगई हैं, सभी की मिली जुली विरासत आज हमें मिल जाती है इसलिए भारतीय साहित्य, भारतीय भाषा जैसी मान्यताएँ बन रही है। फिर भी अध्ययन की सुविधा और सामाजिक भाषा और संस्कृति के स्पष्ट बोध के लिए विकास की धाराओं के अलग-अलग अध्ययन की आवश्यकता बनी रहती है। इस अध्ययन से विविधता में एकता और एकता में विविधता का बिंब स्पष्ट हो जायेगा।

3.3 मूल पाठ

3.3.1 भारतीय अर्यभाषा

भारत, इरान, यूरोप आदि में आर्यभाषाएँ बोली जाती है। इन सब को जोड़ कर भारोपीय भाषा कुल का सिध्दान्त रखा गया। मूल भारोपीय भाषा के बोलनेवाले जन समुदाय को 'विरोस' नाम दिया गया है। इस सम्बन्ध में विभिन्न मत है। दूसरी सहस्त्राब्दि ई.पू.के पूर्वार्ध्द में मूल स्थान से प्राचीन जन बाहर फैले। इसी जनसमूह का एक भाग भारत में भी आया। आर्यों का भारत में आगमन कब हुआ, यह ठीक से नहीं कहा जा सकता है। एक अनुमान यह है कि आर्य भारत में 1700 ई.पू. से लेकर 1300 ई.पू. तक प्रविष्ट हुए। इस अनुमान में भी शताब्दियों का हेरफेर हो सकता है।

यहाँ एक प्रश्न सामने आता है कि क्या मूल भारोपीय जन, आदिकाल में एक अविभक्त भाषा बोलने थें या वे भी कबीलों में बटे हुए थें और कबीले अपनी अपनी अलग भाषा बोलते थें। अधिक सही मत, यही जान पड़ता है कि आदि भारतीय भाषा विभिन्न बोलियों में विभक्त थीं। ये बोलियाँ प्राचीन काल में ही भाषाओं का रूप धारवा कर चुकी थी। भारोपीय जन जहाँ भी गये, इनकी भाषा विभिन्न कबीलों की भाषाओं में बंटी हुई थीं। भारतीय आर्य भाषा में भी सम्मिलित हैं। कुछ बोलियों के आधार पर संस्कृत का रूप खड़ा हुआ। इन बोलियों के अतिरिक्त भी कई बोलियाँ थीं। इन बोलियों के साथ ही यहाँ के आर्य पूर्व आदि निवासियों के कई भाषा कुल थें।

BRAOU

3.3.2 प्रचीन आर्य भाषा

वैदिक भाषाः-

भारतीय साहित्य की परंपरा की पहली गड़ी वैदिक साहित्य है। इस साहित्य से ही भारतीय, "भाषा परंपरा" के आरंभिक रूप का पता चलता है। इस साहित्य के अन्तर्गत चारों वेदों की संहिताओं, ब्राह्मणों, आरव्यकों, उपनिषदो तथा वेदांगों को लिया जाता है। इस में से संहिताओं की भाषा सबसे पुरानी हैं। वैदिक साहित्य की अन्य शाखाओं में भाषा विकसित होती चली गई है। वेदों की भाषा के सम्बन्ध में प्रायः सभी विकसित होती चली गई है। वेदों की भाषा के सम्बन्ध में प्रायः सभी विद्वानों का मत है कि यह किसी एक काल या स्थान की भाषा नहीं है। इसमें मिलने वाले विविध भाषा रूप इसके प्रमाण है। वैदिक भाषा में पद रचना के रूपों में भी विविधता मिलती है। मुंडा और द्रविड़ों के संपर्क से आर्यों की भाषा में परिवर्तन आने लगा। भाषा के निरंतर परिवर्तन के कारण वैदिक मंत्रों की भाषा दुर्बोध होने लगी। पाणिनि से बहुत पहले ही पूर्वी भारत के वेदविरोधी आर्यों (= व्रात्यों) का उच्चारण बहुत विकृत हो गया था।

पाणिनि से पहले ही वैदिक भाषा कई विभाषाओं का रूप लेने लगी थी। वैदिक मंत्रों मे भी वैभाषिक प्रवृत्तियाँ दिखलाऐ पड़ती है। विकट (वैदिक-विकृत) विकट (चै.विकृत) जैसे रूप इन प्रवृत्तियों के प्रमाण हैं यह देश्य या प्राकृत भाषा के वैदिक भाषा में प्रवेश के प्रमाण हैं। परवर्ती वैदिक काल में ही देश्य भाषा के तीन रूप विकसित हुएः उदीच्य (उत्तरी रूप) मध्य देशीय विभाषा, तथा प्राच्य (पूर्वी)। इनमें से उदीच्य वैदिक भाषा के अधिक निकट थी। संभवतः इसी के आधार पर आगे शास्त्रीय संस्कृति की नींव पड़ी। सबसे अधिक असंस्कृत तथा विकृत विभाषा प्राच्य थी। इसमें आर्येत्तर-द्रविड और मुंडा भाषाओं के तत्व सबसे आधिक थे। जनभाषा से भी यह प्रभावित थी।

वैदिक भाषा में कितने ही शब्द आर्येतर भाषाओं से आगत है। "पिंक" (= कोकिल) शब्द इसी प्रकार का है। "तामरस" (= कमल) और "पूजा" जैसे शब्द भी आर्येतर स्त्रोत से आगत है।

लौकिक संस्कृतः

संस्कृत भाषा का जो अर्थ लिया जाता है वह पाणिनि की संस्कृत ही है। पाणिनि ने जिस भाषा का व्याकरण लिखा, वह उनके समय की बोल चाल की भाषा रही होगी। इसीलिए उन्होंने लोक में प्रचलित रूपों को भी लिया। पाणिनीय संस्कृत की आरंभिक शैली वैदिक भाषा के ही परवर्ती साहित्य में देखी जा सकती है। उपनिषदों की शैली ही कहीं कही ऐसी है जो साहित्यिक संस्कृत के निकट है। इसी शैली का विकास महाभारत तथा रामायण की शैली में देखा जा सकता है। महाभारत और रामायण की शैली वह कड़ी है जो वैदिक साहित्य की परवर्ती शैली तथा साहित्यिक संस्कृत को जोड़ती है।

यह देखा जा चुका है कि मूल वैदिक भाषा के जीवन काल में ही भाषा की आर्यता या शुध्दता का पक्षपाती था। वह आर्यभाषा में थोडे परिवर्तन को भी अक्षम्य मानता था। दूसरी ओर सर्व साधारण की भाषा का प्रभाव भी बढ रहा था और भाषा का विकास भी हो रहा था।

इसी समय कुछ वैयाकरणों का उदय हुआ, जिन्होंने इस प्रवहमान भाषा का व्याकरण लिखा। इस श्रृंखला की सबसे महत्वपूर्ण कड़ी पाणिनि है। इन्होंने भाषा का नियमन किया। वैयाकरणों ने लोकप्रचलित, भाषा का अनेक पद्धतियों से संस्कार किया। इस प्रकार संस्कृत भाषा का उदय हुआ।

यह भाषा वैदिक से कुछ भिन्न थी। इस भिन्नता को प्रकट करने के लिए ही वैयाकरणों ने इस भाषा को लौकिक संस्कृत नाम दिया। वैसे इस भाषा में वैदिक तत्वों का अभाव नहीं था।

वैदिक और लौकिक संस्कृत :

वैदिक साहित्य के संरक्षक ब्राह्मण वर्ग वैदिक भाषा को अपरिवर्तित रखने का प्रयत्न करते रहे। सामान्य जनभाषा के सम्बन्ध में इस प्रकार के प्रयत्न नहीं होते। कालान्तर में पुरोहित वर्ग और जनता की भाषा के बीच बहुत अंतर आगया। उच्चवर्गीय भाषा में परिवर्तन मंदगति से हुआ और जनभाषा में परिवर्तन द्रुत गति से हुआ।

पाणिनि की संस्कृत वैदिक भाषा से पीछे की है, किन्तु परिवर्तन बहुत ही कम दिखलाई पड़ता है। इस समय भाषा के तीन रूपों की कल्पना की जा सकती है। वैदिक सुस्थिर भाषा, पाणिनीय संस्कृत तथा अधिक परिवर्तनशील जन भाषा। पाणिनि के व्याकरण ने संस्कृत के विकास के रास्ते को भी बंद कर दिया। फिर भी जनभाषा के प्रभाव से कुछ परिवर्तन आता रहा। इसका उदाहरण रामायण और महाभारत की भाषा से मिल सकता है। यह भाषा निश्चित रुप में प्रामाणित संस्कृत होने पर भी पाणिनी के द्वारा निर्धारित नियमों का बार-बार उल्लंघन करती है। उसमें आदि और मध्य कालीन भारतीय भाषाओं के कई रूप मिल जाते हैं। संस्कृत भाषा में आकृत तथा द्रविड भाषाओं के शब्द आने लगे।

वैदिक भाषा और लौकिक संस्कृत में ध्वनिगत अंतर बहुत कम है। वैदिक भाषा की कुछ ध्वनियाँ समाप्त हो गई तथा नवोदित ध्वनियाँ आगई। वैदिक सुर-व्यवस्था समाप्त हो गई। शब्द समूह में अधिक अंतर आगया। पद रूपों में भी अंतर आया। वैदिक भाषा के अनेक शब्दों में अर्थ परिवर्तन हुआ। वैदिक असुर, 'स्वामी', 'देव' "संस्कृत में राक्षस वाचक हो गया। वैदिक आदि (विश्वास पात्र) का अर्थ हो गया शत्रु"। अनेक वैदिक शब्द संस्कृत के शब्द समूह में स्थान नहीं पा सके। अन्य स्त्रोतों के बहुत से शब्द संस्कृत में स्थान पाने लगे। अनेक नए शब्दों का निर्माण भी किया गया। आर्येतर शब्दों का प्रयोग वैदिक की अपनेक्षा अधिक होने लगा। देशी शब्द भी संस्कृत शब्दावली में आ गए।

संस्कृतः बृहत्तर क्षेत्र

वैदिक भाषा की तुलना में संस्कृत को लोकभाषा कहा गया। पाणिनी ने इसी को संस्कृत बनाया। पाणिनि के पश्चात ही आरंभिक भाषा का प्रतिनिधित्व महाभारत और रामायण महाकाव्य करते हैं। इनका समय

BRAOU

ईसा से कुछ ही इधर-उधर माना जाता है। शास्त्रीय साहित्य की तुलना में ये ग्रंथ संस्कृत भाषा के उस रूप का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो जनता के लिए लिखी गई है, न कि काव्य मर्मज्ञों और शास्त्रज्ञों के लिए। इनकी लोकप्रियता इसका प्रमाण है। इस भाषा में पाणिनि के व्याकरण के नियमों का पूरी तरह से पालन भी नहीं किया गया है। पुराणों ने इन्ही महाकाव्यों की भाषा को आदर्श बनाया।

इसके पश्चात शास्त्रीय साहित्य की रचना होती है। पाणिनि और शास्त्रीय युग के बीच एक लंबा कालांतर है। इस बीच कई शैलीगत अंतर उपस्थित हुऐ। इस काव्यभाषा में पाणिनि के व्याकरण के नियमों का दृढता से पालन किया गया। रूप विकास अत्यल्प रहा शब्द समूह अवश्य कुछ अधिक समृध्द हुआ। कुछ प्राकृत शब्द ग्रहण किए गए जैसे भट्ट, भट्टारक, "स्वामी"। कुछ युनानी शब्द भी आ मिले। ज्योतिष के क्षेत्र में इस प्रकार के अधिक शब्द सम्मिलित किए गए। अश्वघोष, कालिया, माघ, भारवि आदि ने संस्कृत साहित्य के विकास में अमर योगदान दिया। संस्कृत का साहित्य समस्त भारत में लिखा गया। बौध्द और जैनों ने संस्कृत भाषा और सीमाओं का विस्तार किया। दोनों ही परंपराओं ने संस्कृत का विकास किया। इन्होंने एक मिश्रितसंस्कृत को जन्म दिया। इसमें शब्दो का ध्वन्यात्मक रूप तो संस्कृत के समान है और उनकी रचना प्राकृत व्याकरण से प्रभावित दिखलाई पड़ती है। इसको बौध्द और जैन संस्कृत कहा जाता है। अश्वघोष तथा उनके पीछे के कवियों ने शुध्द संस्कृत का प्रयोग किया।

इस प्रकार संस्कृत भाषा और शैली आर्येतर स्त्रोतों की सामग्री से भी अपनी शक्ति और समृध्दि को बढ़ा रही थी। जैन और बौध्द भी संस्कृत की ओर आकर्षित हुए और इसके सभी तत्वों को सहेज रहें थे। इसका वहन संस्कृत भाषा करने लगी। संस्कृत भारतीय एकीकरण का सूत्र बन गई। सारे भारत में संस्कृत के प्रति श्रध्दा पैदा हो गई। दक्षिण की द्राविड़ भाषाएँ संस्कृत से प्रभावित ही नहीं हुई। इन भाषा-भाषियों ने संस्कृत के भंडार को भी भरदिया।

संस्कृत ने भारत से बाहर की यात्रा की। इसकी एक शाखा सीलोन में गई। बौध्द धर्म के प्रचार के साथ ही वहाँ इसका प्रचार हुआ। बर्मा में भी पानि के साथ संस्कृत पहुँची। भारतीय व्यापारी और धर्म प्रचारक स्याय, कम्बोदिया तथा अचंपा तक पहुंचे और उनके साथ संस्कृत और प्राकृत भाषाएँ भी पहुँची। वहाँ की भाषाओं पर संस्कृत का प्रभाव भी पडा। स्यामी भाषा में तो अनेक पारिभाषिक शब्द संस्कृत के आधार पर बने। अजात्, धान = आकाशयाना (वायुयान) सिदांस (= सं, सतांक्ष) "सौवा हिस्सा"।

संस्कृत इंडोनेसिया, जावा, सुमात्रा तथा बाली द्वीपों तक भी फैली। यहाँ के अनेक स्थानीय नाम संस्कृत के हैं। यहाँ संस्कृत के शिलालेख भी मिले हैं। यहाँ के संस्कृत पर स्थानीय प्रभाव भी है।

बौध्द धर्म के विकास के साथ मध्य एशिया के एक बडे भाग में भारतीय आर्य भाषाओं का प्रभाव विस्तृत हुआ। अनेक बौध्द संस्कृत ग्रंथ जो भारत में अप्राप्य थे, वे मध्य एशिया में मिले हैं। इन क्षेत्रों की मूल भाषाएँ भी संस्कृत में बहुत प्रभावित हुई। चीन और तिब्बत में भी संस्कृत का प्रभाव पहुँचा।

3.3.3 मध्यकालीन आर्यभाषा

भारतीय मध्यकालीन आर्यभाषाओं का समय 600 ई.पू. से 1000 ई.पू. तक माना जाता है। इस प्रकार भारत के भाषा इतिहास की डेढ सहस्त्राब्दी इन भाषाओं से ही संबंधित है। इस कालखंड में तीन वर्गों की भाषाएँ आती है। पूर्व की तीन प्राकृति, पालि और पुरानी मागधी (मध्यकालीन प्राकृत, शौरसैनी मागधी तथा इनके भेद-प्रभेद) और उत्तर कालीन प्राकृत (अपभ्रंश)। यह एक व्यापक भाषा परंपरा बन गई, जिसमें अनेक लोकभाषाएँ सम्मिलित थीं। इनके- अवशेष आज भी दक्षिण भारत में कांची से लेकर चीनी तुर्किस्तान में निया प्रादेश तक फैले हुए मिलते हैं।

प्राकृतः

अशोक के पहले की देश्यभाषा के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। अशोक के शिलालेखों की भाषा में कई विभाषाओं के तत्व मिलते हैं। प्राकृत भाषा में साहित्य तो बाद में लिखा

गया, किन्तु प्राकृत की विशेषताओं का आरंभ पाणिनि से पहले ही हो गया था। प्राकृत भाषाओं को मध्य भारतीय भाषाओं के नाम से पुकारा जाता है। जो प्राकृत पहले केवल देश्य भाषा थी वह भगवान महावीर और भगवान बुध्द के उपदेशों का माध्यम बनी। अशोक के शिला लेखों की भी यही भाषा है।

पीछे प्राकृत का मानक रूप बनने लगा और इसके व्याकरण भी लिखे गए। इसमें साहित्य की रचना भी आरंभ हुई। देश भेद से शौरसेनी, मागधी, पैशाची आदि अनेक भाषाएँ थीं किन्तु आगे एक व्याकरण रूप भी विकसित हुआ। शौरसेनी के आधार पर एक महाराष्ट्री नामक प्राकृत विकसित हुई। यह किसी प्रदेश विशेष की भाषा नहीं थी। यह एक मानक साहित्यिक भाषा थी जो एक व्यापक क्षेत्र में व्यवहार में आती थीं।

कुछ वैयाकरणों ने प्राकृत को संस्कृत से विकसित माना है - प्रकृति = संस्कृतम्। वास्तविक बात यह है कि यह जन साधारण की भाषा थी जिसने आगे चलकर साहित्यिक रूप लिया। व्याकरण की रचना साहित्यिक महाराष्ट्री प्राकृत के आदार पर ही की गई। आगे चलकर यही प्रमुख प्राकृत बन गई।

प्राकृतों की सबसे प्रमुख प्रकृति संस्कृत ध्वनियों और पदरचना के सरलीकरण की है। दो स्वरों के बीच में आनेवाली स्पर्श व्यंजन ध्वनियाँ प्राकृत में लुप्त हो जाती है जैसे कोकिल-कोइल, मदन-मअण। महाप्राण ध्वनियों के स्थान पर 'ह' रह जाता है जैसे मेघ-मेह। 'श' तथा 'स' के स्थान पर केवल एक "स" ध्वनि रह गई। संयुक्त व्यंजन ध्वनियों का विकास सरलीकरण की ओर हुआ। या तो एक स्वर बीच में लाया गया जिससे संयुक्त व्यंजन समाप्त होगए जैसे क्लेश - किलेस, मर्यादा - मरियादा या संयुक्त ध्वनियों के समान कर दिया गया जैसे पक्व-पक्क, उर्मि-उम्मि। संयुक्त ध्वनियों में से एक का लोप करके भी संयुक्त ध्वनियों को समाप्त कर दिया गया जैसे स्थूल-थूल। इन प्रवृत्तियों से स्पष्ट होता है कि प्राकृत ने जटिल ध्वनि विधान को सरल कर दिया।

पद और शब्द की रचना में भी सरली करण की प्रकृति मिलती है। संस्कृत में तीन वचन थे। प्राकृत में दो ही वचन मिलते हैं- एक वचन तथा बहुवचन। संस्कृत के तीनों लिंग अवश्य सुरक्षित रहे, जो परवर्ती विकास में दो ही रह गये। संस्कृत की आठ विभक्तियों में से प्राकृत में चतुर्थी का लोप हो गया। विभक्ति चिह्नों की अनेक रूपता भी समाप्त हो गई। क्रिया धातु की रचना भी सरल हुई। दस गजों का भेद लुप्त होने लगा। धातु रूपों की संख्या में भी कमी हो गई। लकारों की संख्या भी कम हो गई। प्राकृतों के शब्द समूह में संस्कृत शब्दों के अतिरिक्त आर्येतर शब्दों की संख्या बढ़ गई। ये शब्द अधिकतर आस्ट्रिक तथा द्राविड़ परिवार के हैं। संस्कृत तत्समों की संख्या बहुत कम रह गई। तद्भव शब्दों का बाहुल्य हो गया, देशज शब्द भी बहुत प्रयुक्त होने लगे।

BRAOU

देशभेद से प्राकृतों के भी भेद विकसित हुए। काल भेद के अनुसार प्राचीन मध्यवर्ती तथा परवर्ती प्राकृत भेद किए जाते हैं। परवर्ती प्राकृत ही अपभ्रंश है। व्यवहार की दृष्टि से प्राकृतों के प्रमुख भेद ये हैः शिलालेखी प्राकृत, धार्मिक प्राकृत तथा साहित्यिक प्राकृत।

शिलालेखी प्राकृत शिलालेखों, ताम्रपत्रों तथा सिक्कों में मिलती है। इनकी लिपि ब्राह्मि तथा खरोष्ठी है। अशोक के शिलालेखों में इसी का प्रयोग है। इस प्राकृत में कई विभाषाओं की प्रवृत्तियों का मिश्रण मिलता है। आंध्र राजाओं के शिलालेख भी इसमें मिलते है। इनमें साहित्यिक प्राकृत का प्रयोग है।

धार्मिक प्राकृतों में पालि प्रमुख है। इसमें बौध्दों का धार्मिक साहित्य लिखा गया है। कुछ विद्वान पालि को मागधी प्राकृत से संबंधित मानते हैं। किन्तु भाषा वैज्ञानिक खोजों के आधार पर यह सिध्द होता है यह एक मिश्रित प्राकृत है जिसमें मागधी, शौरसेनी तथा पैशाची के तत्व मिलते हैं। इनमें प्रमुखता शौरसेनी के तत्वों की है। पालि किसी प्रदेश विशेष की भाषा नहीं है। यह एक मिश्रित भाषा है जिसका प्रयोग एक व्यापक क्षेत्र में होता था। इसमें धार्मिक और सामान्य दोनों प्रकार के साहित्य की रचना हुई। इसके साहित्य में "जातक" का विशेष स्थान है। इसके अंतर्गत भगवान बुद्ध के पूर्व जन्म की कथाएँ आती है।

जैन धर्म के धार्मिक साहित्य की भाषा अर्धमागधी हैं। भगवान महावीरने इसी में उपदेश दिये थे। अर्धमागधी मागधी से भिन्न है। इसमें मागधी के साथ शौरसेनी के तत्व मिले हुए हैं। उसमें जैन धर्म के सिध्दान्त साहित्य के साथ ही सिध्दान्तेतर साहित्य का बहुत सृजन हुआ। सिध्दान्तेतर साहित्य जैन महाराष्ट्री और जैन शौरसेनी में प्रमुख रूप से मिलता है।

धार्मिक प्राकृतों के अतिरिक्त, चार साहित्यिक प्राकृतें मानी जाती हैः महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी और पैशाची। इन में से महाराष्ट्री को परिनिष्ठित प्राकृत माना जाता है। पैशाची की प्रसिध्द रचना गुणाढ्य की, 'वड्ढकहा' = (बृहत्कथा) है। शौरसेनी का प्रयोग गध्य और नाटकों में विशेष रूप से किया गया है और महाराष्ट्री का पध्य या गीतों की रचना में। महाराष्ट्री प्राकृत में ही शातवाहन प्रथम शताब्दी के लगभग आंध्र के राजा थे। महाराष्ट्री में महाकाव्यों की रचना भी हुई। प्रवरसेन तृत "रावणवहो" या "सेतुबंध" महाराष्ट्री का प्रमुख महाकाव्य है।

प्राकृत साहित्य की परंपरा बहुत समृध्द है। इसमें मुक्तक प्रबंध तथा कथा सभी प्रकार का साहित्य लिखा गया। नाटकों की रचना भी हुई है और धार्मिक साहित्य की रचना भी हुई।

प्राकृत भाषा का प्रसार भारत से बाहर भी हुआ। खोताम में खरोष्ठी लिपि में लिखा हुआ 'धम्म पद' मिला है। यह खरोष्ठी धम्मपद कहलाता है। इसी प्रकार चीनी तुर्किस्तान में खरोष्ठी में दिखे हुए प्राकृत लेखों की खोज हुई है। निया नामक स्थान में मिलने के कारण इस प्राकृत को "निया प्रकृत" के नाम से जाना जाता है। ये लेख राजकीय विषयों के है इन लेखों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्राकृत भाषा देश के बाहर भी गई।

अपभ्रंशः- जैसा कि पहले संकेत किया गया है, पहली शताब्दी से ही प्राकृत भाषा साहित्यिक भाषा का रूप धारण करने लगी। फलतः वह धीरे-धीरे देशी भाषाओं से दूर हटती गई। इसका रूप साहित्यिक या परिनिष्ठित हो गया। प्राकृत के बाद की विकास की कड़ी ही अपभ्रंश है। यह प्राकृत और नव्य भारतीय भाषाओं के बीच की एक कड़ी है।

अपभ्रंश शब्द का अर्थ है अशुध्द या बिगडा हुआ रूप। एक ओर तो यह विद्वाम वैयाकरणों के इस भाषा के प्रति अनादर का सूचक शब्द है और दूसरी ओर इससे भाषा के विकास की आगे की सीढी की सूचना मिलती है। यह विकास की स्वभाविक स्थिति हैं। इस विकास में आभीर, गुर्जर जैसी अनार्य जातियों का भी योगदान हो सकता है। भारत ने अपने नाट्यशास्त्र में आभीर जाति का इस सिलसिले में उल्लेख किया है। पाँचवी छटी जाती में आभीर जाति राजस्थान, गुजरात, मालवा तथा भारत के अन्य भागों में फैल गई थी। गुर्जरों का उल्लेख ग्रियर्सन ने किया है।

BRAOU

जिस प्रकार देश भेद से प्राकृत के कई भेद हो गए थे, उसी प्रकार अपभ्रंश के भेद भी थे। यह भी माना जाता है कि प्रत्येक प्राकृत से किसी न किसी अपभ्रंश का विकास हुआ। किन्तु वैयाकरणों ने अपभ्रंश के तीन भेदों की चर्चा की है- नागर, व्राचड तथा उपनागर। एक वैयाकरण (मार्कंडेय) ने देशभेद से अपभ्रंश के 27 भेदों की चर्चा की है। आधुनिक भाषाविज्ञानिने अपभ्रंश का वर्गीकरण इस प्रकार किया है:- पूर्वी अपभ्रंश, दक्षिणी अपभ्रंश, तथा पश्चिमी अपभ्रंश। पूर्वी अपभ्रंश का परिचय कन्हपा, सरहपा जैसे सिध्दकवियों के दोहों तथा चर्चापद से मिलता है। दक्षिणी अपभ्रंश में जैनकवि पुष्पदंत ने महापुराण की रचना की है। कालिदास और हेमचंद्रने जो दोहे संगृहीन किये हैं वे पश्चिमी अपभ्रंश में है। अपभ्रंश के भेदों में से नागर या पश्चिमी अपभ्रंश को प्रमुख माना जा सकता है।

अपभ्रंश की कुछ विशेषताएँ रेखांकित की जाती है। स्वर ध्वनियों में 'ए' तथा 'ओ' के ह्रस्व रूप मिलते है। ये ह्रस्व स्वरूप तेलुगु में भी मिलते हैं। अपभ्रंश के पायः सभी शब्द स्वरांत होते हैं। इस भाषा को उकारान्त या उकार बहुला कहा गया है। व्यंजन ध्वनियाँ प्राकृत के समान ही हैं। फिर भी अपभ्रंश की अपनी कुछ विशेषताएँ भी है। क, त, प जैसी अघोष ध्वनियाँ सघोष हो जाती है जैसे मदकल - मयगल संयुक्त व्यंजन पद के आरंभ में नहीं मिलते। 'म' का विकास 'वँ' में हो जाता है जैसे ग्राम,

गाय, गाँव। 'य' का विकास 'ज' में हो जाता है। अन्य परिवर्तन प्राकृत जैसे ही है। अपभ्रंश के ध्वनि परिवर्तन आधुनिक युग में नयी अवधी जैसे बोली में भी मिल जाते हैं।

अपभ्रंश में तीन लिंग होते है परंतु लिंग संबंधी कोई सुनिश्चित व्यवस्था नहीं मिलती। हेमचंद्र जैसे वैयाकरण ने अपभ्रंश लिंग विचार को अनियमिक माना है इसी प्रकार लिंग संबंधी नियम हिन्दी में भी शिथिल है। प्राकृत की भ्रांति अपभ्रंश में दो ही वचन मिलते है। अपभ्रश में विभक्तियाँ प्राकृत से भी कम हो गई है। 'उ' विभक्ति अपभ्रंश में प्रमुख है। अकारान्त शब्दों में इसी का योग होता है।

अपभ्रंश की सबसे प्रमुख विशेषता है कारक या परसर्गों का विकास। यद्यपि अपभ्रंश में परसर्गों का प्रयोग बहुत अधिक नहीं पाया जाता, किन्तु इनका प्रयोग आरंभ हो गया जो पुरानी हिन्दी में और बढ़ता गया। प्रमुख परसर्गों में केर और तठा भी आते हैं।

अपभ्रंश में तत्सम शब्दों का प्रयोग तो मिलता है किन्तु बहुत कम। तत्भव शब्दोंका ही बाहुल्य मिलता है। देशज शब्दों का प्रयोग भी होता था। विदेशी शब्द प्रायः नहीं मिलते। विदेशी अरबी शब्दों का प्रयोग प्रारंभिक हिन्दी में होने लगा था।

भाषा की संरचना के आधार पर हिन्दी और अपभ्रंश का घनिष्ट संबंध है। हिन्दी को भाषिक ढाँचा अपभ्रंश की ही देन है। हिन्दी का परसर्ग प्रयोग निर्विभक्तिक रूपों की बहुलता, कर्मवाच्य तथा भाववाच्य प्रणाली के बीज अपभ्रंश में देखे जा सकते हैं।

भाषा ही नहीं, अपभ्रंश साहित्य की विरासत भी हिन्दी को मिली है। हिन्दी की आदिकालीन साहित्य की कई धाराएँ अपभ्रंश साहित्य की परंपराओं से आगत है। अनेक काव्य रुढियों और छंन्दों विधान अपभ्रंश से ही हिन्दी ने ग्रहण की है। बहुत दिनों तक अपभ्रंश बोलचाल की ही भाषा रही। किन्तु कालान्तर में इसनें भी साहित्यिक रूप धारण किया। भामह और दंडी जैसे आचार्यों ने अपभ्रंश काव्य की भाषा शैली के रूप में अपभ्रंश को स्वीकार किया है। दंडी ने इसको आभीरादि विभाषा कहा है फिर भी इस भाषा को अशिष्टों की बोली ही माना जाता था। शिष्ट समाज में संस्कृत और प्राकृत का ही व्यवहार होता था। एक आचार्य ने काव्य शैली के रूप में अपभ्रंश का विवरण इस प्रकार दिया है- अपभ्रंश शैली में प्राकृत और संस्कृत दोनों का मिश्रण पाया जाता है इसमें संस्कृत और प्राकृत पदों की तरंगों का संगम है। यह प्रणय कोप से पुष्प कामिनी के आलाप की तरह मनोहर है। स्वयंभू कवि ने इस भाषा शैली को तुलना उस नदी से की है, जो संस्कृत और प्राकृत के किनारों के बीच में बहती है।

BRAOU

जब अपभ्रंश शिष्ट समुदाय की भाषाका रूप में प्रतिष्ठित हो गई, तो इसका व्याकरण भी लिखा गया। हेमचंद्र ने अपने शब्दानुशासन में अपभ्रंश का व्याकरण भी दिया है। हेमचंद्र के बाद भी अपभ्रंश काव्य की भाषा बनी रही। प्रारंभिक हिन्दी रचनाओं की भाषा में भी अपभ्रंश का आभास मिलता है।

यह एक देशी भाषा की प्रतिष्ठा थी। संस्कृत को कुछ "देवी वाक" कहने वाले वैयाकरण देशीभाषा को "भ्रष्ट" कह कर अनादर करते थें। एक पंडित ने "अवहट्ठ" को पतिता ब्राह्मणी के समान बतलाया। देशी भाषा के उपासकों ने इसको अपभ्रंश न कह कर देशी ही कहने लगे। स्वयंभू आदि कवियों ने इसे "देसी" कहा है। विद्यापति ने "कीर्तिलता" में "देसिय बयना" (= देशी भाषा) को "मिठठा" (= मीटी या मधुर) कहा है। और यह भी कहा है कि संस्कृत बहतों को अच्ची नहीं लगती, प्राकृत अधिक रसप्रवण नहीं है। देशीभाषा सबसे अधिक मीठी होती है।

जब एक देशी भाषा साहित्य और शिष्टजनों में प्रतिष्ठित हो गई तब इसको भी राज्याश्रय भी प्राप्त हुआ। उदाहरण के लिए मान्यरवेत के राष्ट्रकूट वैष्णव राजाओं को लिया जा सकता है। इनके दरबार में अपभ्रंश के कई कवियों को आश्रय मिला। जैन वैश्यों ने भी अपभ्रंश को आदर दिया। इनके माध्यम से ही अपभ्रंश राष्ट्रीय भाषा का रूप लेने लगी। गुजरात के सोलंकी राजाओं ने (11वी शती) अपभ्रंश के साहित्यिक उत्थान में योगदान दिया। बंगाल के पालवंशीय राजाओं ने अपभ्रंश को उचित सम्मान दिया। बौध्द तांत्रिकों का भी इसके विकास में हाथ रहा।

अपभ्रंश साहित्य को दो भागों में बाँटा जाता है, जैन अपभ्रंश साहित्य तथा जैनेतर अपभ्रंश साहित्य। काव्यविधाओं की दृष्टि से इस साहित्य की चार कोटियाँ है:- जैन प्रबंध काव्य (= पुराण, चरित, साहित्य तथा कथा साहित्य), जैन आध्यात्मिक या रहस्यवादी काव्य, बौध्द दोहा, नया चर्चापद तथा शौर्य तथा प्रणय संबंधी मुक्तक काव्य। प्रमुख रूप से जैन कवियों ने अपभ्रंश की साहित्य परंपरा को समृध्द बनाया। जैनेतर कवियों के योगदान को भी भुलाया नहीं जा सकता। अद्दहमान (अब्दुर्रहमान) जैसे मुसल्मान कवि ने भी अपभ्रंश में साहित्य रचना की।

जिस प्रकार हिन्दी भाषा के ढाँचे की रचना में अपभ्रंश ने योगदान दिया, उसी प्रकार अपभ्रंश साहित्य भी हिन्दी को विरासत में मिला। अपभ्रंश के वीर रसात्मक मुक्तकों का विकास प्राकृत पैंगलमद् के वीरगीतों के रूप में देखा जा सकता है। श्रृंगारी मुक्तकों का विकास ढोला मारुरा दोहा में मिलता है। बिहारी के छन्दों-विधान पर अपभ्रंश का स्पष्ट प्रभाव है। बौध्द सिध्दों की काव्यशैली की परंपरा नाथसिध्दों की वाणी में होती हुई कबीर तथा अन्य निर्गुणियाँ संतों के काव्यों तक चली जाती है।

अंत में यह कहा जा सकता है कि अपभ्रंश से हिन्दी का घनिष्ट संबंध है। यह तो सच है कि प्रारंभिक हिन्दी, संस्कृत, तत्सम शब्दसंपदा की ओर उन्मुख रही है और भक्तिकालीन साहित्य में यह प्रवृत्ति अत्यधिक बढ़ गई, पर यह भी सच है कि हिन्दी की पदरचना तथा ध्वनि संरचना अपभ्रंश के प्राकृतिक विकास के परिणाम है। अपभ्रंश की प्रमुख साहित्यिक धाराओं का संगम भी हिन्दी साहित्य में हुआ। एक प्रकार से अपभ्रंश, हिन्दी भाषा और साहित्य की आधारशीला है। हिन्दी का पूर्ण अध्ययन इससे कटकर नहीं हो सकता।

3.3.4 आधुनिक आर्य भाषाएँ

अपभ्रंश काल में ही नवीन भारतीय आर्य भाषाओं के बीज जमने लगे थे। अपभ्रंश की अन्तिम सीमा 12 वीं शती के अंत तक मानी जा सकती है। इस समय तक अपभ्रंश का साहित्य रूढ़ भाषा हो गई थी। अपभ्रंश का साहित्य और पीछे तक भी लिखा जाता रहा। हेमचंद्र ने एक ग्राम्य अपभ्रंश की चर्चा की है। यह अपभ्रंश का वह रूप था जो साहित्यिक अपभ्रंश के साथ बोलचाल के व्यवहार में चल रहा था। इसमें नवीन भारतीय आर्यभाषाओं के रूप और लक्षण विकसित होने लगे। इसे हम भाषा विकास का संक्रान्ति काल कह सकते हैं।

BRAOU

इतिहास में कुछ ऐसी परिस्थिति बन रही थी कि आधुनिक भाषाओं के विकास की गति तेज हो गई। 1000 ई. के पश्चात तुर्की तथा अन्य मुस्लीम वर्गों के आक्रमण उत्तर भारत पर होने लगे। इन नवीन ऐतिहासिक परिस्थिति में जनभाषाओं या नवीन भाषाओं पर एक दायित्व आ पड़ा। इनको सांस्कृतिक और धार्मिक मूल्यों को सामान्य जनता तक ले जाना था। क्षत्रिय सामंत नवोदित भाषारूपों को राज्याश्रय दे रहा था। नवोदित भाषाओं में रचा हुआ साहित्य राज-सम्मान प्राप्त करने लगा। संतों या भक्तों के साहित्य की भाषा भी नवोदित रूपों को लेकर चल रही थी। 13 वीं शती तक असहिष्णु मुसलमान जाति का, भारत के बड़े भाग पर आधिपत्य हो गया। इन परिस्थितियों में नवीन भारतीय आर्य भाषाओं का इतिहास आरंभ होता है।

कुछ विद्वानों ने प्राकृतों और अपभ्रंशों से नव्य भारतीय भाषाओं के विकास क्रम को जोड़ने का प्रयत्न किया है, पर यह वैज्ञानिक और संतोष जनक नहीं है। इतना ही कहा जा सकता है कि इन मध्यकालीन भाषा क्षेत्रों की जनभाषा का विकास नवीन आर्यभाषाओं में हुआ। इन पूर्वकालीन साहित्यिक भाषाओं का प्रभाव अवश्य था।

मराठी, गुजराती, राजस्थानी, पंजाबी, हिन्दी, बंगाली, बिहारी, असमी, उडिया, सिंधी, लहँदा, काश्मीरी, तथा हिमाचल की भाषाएँ गढ़वाली, कुमाऊँनी, नेपाली आदि आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ है। इनमें से पहाडी, राजस्थानी, तथा बिहारी भाषा रूपों को हिन्दी बोलियों के अंतर्गत रखा जाता है। अन्य भाषाओं के साथ भी कई बोलियों की स्थिति दिखलाई पड़ती है।

मराठी का केन्द्र पूना है। इसकी प्रमुख विभाषा कोंकणी है। इस भाषा के आरंभिक रूप ज्ञानेश्वरी तथा एकनाथी रामायण में मिलते हैं। इसकी लिपि देवनागरी है। गुजराती भाषा के दक्षिण और पूर्व में मराठी, उत्तर में राजस्थानी, और पश्चिमी हिन्दी तथा पश्चिम में कच्छी प्रदेश है। गुजराती और राजस्थानी में घनिष्ट संबंध है। यहाँ तक कि कुछ विद्वानों ने इन दोनों को एक ही माना है। इसके पुराने रूप हेमचंद्र के व्याकरण तथा 12 वीं शती से 15 वीं शती तक स्थानीय बोलियों का समावेश होता है। यह भाषा सिंधी, लहँदा, ब्रजभाषा बुंदेली, मराठी तथा गुजराती से घिरी हुई है। पंजाबी आधुनिक पंजाब की भाषा है। पश्चिमी भाग लहँदा प्रदेश है। पंजाबी की भी कई बोलियाँ है। इसमें 15 वीं 16 वीं शतों में सिक्ख गुरुओं द्वारा रचित पद भी मिलते हैं।

पूर्वी भाषाओं में उड़िया, उडिसा की भाषा है। इसके उत्तर में बंगाली, बिहारी, पश्चिम में पूर्वी हिन्दी, दक्षिण में तेलुगु है। बोलियों के रूप बहुत कम है इसके पुराने लेख 14 वीं शतों से मिलते हैं। बंगाल की भाषा बंगाली है। छोटा नागपुर के कुछ भागों तथा आसाम की घाटी में भी यह बोली जाती है। बांगला देश की भी यही भाषा है। बंगाली का साहित्य समृध्द है। इसकी लिपि देवनागरी से मिलती जुलती है। बिहार की बोलियों को जोड़कर बिहारो नाम दिया जाता है। इसकी पश्चिम में पूर्वी का क्षेत्र, दक्षिण में बंगला और उड़िया का क्षेत्र है। इस क्षेत्र की प्रमुख बोलियाँ है मैथिली, मगही तथा भोजपुरी। ये सभी देवनागरी में लिखी जाती है। आसाम की भाषा असामी है। जो बंगाली भाषा से बहुत प्रभावित है। इसकी लिपि भी बंगाली के समान है, कवि शंकर देव के पद इसी में लिखे गए हैं इसमें आसामी के पुराने का परिचय मिलता है।

सिंध की भाषा सिंधी है। सिंध नदी के दोनों किनारों पर इसका क्षेत्र विद्यमान है। इसके पश्चिम में बलुचिस्तान, उत्तर में मुक्तान तथा पूर्व में राजस्थान का मारवाड़ी क्षेत्र है। इसकी शब्दावली पर फारसी का बहुत प्रभाव है। इसमें फारसी तथा लहँदा लिपि का प्रयोग होता है। कश्मीर की काश्मीरी भाषा है। इसका संबंध दुरद या पैशाची से माना जाता है। इसका साहित्य लगभग 1000 ई. से मिलता है। पहाडी भाषाएँ हिमालय की तराइयों में बोली जाती है, इनके बोलने वाले खस कहलाते हैं। उपर्युक्त आर्य भाषाओं के अतिरिक्त सिंहल भी है जो सिंहल में बोली जाती हैं।

नव्य भारतीय आर्य भाषाओं के वर्गीकरण के प्रयत्न भी हुए हैं। इस वर्गीकरण का आधार इनमें मिलनेवाली कुछ समानताएँ हैं। सबसे पहले हार्नले ने इनका वर्गीकरण इस प्रकार किया:- पूर्वी गॉडियन = पूर्वी हिन्दी, बंगाली तथा उड़िया, पश्चिमी गॉडियन = पश्चिमी हिन्दी, पंजाबी, गुजराती तथा सिंधी। उत्तरी गॉडियन = गढवाली, कुमाउनी तथा नेपाली। दक्षिणी गॉडियन = मराठी। बिहारी बोलियों को इन्होंने हिन्दी के साथ ही वर्गीकृत किया। यह वर्गीकरण अधिक लोकप्रिय नहीं हुआ।

दूसरा वर्गीकरण ग्रियर्सन ने किया। इस वर्गीकरण का आधार हार्नले की यह मान्यता है कि आर्य भारत में दो समुदायों में प्रविष्ट हुए। पहले जो आर्य समुदाय आया वह पंजाब में बस गया। दूसरा दल काबुल नदी का मार्ग से गिलगित और चित्राल होता हुआ। मध्यदेश में प्रविष्ट हुआ। इस दल के दबाव के कारण पूर्वागत आर्ट समुदाय पूरब, दक्षिण और पश्चिम में फैला और पीछे आये हुए समुदाय ने सरस्वती, यमुना और गंगा के तटों पर अपनी यज्ञ परायण संस्कृति का विस्तार किया। इस आधार पर ग्रियर्सन ने आधुनिक आर्य भाषाओं को दो वर्गों में विभाजित किया। पीछे आए हुए समुदाय का भीतरी भाषावर्ग तथा पूर्वागत आर्य समुदाय का बाहरी भाषा वर्ग। इस वर्गीकरण को नीचे की तालिका से समझा जा सकता है।

क. बाहरी उपशाखा

1. प्रथम उत्तरी पश्चिमी समुदाय	1. लहँदा अथवा पश्चिमी पंजाबी
	2. सिंधी
2. द्वितीय दक्षिणी समुदाय	3. मराठी
3. तृतीय पूर्वी समुदाय	4. उड़िया
	5. बिहारी
	6. बंगाली
	7. असामी

BRAOU

ख. मध्य उपशाखा

4. चतुर्थ–बीच का समुदाय — 8. पूर्वी हिन्दी

ग. भीतरी उपशाखा

5. पंचम–केन्द्रीय या भीतरी समुदाय — 9. पश्चिमी हिन्दी, 10. पंजाबी, 11. गुजराती, 12. भीली, 13. खानदेशी, 14. राजस्थानी

6. षष्ठ–पहाडी समुदाय — 15. नेपाली (पूर्वी पहाडी), 16. मध्य या केन्द्रीय पहाडी, 17. पश्चिमी पहाडी

डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने इस वर्गीकरण की आलोचना की है और इसे अमान्य ठहराया इस भाषा समुदायों को अलग करनेवाले कुछ लक्षण तो हैं, किन्तु जिन समानताओं और असमानताओं के आधार पर ग्रियर्सन ने यह वर्गीकरण किया जिसे डॉ चटर्जीने नहीं माना। डॉ चटर्जी ने जो वर्गीकरण किया है वह निम्न प्रकार किया है:–

क. उदीच्य (उत्तरी)	–	1 सिंधी, (2) लहँदी, (3) पूर्वी पंजाबी
ख. प्रतीच्य (पश्चिमी)	–	4 गुजराती, (5) राजस्थानी
ग. मध्यदेशीय	–	6 पश्चिमी हिन्दी
घ. प्राच्य (पूर्वी)	–	7 I कोसली या पूर्वी हिन्दी II मागधी प्रसूत 8 बिहारी, 9. उडिया, 10. बंगला, 11. असमिया
ङ. दाक्षीणात्य	–	12 मराठी

ऐतिहासिक दृष्टि से यह वर्गीकरण मान्य है। वास्तव में भाषाओं को स्पष्ट वर्गों में विभाजित करना एक कठिन काम है। फिर भी डा.चटर्जी का वर्गीकरण वैज्ञानिक है। नव्य भारतीय भाषाओं में रूपरचना की दृष्टि से प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं तथा मध्यकालीन आर्य भाषाओं से आगे का विकास लक्षीय होता है। सबमें एक मौलिक रूपगत एकता मिलती है। वाक्य रचना में पर्याप्त समानता है। विकास की प्रवृत्ति विश्लेषणात्कम हैं।

3.3.5 आर्येतर जातियाँ और भाषाएँ:

भारतीय भाषा, संस्कृति और साहित्य के विकास में अनेक जातियों का योगदान रहा है। इसीलिए उसकी एकता में विविधता और विविधता में एकता देखी जा सकती है। आर्यों के भारत प्रवेश से पहले भारत में अनेक अर्येतर जातियाँ बसी हुई थीं या घुमंतु प्रकृति की जातियाँ थी। इन जातियों की भाषा और संस्कृति से आर्यों का संपर्क हुआ। आदान–प्रदान भी हुआ और संघर्ष भी हुआ। इन जातियों के सूचक अनेक शब्द वैदिक साहित्य में मिलते हैं। इनके सूचक कुछ विशेषण ये हैं। काला (कृष्ण), देवरहित (अदेवयु), यज्ञहीन (अयजवन) अशुध्द भाषी, दास दास्यु (डाकू) आदि। आर्येतर जातियों में कुछ सभ्य और संस्कृत भी थे। ऋषियों ने अपने इन्द्र से प्रार्थना की कि अनार्यों के उन नगरों पर वज्र प्रहार करो, जो पक्की ईंटों के बने हुए हैं और जो लोह दुर्ग के समान सुदृढ हैं। इस कथन से सिन्धु–घाटी की नगर सभ्यता की सूचना मिलती है। इन जातियों में एक ओर निषाद् किरात् जैसी असभ्य अर्धसम जातियाँ थी, तो दूसरी ओर द्राविड़ जैसी पूर्ण सभ्य जातियाँ भी थीं। ब्राह्मण साहित्य में ऐसे आख्यान भी मिलते हैं जिनमें आर्यों और आर्येतर जातियों के बीच का संघर्ष दिखलाया गया।

BRAOU

आदिम जातियाँः

अर्यों के पहले से बसी हुई अन्य जातियों में निषाद् किरात, कोल तथा मोन समेर की चर्चा की जाती है। इनके सम्बन्ध में भी विद्वानों में एक मत नहीं है। कुछ विद्वान कोल भाषाओं को आस्ट्रिक कुल का मानते है, तो कुछ इसे यूराल अलताई कुल की मानते हैं। आर्य भाषा-भाषियों के आगमन से पहले भारत में एक कृषक वर्गीय जाति के निवास का अनुमान किया जाता है। कुछ इसे निरगे समुदाय की मानते है तो कुछ इंडो आस्ट्रिक समुदाय को। पुराणों में निषादों का उल्लेख मिलता है। इनकी स्थिति विंध्य क्षेत्र में मार्मा जाती है। धीवर भी इसी समुदाय के मालूम पड़ते हैं। निषाद और धीवर दोनों ही उस क्षेत्र के पास रहते थें जहाँ सरस्वती लुप्त हो गई हैं।

एक और किरात नामक जाति का उल्लेख पुराण साहित्य में मिलता है। यह जाति हिमालय क्षेत्र के विभिन्न भागों में रहती थी। उदीच्य क्षेत्र में भी इनकी स्थिति बतलाई जाती है। इनको पुराणों में पर्वताश्रयी कहा गया है। दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर पूर्व में भी इनका निवास था। यह जाति वन्य जीवन व्यतीत करती थी। वैदिक काल में इनकी गणना दस्युओं में थीं।

इस प्रकार की अनेक जातियाँ और उपजातियों की स्थिति प्राचीन काल से भारत में मिलती चली आई हैं। इनकी भाषाएँ भी किसी न किसी रूप में मिल जाती है। किन्तु ये भाषाएँ और इनका साहित्य पूर्ण रूप से अध्ययन में नहीं आ पाया है।

द्राविड़ और द्राविड भाषाएँः

सिंधु घाटी की सभ्यता की खोज एक महत्वपूर्ण घटना है। आदरहिरास ने मोहेनजो दाड़ो की भाष को आदि द्राविड़ भाषा बतलाया है। बैजरिक हरोजनी ने उसे आर्य कुल की भाषा सिध्द करने की कोशिश की है। ब्राहुइ (= बलोचिस्तान) भाषा, द्राविड़ कुल की है। इससे इस स्थापना को बल मिला कि मोहनजो दाड़ो की सभ्यता द्राविड़ सभ्यता ही थी। फिर भी मत भेद बना हुआ है।

द्राविड़ कुल के मूल स्थान के विषय में भी मतैक्य नहीं है। कुछ विद्वानों के अनुसार, द्राविड जाति लिबया से, कुछ के अनुसार भूमध्य सागर के क्रीट आदि द्वीपों से और कुछ के अनुसार मध्य एशिया से भारत में आई। चाहे इस सम्बन्ध में मतभेद हों किन्तु यह निश्चय हो गया है कि द्राविड जन आर्यों से पहले किसी अन्य देश से भारत में आये और ये पूर्ण रूप से सभ्य थे।

मुंडा भाषा द्वीपों के साथ द्राविड़ भाषा द्वीपों की स्थिति मिलती है। बिलोचिस्तान में ब्रुहुई द्राविड़ भाषा द्वीप है। मध्यप्रदेश, बिहार और उडिसा में भी द्राविड़ भाषा समूह और स्थान मिलते हैं। इन स्थानो पर विशेष रूप से गौडी बोली जाती है। दक्षिण तो द्राविड़ भाषाओं का प्रमुख केन्द्र है।

यदि मोहनजो दाड़ो तथा हडप्पा की सभ्यता द्राविड़ जातियों की मान ली जाए तो यह अनुमान लगाया जा सकता है कि द्राविड़ जातियों ने अपनी उच्छ सभ्यता और शक्ति से मुंडा जातियों को पराजित किया। आंशिक रूप से इन्होंने इन अर्ध सभ्य जातियों को हिमालय, विंध्य और खासी पहाडियों में खदेड दिया और उडिसा, बिहार तथा बर्मा की ओर जाने के लिए विवश किया। जब आर्य भारत में आये तो मुख्य रूप से उनकी द्राविड़ भाषाएँ मिली और गौण रूप से मुंडा भाषाएँ। द्राविड़ और मुंडा भाषाओं का संघर्ष-संपर्क पहले से चला आ रहा था।

वैसे तो सभी आर्येतर जातियों की भाषाएँ भी और उनसे आर्यभाषाओं में अनेक शब्द भी आये, किन्तु सबसे अधिक समृध्द भाषा परंपरा द्राविड़ों की थी। द्राविड भाषाओं का विकास दक्षिण भारत में हुआ। इस भाषा वर्ग में चार भाषाएँ सम्मिलित की जाती है, तमिल, तेलुगु, कन्नड और मलयालम। इन भाषाओं का आदिम रूप क्या था, यह तो आज ज्ञात नहीं है, किन्तु जो भाषा रूप प्राप्त होते है, उनसे यह स्पष्ट है कि ये भाषाएँ उन्नत और सुव्यवस्थित थीं। द्राविड़ भाषाओं का प्रभाव संस्कृत और उसके परवर्ती रूपों पर पड़ा। प्राकृत और अन्य जनबोलियाँ इस प्रभाव से अछूती नहीं रही। द्राविड़ भाषाओं के अनेक शब्द संस्कृत और प्राकृतों में मिलते है।

BRAOU

संस्कृत का भी प्रभाव द्राविड भाषाओं पर बहुत अधिक पडा। संस्कृत शब्दों को इन भाषाओं ने प्रमुख मात्रा में ग्रहण किया और संस्कृत की शैलियों का अनुकरण भी हुआ है। तमिल भाषा अपेक्षाकृत इस प्रभाव से मुक्त रही। इसका कारण यह था कि उसमें स्वतंत्र साहित्य की रचना बहुत पहले ही होने लगी थी। तमिल साहित्य प्रायः उतना ही पुराना है जितना वैदिकेतर संस्कृत साहित्य। फिर भी संस्कृत भाषा और साहित्य से प्रभावित हुए बिना यह नहीं रहीं।

द्राविड भाषाओं को संश्लिष्ट भाषा समूह के अंतर्गत रखा जाता है। इनमें निर्जीव वस्तुएँ बहुधा नपुंसक लिंग ग्रहण करती है। लिंग वाचक शब्द जोड़ कर प्रायः लिंग भेद व्यक्त किया जाता है। इनकी रचना में अंत्य प्रत्ययों की बहुलता है। विशेषण प्रायः अव्यक्त होते हैं। विशेष्य संज्ञाओं के वचन और लिंग के अनुसार ये विकृत नहीं होते। कृदंतों का विशेषणवत् प्रयोग बहुत अधिक होता है। उत्तम पुरुष सर्वमान के "इनक्लूसिव" तथा "एक्सक्लूसिव" रूप होते हैं। इन भाषाओं में कर्मवाक्य क्रियारचना की कोई स्वतंत्र व्यवस्था नहीं है। कोई स्वतंत्र व्यवस्था नही है। कोई स्वतंत्र क्रिया जोड कर इसकी रचना की जाती है। द्राविड़ भाषाओं की ये कुछ विशेषताएँ है।

द्राविड़ परिवार में उपर्युक्त चार समृध्द और साहित्यिक भाषाओं के अतिरिक्त कुछ अन्य बोलियाँ भी है जो कुछ आदिम जातियों में बोली जाती हैं। इनमें तुशु, कोडगु, लोदा, गोंडी (मद्रास प्रदेश तथा हैदराबाद में) कन्ध या कुई (उडीसा में) क्रंक्ख् या ओरौंवाँ (विहार, उडीसा तथा असाम में) तथा मालतो (राजमहल की पहाडियों में) उद्रेशनीय हैं। इनसे यह सिध्द होता है कि द्राविड़ भाषाओं का क्षेत्र भारत में कभी बहुत व्यापक था। भारत से बाहर सिंहल में तमिल भाषी जनसंख्या हैं।

इस परिवार की साहित्यिक भाषाओं की साहित्य परंपरा भी बहुत समृध्द है। तमिल में ई.पू. का प्रचुर साहित्य बतलाया जाता है। कन्नड साहित्य के लेख पाँचवी सती ई.से. व्यवस्थित रूप से मिलते हैं। तेलुगु साहित्य का प्राचीन ग्रंथ नन्नय भट्ट का महाभारत है। इससे पूर्व के साहित्य और शिलालेखों की खोज भी हुई है।

मुंडा भाषाएँ:

मुंडा जातियों का संबंध इंडो आस्ट्रिक समूह से था। इस जाति की सभ्यता उच्चस्तरीय नहीं थीं। प्राचीन भारतीय आर्यभाषा को संभवतः इनकी भाषा उतनी प्रभावित नहीं कर पाई, जितनी द्राविड भाषाएँ कर सकी मुंडा भाषाओं के द्वीप आज भी शिमला की पहाड़ियों में उत्तरी गढ़वाल के पर्वतों में, नेपाल में, दार्जिलिंग में, खासी पर्वतों में, उडिसा के कुछ भूभाग में, मध्यप्रदेश में नर्मदा के दक्षिण में, गंजाम के पास पाए जाते हैं। बर्मा तक इन भाषाओं का विस्तार है। इससे यह सिध्द होता है कि मुंडा और द्राविड़ जातियाँ और उनकी भाषाएँ परस्पर संपर्क में अधिक आई। मुंडा भाषाएँ प्रश्लिष्ट रचना की थी। इनसे लिंगभेद प्राणि, अप्राणी के आधार पर था। इनमें तीन वचन मिलते है। क्रियाओं की रचना में मध्य और अंत्य प्रत्यय जोडे जाते थे।

3.3.6 आर्य–अनार्य संपर्क

आरंभ में आर्यों और उनकी भाषा का क्षेत्र सीमित था। धीरे धीरे आर्यों का विस्तार हुआ और अन्य आर्येतर जातियाँ आर्यों के संपर्क में आती गई। इस क्रम में भाषागत आदान–प्रदान की संभावनाएँ भी बढ़ी। मूल भाषाएँ विकसित होने लगी। आर्य और आर्येतर संबंध केवल विजयी–विजित का संबंध नहीं रहा। सांस्कृतिक संबंध बनने लगे। आर्येतर जन आर्यों के अंतःपुर तक पहुँचने लगे। दोनों में वैवाहिक संबंध हुए। इस प्रकार दोनों का रक्त संबंध बढ़ा। साथ ही नगरों में बहु भाषिकता का वातावरण बनने लगा। भाषाओंका संपर्क और आदान–प्रदान होने लगा। भाषाओं में ऐसे परिवर्तन आने लगे जिनकी ओर वैयाकरणों का विशेष ध्यान गया। वैयाकरणों को भाषा की शुध्दता की रक्षा के लिए चिंता होने लगी। किन्तु उपर्युक्त परिस्थितियों में भाषागत और वाक्यगत एकता घटित होती गई और परस्पर संपर्क और आदान–प्रदान से सभी भाषाएँ समृध्द होती रही। सभी एक सामाजिक भाषा और संस्कृति की कड़िया बन गई।

BRAOU

3.4. सारांश

भारत में कुछ ऐसी ऐतिहासिक परिस्थितियाँ घटित होती रही कि आरंभ से ही यह विभिन्न जातियों, विभिन्न भाषाओं और संस्कृतियों का देश हो गया। आदिम जातियाँ तो यहाँ बसी हुई थीं जो पीछे द्राविड और आर्य जातियाँ बाहर से यहाँ आई और उन्होंने उच्च सभ्यता और संस्कृति का विस्तार किया। यहाँ की आदिम जातियों से इनका संपर्क और संबंध हुआ, आदान-प्रदान हुआ और एक सामान्य रिक्य विकसित होता गया।

आर्य भाषाओं का विकास तीन युगों में विभक्त किया जा सकता है। प्राचीन युग में वैदिक और लौकिक संस्कृत आती है। इन दोनों में कुछ भिन्नता है किन्तु समानता अधिक है। वैदिक भाषा का प्रमाण वेदों में तथा वेद से संबंधित साहित्य में मिलता है। संस्कृत की परम्परा पाणिनी से आरंभ होती है। लौकिक संस्कृत में प्रचुर साहित्य रचा गया। इसके विकास में हिन्दुओं, बौध्दों, जैनों तथा द्राविड आदि जातियों का योगदान रहा। यह एक प्रकार से राष्ट्रीय एकीकरण की भाषा बन गई। धर्म और व्यापार के विस्तार के साथ इसका भी विस्तार भारत से बाहर के देशों तक हुआ है।

विकास के दूसरे चरण में मध्यकालीन आर्यभाषाएँ आतीहैं जिनको प्राकृत और अपभ्रंश के क्रम में देखा जाता है। ये बाषाएँ आरंभ की रचा गया है। इनके व्याकरण भी लिखे गए। संस्कृत और प्राकृत के बीच भाषागत और साहित्यिक आदान-प्रदान भी होता रहा। देश भेद से प्राकृत और अपभ्रंश रूप प्रचलित थे।

इसके पश्चात आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास हुआ। इस युग में वे भाषाएँ अस्तित्व में आई जिन की सूची संविधान में दी गई है। इन भाषाओं की प्रकृति विश्लेषणात्मक है और इन सभी में साहित्य रचा गया है और रचा जा रहा है। ये भाषाएँ संस्कृत और प्राकृत के प्रभावों को लिए हुए है। आधुनिक युग में इन पर फारसी, अरबी तथा यूरोपीय भाषाओं का भी प्रभाव पड़ा।

संविधान में तमिल, तेलुगु आदि द्राविड़ भाषाएँ भी सम्मिलित हैं। इन भाषाओं की परंपरा आर्यपूर्व सिंधुघाटी की सभ्यता तक जाती है। इन भाषाओं की भाषिक और साहित्यिक परम्परा अत्यंत सुदीर्घ है। इनका संपर्क मुंडा जैसी भाषा से भी हुआ और भाषाओं से भी। आदान-प्रदान का क्रम भी चला। इसका परिणाम ही भारत की सामाजिक संस्कृति और भाषा तथा साहित्य है।

BRAOU

3.5 परिभाषिक शब्द-अर्थ

संस्कृत	= वह भाषा जिसका संस्कार किया गया है।
प्राकृत	= वह भाषा जिसका प्रचलन जनता साधारण में था और पीछे जो साहित्यिक भाषा भी बन गई। इसके कई रूप थे।
अपभ्रंश	= उन भाषा रूपों का द्योतक है जो संस्कृत के अशुद्ध रूपों के आधार पर बनी। पीछे यह एक स्वतंत्र भाषा का द्योतक शब्द हो गया।
धातु	= क्रिया का मूल रूप जिसकी रचना प्रत्ययों आदि के आधार पर चलती है।
सामाजिक संस्कृति	= मिली जुली संस्कृति जिसके निर्माण में विविध जातियों का हाथ रहा।
रिक्य	= वह सास्कृतिक संपदा जो पहली पीढियों से आगे की पीढियों को मिलती जाती है।

3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.6.1 (अ) 250 शब्दों में उत्तर दीजिएः-

1. प्रचीन भारतीय आर्य भाषाओं का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं में कौन कौन सी भाषाएँ आती हैं?

3. आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का वर्गीकरण किस आधार पर किया जाता है। किसका किया हुआ वर्गीकरण अधिक तर्क संगत है?
4. द्राविड़ भाषा कुल की प्रमुख भाषाओं का परिचय दीजिए।

3.6.2 (ब) 125 शब्दों में उत्तर दीजिए:-

1. वैदिक और लौकिक संस्कृत की तुलना कीजिए?
2. संस्कृत के बृहत्तर क्षेत्र का परिचय दीजिए?
3. प्राकृत की भाषिक विशेषताएँ बताइए?
4. अपभ्रंश के भेदों की चर्चा कीजिए?
5. अपभ्रंश और हिन्दी का संबंध स्पष्ट कीजिए।

3.7 नमूने के प्रश्नोत्तरः- 250 शब्दों में

3.7.1 (अ) श्रेणी के प्रश्नोत्तर

प्रश्न 4:- द्राविड़ भाषा कुल की प्रमुख भाषाओं का परिचय दीजिए।
उत्तर :- सिन्धु घाटी की सभ्यता की खोज एक महत्वपूर्ण घटना है। मोहेनजदाड़ो की भाषा को द्राविड़ भाषा बतलाया है। द्रविड़ कुल के मूल स्थान के विषय में एक मत नहीं है। अनेक विद्वानों अनेक मत है। चाहे इस सम्बन्ध में मतभेद हो किन्तु यह हो गया है कि द्राविड जन आर्यों से पहले किसी अन्य देश से भारत में आये और ये पूर्ण रूप से सभ्यथे। दक्षिण तो द्राविड भाषाओं का प्रमुख केन्द्र है ही। द्राविड़ जातियों ने अपनी उच्च सभ्यता और शक्ति से मुंडा जातियों को पराजित किया। जब आर्य भारत में आये तो मुख्य रूप से उनकी द्राविड़ भाषाएँ मिली और गौण रूप से मुंडा भाषाएँ। द्राविड़ भाषाओं का विकास दक्षिण भारत में हुआ। इस भाषा वर्ग में चार भाषाएँ सम्मिलित की जाती हैः- तमिल, तेलुगु, कन्नड और मलयालम। इन भाषाओं का आदिम रूप क्या था यह तो आज ज्ञात नहीं है। किन्तु जो भाषा रूप प्राप्त होते हैं उनसे यह स्पष्ट है कि ये भाषाएँ उन्नत और सुव्यवस्थित थीं। द्राविड़ भाषाओं का प्रभाव संस्कृत और उसके परवर्ती रूपों पर पड़ा। द्राविड़ भाषाओं के अनेक शब्द संस्कृत और प्राकृतों में मिलते हैं।

BRAOU

संस्कृत की भी प्रभाव द्राविड़ भाषाओं पर बहुत अधिक पड़ा। संस्कृत शब्दों को इन भाषाओं ने प्रमुख मात्रा में ग्रहण किया और संस्कृत की शैलियों का अनुकरण भी हुआ। तमिल भाषा अपेक्षाकृत इस प्रभाव से मुक्त रही। इसका कारण यह था कि उसमें स्वतंत्र साहित्य की रचना बहुत पहले ही होने लगी। तमिल साहित्य आयः उतना ही पुराना है जितना वैदिकेतर संस्कृत साहित्य। तमिल में ई.पू. का प्रचुर साहित्य बतलाया जाता है। कन्नड साहित्य के लेख पाँचवी शती ई.वी से व्यवस्थित रूप से मिलते हैं। तेलुगु साहित्य का प्राचीन ग्रंथ नन्नय भट्ट का महाभारत है।

3.7.2 (ब) नमूने प्रश्नोत्तरः- 125 शब्दों में

प्रश्न-1:- वैदिक और लौकिक संस्कृत की तुलना कीजिए?
उत्तर : भारतीय साहित्य परंपरा की पहली कड़ी वैदिक साहित्य है। इस साहित्य के अन्तर्गत चारों वेदों की संहिताओं, ब्राह्मणों, आरण्यकों उपनिषदों तथा वेदांगों को लिया जाता है।

वैदिक साहित्य के संरक्षक ब्राह्मण वर्ग वैदिक भाषा को अपरिवर्तित रखने का प्रयत्न करते रहे। सामान्य जनभाषा के संबंध में इस प्रकार के प्रयत्न नहीं होते। कालान्तर में पुरोहित वर्ग और जनता की भाषा के बीच बहुत अंतर आगया। उच्च वर्गीय भाषा में परिवर्तन मंदगति से हुआ और जन भाषा में द्रुत गति से।

पाणिनि की संस्कृत वैदिक भाषा से पीछे की है, किन्तु परिवर्तन बहुत कम है। इस समय भाषा के तीन रूपों की कल्पना की जा सकती है। वैदिक सुस्थिर भाषा, पाणिनीय संस्कृत तथा अधिक परिवर्तनशील जनभाषा।

वैदिक भाषा और लौकिक संस्कृत में ध्वनिगत अंतर बहुत कम है। वैदिक भाषा की कुछ ध्वनियाँ समाप्त हो गइ तथा नवोदित ध्वनियाँ आ गई। वैदिक सुर-व्यवस्था समाप्त हो गई। शब्द समूह में अधिक अंतर आगया। पर रूपों में अंतर आया। वैदिक भाषा के अनेक शब्दों में अर्थ परिवर्तन हुआ। लौकिक संस्कृत यह भाषा वैदिक से कुछ भिन्न थी। इस भिन्नता को प्रकट करने के लिए ही वैयाकरणों ने इस भाषा को लौकिक संस्कृत नाम दिया है।

3.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास – प्र.भाग–नागरी प्रसारिणी सभा।
2. टी.बरो. – हिस्टरी ऑफ दी संस्कृत लैंग्वेज।
3. सुनीति कुमार चटर्जी – भारतीय आर्य भाषाएँ और हिन्दी।
4. ग्रियर्सन – लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया।
5. राहुल सांकृत्यायन – हिन्दी काव्य धारा (भूमिका)
6. भोलानात तिवारी – हिन्दी भाषा।
7. शमशेरसिंह नरुला – हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं का वैज्ञानिक इतिहास।
8. डा. सन्द्रभान रावत – हिन्दी भाषा विकास और विश्लेषण।

BRAOU

इकाई-4: भौगोलिक हिन्दी क्षेत्र का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

4.0 विषय प्रवेश
4.1 पाठ का उद्देश्य
4.2 पाठ का परिचय
4.3 मूल पाठ
 4.3.1 भाषा और साहित्य के साथ भौगोलिक स्थिति और जीवन का संबंध
 4.3.2 हिन्दी प्रदेश या मध्य देश का भौगोलिक स्वरूप
 4.3.3. हिन्दी क्षेत्र के भौगोलिक स्वरूप का हिन्दी भाषा और साहित्य के साथ संबंध
 4.3.4 हिन्दी प्रदेश: ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य
 4.3.5 हिन्दी भाषा और साहित्य पर इस्लामी धर्म और संस्कृति का प्रभाव
 4.3.6 हिन्दी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी शासन, यूरोपीय चिंतन और संस्कृति का प्रभाव
4.4 पाठ का सारांश
4.5 पारिभाषिक शब्द-अर्थ
4.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
 4.6.1 (अ) श्रेणी के प्रश्नोत्तर (250 शब्दों में)
 4.6.2 (ब) श्रेणी के प्रश्नोत्तर (125 शब्दों में)
4.7 नमूने के प्रश्नोत्तर
 4.7.1 (अ) श्रेणी के प्रश्नोत्तर (250 शब्दों में)
 4.7.2 (ब) श्रेणी के प्रश्नोत्तर (125 शब्दों में)
4.8 पठनीय पुस्तकें

4.1 पाठ का उद्देश्य

इस पाठ में हिन्दी भाषा और साहित्य की पृष्ठ भूमि के रूप में हिन्दी क्षेत्र का परिचय प्राप्त होगा।

- भाषा और साहित्य के साथ जीवन का संबंध, भौगोलिक स्थिति का परिचय प्राप्त करेंगे।
- हिन्दी प्रदेश का भौगोलिक स्वरूप को जान जाएंगे।
- ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में हिन्दी प्रदेश की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- हिन्दी भाषा और साहित्य पर इस्लामी धर्म और संस्कृति का प्रभाव कैसे पड़ा।
- हिन्दी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी शासन, यूरोपिय चिंतन और संस्कृति का प्रभाव कैसे पड़ा।

इन विभिन्न रूपों से आप, इस पाठ के माध्यम से जान जाएंगे कि हिन्दी भाषा, भौगोलिक और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, हिन्दी प्रदेश, हिन्दी साहित्य पर अन्य भाषा का प्रभाव।

4.2 पाठ परिचय

इस पाठ में "हिन्दी भाषा और साहित्य की पृष्ठभूमि के" रूप में हिन्दी क्षेत्र का "मध्यदेश" के भौगोलिक और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य का विश्लेषण किया गया है। पहले हिन्दी प्रदेश का परिचय देते हुए (भौगोलिक स्वरूप) उसके साथ हिन्दी भाषा और साहित्य के संबंध की ओर संकेत हुआ है। ऐतिहासिक काल क्रम में मध्य देश के राजनीतिक जीवन में अनेक परिवर्तन हुए है। उनमें विशेष उल्लेखनीय मुसल्मानों और अंग्रोजों के राज्य काल में मध्य देशीय जीवन की गति-विधि में परिवर्तन है।

BRAOU

मध्य देश के सहज विकासशील सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन पर इस्लामी और यूरोपीय सभ्यता और संस्कृतियों का गहरा प्रभाव पड़ा। हिन्दी भाषा और साहित्य में उनका स्पष्ट प्रतिफलन हुआ है। जहाँ मध्य काल दो धर्मों और संस्कृतियों के संघर्ष और समन्वय का समय था, आधुनिक काल पुराने और नए के संघर्ष का और नए की स्वीकृति का समय है। इसीलिए मध्य काल में इस्लामी प्रभाव के बावजूद हिन्दी भाषा और साहित्य परम्परा से विच्छिन्न होकर नई दिशा में प्रस्थान कर रहे हैं। इस पाठ के द्वारा स्पष्ट हो जाता है कि भाषा और साहित्य के साथ सामाजिक, सांस्कृतिक संदर्भों का ही नहीं, भौगोलिक और ऐतिहासिक या राजनीतिक परिवेश का भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संबंध रहता है।

4.3 मूल पाठ

4.3.1 भाषा और साहित्य के साथ भौगोलिक स्थिति और जीवन का संबंध

प्रायः समझा जाता है किसी देश का, प्रदेश के भौगोलिक स्वरूप के साथ उसके भाषा साहित्यों का संबंध बाहरी और स्थूल होता है। लेकिन वास्तव में यह संबंध आन्तरिक और भाषा एवं साहित्य की प्रकृति को निर्धारित करने वाला है। उदाहरण के लिए वैदिक संस्कृत साहित्य को ले सकते हैं। भारत प्रकृति सौन्दर्य के विलासित और भौतिक सुख सुविधाओं के लिए आवश्यक प्राकृतिक उपकरणों से पूर्ण देश है। इनका प्रभाव भारत की मानसिकता और उनके भाषा साहित्यों पर पर्याप्त मात्रा में पड़ा है। सौन्दर्य प्रियता, कल्पनाशीलता, अतिशयता, प्रकृति प्रेम, सांस्कृतिक, चेतनता का विकास, सूक्ष्म आध्यात्मिक चिंतन और आदर्शीकरण भारतीय साहित्य की ये विशेषताएँ जिनका मूल स्त्रोत भारत की भौगोलिक स्थिति में है। पाश्चात्य साहित्य से तुलना करने पर भारतीय साहित्य की ये विशेषताएँ और अधिक उजागर होती है। संस्कृत भाषा में इनकी अभिव्यक्ति ने उसे मधुर, सूक्ष्म, संस्कृत और गंभीर रूप प्रदान किया है। यह भी कहा जा सकता हैं कि वैदिक संस्कृत भाषा के विकास में भारत की भौगोलिक स्थिति का प्रत्यक्ष योग भी रहा है। यही बात हिन्दी भाषा और साहित्य पर भी लागू होती है। संस्कृत भाषा और साहित्य की सुदीर्घ परंपरा की विरासत उसे मिली है। साथ ही मध्यकाल और आधुनिक काल में हिन्दी प्रदेश की भौगोलिक स्थिति ने उसके भाषा और स्वरूप को निर्धारित किया है। उनकी संगीतात्मकता, चित्रात्मकता, आत्मकेंद्रिय, गीतात्मक प्रकृति, संघर्षशीलता, विकासशीलता आदि तत्व हिन्दी प्रदेश के जलवायु से संबंध रखते हैं। उसकी प्रकृति में संगीत का मधुर लय गूंजता रहता है। उसके प्राकृतिक दृश्य और जीवन की झांकियाँ रंगीन एवं चित्रात्मक है। ऐतिहासिक कारणों से हिन्दी प्रदेश के जीवन में प्राचीन काल से ही अनेक परिवर्तन होते आये हैं। मध्यकाल और आधुनिक काल में इन परिवर्तनों में अधिक गतिशीलता आई है। हिन्दी भाषा और साहित्य में उनका स्पष्ट प्रतिफलन हुआ है। उनमें संघर्षशीलता और विकासशीलता के जो तत्व है, प्रदेश के भौगोलिक जीवन से उनका सीधा संबंध जुट जाता है।

BRAOU

ऐतिहासिक और सांस्कृतिक कारणों से भौगोलिक जीवन का परिवर्तन हो जाता है। खान-पान से लेकर रीति रिवाजों तक प्रदेश के भौगोलिक जीवन में कुछ स्वाभाविक रूप में और कुछ बाहरी आक्रमणों से गतिविधि बदल जाती है। मध्य काल तक मध्यदेश या हिन्दी प्रदेश की जो प्राकृतिक, भौगोलिक स्थिति थी और बाद को जिस रूप में बदल गई। इसमें काफी अन्तर आ गया, जीवन बदल गया, भाषा बदल गई और साहित्य भी बदल गया। सब की प्रकृति में परिवर्तन आ गया। इसी प्राकृतिक परिवर्तन में हम हिन्दी भाषा और साहित्य की भौगोलिकता देखते हैं।

4.3.2 हिन्दी प्रदेश या मध्यदेश का भौगोलिक स्वरूप

हिन्दी प्रदेश का ऐतिहासिक नाम मध्यदेश है। उसके अन्तर्गत उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, दिल्ली, राजस्थान और हरियाणा छः वर्तमान प्रदेश या राज्य है। इन सब की सांस्कृतिक और साहित्यिक भाषा मध्यकाल से लेकर आज तक हिन्दी है। यह सही है कि विस्तृत प्रदेश में अनेक बोलियाँ और विभाषाएँ बोली जाती है। लेकिन मध्य काल में ब्रज और आधुनिक काल में खड़ी बोली इन सभी प्रदाशों की सामान्य व्यवहार की भाषा रही और है। प्रादेशिक बोलियाँ आज भी अपने-अपने क्षेत्र

में बोली जाती है। मध्यकाल में साहित्य कभी अपनी बोली में रचा जाता था और कभी ब्रज मिश्रित साहित्यिक सामान्य भाषा में। आजकल इन बोलियों में जो रचना होती है उस पर खडी बोली का न्यूनाधिक प्रभाव परिलक्षित होता है। इस विस्तृत मध्य देश का भौगोलिक स्वरूप और जीवन एक ही तरह का नहींहै। उसमें प्रादेशिक विभिन्नताएँ दिखाई देती हैं। लेकिन उनमें सासंकृतिक एकता का सुदृढ़ सूत्र भी वर्तमान है। भौगोलिक भिन्नता के आधार पर इन प्रदेशों के भाषा-साहित्यों का अनुशीलन विशेषज्ञता का विषय है। उनका अनुसंधान अलग-अलग बोलियों के संदर्भ में और तुलनात्मक रूप में भी रोचक होगा।

हिन्दी क्षेत्र को भौगोलिक दृष्टि से निम्नलिखित प्राकृतिक भागों में विभाजित किया जा सकता है। 1) हिमाचल का पार्वत्य प्रदेशः इसके रमणीय और शान्त प्राकृतिक परिवेश ने प्राचीन काल से आधुनिक काल तक सौन्दर्य-दृष्टि, कल्पना और सूक्ष्म आध्यात्मिक दार्शनिक चिंतन को प्रभावित करता आया है। प्राचीन और आधुनिक कालों में इसकी प्रेरणा और प्रभाव अधिक उल्लेखनीय है। यहाँ ऋतु परिवर्तन की स्पष्ट और सुन्दर झलक मिलती है। हिन्दी में पहले संस्कृत की तरह षट ऋतु वर्णन होता था। क्रमशः बारहमासा की परम्परा आरंभ हुई। आधुनिक काल में भी हिमालयों की उदात्तता और उसके सौन्दर्य ने छायावादी कवियों को और राष्ट्रीय धारा के कवियों को भी प्रेरणा दी। भारत की सभी बड़ी नदियाँ हिमालयों से निकलकर अरब सागर, या बंगाल की खाड़ी में गिरती हैं। गंगा, यमुना आदि इन नदियों को भारतीय पवित्र मानते ही हैं इनके द्वारा हिन्दी क्षेत्र हरा-भरा रहता है। प्राचीन काल से ही हिमालय भारतीय धर्मसाधना, दार्शनिक चिंतन और सांस्कृतिक चेतना के विकास का केन्द्र रहा। आज भी वह भारतियों का तीर्थ स्थान है। ऐतिहासिक दृष्टि से हिमालय ने भारत पर आक्रमण करनेवाले विदेशीयों को रोका। इस कारण भारतीय जीवन में उथल-पुथल और परिवर्तन कम हुए या धीरे धीरे हुए। जीवन में एक प्रकार की स्थिरता आई जो काल-क्रम में अगतिशील और रुढ़ भी हो गाया। भारतीय शान्तिमय जीवन बिताने लगे। हिमालय को सौन्दर्य और आद्यात्मिकता का ही नहीं राष्ट्रीयता का भी प्रतीक कह सकते है। आधुनिक काल में यातायात के साधनों के विकास के कारण आज हिमालय सुरक्षा का प्रकृतिक साधन नहीं रह गया।

उत्तर भारत का मैदान

हिन्दी क्षेत्र में सिंधु घाटी का पूर्वी भाग और गंगा एवं उसकी सहायक नदियों का प्रदेश सम्मिलित है। यह मैदान हरियाणा, उत्तर प्रदेश और बिहार बँटा है। हिमालय की नदियों से निर्मित यह मैदान उर्वक और शस्यश्यामला है। इस मैदान में जीवन सुख-समृध्दिमय है, भौतिक आवश्यकताओं की सहज पूर्ति हो जाने के कारण, भारतीय जीवन भौतिक विकास से आध्यात्मिक और सासंकृतिक विकास की ओर अग्रसर हुआ। यहाँ बड़े बड़े नगरों और नागरिक जीवन का विकास हुआ। अपनी भौतिक आवश्यकताओं की सहज पूर्ती कर अपने पर्याप्त अवकाश में यहाँ के लोग विद्या, कला, साहित्य, धर्म, दर्शन, शास्त्र, विज्ञान आदि की सृष्टि करते रहे। प्राकृतिक बाधा के अभाव और यातायात सरल होने के कारण एक बडे भूभाग मे लोगों का संपर्क और परस्पर संबंध होता रहा। इसका परिणाम यह हुआ कि एक बडे पैमाने पर यहाँ भाषाओं का विकास हुआ। जो अन्य प्रदेशों में प्राकृतिक विभाजन के कारण संभव नहीं था। विस्तृत भाषा के विकास के कारण चिंतन और समवेदनाएँ भी संतुलित और व्यापक हुई, भारतवर्ष की कल्पना का उदय, संपूर्ण देश की एकता और समष्टि की भावना यहीं विकसित हुई। भारतीयता और राष्ट्रीयता का केन्द्र यहीं था और विदेशी आक्रमण और प्रभाव के प्रति प्रतिक्रिया का भी।

राजस्थान का मरु प्रदेश

यहाँ पहले सरस्वती नदी प्रवाहित होती थी, लेकिन काल क्रम में यह प्रदेश मरु भूमि बन गया। इस मरु प्रदेश ने भाषा, साहित्य और इतिहास को अनेक रूपों में प्रभावित किया। मरुभूमि होने के कारण जीवन में अधिक परिश्रम करना पड़ता था। सहज ही लोगों में साहस और शौर्य का विकास हुआ जो साहित्य और इतिहास के पृष्ठों पर सोने के अक्षरों से अंकित है। उत्तर भारत पर आक्रमण करने वालों के लिए यह प्रदेश एक मार्ग था। दिल्ली और भारत के मैदान से पश्चिम की ओर चलने के लिए भी वही रास्ता था। राजस्थान के राजवंशी और आदिवासियों ने विदेशियों का डट कर सामना किया। हिन्दी साहित्य के आदिकाल में इनके शौर्य और अत्मबलिदान की कहानी है।

BRAOU

यह प्रदेश सिंध, पंजाब, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश को स्पर्श करता है। राजस्थानी भाषा पूरब की ब्रज भाषा और पश्चिम की गुजराती दोनों से प्रभावित है।

मालव प्रदेश

राजस्थान का दक्षिण पूर्व भाग मालव कहलाता है। इसमें जंगल, पहाड़ और उपजाऊ जमीन सभी मिल जाते हैं। अरावली मुख्यपर्वत और क्षिप्रामुख्य नदी है। भारत के सासंकृतिक इतिहास में इस भूभाग का महत्वपूर्ण स्थान है। पश्चिम, दक्षिण और पूर्व का यह संधीस्थल है। मालवी भाषा में गुजराती, राजस्थानी और ब्रज तीनों का पुट मिलजाता है, यह उत्तर के मैदान की तरह संपन्न है और राजस्थानी शौर्य से भरा हुआ है।

विन्ध्य मेखलाः यह उत्तर और दक्षिण को अलग करनेवाली पर्वतमाला है। यह प्रदेश जंगलों और दुर्गम पर्वतों से भरा है। यहाँ के आदिवासियों के जीवन के अनेक सांस्कृतिक तत्व भारतीय संस्कृति में घुल मिल गाये हैं। विन्ध पर्वत माला से निकलने वाली नदियों में नर्मदा और तपती पश्चिम की ओर और महानदी पूरब की ओर बहकर मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और गुजरात के तथा उड़ीसा के मैदानी प्रदेशों को उर्वर और शस्यश्यामल बनाती है। भारत के सांस्कृतिक इतिहास में अगस्त्य का विन्ध्य को पार करके दक्षिम में आना एक महत्वपूर्ण घटना है। इसके बाद उत्तर और दक्षिण में आदान-प्रदान की लंबी परम्परा बन गई। संस्कृत, पालि, प्राकृत और हिन्दी भाषा साहित्यों का दक्षिण मे प्रसार होने लगा। उनका प्रभाव दक्षिण के भाषा साहित्यों पर पडा और-दूसरी ओर दक्षिण के साहित्यिक सांस्कृतिक प्रभाव उत्तर में पहुँचते रहे।

4.3.3 हिन्दी क्षेत्र के भौगोलिक स्वरूप का हिन्दी भाषा-साहित्य के साथ संबंध

किसी प्रदेश के भाषा-साहित्यों के साथ उसके भौगोलिक स्वरूप का घनिष्ठ संबंध होता है। भाषा की मूल संपदा वहाँ के पहाडों, नदियों, पेड़ पौधों, जीव-जन्तुओं, पारिवारिक-सामाजिक संबंधों को व्यक्त करने वाले होती है। साहित्य के परिवेश में भौगोलिक जीवन, रहन-सहन, रीति-रिवाज, सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना आदि के प्रति निश्चित होते है। किसी भाषा और साहित्य के अनुशीलन में इन प्राकृतिक विशेषताओं पर ध्यान देना आवश्यक है।

BRAOU

सामाजिक जीवन और संबंध, क्षेत्र की भौगोलिक परिधि के अनुरुपबनते हैं। क्षेत्र के विस्तार से संपर्कों में कठिनाई होती है। रहन-सहन, रस्म-रिवाज तथा सामाजिक मान्यताओं में अन्तर हो जाता है। भाषा, साहित्य, लोक साहित्य और संस्कृति में सामुदायिक सांस्कृतिक एकता है साथ प्रादेशिक भिन्नताओं का भी प्रतिफलन होता है। हरियाणा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार आदि की भाषा, संस्कृति साहित्यिक चेतना या सौन्दर्य बोध में साम्य और वैषम्य दोनों मिल जाते हैं। भारत जैसे विशाल देश में सांस्कृतिक एकता और अनेकता का ताना-बाना, बुना हुआ है। क्षेत्र विस्तार में प्रादेशिक प्रभावों के कारण प्रान्तीय बोलियों का विकास स्वाभाविक है। अन्य प्रादेशिक भाषाओं की तुलना में हिन्दी क्षेत्र की अनेक बोलियाँ है। इन बोलियों के साथ लोक जीवन और संस्कृति का भी घनिष्ट संबंध है। ऐतिहासिक दृष्टि से मध्य देश की भाषा संस्कृति, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश की स्थितियों में से गुजरती हुई अनेक बोलियों में विशिष्ट हुई। आज मानक हिन्दी के द्वारा भाषा संश्लेषण हो रहा है।

मध्यदेश की भौगोलिक प्रकृति ने हिन्दी भाषा और साहित्य को एक नैसर्गिक सौंदर्य चेतना, स्फूर्ति और शक्ति प्रदान की। जीवन की संघर्षमय-स्थितियों और ऐतिहासिक परिवर्तनों ने उनको ओज पूर्ण गतिशील और विकासशील बनाया। भौगोलिक-सांस्कृतिक परिवेश ने हिन्दी भाषा और सहित्य को संवेगात्मक और अन्मुक्त रुप में डाला। दक्षिण के भाषा-साहित्यों की तुलना में हिन्दी की प्रकृति और प्रवृति अधिक गीतात्मक और स्वच्छंद है।

4.3.4 हिन्दी प्रदेश-ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

जब हिन्दी भाषा और साहित्य का आरंभ हुआ मध्य देश मुसलमानों के आक्रमणों का सामना कर रहा था। उत्तर भारत पर कान्यकुब्ज वंश का शासन समाप्त हो गया। उत्तर भारत छोटे छोटे राज्यों में विभक्त था। कान्यकुब्ज में गुर्जर प्रतिहार वंश का शासन था। वाराणसी में गहड़वाल वंश की स्थापना हुई। परमार वंश उज्जयिनी में राज्य कर रहे थे। जबलपुर के पास की पुरी में कल पुरी वंश का शासन था। चौहान वंश का दिल्ली पर अधिकार था। बुंदेलखंड भंदेला वंश के अधीन था। राजस्थान में अनेक छोटे-मोटे राज थे। इन वंशों के राजाओं में साहस, पराक्रम, शौर्य और आत्मसम्मान की कमी नही थी। युध्दों में भी अपनी वैयक्तिक वीरता, प्रदर्शित करके वे संतुष्ट थें। भाट और चारण उनकी उस वीरता और आत्म सम्मान की प्रशंसा करते थें। लेकिन उनमें राष्ट्रीय द्रष्टि बिलकुल नहीं थीं। राजवंशों में एक दूसरे के साथ स्पर्धा के कारण वैमनस्य था। इसीलिए मुसलमान एक-एक करके इन सब को जीतकर उत्तर भारत पर अपना अधिकार जमा सकें।

हिन्दी भाषा और साहित्य के प्रसार काल में मध्यदेश पर अरब, पठान, तुर्क और मुगल राजवंशों का आधिपत्य हो गया। इनमें दास, खिलजी, तुगलक लोधी और मुगल राजवंशों ने मध्यदेश की सभ्यता, संस्कृति, साहित्य और भाषा को इतना प्रभावित किया कि उनमें हिन्दू और इस्लाम तत्वों को अलग-अलग करना कठिन है। मध्यदेश इस्लाम धर्म और संस्कृति के साथ संघर्ष करता रहा। राजसत्ता इस्लाम के हाथों में थी और जनसत्ता हिन्दू धर्म में केन्द्रीत थी। पराजित और निराश जनसत्ता में नवीन सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना भरने के प्रयत्न होने लगे। राजनीतिक धरातल पर भी हिन्दू जाति को संगठित करने के प्रयास हुए। इसमें राजपुतों, मराठों और सिक्खों का योगदान उल्लेखनीय है। हिन्दी क्षेत्र में राजपूतों और बुन्देलों ने स्वतंत्र राज्यों की स्थापना करते हुए अत्यंत शक्तिशाली मुगल वंश से भी लोहा लेते रहे।

किसी देश या प्रदेश के राजनीतिक इतिहास से भाषा और साहित्य का उतना संबंध नहीं होता जितना सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधि से। राजनीति, शासन और अर्थव्यवस्था सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश को निर्धारित करते हुए अप्रत्यक्ष रूप से साहित्य को प्रभावित करते हैं। मध्यकालीन भाषा-साहित्यों की पृष्ठभूमी के रूप में मध्यदेश की सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों का विश्लेषण करते हैं तो तीन प्रवृत्तियाँ प्रधान रूप से उभरती हैं (1) वर्णाश्रय धर्मों की रूढ़, कठोर व्यवस्था में बंधा हुआ सामाजिक जीवन, नारी के प्रति भोगवादी दृष्टि और मुसलमानी शासन में वैभव विलास पूर्ण नागरिक जीवन। (2) भक्ति आन्दोलन के रूप में धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक नवजागरण का विकास और (3) राजनीतिक संघर्षों के परिणाम स्वरूप राष्ट्रीय चेतना का आरंभिक स्फुरण। मध्यकालीन हिन्दी भाषा और साहित्य में इन तीनों प्रवृत्तियों की झलक मिल जाती है।

कालक्रम में मुगलों का साम्राज्य खण्डित हो गया। छोटे-मोटे हिन्दू-मुस्लीम राजाओं का शासन चलने लगा। मध्य काल के आरंभ में विभक्त हिन्दू राजाओं के शासन से तुर्क, पठान, और मुगलों ने लाभ उठाया तो आधुनिक काल में कुछ उसी तरह की परिस्थिति से भारत पर अंग्रेजों का शासन हो गया। इस काल खण्ड में भी तीन प्रवृत्तियाँ ध्यान देने योग्य है। (1) अंग्रेजों के द्वारा अपने राज्य को कायम रखने के लिए भारतियों के मन में हीनता की भावना भरने का प्रयत्न और मानसिक दासता। (2) युरोपीय विचारों के संपर्क में नवजागरण का आरंभ और (3) स्वतंत्रता के लिए संग्राम और राष्ट्रीय भावना का विकास। हिन्दी भाषा और साहित्य के नए उत्थान में ये तीनोंप्रवृत्तियाँ सक्रिय हैं। भारत के अन्य प्रदेशों की तरह हिन्दी क्षेत्र की सामाजिक सांस्कृतिक जीवन में क्रमशः आधुनिक भाव विचारो की ओर अन्मुख होता गया। लेकिन हिन्दी क्षेत्र में मध्यकाल से ही लोक चेतना और जनवादी तत्व प्रबल रहें। आधुनिक काल में आकर हिन्दी भाषा और साहित्य का जो अपूर्व विकास हुआ और हो रहा है उसके मूल में लेकचेतना की प्रबलता स्पष्ट परिलक्षित होती है।

4.3.5 हिन्दी भाषा और साहित्य पर इस्लामी धर्म और संस्कृति का प्रभाव

हिन्दी भाषा और साहित्य पर मुसलमानी शासन का प्रभाव इतना गहरा और व्यापक है कि उसकी मात्रा का अनुमान प्रायः नहीं किया जाता। मध्ययुग में हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास के समय भारतीय जीवन पर इस्लामी संस्कृति के प्रभाव के माध्यम से यह प्रभाव पड़ा। अरब, तुर्क, पठान और मुगल जातियों ने अपने शासन काल में इस्लाम का प्रचार करते हुए कभी क्रूरता और बलात्कार के साथ और कभी प्रेम और स्नेह के साथ भारतीय जीवन को नया मोड़ दिया है। शासकों, और शासन की भाषा और संस्कृति का जन भाषा, साहित्य और संस्कृति पर प्रभाव स्वाभाविक है। वैसे इस्लाम धर्म और सूफी-साधना का भारत में प्रवेश मुस्लिम शासन काल के पहले ही हो चुका था दसवीं शताब्दी के बहुत पहले ही अरबों और इस्लाम ने दक्षिण के मलबार में पैर रखा। बाद को इस्लामी क्रूर धर्म परिवर्तन का विरोध करते हुए सूफी संतों ने भारत में आकर अपने धर्म का प्रचार आरंभ किया। यह एतिहासिक सत्य है कि मुस्लिम सासन काल में हिन्दुओं पर अत्याचार होते रहे। पूरा मध्य काल धार्मिक संघर्ष और प्रतिक्रियाओं का युग था। राजपूतों मराठों और सिक्खों ने ही नहीं, दक्षिण के हिन्दू राजाओं ने भी इस्लाम का विरोध करते हुए हिन्दू धर्म की रक्षा का प्रयत्न किया। लेकिन इन संघर्षों के बीच आदान-प्रदान भी होता रहा। एक मानवीय दृष्टि का विकास हुआ। हिन्दु रहन-सहन, रस्म-रिवाज विश्वास, पति-पत्नी और अन्य परिवारिक संबंध, वेदान्त आदि ने मुस्लीम जीवन को प्रभावित किया। फारस और अरब से आकर भारत में बसे हुए लोगों का धर्म तो इस्लाम रहा पर सांस्कृतिक जीवन, फारस-अरब जीवन पर मुस्लिम शासकों का प्रभाव कम नहीं था। "वस्तुतः भारतीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर जो प्रभाव पड़ा वह गहराई और प्रसार में असाधारण था। राज-रीति, उत्सव-मेले, आचार-विचार, परिधान, आहार, विवाह, भाषा साहित्य, संगीत-शिल्प आदि सभी में यह प्रभाव लक्षित हुआ।" (हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास-खण्ड-2).

हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास मध्य काल में मुस्लिम शासन के साथ आरंभ होता है। जहाँ दरबारों में अरबी-फारसी का प्रचलन था, व्यवहार में जन संपर्क के लिए हिन्दी अपनाई गई। खड़ी बोली ने अरबी-फारसी शब्दों और मुस्लिम सांस्कृतिक परिवेश के साथ उर्दू का रुप धारण किया। लेकिन उसका भाषिक ढाँचा भारतीय था और प्राण तत्व भारतीय जीवन से प्राप्त हुआ। जब सुदूर दक्षिण तक मुस्लिम शासन का प्रसार हो गया, हिन्दी का दक्खिनी में रुपांतरण हुआ। इस भाषा पर दक्षिण की प्रादेशिक भाषाओं के प्रभाव के अतिरिक्त भारतीय तथा स्थानीय सांस्कृतिक तत्वों का भी उसमें प्रवेश हो गया। मध्ययुग में साहित्य की तीन बोलियाँ ब्रज, अवधी और हिन्दी की बोलियों और विभाषाओं का मिश्रित रूप जिसमें ब्रज और अवधी के अतिरिक्त खड़ी बोली का भी योग था। संतों की यही मिश्रित भाषा थी। इस मिश्रित भाषा में ही नहीं ब्रज और अवधी में भी मुस्लिम शासन और इस्लमी धर्म से संबंधित अरबी फारसी शब्दों का प्रयोग होने लगा जैसे बन्दा, गरीब, नेवाज़ रहम आदि। मुस्लिम शासन ने अपने दरबारों में ब्रज को स्थान दिया। खड़ी बोली के अखिल भारतीय प्रचार प्रसार में मुस्लिम शासन की महत्वपूर्ण भूमिका रही।

भाषा से भी अधिक हिन्दी साहित्य पर इस्लाम का व्यापक प्रभाव दिखलाई पड़ता है। हिन्दी मुस्लिम संघर्षों में वीर काव्य का जन्म हुआ। इस्लाम धर्म ने अपने अत्याचारों की प्रतिक्रिया में ही सही, हिन्दू सामाजिक जीवन को पुनर्गठित होने की आवश्यकता को स्पष्ट किया। भक्ति आन्दोलन के द्वारा जो नवीन सामाजिक सांस्कृतिक जागरण का विकास हो रहा था उसे धार्मक संघर्षों और उनकी प्रतिक्रियाओं ने बल दिया। इन सबकी प्रेरणा और प्रभाव की झलक हिन्दी काव्य में परिलक्षित होती है। दक्षिण के भक्ति काव्य और हिन्दी भक्ति काव्य की तुलना करने पर परिस्थितियों की भिन्नता के कारण साहित्यिक चेतना और प्रवृत्तियों में अंतर दिखलाई देता है। धार्मिक संघर्ष ने विरोध के अतिरिक्त समन्वय मानवीय दृष्टि और प्रेम भावना के विकास के अवसरों को भी प्रदान किया। संत साहित्य और सूफी काव्य इसके उदाहरण है। सूफीयों ने भारतीय कहानियों के माध्यम से भारतीय संस्कृति, मान्यताओं और आदर्शों को ग्रहण किया। दूसरी ओर कृष्ण काव्य में सूफी प्रेम माधुर्य और रहस्य भावना को स्थान मिला रसखान आदि मुसलमान कवि कृष्ण भक्त हुए। केवल राम काव्य भारतीय परंपराओं को अक्षुण्ण रखने के प्रयत्न में लगा था। लेकिन लोकनायक तुलसी के द्वारा भारतीय

BRAOU

सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन को नए रूप में ढालने का जो प्रयत्न हुआ, उसके मूल में इस्लाम की प्रतिक्रिया और प्रभाव दोनो क्रिया शील है। दरबारी परिवेश में जो हिन्दी काव्य-रचना हुई है, इसमें जो भावों की सुकुमारता है, अभिजात सौन्दर्य की जो झलक मिलती है, शक्तिसंगठन और अभिव्यंजना की जो बारीकियाँ है वे दरबारों में फारसी कविता की होड़ में उनकी प्रेरणा में विकसित हुई। मुस्लिम दरबारी परिवेश में हिन्दी दरबारी काव्य की ऐहिक भोगवादी दृष्टि और सौन्दर्य चेतना का विकास हुआ। समस्त भारत पर मुस्लिम शासन व्यवस्था स्थापित हो जाने के बाद राजकीय जीवन में संघर्ष के स्थान पर वैभव-विलास को प्रश्रय मिला, दरबारी काव्य में वही वैभव, ऐश्वर्य, अतिशयता, अतिरंजना, कल्पना शीलता और मनोविनोद की प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। संक्षेप में हम कह सकते है कि प्राचीन एवं मध्य कालीन हिन्दी काव्य अपने सहज विकास की यात्रा में इस्लाम की प्रतिक्रिया, प्रेरणा और प्रभाव को साथ लेकर अग्रसर हुई।

4.3.6 हिन्दी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी शासन, यूरोपीय चिंतन और संस्कृति का प्रभाव

आधुनिक काल में हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास और प्रसार में अंग्रेजी शासन, साहित्य और यूरोपीय चिंतन का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है। मध्यकाल में भारतीय संस्कृति, साहित्य और भाषा पर मुस्लिम प्रभाव से यह अत्यंत महत्वपूर्ण है। मध्यकाल में भारतीय संस्कृति, साहित्य और भाषा पर मुस्लिम प्रभाव से यह अत्यंत गहरा और व्यापक है। इस प्रभाव में भारतीय जीवन और हिन्दी भाषा साहित्य आधुनिकता की ओर द्रुतगति से बढ़े। जब भारतीय जीवन मध्यकाल में रुढ और ह्रासोन्मुख या यूरोपीय जीवन वैज्ञानिक उन्नति और नवीन चिंतन के साथ प्रगतिशील होता गया। अंग्रेजी शासन काल में हिन्दी भाषा और साहित्य के लिए पाश्चात्य चिंतन के द्वार खुल गए। अंग्रेजी भाषा के माध्यम से भारतीय भाषाओं को- हिन्दी को विकसित यूरोपीय चेतना की विरासत मिली। मध्यकाल में इस्लामी संस्कृति के प्रभाव और भक्ति आंदोलन ने जिस नवजागरण का विकास किया वह धार्मिक परिधि से संकुचित था। आधुनिक काल में पाश्चात्य चिंतन की प्रेरणा से सच्चे अर्थ में राष्ट्रीय सामाजिक और सांस्कृतिक नवजागरण आरंभ हुआ। हिन्दी भाषा और साहित्य में उस नवजागरण की सजीव अभिव्यक्ति हुई।

आधुनिक काल में आकर ब्रज के स्थान पर खड़ी बोली साहित्यिक अभिव्यक्ति का माध्यम बनी। नवीन चेतना की अभिव्यंजना के लिए काव्य भाषा ब्रज को छोडकर व्यापक जनभाषा खडी बोली अपनाई गई। पहले खडी बोली संतवाणी, उर्दूशायरी और दक्खिनी साहित्य में केवल सीमित रूप में प्रयुक्त थी। लेकिन जनभाषा के रूप में उसका व्यपक प्रचार था। अंग्रेजों ने आम जनता से संबंध स्थापित करने के लिए अखिल भारतीय भाषा के रूप में खडी बोली को अपनाया। पहले उर्दू या अरबी फारसी मिश्रित हिन्दुस्तानी को ही भारत की आम भाषा मानकर चले। पर शीघ्र ही उन्होने अपनी भूल को समझा। कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना के साथ खडी बोली हिन्दी का प्रचार आरंभ हो गया। ईसाई धर्म प्रचारकों ने भी उसी भाषा-रूप को अपनाकर हिन्दी के विकास-प्रसार में योगदान दिया। नवजागरण ने निजभाषा उन्नति का मार्ग प्रशस्त किया। राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम में महात्मा गांधी के नेतृत्व में हिन्दी को राष्ट्रभाषा का गौरव प्राप्त हुआ और वह अखिल भारतीय संपर्क भाषा बनी। स्वतंत्रता के बाद हिन्दी भाषा का अभूतपूर्व विकास होने लगा। वह आज भारतीय जीवन के सभी क्षेत्रों में अपनी महतीभूमिका निभाने का प्रयत्न कर रही है। प्रशासन, विज्ञान और वाणिज्य-व्यापार के क्षेत्रों में उसका प्रयोग हो रहा है। राष्ट्रभाषा, राजभाषा और संपर्क भाषा के रूप में उसका विकास और प्रसार हो रहा है।

भाषा से कहीं अधिक साहित्य के क्षेत्र में पाश्चात्य प्रेरणा और प्रभाव दिखाई देते हैं। काव्य-नाटक के अतिरिक्त उपन्यास, कहानी, निबंध, आलोचना आदि नई विधाओं का विकास हुआ। प्रत्येक विधा के अंतर्गत पाश्चात्य प्रभाव से नए नए रुपात्मक प्रयोग मिलते हैं। प्राचीन और समृध्द परम्परा के बावजूद आज काव्य और नाटक का रूप इतना बदल गया है कि उनको भारतीय परंपरा से जोड़ना कठिन है। यूरोपीय चिंतन ने साहित्य के कथ्य को भी आमूल परिवर्तित कर दिया है।

BRAOU

भगवतशरण उपाध्याय के शब्दों में आज इस देश की राजनीति में, साहित्य और भाषा में दर्शन और विचारों में, कला और जीवन में सर्वत्र यूरोपीय संस्कृति का प्रभाव है। हमारी भाषा को उस दिशा से एक नई समृध्दि मिली, हमारे साहित्य के काव्य नाटक, निबंध, उपन्यास, विचार सभी उसके साहित्य के प्रभाव से नए सिरे से विकसित हुए। (हि.सा.बृहत इतिहास)

4.4 पाठ का सारांश

इस पाठ के अन्तर्गत हिन्दी क्षेत्र-भौगोलिक और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य का विश्लेषण किया गया है। भारत के भौगोलिक स्वरूप के आधार पर, हिन्दी प्रदेश के भौगोलिक स्वरूप का परिचय दिया है। हिन्दी प्रदेश अर्थात मध्य देश का स्वरूप, हिन्दी भाषा और साहित्य के साथ संबंध का विवेचन किया गया है। उत्तर भारत, राजस्थान, मालवा और विन्ध्य पर्वत में विभिन्न भाषाएँ, इनका प्रचार और प्रसार, साथ ही, विद्या, कला साहित्य, धर्म, दर्शन, शास्त्र, विज्ञान आदि की सृष्टि कैसे होती रही इसका विवरण दिया गया है। भौगोलिक परिधि के अनुसार, सामाजिक जीवन, रहन-सहन, रस्म-रिवाज तथा सामाजिक मान्यताओं में कैसे अन्तर आता है, इस सम्बन्ध में जानकारी दी गई है। भारत जैसे विशाल देश में सांस्कृतिक एकता और अनेकता का ताना बाना बुना हुआ है। अन्य प्रादेशिक भाषाओं की तुलना में हिन्दी क्षेत्र की अनेकबोलियाँ है।

हिन्दी भाषा और साहित्य के प्रारंभ के समय भारत की ऐतिहासिक परिस्थिति किस प्रकारकी थी इसका विस्तार से वर्णन किया गया है। अनेक शासनकर्ताओं के काल में हिन्दी भाषा और साहित्य की स्थिति तथा मुगल तथा इस्लामी धर्म और संस्कृति का प्रभाव उस पर ऐसे पड़ा, अंग्रेजी शासन व्यवस्था में, हिन्दी पर ऐसे प्रभाव पड़ा इसका वर्णन किया गया है। हिन्दी भाषा की प्रारंभिक स्थिति से आधुनिक काल की स्थिति तक विस्तृत विवरण इस पाठ में दिया गया है।

4.5 पारिभाषिक शब्द-अर्थ

सांस्कृतिक = संस्कृति से संबंधित
प्राकृतिक = प्रकृति से संबंधित
आध्यात्मिक = आत्मा-परमात्मा से संबंधित ज्ञान।

BRAOU

4.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.6.1 (अ) श्रेणी के प्रश्नोत्तर (250 शब्दों में उत्तर)

1) हिन्दी क्षेत्र का भौगोलिक परिचय दीजिए।
2) हिन्दी क्षेत्र का भौगोलिक स्वरूप के साथ उसके भाषा-सहित्यों का संबंध स्थापित कीजिए।
3) हिन्दी प्रदेश के जीवन में ऐतिहासिक परिवर्तनों को स्पष्ट कीजिए।
4) हिन्दी भाषा और साहित्य पर मुस्लिम प्रभाव का विश्लेषण कीजिए।
5) हिन्दी भाषा और साहित्य पर यूरोपीय प्रभाव पर विचार कीजिए।

4.6.2 (ख) श्रेणी के प्रश्नोत्तर (125 शब्दों में उत्तर)

1) भाषा और साहित्य के साथ प्रदेश की भौगोलिक स्थिति का क्या संबंध होता है?
2) हिमालय के पार्वत्य प्रदेश के भौगोलिक स्वरूप और सांस्कृतिक स्वरूप और सांस्कृतिक महत्व का परिचय दीजिए।
3) मध्यकालीन हिन्दी साहित्य को इस्लाम ने किस रूप में प्रभावित किया?

4) मध्यकाल में भारतीय जीवन की गतिविधि का विश्लेषण कीजिए?
5) हिन्दी भाषा के विकास और प्रचार में अंग्रेजो का क्या योगदान रहा?

4.7 नमूना-उत्तर (अ) श्रेणी

4.7.1 (अ) श्रेणी के प्रश्नोत्तर-उत्तर (250 शब्दों में)

प्रश्नः- मध्यकालीन हिन्दी साहित्य को इस्लाम ने किस रूप में प्रभावित किया।
उत्तरः- हिन्दी भाषा और साहित्य पर मुसलमानी शासन का प्रभाव इतना गहरा और व्यापक है कि उस की मात्रा का अनुमान प्रायः नहीं किया जाता। मध्ययुग में हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास के समय भारतीय जीवन पर इस्लामी संस्कृति के प्रभाव के माध्यम से यह प्रभाव पड़ा है। अरब, तुर्क, पठानऔर मुगल जातियों ने अपने शासन काल में इस्लाम का प्रचार करते हुए कभी क्रूरता और बलात्कार के साथ और कभी प्रेम और स्नेह के साथ भरतीय जीवन को नया मोड दिया है।

हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास मध्यकाल में मुस्लीम शासन के साथ आरंभ होता है। जहाँ दरबारों में अरबी-फारसी का प्रचलन था, व्यवहार में जन संपर्क के लिए हिन्दी अपनाई गई। खड़ी बोली ने अरबी-फारसी शब्दों और मुस्लीम सांस्कृतिक परिवेश के साथ उर्दऊ का रूप धारण किया। दक्षिण में मुसलमान शासन के कारण हिन्दी का दाक्षिणी में रुपांतरण हुआ। ब्रज अवधी और हिन्दी का मिश्रित रूप बन गया। अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग होने लगा।

भाषा से भी अधिक हिन्दी साहित्य पर इस्लाम का व्यापक प्रभाव दिखलाई पड़ता है। हिन्दी मुस्लीम संघर्षों में वीर काल का जन्म हुआ। धार्मिक संघर्ष ने विरोध के अतिरिक्त समन्वय, मानवीय दृष्टि, प्रेम भावना के विकास के अवसरों को भी प्रदान किया। संत साहित्य और सूफी काव्य इसके उदाहरण है। सूफियों ने भारतीय कहानियों के माध्यम से भारतीय संस्कृति, मान्यताओं और आदर्शों को ग्रहण किया। दूसरी ओर कृष्ण काव्य में सूफी प्रेम माधुर्य और रहस्य भावना को स्थान मिला। मुस्लीम दरबारी में हिन्दी दरबारी काव्य की ऐहिक भोगवादी दृष्टि और सौन्दर्य चेतना का विकास हुआ।

4.7 नमूना-प्रश्नोत्तर

4.7.1 (ब) श्रेणी का उत्तर (125 शब्दों में)

प्रश्नः- हिमालय के पार्वत्य प्रदेश के भौगोलिक स्वरूप और सांस्कृतिक महत्व का परिचय दीजिए।
उत्तरः- हिन्दी क्षेत्र को भौगोलिक दृष्टि से निम्न लिखित प्राकृतिक भागों में विभाजित किया जा सकता है। 1) हिमालय का पार्वत्य प्रदेशः इसके रमणीय और शान्त प्राकृतिक परिवेश ने प्राचीन काल से आधुनिक काल तक सौन्दर्य दृष्टि, कल्पना और सूक्ष्म आध्यात्यिक दार्शनिक चिंतन को प्रभावित करता आया है। प्राचीन और आधुनिक कालों में इसकी प्रेरणा और प्रभाव अधिक उल्लेखनीय है। यहाँ ऋतु परिवर्तन की स्पष्ट और सुन्दर झलक मिलती है। षट ऋतु वर्णन, बारह मासा की परंपरा आरंभ हुई। आधुनिक काल में ही नहीं, राष्ट्रीय धारा के कवियों को भी प्रेरणा दी। भारत की सभी बड़ी नदियाँ हिमालयों से निकलकर अरब सागर या बंगाल की खाड़ी में गिरती है। गंगा यमुना आदि इन नदियों को भारतीय पवित्र मानते ही है इनके द्वारा हिन्दी क्षेत्र हरा-भरा रहता है। प्राचीन काल से ही हिमालय भारतीय धर्मसाधना, दार्शनिक चिंतन और सांस्कृतिक चेतना के विकास का केन्द्र रहा। आज भी वह भारतीयों का तीर्थ स्थान है। हिमालय को सौन्दर्य और आध्यात्मिकता का ही नहीं, राष्ट्रीयता का भी प्रतीक कह सकते हैं।

BRAOU

4.8 पठनीय पुस्तकें

1) हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहासः प्रथम भाग हिन्दी साहित्य की पीठिका
= सं राजबली पांडेय

2) हिन्दी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचंद्र शुक्ल

3) भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण – भगवत शरण उपाध्याय

4) हिन्दू सभ्यता – राधाकुमुद मुखर्जी

BRAOU

इकाई-5: हिन्दी की बोलियाँ और विभाषाएँ

5.0 विषय प्रवेश
5.1 पाठ का उद्देश्य
5.2 पाठ-परिचय
5.3 मूल पाठ
 5.3.1 हिन्दी क्षेत्र
 5.3.2 हिन्दी की बोलियाँ
 5.3.3 हिन्दी बोलियों का वर्गीकरण
 5.3.4 पश्चिमी हिन्दी
 5.3.5 पूर्वी हिन्दी
 5.3.6 राजस्थानी वर्ग
 5.3.7 पहाड़ी वर्ग
 5.3.8 बिहारी वर्ग
5.4 पाठ का सारांश
5.5 पारिभाषिक शब्द-अर्थ
5.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
 5.6.1 (अ) श्रेणी के प्रश्न (250 शब्दों में.)
 5.6.2 (ब) श्रेणी के प्रश्न (125 शब्दों में)
5.7 नमूने के प्रश्नोत्तर
 5.7.1 (अ) श्रेणी के प्रश्नोत्तर (250 शब्दों में)
 5.7.2 (ब) श्रेणी के प्रश्नोत्तर (125 शब्दों में)
5.8 पठनीय पुस्तकें

BRAOU

5.1 उद्देश्य

भारत एक बहुभाषिक देश है। भारत में विभिन्न धर्म, जाति, प्रांत, भाषा, आचार-विचार, रीति-रिवाज और बोलियाँ है। अनेकता में एकता भारत की विशेषता है। इस पाठ के अंतर्गत हिन्दी की बोलियाँ और विभाषाएँ, कितनी है, कहाँ कहाँ बोली जाती हैं इस सम्बन्ध में विस्तार से चर्चा की गई है। हिन्दी क्षेत्र, हिन्दी की बोलियाँ, हिन्दी बोलियों का वर्गीकरण पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, राजस्थानी वर्ग, पहाडी वर्ग, बिहारी वर्ग आदि की जानकारी दी गई है। छात्र-छात्राओं की सुविधा के लिए तालिका पुस्तक की गई है। तालिका के माध्यम से विभिन्न बोलियों के स्वरूप को जानने में सुविधा होगी।

5.2 पाठ परिचय

संसार की सभी भाषाओं के साथ संबंध बोलियों की चर्चा की जाती है। भाषा और बोलियों के संबंध में विचार करते हुए यह कहा जाता है कि एक भाषा की बोलियों में परस्पर बोधगम्यता होती है। सभी की व्याकरणिक संरचना में एक मूलभूत समानता होती है। शब्दावली भी बहुधा समान होती है। ऐतिहासिक दृष्टि से ये एक समान स्त्रोत से विकसित होती है। यह आवश्यक नहीं है किसी भाषा और उसकी बोलियों को निर्धारित करने के लिए ये सभी आधार प्राप्त हो ही जाये। भाषा के केन्द्र से दूर स्थित बोलियों में बोधगम्यता कम होती जाती है। शब्दावली की समानता ऐतिहासिक संपर्क के फलस्वरूप हो सकती है। ऐतिहासिक स्त्रोत कुछ भिन्न होने पर भी कुछ बोलियाँ एक भाषा से संबंध हो सकती है। भाषा और बोली के बीच कोई संरचनात्मक या प्रकार्यात्मक अंतर नहीं होता।

एक परिनिष्ठित रूप धारण कर लेने से भाषा में परिवर्तन की गति बहुत मंद हो जाती है। बोली में परिवर्तन अधिक तेजी से होता है। भाषा का प्रयोग साहित्यिक, सांस्कृतिक, शीर्षक व्यवहार में अधिक होता है। बोलियाँ व्यवहार में चलती है। उदाहरण के लिए लगभग छः राज्यों में हिन्दी को राजभाषा के रूप में स्वीकार किया गया है। इन राज्यों में प्रचलित बोलियाँ है किन्तु यहाँ के साहित्यिक और शैक्षिक क्षेत्र में माध्यम के रूप में हिन्दी ही चलती है। सभी बोलियाँ और भाषाएं भावनात्मक और सांस्कृतिक दृष्टि से अपने को हिन्दी से संबंधित मानते हैं।

दूसरी बात यह है कि राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक कारणों से कोई बोली भाषा का रूप धारण कर सकती है। ब्रजभाषा, अवधी, मैथिली और राजस्थानी इसी क्रम से भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हुई। जब राजनीतिक कारणों से खड़ी बोली देश की संपर्क भाषा के रूप तक पहुँच गई तो उपर्युक्त बोलियाँ फिर भी बोलियाँ ही रह जाती है।

5.3 मूल पाठ

5.3.1 हिन्दी क्षेत्र

आज जिसे हिन्दी क्षेत्र कहा जाता है वह प्रायः प्राचीन का मध्यदेश ही है। मनुस्मृति में इस क्षेत्र का वर्णन दिया गया है। उत्तर में सिमला, उत्तर पश्चिमी में अंबाला, दक्षिण में रायपुर और खंडवा, पूर्व में भागलपुर और पश्चिम में जैसलमेर को स्पर्श करती हुई यदि एक रेखा खींच दी जाए तो उससे आवृत भूभाग मध्यदेश या हिन्दी प्रदेश कहलाएगा। इस क्षेत्र की सीमावर्तनी भाषा इस प्रकार है:- उत्तर में पूर्वी नेपाली भाषा, दक्षिण में मराठी और उड़िया भाषाएँ, पूर्व में उड़िया और बंगला तथा पश्चिम में गुजराती, सिंधी तथा पूर्वी पंजाबी भाषाएँ है। आज की प्रदेश व्यवस्था के अनुसार बिहार, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान, मध्यप्रदेश, हिमाचल प्रदेश और दिल्ली इस क्षेत्र में आते हैं। इनकी राजभाषा के रूप में हिन्दी स्वीकृत हुई है। मध्यप्रदेश की सांस्कृतिक परम्परा बहुत समृध्द रही। भारत के मध्य केन्द्र में होने के कारण इस प्रदेश की भाषा का महत्वपूर्ण स्थान रहा। वैदिक या छान्दस भाषा के बाद संस्कृत, पालि, शौरसेनी, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाएँ इसी भूभाग से विकसित हुई। ये सभी भाषाएँ समय में अपने क्षेत्र से बाहरएक व्यापक क्षेत्र में प्रचलित हुई।

BRAOU

5.3.2 हिन्दी की बोलियाँ

हिन्दी व्यापक क्षेत्र की भाषा है। केलाग और बीम्स हिन्दी के क्षेत्र का निर्धारण इस प्रकार करते हैं: हिन्दी का क्षेत्र उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में नर्मदा नदी और विंध्याचल तक, पश्चिम से पंजाब, सिंध और गुजरात से लेकर पूर्व और दक्षिण पूर्व तक बंगाल और छोटा नागपूर तक हिन्दी का क्षेत्र है। ग्रियर्सन राजस्थान, बिहारी और पहाडी वर्गों की बोलियों को अलग करके, मध्यप्रदेश के शेष भाग को हिन्दी का क्षेत्र मानते हैं और इसकी पश्चिमी और पूर्वी हिन्दी की बोलियों में विभक्त करते हैं। डा. धीरेन्द्र वर्मा केलांग के मत के समर्थक है। आज के अधिकांश विद्वान राजस्थानी, बिहारी और पहाड़ी वर्ग की बोलियों को हिन्दी की बोलियों के रूप में स्वीकृत करते हैं।

संविधान की दृष्टि से हिन्दी का मूल व्यवहार क्षेत्र राजस्थान, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार तथा दिल्ली राज्य है। इनकी भाषा हिन्दी ही मानी गई है। इस क्षेत्र की अपनी स्थानीय बोलियाँ भी है जिनका प्रयोग दैनिक व्यवहार में होता है। शिक्षा, पत्रकारिता, साहित्य, संस्कृति और राजनीति के क्षेत्रों में बोलियों का नहीं हिन्दी का ही प्रयोग किया जाता है।

इतने व्यापक क्षेत्र की भाषा में विभिन्न बोलियाँ अथवा मानक भाषा के क्षेत्रीय रूप मिलना स्वाभाविक है। क्षेत्र विस्तार के साथ क्षेत्रीय बोलियों की संस्था भी बढ़ती जाती है। हिन्दी की लगभग अठारह बोलियाँ मानी जाती है।

5.3.3 हिन्दी बोलियों का वर्गीकरण

हिन्दी की बोलियों का वर्गीकरण पहले ग्रियर्सन और केलांग ने किया। ग्रियर्सन का वर्गीकरण इस प्रकार है :-

1) राजस्थानी वर्ग	1. मारवाडी 2. जयपुरी 3. मेवाली 4. मालवी
2) बिहारी वर्ग	5. भोजपुरी 6. मैथिली 7. मगही
3) पहाडी वर्ग	8. गढ़वाली (पश्चिमी पहाडी) 9. कुमाउँनी (मध्य पहाडी) 10. नेपाली (पूर्व पहाडी)
4) पश्चिमी हिन्दी	11. खडी बोली 12. बाँगरू 13. ब्रजी 14. बुंदेली 15. कनौजी
5) पूर्वी हिन्दी	16. अवधी 17. बघेली 18. छत्तीस गढ़ी

ग्रियर्सन राजस्थानी, बिहारी और पहाडी बोलियों को हिन्दी की बोलियों के अंतर्गत सम्मिलित नहीं करते। अधिकांश विद्वान इनको भी हिन्दी की बोलियों के अंतर्गत रखने के पक्ष में है। केलाँग ने वर्गीकरण इस प्रकार किया है।:

राजस्थानी	हिमालयी	दोआन्	पूर्वी	पश्चिमी
1. मारवाडी	1. गढ़वाली	1. ब्रजी	1. अवधी	1. खड़ीबोली
2. मेवाड़ी	2. कुमाउँनी	2. कनौजी	2. रोवैंई	
3. मेरवाडी	3. नेपाली		3. भोजपुरी	
4. जयपुरी			4. मागधी	
5. हजैती			5. मैथिली	

इस सूची में बैसंवाडी को और सम्मानित किया गया है जो अवधी की उपदेश है। इस वर्गीकरण में भौगोलिक दृष्टि प्रमुख है। लेखक पश्चिम से पूर्व की ओर चला है। एतिहासिक दृष्टि से राजस्थानी और पश्चिमी हिन्दी का संबंध शौरसेनी अपभ्रंश से, पूर्वी हिन्दी और बिहारी बोलियों का संबंध अर्धमागधी से और पहाडी बोलियों का संबंध पहाडी या खस अपभ्रंश से माना जाता है।

BRAOU

5.3.4 पश्चिमी हिन्दी

जिसको हिन्दी का पश्चिमी हिन्दी का क्षेत्र कहा जाता है उसमें प्रमुखरूप से पाँच बोलियाँ बोली जाती है। बाँगरु, खडीबोली, कन्नौजी, ब्रजभाषा और बुंदेली। पश्चिमी हिन्दी की खडी और बाँगरु की पंजाबी के साथ कुछ समानता है। ब्रजभाषा का साम्य खडी बोली के साथ अधिक नहीं है। ब्रजभाषा बुंदेली से मिलती है। ब्रज और कन्नौजी भी एक दूसरी से बहुत संबध्द है। पश्चिमी बोलियों की रूप रचना के आधार पर दो भाग किये जा सकते है आकारान्त रचनावाली बोलियाँ बांगरू और खडी बोली है। ब्रज, बुंदेली और कन्नौजी में कुछ रूप रचना औकारान्त है। जैसे खडी बोली के अच्छा, ऊँचा, गया, आया के ब्रज आदि में अच्छौ, ऊँचौ, गयौ, आयो जैसे रूप मिलने है।

इन बोलियों के क्षेत्र में हरियाना, पश्चिमी उत्तर प्रदेश तथा बुंदेलखंड मुख्य रूप से आते है। पश्चिमी हिन्दी की पमुख बोलियों का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है।

खडी बोली :-

आज की परिनिष्ठित हिन्दी और उर्दू इसी बोली की संरचना के आधार पर बनी हैं। यह बोली पंजाबी और राजस्थानी का कुछ प्रभाव लिए हुए है। इस्लाम के विशेष संपर्क में रहने के कारण इसकी शब्दावली पर उर्दू के माध्यम से फारसी और अरबी का प्रभाव भी पड़ा। यद्यपि इसके आधार पर परिनिष्ठित हिन्दी बनी है। पर दोनों एक नहीं है। खड़ी बोली की कुछ ध्वन्यात्मक विशेषताएँ इस प्रकार है जिनको हिन्दी के साथ तुलना के द्वारा समझा जा सकता है:

1) पंजाबी की भाँति इस में मूर्ध्दन्य ध्वनियाँ अधिक हैं। हिन्दी कि "न" ध्वनि, "ण" हो जाती है: अपना-अपणा। शब्द के आरंभ वाले "न" का विकास इस प्रकार नहीं होता।

2) "ड" और "ढ" ध्वनियाँ स्वर मध्यवर्ती स्थिति में मिलती हैं जबकि हिन्दी में क्रमशः थे ड़ तथा ढ़ में परिवर्तित हो जाती हैं। चढ़ना = चढना, गड्डी-गडी = गाड़ी।

3) जब आरंभिक दीर्घ स्वर पर बलाघात होता है, तो इसके बाद वाला व्यंजन द्वित्व हो जाता है: जात्ता (=जाता) बेट्टा (=बेटा) : गाड़डी (=गाड़ी).

ये विशेषताएँ खड़ी बोली को अन्य पश्चिमी बोलियों से अलग करती है। खड़ी बोली की व्याकरण संबंधी कुछ विशेषताएँ हिन्दी से तुलना करते हुए नीचे दी गई हैं।

BRAOU

संज्ञा:-

रूप संज्ञा के रूप हिन्दी के समान ही है। इसी प्रकार सर्वनामों की रचना में भी कोई विशेष अंतर नहीं आता। केवल हमारा, हमारे के रूप म्हारा, म्हारे मिलते है। मध्यपुरुष के रूपों में कुछ अधिक अंतर मिलता है। व्यक्तिवाचक सर्वनामों का अंतर इस प्रकार देखा जा सकता है।

खड़ी बोली	हिन्दी	खड़ी बोली	हिन्दी
तेंने	तूने	यू (पु.)	यह
तझ	तुझ	या (स्त्री.)	यह
तम	तुम	ओ, ओह (पु.)	वह
तम ने	तुमने	वा (स्त्री.)	वे
तुम्हारा			

निश्चयवाची सर्वनामों की विशेष रचना इस तालिका से स्पष्ट की जाती है। अन्य सर्वनामो का अंतर इस प्रकार है:- जौज, जो (=हि.जो.) जस, जिस (=हि.जिस) जन (=हि.जिन) कोण (=हि.कौन) के (=हि.क्या)। कुछ कारण चिन्ह भी अलग मिलते है: कर्ता नें (=हि.ने): कर्म संप्रदान के कूँ नूँ (=हि.को)। कारण अपादान सेत्ती (=हि.से) क्रिया की रूप रचना में अंतर नहीं मिलता।

बाँगरू :-

यह बाँगरू देश की बोली है। इसीलिए यह बाँगरू कहलाती है। इसके क्षेत्र में करनाल, रोहतक, तथा दिल्ली जिले आते हैं। साहित्य की दृष्टि से इस बोली का महत्व नहीं है। इसकी ध्वन्यात्मक रचना खड़ी बोली के समान ही है। एक प्रमुख विशेषता है- स्वरों की अनिश्चितता। कहाईं > कोहाईं, रहा > रेहया जवाब > जुवाबा। इन उदाहरणों में 'अ' ध्वनि ओ, रे तथा उ में परिवर्तित हुई है। ए तथा ऐ परस्पर बदल जाते हैं, ने=नें, ते=नै। खड़ी बोली की तरह 'न' ध्वनि 'ण' में बदल जाती है।

ब्रजभाषा :

यह हिन्दी सबसे अधिक व्यापक बोली है। इसमें प्रचुर साहित्य मिलता है। साहित्यिक भाषा के रूप में इसकी सीमाएँ बहुत विस्तृत हैं। राजस्थान में इसका एक रूप पिंगल है। इस बोली का केन्द्र मथुरा है। अन्य क्षेत्रों में भी साहित्यिक भाषा के रूप में इसने यात्रा की। आधुनिक युग तक ब्रजभाषा में काव्यरचना चलती रही।

ब्रजभाषा की ध्वन्यात्मक विशेषताएँ इस प्रकार हैं। ड़ र ढ रह ण न य ज व ब श स ष, ख, स क्ष ख छ। न, ग, ल, र के क्रमशः महाप्राण रूप इस प्रकार मिलते हैं-न्ह, म्ह, लह, रह।

हिन्दी और खड़ी बोली में जो विशेषण है और संज्ञाए अकारान्त हैं वे ब्रज में औकारान्त में जाती हैः अच्छा > अच्छौ, ताला > तारौ। इसी प्रकार खड़ी बोली हिन्दी पुल्लिंग, कर्ता, एक वचन अकारान्त संज्ञाएँ ब्रज में उकारान्त हो जाती है। घर > घरु देश > देसु। कुछ शब्द अकारान्त ही बने रहते है घोड़ा, गधा आदि। ब्रज सर्वनामों के रूप हिन्दी से मिलते जुलते हैं। केवल मैं का रूप और विकल्प मिलता है- म्हौ अथवा हूँ। 'तुम्हारा' का एक और विकल्प तिहारौ मिलता है। समीपवाची, निश्चयार्थक, एक वचन सर्वनाम 'यह' का ब्रजी में 'जि' रूप को जाता है, के स्थान पर 'आ' का प्रयोग होता है;

क्रिया की रचना में कुछ अंतर मिलता है। खड़ी बोली के 'हूँ' के स्थान पर ऊँ; हौ, है के स्थान पर 'ऐ' है; है के स्थान पर ऐं; हो के स्थान पर औ, ओ रूप प्रयुक्त होते हैं। भूतकालिक सहायक क्रियाएँ ये हैं=था=हो, ओ औ थे=हैं.ए.थी=ही,ई,थीं=ई,हीं। इनके स्थान पर विकल्प के रूप में 'हतो' (=था= हते, (थे) हती (=थी) हतीं (=थीं) का प्रयोग भी मिलता है।

वर्तमान काल की रचना हिन्दी के समान ही है। भूतकालिक कृदन्त का अकारान्त रूप औकारान्त हो जाता है = आया= आयौ, आयो। भारा = भारौ= भारयौ। प्रचलित ब्रजभाषा में और साहित्य में भी भविष्यत काल की रचना 'ग' प्रयत्न जोड़कर की जाती है। विकल्प की रूप में, 'ह' वाले रूप भी मिलते हैः भारि हैं, भारौंगे (=भारुंगा) भौरंगे, भारि हैं, भारिंगे (=भारेंगे), भारि हैं, भारेगौ (मारेगा) आदि।

कनौजी :

जैसा की नाम से स्पष्ट होता है, इस बोली का संबंध कनौज से है। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने इसको ब्रजभाषा में शामिल किया है। कनौजी के पश्चिम तथा उत्तर पश्चिम में ब्रजभाषा तथा दक्षिण में बुंदेली है। इस पर ब्रजभाषा का बहुत प्रभाव है। इस बोली की ध्वन्यात्मक विशेषताएँ ब्रजभाषा के समान ही है। यह ब्रजभाषा के समान औकारान्त या ओकरान्त बोली है। रूप रचना भी ब्रजभाषा के समान ही है। थोड़ा सा अन्तर मिलता है।

बुंदेली :

यह बुंदेलखंड की बोली है। इसका मानक रूप झाँसी में मिलता है। इस क्षेत्र की साहित्यिक भाषा बुंदेली मिश्रित ब्रजभाषा रहा है। इसकी भाषागत सीमाएँ इस प्रकार है पूर्व में बघेली उत्तर तथा

उत्तर पश्चिम में कनौजी तथा ब्रजभाषा, दक्षिण में मराठी, तथा दक्षिण-पश्चिम में राजस्थान की बोलियाँ। इसके कुछ उपरूप जातियों के आधार पर मिलते है। बुंदेली और ब्रजभाषा तथा कनौजी में बहुत समानता मिलती है। बुंदेली की ध्वन्यात्मक विशेषताएँ ब्रजभाषा के समान ही है। कनौजी, ब्रज और बुंदेली में इतना साम्य है कि तीनों एक ही बोली के क्षेत्रीय रूप जैसी लगती हैं आकारान्त संज्ञाएँ और विशेषण लगभग तीनों के औकारान्त मिलते हैं।

1.3.5 पूर्वी हिन्दी

पूर्वी हिन्दी के क्षेत्र की तीन बोलियाँ है। अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी। इनमें से अवधी की बहुत कुछ समानता बिहारी बोलियों से है। ये बोलियाँ पूर्वी उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश (बुंदेलखंड को छोड़कर) तथा पश्चिमी छोटा नागपुर में प्रचलित है। इस क्षेत्र के पूर्व में भोजपुरी बोली जाती है।

अवधीः

अवधी का दूसरा नाम कौसली है। ग्रियर्सन ने इसे बैसवाडी नाम से पुकारा है। वास्तव में बैसवाडी अवधी की एक क्षेत्रीय बोली है, अवधी के पश्चिम में कनौजी और बुंदेली का क्षेत्र है। इसके पूर्व में अवधी बोली जाती है। इसमें साहित्य भी बहुत मिलता है। तुलसीदास ने कभी शुध्द रूप में और कभी ब्रजभाषा मिश्रित रूप में इसका प्रयोग काव्य में किया है। प्रभाव की दृष्टि से इस पर एक ओर तो बुंदेली का तथा दूसरी ओर कनौजी का प्रभाव है। इसकी प्रमुख भाषा वैज्ञानिक विशेषताएँ इस प्रकार हैः

1. कनौजी, बुंदेली तथा अन्य पश्चिमी बोलियों में कर्ताकारण 'ने' का प्रयोग मिलता है, किन्तु अवधी में इसका प्रयोग नहीं है।
2. संज्ञा, विशेषन् तथा भूतकालीक कृदन्त, ब्रज, बुंदेली और कनौजी में औकारान्त है या ओकारान्त; हैं। अवधी में ये आकारान्त ही मिलते हैं।
3. अवधी में भोजपुरी के 'ला' प्रत्ययवाले वर्तमान रूप का प्रभाव है। इसकी कुछ उपबोलियाँ भी है जो सीमावर्ती बोलियों के प्रभाव को लेकर बनी है।

बघेलीः

यह बुदेलखंड की बोली है। बघेले राजपूतों के नाम पर इसका नामकरण हुआ है। इसका दूसरा नाम रीवाँई भी है अर्थात रीवाँ से इलाहाबाद की अवधी है, पूर्व में छत्तीस गढ़ी का क्षेत्र है, दक्षिण में बाराधार की मराठी तथा दक्षिण पश्चिम में बुंदेलखंड है इस पर बुंदेली और अवधी का प्रभाव अधिक है। दक्षिणी रूप मराठी से भी कुछ प्रभाव ग्रहण करता है।

BRAOU

छत्तीस गढ़ीः

जैसा की नाम से प्रकट है यह छत्तीस गढ़ क्षेत्र की बोली है। बिलासपुर जिले कुछ भाग में और बस्तर में भी यह बोली जाती है। ग्रियर्सन ने इसे मराठी की ही एक उपभाषा कहा था किन्तु चटर्जी ने इसे मागधी की ही एक उपभाषा कहा है।

5.3.6 राजस्थानी वर्ग

राजस्थान में कई उपबोलियाँ प्रचलित हैं। इन सबकी सीमा निश्चित करना कठिन हैं। राजस्थानी वर्ग की बोलियों का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। मारवाडी बिल्कुल पश्चिम की बोली है इसका केन्द्र जोधपुर हैं। मेरवाडी अरावली के उत्तर में प्रचलित है। अरावली के दक्षिण और पूर्व में बोली जाती है। इसका केन्द्र मेवाड या उदयपुर है। पूर्वी राजस्थानी के उत्तरी भाग में जयपुरी और दक्षिण में कोटा बूंदी की बोली तथा पूर्व में हरौली प्रचलित है।

इन सभी बोलियों का भाषा वैज्ञानिक परिचय अनावश्यक विस्तार ही होगा इसलिए इन सभी की सामान्य विशेषताएँ देख लेना पर्याप्त होगा।

राजस्थानी वर्ग की बोलियाँ पश्चिमी हिन्दी की बोलियाँ विशेष रूप से ब्रजभाषा से प्रवृत्तिगत समानता रखती है।

5.3.7 पहाडी वर्ग

इस वर्ग में कई बोलियाँ हैं। इन सारी बोलियों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। पश्चिमी पहाडी, मध्य पहाडी, तथा पूर्व पहाडी। पश्चिमी पहाड़ी बोलियों का केन्द्र है शिमला। इस भाग में जौनसारी, क्योंथली, कुलुई तथा चम्बाली प्रमुख बोलियाँ है। मध्य पहाडी भाग में अल्मोडा-नैनिताल क्षेत्र की तथा गढ़वाली बोलियाँ आती हैं। गढ़वाली गढ़वाल तथा झाँसी के आसपास प्रचलित है। पूर्वी पहाडी भाग में नेपाली तथा उसकी उपबोलियाँ आती हैं। इस क्षेत्र के केन्द्र काठमंडू है। ऐतिहासिक दृष्टि से पहाडी वर्ग की बोलियों का संबंध शौरसेनी से रहा और एक खस प्राकृत की भी कल्पना की जाती हैं। इन सभी पर राजस्थानी का स्पष्ट प्रभाव है। राजस्थानी जन समुदाय यहाँ आकर बसता रहा।

5.3.8 बिहारी वर्ग

इस वर्ग में मुख्य रूप से तीन बोलियाँ आती हैं- मैथिली, मगही और भोजपुरी। भोजपुरू पूर्वी हिन्दी की सीमा है। हिमालय के पाददेस से लेकर पूर्व में छोटा नागपूर, सोल नदी तथा मुजफ्फरपुर तक भोजपुरी का क्षेत्र है। शुद्ध मगही का क्षेत्र सोन के पूर्व और गंगा के दक्षिण में स्थित एक त्रिकोणात्मक भूभाग है। इनकी अनेक बोलियाँ भी हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि से इन बोलियों का विकास मागधी अपभ्रंश से माना जाता है। पर इनका पूर्वी हिन्दी से विशेष रहा। मैथिली और मगही एक दूसरे के बहुत समीप है। भोजपुरी गठन में इनसे भिन्न हैं। अतः चटर्जी इन तीनों को एक ही सामूहिक नाम-बिहारी से पुकारने के पक्ष में नहीं है। ये सभी बोलियाँ भौगोलिक और सांस्कृतिक दृष्टि से हिन्दी के पूर्वी क्षेत्र से घनिष्ट संबंध रखती है। इन बोलियों की ध्वन्यात्मक विशेषताएँ इस प्रकार हैं; ड़ ढ़ > र, रह। ल > रः गारी "गाली", ल > न की प्रवृत्ति भी पाई जाती है। बिहारी में य,व ध्वनियाँ पद के आदि में नहीं आती। य > ज तथा व > ब की प्रवृत्तियाँ भी मिलती हैं। ए तथा ओ के ह्रस्व रूपों का भी प्रयोग मिलता है। हि,ऐ,औ का उच्चारण अइ, अव के रूप में मिलता है। इनमें से प्रायः सभी विशेषताएँ पश्चिमी या पूर्वी हिन्दी से मिलती हैं। बिहारी बोलियों में आकारान्त घोड़ा भला जैसे शब्द हिन्दी से आगत है"। वैसे बिहारी में ये शब्द अकारान्त रूप में ही मिलते हैः घोड़, भल आदि। आकारान्त शब्द का तिर्यक रूप आकारान्त ही रहता है जबकी हिन्दी में यह एकारान्त हो जाता है। घोड़ा, "घोड़े" व्यंजनात संज्ञापदों के तीर्यक रूप बिहारी में अ अथवा ए के संयोग से बनते हैं जैसे घरे से "घर से"।

कारण प्रयोग की भी कुछ विशेषताएँ नजर आती है। कर्ताकारक ने का अभाव हैं। यह स्थिति पूर्वी हिन्दी में भी मिलती है। करण कारक का लोप भी दिखलाई पड़ता है। कानों सुना, 'कानों' से सुना। मानक हिन्दी में संबंध कारक का-के-की है जिसमें लिंग तथा वचन की व्यंजना रहती है। बिहार में 'कर' रूप मिलता है, जिसमें लिंग वचन भेद प्रकट नहीं किया जाताः ओकर घोड़ उसका > घोड़ा तथा ओकर घोड़ी उसकी घोड़ी। कुछ बोलियों में इनके लिंग-वचनयुक्त रूप भी मिलते हैं।

मानक हिन्दी से बिहारी के कुछ सार्वनामिक रूप भिन्न है। जैसे मानक हिन्दी के उत्तम पुरुष, एक वचन संबंध रूप मेरा, बिहारी में मोरा, 'मेरो' रूप में मिलता है।

बिहार में "ल" प्रत्ययांत क्रिया पद मिलते हैः मारल, मारला। इस प्रत्यय से वर्तमान की रूपरचना होती हैः देखला "देखता"। बिहारी में बिना सहायक क्रिया के वर्तमान काल की रचना भी होती है। हम देखिहिं, मैं देखता हूँ। "ल' प्रत्यय के आधार पर अतीत काल के रूपों की रचना भी होती है। भविष्यत काल की रचना में 'ब' प्रत्यय का योग मिलता है। करब-'करेगा' इसके साथ कारिहौं

BRAOU

"करूँगा" रूप भी प्राप्त होता है। ये रूप हिन्दी के अन्य बोलियों में भी मिल जाते है। वर्तमान कालिक कृदन्त की रचना का प्रत्यय 'त' ही है। क्रियार्थक संज्ञा की रचना ब्रजी की भांति 'ब' प्रत्यय के आधार पर होती हैं। "अत्" प्रत्ययांत या अविष्कृत मूलधातु का प्रयोग बिहार की विशेषता है। चलल, चलल्, चल। प्रेरणार्थक रूप की रचना 'आव' प्रत्यय के आधार पर होती है: करावल "कराना"। हिन्दी में सकर्मक क्रियाओं का कर्मणि प्रयोग मिलता है: मैने घोडा देखा। बिहारी में इसका अभाव है। वहाँ मिलता है, हम घोडा देखती "हमने घोड़ा देखा। हिन्दी और बिहारी में नकारात्मक 'मत' तथा मति तो समान है: वहाँ मत जानि पर बिहारी के अपनेरूप जानि, जिन हैं। ये अवधि में भी मिलते हैं।

इस विवेचन के आधार पर ये निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। हिन्दी की बिहारी बोलियों का ऐतिहासिक स्त्रोत भिन्न है। पर दोनों का संपर्क संबंध रहा है। इसलिए इन बोलियों पर हिन्दी का प्रभाव पड़ता रहा। बिहारी बोलियों की कुछ विशेषताएँ इनमें से अधिकांश, मिलती जुलती हैं। पूर्वी हिन्दी की बोलियाँ इनसे इतनी भिन्न नहीं हैं। उनपर बंगला का प्रभाव भी पड़ा।

5.4 पाठ का सारांश

इस पाठ के अन्तर्गत हिन्दी की बोलियाँ और विभाषाओं का परिचय दिया गया है। विभिन्न बोलियों के स्वरूप को जानने के लिए, हिन्दी क्षेत्र, का परिचय, विभिन्न बोलियों का वर्गीकरण दिखाया गया है। भारत के मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश में हिन्दी भाषा बोली जाती हैं। आज की प्रदेश व्यवस्था के अनुसार बिहार, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान, मध्यप्रदेश, हिमाचल प्रदेश और दिल्ली इस क्षेत्र में आते हैं, जहाँ राजभाषा के रूप में हिन्दी स्वीकृत हुई हैं।

इसलिए हिन्दी बोलियों वर्गीकरण करके पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, राजस्थानी वर्ग, पहाड़ी वर्ग, बिहारी वर्ग के अन्तर्गत बोली जानेवाली विभिन्न बोलियों का विस्तार से परिचय दिया गया है।

5.5 पारिभाषिक शब्द-अर्थ

हिन्दी भाषा के सम्बन्ध में वर्णन करते हुए, सरल भाषा का प्रयोग किया गया है अतः पारिभाषिक शब्द नहीं है। इसलिए शब्द अर्थ की आवश्यकता है।

5.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.6.1 (अ) श्रेणी के प्रश्न (250 शब्दों में)

1. पश्चिमी हिन्दी की बोलियों का भाषा वैज्ञानिक परिचय दीजिए?
2. पूर्वी हिन्दी की बोलियों का भाषा वैज्ञानिक विश्लेषण कीजिए?
3. राजस्थान की बोलियों का उल्लेख करते हुए उनकी विशेषताएँ बताइए?
4. पहाड़ी वर्ग की बोलियों का वर्गीकरण करते हुए उनकी विशेषताओं पर प्रकाश डालिए?
5. बिहार की बोलियों का परिचय देते हुए स्पष्ट कीजिए कि उनको हिन्दी की बोलियों के अंतर्गत क्यों माना जाता है।

5.6.2 (ब) श्रेणी के प्रश्न (125 शब्दों में)

1. हिन्दी की बोलियों का वर्गीकरण कीजिए।
2. व्याकरण की दृष्टि से मानक और ब्रज की तुलना कीजिए।

BRAOU

3. बुंदेली का परिचय दीजिए।
4. पूर्वी हिन्दी की बोलियों का परिचय दीजिए।
5. पूर्वी हिन्दी की बोलियों में प्रयुक्त सर्वनामों की तालिका बनाइए।

5.7 नमूने के उत्तर

5.7.1 (अ) नमूने के प्रश्न उत्तर (250 शब्दों में)

प्रश्न : पश्चिमी हिन्दी की बोलियों का भाषा वैज्ञानिक परिचय दीजिए।
उत्तर : जिस क्षेत्र को पश्चिमी हिन्दी क्षेत्र कहा जाता है, उसमें प्रमुख रूप से पाँच बोलियाँ बोली जाती है। 1) बांगरू, 2) खडीबोली, 3) कन्नौजी, 4) ब्रजभाषा, और 5) बुंदेली। पश्चिमी हिन्दी की खड़ी बोली और बाँगरू की पंजाबी के साथ समानता है। ब्रजभाषा का साम्य खड़ी बोली के साथ अधिक नहीं है। ब्रजभाषा बुंदेली से अधिक मिलती है। ब्रज और कन्नौजी भी एक दूसरी से बहुत संबध्द है।

पश्चिमी बोलियों की रूप रचना के आधार पर दो भाग किए जा सकते हैं। आकारान्त रचनावली बोलियाँ बाँगरू और खड़ी बोली हैं। ब्रज, बुंदेली और कन्नौजी में कुछ उपरचना औकारान्त है। जैसे खड़ी बोली के अच्छा, ऊँचा, गया, आया के, ब्रज आदि में अच्छै, ऊँचौ, गयौ, आयो जैसे रूप मिलते हैं।

इन बोलियों के क्षेत्र में हरियाना, पश्चिमी उत्तर प्रदेश तथा बुंदेलखंड मुख्य रूप से आते हैं।

खडी बोली:
आज की परिनिष्ठित हिन्दी और उर्दू खडी बोली की संरचना के आधार पर बनी है। यह बोली पंजाबी और राजस्थानी का कुछ प्रभाव किए हुए है। इस्लाम के विशेष संपर्क में रहने के कारण इसकी शब्दावली पर उर्दू के माध्यम से फारसी और अरबी का प्रभाव पड़ा।

बाँगरू:
यह बाँगरू देश की बोली है इसीलिए यह बाँगरू कहलाती है। इसके क्षेत्र में करनाल, रोहतक, तथा दिल्ली जिले आते हैं। साहित्य की दृष्टि से इस बोली का महत्व नहीं है।

BRAOU

ब्रजभाषा:
यह हिन्दी की सबसे अधिक व्यापक बोली है। इसमें प्रचुर साहित्य मिलता हैं। साहित्यिक भाषा के रूप में उसकी सीमाएँ बहुत विस्तृत हैं। राजस्थान में इसका एक रूप पिंगल है। इस बोली का केन्द्र मथुरा है। अन्य क्षेत्रों में भीं साहित्यिक भाषा के रूप में इसने यात्रा की। आधुनिक काल तक की ब्रजभाषा में काव्य रचना चलती रही।

कनौजी:
कनौज की भाषा कन्नौजी है। इस पर ब्रजभाषा का बहुत प्रभाव हैं।

बुंदेली:
यह बुंदेलखंड की बोली है इसका मानक रूप झाँसी में मिलता है। इस क्षेत्र की साहित्यिक भाषा बुंदेली मिश्रित ब्रजभाषा रही है। बुंदेली, ब्रजभाषा और कनौजी में बहुत सामानता मिलती है।

5.7.2 (ब) नमूने के प्रश्नोत्तर

प्रश्न : पूर्वी हिन्दी की बोलियों का परिचय दीजिए।
उत्तर : पूर्वी हिन्दी के क्षेत्र की तीन बोलियाँ है: अवधी, बघेली और छत्तीस गढ़ी। इनमें से अवधी की बहुत कुछ समानता बिहारी बोलियों से है। ये बोलियाँ उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश (बुंदेलखंड को छोडकर) तथा पश्चिमी छोटा नागपुर में प्रचलित है।

अवधी:

अवधी का दूसरा नाम कौसली भी है। ग्रियर्सन ने इसे बैसवाडी नाम से पुकारा है। वास्तव में बैसवाड़ी अवधी की एक क्षेत्रीय बोली है। अवधी के पश्चिम में कनौजी और बुंदेली का क्षेत्र है। इसके पूर्व में अवधी बोली जाती है। इसमें साहित्य भी बहुत मिलता है। तुलसीदास ने कभी शुध्द रूप में और कभी ब्रजभाषा मिश्रित रूप में इसका प्रयोग अपने काव्य में किया है। जायसी तथा अन्य सूफी कवियों ने भी इसको काव्यभाषा के रूप में ग्रहण किया है।

बघेली:

यह बघेलखंड की बोली है। बघेले राजपूतों के नाम पर उसका नाम-करता हुआ है। इसका दूसरा नाम रीवाई भी है अर्थात रीवों से संबंधित बोली। इसकी भाषागत सीमाएँ इस प्रकार है। इसके उत्तर में इलाहाबाद की अवधी है, पूर्व में छत्तीस गढ़ी का क्षेत्र है, दक्षिण में बाराधार की मराठी तथा दक्षिण पश्चिम में बुंदेल खंडी है, इस पर बुंदेली और अवधी का प्रभाव अधिक है।

छत्तीसगढ़ी:

यह छत्तीसगढ क्षेत्र की बोली है। विलासपुर जिले के कुछ भाग में भी इसका प्रचलन है। पडौस के उड़ीसा राज्य के कुछ भाग में और बस्तर में भी यह बोली जाती है।

पूर्वी हिन्दी की यही प्रमुख तीन बोलियाँ है।

5.8 पठनीय पुस्तकें

1. भारत का भाषा सर्वेक्षण – ग्रियर्सन
   अनुवाद – उदय नारायण तिवारी।
2. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास (खण्ड-2) – सं.धीरेन्द्र वर्मा
3. हिन्दी उद्भव विकास और रूप – हरदेव बाहरी।
4. हिन्दी और उसकी उपभाषाओं का स्वरूप – अम्बा प्रसाद सुमन
5. ग्रामीण हिन्दी बोलियाँ – हरदेव बाहरी
6. हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास – उदय नारायण तिवारी

BRAOU

इकाई-6ः हिन्दी की प्रमुख साहित्यिक बोलियाँः "ब्रज और अवधी"

6.0 विषय प्रवेश
6.1 पाठ का उद्देश्य
6.2 पाठ परिचय
6.3 मूल-पाठ
    6.3.1 प्रस्तावना
    6.3.2 आदिकालीन साहित्यिक बोलियाँ
    6.3.3 मध्यकाल की साहित्यिक बोलियाँ
    6.3.4 अवधी
    6.3.5 ब्रजभाषा
6.4 पाठ का सारांश
6.5 पारिभाषिक शब्द अर्थ
6.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
    6.6.1 (अ) श्रेणी के प्रश्नोत्तर (250 शब्दों में)
    6.6.2 (ब) श्रेणी के प्रश्नोतेतर (125 शब्दों में)
6.7 नमूने के प्रश्नोतेतर
    6.7.1 (अ) श्रेणी के प्रश्नोत्तर (250 शब्दों में)
    6.7.2 (ब) श्रेणी के प्रश्नोत्तर (125 शब्दों में)
6.8 पठनीय पुस्तकें

BRAOU

6.1 पाठ का उद्देश्य

हिन्दी साहित्य के इतिहास की रचना मुख्यतः ब्रज और अवधी में हुई है। प्रमुखतः ब्रज और अवधी का प्रयोग प्रारंभिक युग में और खडी बोली का प्रयोग आधुनिक काल में हुआ है। उत्तर हिन्दुस्तान में अंनेक बोलियों का और भाषाओंका प्रचलन है। आदिकालीन साहित्यिक बोलियाँ-मध्यकालीन साहित्यिक बोलियाँ, अवधी, ब्रजभाषा आदि का परिचय, उनका साहित्यिक महत्व आदि के संबंध में इस पाठ में वर्णन किया गया है। इस पाठ का उद्देश्य इन साहित्यिक बोलियों का परिचय कराना और हिन्दी साहित्य में उनके योगदान का महत्व दर्शाना ही है।

6.2 पाठ परिचय

हिन्दी की अनेक बोलियाँ हैं। उनमें से ब्रज अवधी और खडी बोली का हिन्दी साहित्य में व्यापक प्रयोग हुआ है। हिन्दी साहित्य के आदिकाल और मध्यकाल में प्रथम दोनों का और आधुनिक काल में तीसरे का साहित्यिक भाषाओं के रूप में प्रचलन हुआ है। साहित्य के क्षेत्र में इनके साथ हिन्दी की अन्य बोलियों और विभाषाओं का मिश्रण भी होता रहा; विशेषतः ब्रजभाषा का खड़ीबोली हिन्दी पर पहले ब्रजभाषा का कुछ प्रभाव दिखाई देता है। पर अब उसका मानक रूप ही प्रयुक्त होता है।

प्रस्तुत पाठ में पहले आदिकाल और मध्यकाल में साहित्यिक भाषा, बोली, शैली पर विचार हुआ। उसके बाद अवधी और ब्रजभाषा के विकास स्वरूप और साहित्य में प्रयोग का विश्लेषण दिया गया। हिन्दी साहित्य के आदिकाल और मध्यकाल का अध्ययन करने के लिए अवधी और ब्रज का परिचय अत्यंत आवश्यक है।

6.3 मूल पाठ

6.3.1 प्रस्तावना

बोली और भाषा में अंतर होता है, किन्तु यह अन्तर भाषातात्विक आधार पर नहीं होता। व्याकरण के स्तर पर दोनों की ही विशिष्ट रचना होती है। ऐतिहासिक आधार पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि भाषा की अपेक्षा बोली में परिवर्तन अधिक तेज़ी के साथ होता है। भाषा और बोली का अंतर समाज भाषाविज्ञान के आधार पर ही किया जाता है। सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक कारणों से कोई भी बोली भाषा बन सकती है। हिन्दी की ब्रजी, अवधी और खडी बोली की स्थिति से यह मान्यता पुष्ट हो जाती है। भक्तिकाल और रीतिकाल में भाषा परंपरा, भौगोलिक स्थिति, धार्मिक भावना और राज्याश्रय का बल प्राप्त करके ब्रज प्रदेश की बोली, भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई। काव्यभाषा के रूप में इसकी सीमाएँ विस्तृत होती चली गई। यही बात अवधी के सम्बन्ध में भी कहीं जाती है। खडी बोली भी एक समय में दिल्ली-मेरठ के आस-पास की स्थानीय बोली मात्र थी। आज इसकी प्रतिष्ठा मात्र भाषा के रूप में ही नहीं, राष्ट्रभाषा और संपर्क भाषा के रूप में हो गई हैं। आज यह एक व्यापक साहित्य की माध्यम भी बन गई है। आगे ब्रजी और अवधी पर साहित्यिक बोलियाँ हैं। इन में एक समृध्द साहित्यिक परंपरा विकसित हुई।

ब्रजी और अवधी की काव्य शैलियाँ आदिकाल में विकसित हुई। अब तक खोजों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अवधी की अपेक्षा ब्रजभाषा में काव्यरचना पहले आरंभ हुई। ब्रजभाषा ने ही अवधी से पहले व्यापक काव्यभाषा का रूप ग्रहण किया। साथ ही रामकाव्य की अपेक्षा कृष्णकाव्य का क्षेत्र भी अधिक व्यापक रहा। ब्रजभाषा का प्रसार अन्य क्षेत्रों तक अवधी की अपेक्षा अधिक हुआ। अवधी के क्षेत्र में भी ब्रजभाषा में बहुत साहित्य लिखा गया।

राम अवध के थे और कृष्ण ब्रज के थे। इसलिए एक रुढि बनती हुई सी दिखलाई पड़ती है कि कृष्णकाव्य ब्रजभाषा में और रामकाव्य अवधी में लिखा जाए। किन्तु रामकाव्य ब्रज भाषा में भी लिखा गया और कृष्णकाव्य की रचना अवधी में भी हुई।

3.2 आदिकालीन साहित्यिक बोलियाँ/शैलियाँ

BRAOU

हिन्दी के आदिकाल में भाषा-वैविध्य पर्याप्त मिलता है। इनमें दो भाषा शैलियाँ प्रमुख थीं- एक शैली धार्मिक और भक्ति साहित्य से संबंधित है और दूसरी शैली राज्याश्रित प्रशास्ति साहित्य से। पहली शैली सिध्दों और नाथों के साहित्य से लेकर भक्तिकाव्य तक व्यवहृत मिलती है। दूसरी शैली वीरगाथाओं और वीरगीतों में प्रयुक्त हुई है। पहली शैली के दो रूप मिलते हैं- नाथ-सिध्द साहित्य से लेकर निर्गुणिया संत साहित्य तक खडी बोली पर आधारित मिश्रित शैली का प्रयोग हुआ है और सगुण भक्तिकाव्य में ब्रज या अवधीपर आधारित मिश्रित भाषा शैली का। प्रशस्ति वीर काव्य या तो शुध्द राजस्थानी शैली पर आधारित डिंगल भाषा शैली में लिखा गया है अथवा ब्रज पर आधारित पूर्वी राजस्थानी से मिश्रित भाषा शैली में।

ये दोनों ही शैलियाँ कृत्रिम साहित्यिक बोलियाँ थी जो किसी प्रदेश विशेष की बोलचाल की भाषाएँ नहीं थीं। इनमें बहुत बडे भूखंड की बोलियों का समावेश था। इन भाषा शैलियों का विकास एक दीर्घ कालावधि में हुआ था। इन मिश्रित भाषाओं का रूपाकार या तो यायावर साधु वर्ग के द्वारा गठित हुआ था भ्रमणशील व्यापारियों के द्वारा। राज्यश्रित चारण कवि भी एक भाषा से संबंधित दूसरे राज दरबारों में घूमते थे। इसीलिए एक कृत्रिम, मिश्रित भाषा शैली जन्म लेती रही। इस भाषा का व्यवहार क्षेत्र पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार तथा महाराष्ट्र तथा इसी क्षेत्र की भाषाओं/बोलियों के तत्व मिश्रित भाषाओं के साथ जुड़ जाते थे। आदिकालीन इन साहित्यिक बोलियों पर अपभ्रंश की रंगत भी दिखलाई पड़ जाती है। पूर्व में एक शैली मैथिली के आधार पर विकसित हुई। इसमें विद्यापति

ने पदावली की रचना की। छोटे-छोटे सामंती राज्यों और विदेशी आक्रमणों की उथल-पुथल के कारण हिन्दी क्षेत्र में किसी एक सामान्य भाषा का विकास नहीं हो पाया। 8वीं. से 12वीं शती तक यह स्थिति उत्तर-भारत में रही।

6.3.3. मध्यकाल की साहित्यिक बोलियाँ

मध्यकालीन हिन्दी 16वीं से 18वीं शताब्दी तक की प्रचलित मानी जाती है। यह हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग भी कहलाता है। आदिकालीन साहित्यिक भाषाओं में खड़ी बोली के तत्व लक्षित किए जा सकते हैं किन्तु मध्यकालीन भाषा में नहीं। इस काल की साहित्यिक धाराओंका भाषा शैलियों से इस प्रकार संबंध स्थापित किया जा सकता है।

रामभक्ति धारा + अवधी भोजपुरी= कृष्णभक्ति धारा + राजस्थानी तथा रीति काव्य धारा + ब्रजी + बुंदेली। ये काव्य भाषा - शैलिया ब्रज अवधी और राजस्थानी के आधार पर विकसित हुई थीं।

आदिकाल की तरह मध्यकाल में भी ऐसी सामाजिक और भौतिक स्थितियाँ विकसित नहीं हो पाई थीं जिनमें एक सामान्य भाषा-शैली विकसित हो पाती। सामंतवादी युग में, भाषाएँ एकरूप भी नहीं हो पाती और उनके परिवर्तन की गति भी मंद हो जाती है। फिर भी भक्तिकाल के स्वर्णयुग या मुगलकाल में भाषा के एकीकरण की परिस्थिति कुछ बनती है। व्यापार की नई सुविधाएँ पैदा हुई। लोधी बादशाहोंने सडकों की कुछ व्यवस्था की। शेरशाहने मुद्राप्रणाली में सुधार किया। अकबर के समय में व्यापारी वर्ग को विस्तृत हाटो में व्यापार करने का अवसर मिला। मुस्लिम राज्यों में स्थायित्व आया। कृषि के संभव विकास के लिए सिंचाई आदि की व्यवस्था हुई। सडकों ने विभिन्न व्यापार केन्द्रों को मिला दिया। कपडे के उद्योग का व्यापक जाल फैला। प्रशासन प्रणाली के सुधार से सुरक्षा की स्थिति पैदा हुई। इस स्थितियों में एक भाषा बनने की संभावनाएँ उगीं।

इस समय साहित्य के क्षेत्र में व्यापक भाषा के रूप में ब्रजभाषा का विकास हुआ। संगीत और साहित्य की भाषा का सम्मान उच्च और निम्न दोनों वर्गों में था। साथ ही व्यवहार के क्षेत्र में खड़ी बोली हिन्दी विस्तार पर रही थीं। खड़ी बोली के आधार पर उर्दू, हिन्दुस्तानी जैसी भाषा शैलियाँ बन रही थीं। इनमें फारसी तत्व तो जुड रहा था किन्तु पास की अन्य उपभाषाओं का प्रभाव प्रायः नहीं था। साहित्य के क्षेत्र में दूसरा स्थान अवधी का था। ब्रज और अवधी का मिलाजुला रूप भी चलता था।

BRAOU

6.3.4 अवधी

अवधी और हिन्दी एक ही सांस्कृतिक क्षेत्र से संबंधित हैं। इनमें संबंध परक अध्ययन से विद्वान इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि हिन्दी और अवधी एक ही भाषा की बोलियाँ है। प्रायः सभी विद्वान इस भाषिक संबंध को मानकर चलते हैं।

अवधी का दूसरा नाम कोसली भी है। मध्य हिन्दी काल में अवधी प्रमुख साहित्यिक भाषाओं में से एक थी। इस क्षेत्र की कई बोलियों ने विकसित और समन्वित होकर अवधी भाषा का मिश्रित रूप धारण किया। अवधी का क्षेत्र उन्नाव, सीतापुर, इलाहाबाद और जौनपुर जिले हैं। यहाँ की अवधी में परस्पर बहुत भेद है। ये सभी भेद मिलकर साहित्यिक अवधी का सूत्रपात करते हैं।

अवधी का विकासः

ग्रियर्सन ने अवधी को शौरसेनी और मागधी के बीच की अर्धमागधी से उत्पन्न माना। बाबूराम सक्सेना ने कहा है कि अवधी जैन ग्रंथों में प्रयुक्त अर्धमागधी से नहीं मिलती। वह पालि से अधिक समानताएँ रखती है। कुछ समीक्षक इसे "कौसली" अपभ्रंश से विकसित मानते हैं।

अवधी की उत्पत्ति अन्य आधुनिक आर्यभाषाओं की तरह 1000-1200 ईसवीं के आसपास हुई।

अवधी भाषा के विकास को तीन काल कालखंडों में बाँटा जा सकता है।

1. प्रारंभ से ई.1400 तक।
2. ई.1400 से 1700 तक।
3. 1700 से आज तक।

1000 ई. से पहले अवधी के रूप की एक झलक प्राकृत, अपभ्रंश और अवहरठ में मिल जाती है। इस संदर्भ में प्राकृत पैंगलम् उक्ति व्यक्ति प्रकरण और कीर्तिलता उल्लेखनीय हैं। (हिन्दी भाषा-भोलानाथ तिवारी) 1400 ई. तक अवधी का निर्माण काल है। उसके बाद 1700 तक उसका मध्यकाल है। इस काल में काव्य रचना का आरंभ मुल्ला दारुद के लारें कहा या चन्दासन से माना जा सकता है। 1000 ईसवीं के बाद अवधी का प्रयोग छेयकरन के करितामृत से लेकर (18वीं सदी मध्य) आधुनिक काल में कृष्णायन तक हुआ है। इस काल में अवधी का पूर्ण विकास हुआ और वह आधुनिक भाषा बनी। मध्यकालीन अवधी में अरबी, फारसी शब्दों का प्रयोग हुआ तो आधुनिक अवधी में अन्य आधुनिक भाषाओं की तरह शासकों की भाषा अंग्रेजी के शब्दों का प्रचलन हो गया है। ये शब्द अवधी भाषा की प्रकृति के अनुरूप रूपान्तरिक हैं।

अवधी भाषा का स्वरूपः

1. खड़ी बोली हिन्दी के प्रायः सभी स्वरों और व्यंजनों का प्रयोग होता है। ड़, ढ़, न्ह, ग्ह, र्‌ह का प्रयोग दृष्टव्य है। ए और ओ के ह्रस्व और दीर्घ दोनों रूप हैं। स, श, ष, के स्थान पर केवल स मिलता है।

2. संज्ञा के सामान्य दीर्घ और दीर्घतर रूप मिलते है। घोड़ा-घोड़वा, घोडउना। कर्ताकारक ने का प्रयोग नहीं होता।

3. प्राचीन साहित्य में सहायक क्रिया का प्रयोग कम ही हुआ है। "अह, अछ, य, रह, अइ और ह का ही प्रयोग सहायक क्रिया के रूप में है।

4. संज्ञा, विशेषण और भूतकालिक कृदन्त अकारान्त होते हैं। संज्ञार्थक क्रिया की रचना में 'ब' प्रयत्न का योग होता है। देखब, जाईब आदि। भविष्यकाल की रचना में भी 'ब' प्रत्यय मिलता है।

BRAOU

साहित्य में अवधी का प्रयोगः

जगनिक के तथा अन्य आल्हे (=वीरगीत) अवधी की आरंभिक रचनाओं में हैं। ये अवधी की बैसवाडी बोली में लिखे गये हैं। ये लोकगीत शैली के काव्य बहुत जनप्रिय हुए। जायसी ने पद्मावत की रचना पूर्वी अवधी में ली हैं। तुलसी ने न तो आल्हा खंजवाली बैसवाड़ी को अपनी रचनाओं के लिए अपनाया और न जायसी की पद्मावत की भाषा को। एक ओर तो उन्होंने वे रचनाएँ लिखी जिनकी भाषा में अवध की कई बोलियों का मिश्रण था और दूसरी ओर ब्रजी के साथ अपनी काव्यरचना को जोड़ कर एक परिनिष्ठित भाषा रूप तैयार किया। इसका प्रयोग 'मानस' में दिखलाई पड़ता है। तुलसी ने कुछ रचनाओं में शुध्द ब्रजी का प्रयोग किया। इस प्रकार तुलसी ने पूर्वी और पश्चिमी अवधी बोलियों को जोड़कर एक टकसाली अवधी भाषा को तथा एक टकसाली काव्यभाषा को जन्म दिया। तुलसी का जन्म बुंदेली के बाँदा क्षेत्र में हुआ। जीवन के अधिकाश भाग में वे भोजपुरी क्षेत्र के वारणासी में रहे। इन दोनों का भी तुलसी की अवधी पर आधारित काव्यभाषा में योग है। इसी मिश्रित भाषा के कारण रामचरित मानस ने एक व्यापक क्षेत्र में, जिसमें पंजाब, राजस्थान, मध्यप्रदेश, ब्रज और बिहार शामिल है, लोकप्रियता प्राप्त की। अन्य सांस्कृतिक कारण भी मानस की लोकप्रियता के है। राम की भूमि की भाषा अवधी थी

संत साहित्य की भाषा में अवधी के तत्व मिल जाते हैं। कबीर के कई पद भोजपुरी या अवधी में दिखलाई पड़ते हैं। रमैनी की भाषा में अवधी के तत्व स्पष्ट दिखलाई पड़ते हैं। दोहे चौपाई में लिखी अवधी रचनाओं का प्रचार कबीर तक हो चुका था।

अवधी सूफी काव्यः

अवधी भाषा में सूफी प्रेमाख्यान काव्य की परंपरा मिलती हैं। आदिकाल के अंतिम चरण में मुल्ला दाऊद का 'चंद्रायन' ग्रंथ मिलता है। इसको अवधी की प्राचीनतम उपलब्ध कृति माना जाता है। खुसरो ने भी अवधी में कुछ रचनाएँ की। इसके बाद सूफी कवि कुतबन की 'मृगावती', मंझन की मधुमालती की रचना हुई। जायसी ने पद्मावत में अपने से पहले के कुछ प्रेमाख्यानक काव्यकृतियों का उल्लेख किया है। जैसे सपनावती मुग्धावती, प्रेमावती आदि। किन्तु ये ग्रंथ आज उपलब्ध नहीं है और न इनके कवियों की ही कोई सूचना मिलती है। पर इनसे अवधी में लिखे सूफी प्रेमकाव्य रचना मानी जा सकती है। जायसी की परवर्ती रचनाओं में उसमान की "चित्रावली, शेखनबी की 'ज्ञानदीप, कासिमशाह की हंस, जवाहिर' नूर मुहम्मद की 'इन्द्रावती' तथा 'अनुराग बाँसुरी' जैसी कृतियाँ आती है। इसके बाद भी हिन्दू तथा मुसलमान कवि अवधी में प्रेमाख्यान रचते रहे।

अवधी रामकाव्यः

अवधी की परंपरा को समृध्द करने का श्रेय तुलसी को है। तुलसी की परंपरा में अनेक कवि हुए किन्तु तुलसी के व्यक्तित्व के सामने हतप्रभ ही रहे। डा.कामिल बुल्के ने हिन्दी साहित्य कोष में जो सूची दी है उससे अनेक छोटे-मोटेकवियों के नाम सामने आते हैं। रामकाव्य का आरंभ तुलसी से होता है। रामलला पद्य और बरवै रामायण जैसी रचनाएँ उन्होंने अवधी में ही लिखीं। रामानंदी संप्रदाय के अनेक कवि अवधी में लिखते थे। नाभादासजी ने अष्टयास की रचना की।

अवधी का कृष्णकाव्यः

अवधी कृष्णकाव्य की पहली कड़ी माधवीदासजी के फुटकर पदों की है। इसके बाद लालचदास का नाम आता है, जिन्होने प्रबंध के रूप में 'हरिचरित्र' की रचना की इसमें कृष्णकथा का क्रमबध्द रूप वर्णित है। हरिचरित्र का कथास्त्रोत भागवत का दशमस्कंध ही है। इसकी शैली 'रामचरितमानस' जैसी है। इनके बाद आसानंदजी ने लालचदास द्वारा लिखित हरिचरित्र को पूरा किया। बलवीर कवि ने दंगव पर्व में महाभारत के युध्द का अवधी में वर्णन किया है। गोविंददास ने एकांतपद ग्रंथ में राधाकृष्ण विषयक सुंदर भजन लिखे हैं।

अवधी के कृष्णभक्त कवियों ने कृष्णकाव्य दास्य भाव से प्रेरित होकर लिखा है। ब्रज की सभी लीलाओं का चित्रण किया गया है। किन्तु कवि दास्य भाव का अनुयायी है। साथ ही कृष्णचरित्र को दोहा चौपाइयों की प्रबंध शैली में रखने का भी प्रयत्न किया गया। लालचदासने जिस कृष्णपरक प्रबंध काव्य की परंपरा आरंभ की थी उसका विकसित रूप लक्षदास की रचनाओं में मिलता है। इनकी प्रबंध रचनाएँ कृष्णदास सागर, भागवत, पुराणसार, दोहावली तथा फुटकर पद हैं।

6.3.5 ब्रजभाषा

ब्रजभाषा का ऐतिहासिक संबंध शौरसेनी अपभ्रंश से जोडा जाता है। शौरसेनी का संबंध मध्यदेश से था। साहित्य के माध्यम के रूप में राजपूताना, पंजाब और गुजरात के जैन आचार्य लोग तथा पूर्व भारत के सिध्दा चार्य लोग, और बाद में समग्र उत्तर भारत में फैले हुए शैव योगी या नाथपंथ के आचार्य लोग, बंगाल के सहजीया पंथ के साधक इन सबों के लिए शौरसेनी अपभ्रंश जनता के समक्ष अपने मत और शिक्षा के प्रसार के वास्ते एक अच्छा साधन बना"। इस अपभ्रंश का मुख्य स्थान ब्रजप्रदेश था। परवर्ती ब्रजभाषा की रचना का इससे बहुत साम्य है। शौरसेनी अपभ्रंश का परवर्ती रूप अवहट्ट के नामसे जाना जाता है। इसको ही देशी भाषा भी कहा जाता था।

BRAOU

आचार्य शुक्ल ने संतों की भाषा को सधुक्कड़ी कहा है और इसकी भाषा को पचमेल खिचड़ी कहा है। सधुक्कड़ी के साथ साथ संत साहित्य में ब्रजभाषा शैली का प्रयोग रहा है। शुक्लजी ने लिखा है, "संत कवियों के सगुण भक्ति के पदों की भाषा तो ब्रज या परंपरागत काव्य भाषा है, पर निर्गुण बानी की भाषा नाथ पंथियों द्वारा गृहित खडी बोली या सधुक्कजी भाषा है।" नामदेव से लेकर नानक तक के संतों की वाणियाँ गुरुग्रंथ साहब में संगृहीत है, उनमें आधी रचनाएँ ब्रजी की है।

ब्रज शब्द का अर्थ पशुओं या गौओं का समूह, चरागाह आदि है। पशुपालन की प्रधानता के कारण यह क्षेत्र ब्रज कहलाया। इसकी बोली को ब्रज भाषा या ब्रजी कहते है। ब्रजमण्डल की भाषा होने पर भी मध्यकाल में इसका प्रयोग हिन्दी प्रदेश में ही नहीं समस्त उत्तर भारत में होने लगा। गुजरात, महाराष्ट्र और बंगाल में इसका प्रचार हुआ। तमिलनाडु के नायक राजाओं की राजसभा में ब्रजभाषा में पद रचे गए और तिरुवनंतपुरम के राजा स्वाति तिरुनाल ने ब्रजभाषा में रचना की। बोली होने पर भी व्यापक प्रचार और समृध्द श्रेष्ठ साहित्य की रचना के कारण ब्रज बोली को भाषा की संज्ञा मिली।

ब्रजभाषा का विकासः

ब्रजभाषा का जन्म भी अवधी की तरह 1000ई.से. माना जाता है। उसके विकास को तीन कालों में विभक्त किया जाता है।

1. आदिकाल 1000 सं 1535 तक।
2. मध्यकाल 1529 से 1800 तक।
3. आधुनिक काल 1800 से आज तक।

आदिकालीन ब्रजभाषा अपभ्रंश से बहुत प्रभावित है। हेमचंद के व्याकरण में उसके पूर्व रूप की झलक मिलती है। सन्देश रासक, प्राकृत पैंगलम आदि रचनाओं में ब्रज के आदिकालीन रूप का प्रयोग हुआ है। 1350 से ब्रजके विकसित रूप का स्पष्ट आभास मिलता है। इस दृष्टि से अग्रवाल कवि का पदयुम्न चरित, विष्णुदास की महाभारत की कथा, मानिक की बैताल पचीसी आदि उल्लेखनीय है।

मध्यकालीन ब्रजभाषा का प्रारंभ सूर से माना जाता है। भक्तिकाल और रीतिकाल में इसका व्यापक प्रयोग हुआ। इस काल में ब्रजभाषा का स्वरूप परिनिष्ठित हो गया। सूर, रसखान, घनानंद ने उसके शुध्द रूप का प्रयोग किया तो अन्य अनेक कवियोंने अपने क्षेत्र की बुंदेली आदि के शब्दों को भी उसमें मिलाकर प्रयोग किया जैसे बिहारीने. मुसलमानी शासन, धर्म प्रचार आदि के कारण अवधी की तरह ब्रजभाषा में भी अरबी फारसी के कुछ शब्दों का प्रयोग होने लगा। शब्द प्रायः तद्भव थे। भाषा व्यवहार में प्रचलित तत्सम रूपों को ही ग्रहण हुआ।

BRAOU

आधुनिक काल में मध्यकालीन ब्रजभाषा का स्वरूप ही साहित्य रचना में प्रयुक्त होने लगा। काव्य में सामान्य जीवन और सामाजिक वस्तु के ग्रहण तथा गद्य रचना का आरंभ होने के कारण भारतेन्दु युग के अन्त तक ब्रजभाषा के शब्द भंडार का विस्तार हुआ। संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग बढ़ गया। भारतेन्दु हरिचन्द्र युग के गद्य की भाषा क्रमशः खडी बोली हो गई। उसका प्रचार और प्रयोग बढ़ा इस शासन के परिणाम स्वरूप ब्रजभाषा में अनेक अंग्रेजी शब्द भी आगए।

ब्रजभाषा का स्वरूपः

1. ब्रजभाषा का प्रमुख गुण माधुर्य माना जाता है। माधुर्य को लानेवाली कुछ ध्वन्यात्मक विशेषताओं की ओर संकेत किया जा सकता है। संयुक्त व्यंजन समाप्त ही हो गए। व्यंज द्वित्वों का सरलीकरण हुआः सत्य > सद्दु > साँच, कर्म > कम्ब > काया। अनुस्वरों का ह्स्वीकरण हुआः संदेश > संदेस, नंदनंदन > नन्दनँदन। कठोर ध्वनियों को कोमल बनाया गयाः ण > न चरण > चरन, श > स = शीश > सीस। जहाँ खडी बोली में शब्द अकारान्त है वहाँ ब्रजी में उकारान्त हो जाते है। घर > घरु, काम > कामु। ब्रजभाषा में आकारान्त शब्द औकारान्त हो जाते है: बिचारा > बिचारौ, हमारा > हमारौ।

2. ब्रजभाषा में स्वरों का प्रयोग होता है, अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऐ, ए, उँ, ओ। 'अ' का उदासिन रूप भी प्रयुक्त होता है। बढ़उ, बहुउ। ए और ओ के ह्रस्व रूप प्रयुक्त होते हैं। ऐ और औ संयुक्त स्वर है जिनका उच्चारण अएँ, अऔं या अइ, अइ के रूप में होता है। खडी बोली व्यंजनों के अलावा न्ह, म्ह, ड, ढ़ र, रह लह आदि का भी प्रयोग मिलता है। क, का, च, ड़ का, र, न का ल ल का न, र का ल ल का र आदि में परिवर्तन हो जाता है। क्यों, च्यौं, घोडा, घोरा, नम्बरदार, लम्बरदार, लालरी बाक्री, रज्जु लेजु, बादल बादर।

अवधी से भिन्न ने का प्रयोग होता है। शेष कारकों के अनेक रूप मिलते है। बहुवचन 'न' आदि जुडते हैः आम-अमु, कौंरो-कौंरल, किताब-किताबन, रोटी-रोटिन।

3. सर्वनाम के रूपः- मैं में हौ हो हूँ हम। तूतैं तैं तें ले तुम। वु बू वुऊ वौ बे बै ग्वे वे वै, ये यह यिह, इईयव, यो ये यै ए, जे,गे। जो जौ जौन जे जो जौ, सौ सौ, तीन सो ते।

4. कृदन्तः- वर्तमान कालीक प्रत्यय त जात, खात, भूतकालिक प्रत्यय औ, यौ, चलौ, चलयौ, स्त्रीलिंग ई ई चली, चलीं। पूर्वकालीक कृदन्त ई, इके, देखिः, जार कै। क्रियार्थक संज्ञा का प्रत्यय नो, इवो, होनो, करिनो। पूर्णक्रिया द्योनक ए मूँदे बाँधे। अपूर्ण क्रिया द्योतक ते चलते, करने। काल रचना में कृदंतों के साथ, 'होनो' के रूप लगते है। कभी कभी धातु के साथ विभिन्न प्रत्यय भी जोड़े जाते है।
(ब्रजभाषा के स्वरूप को समझने के लिए धीरेन्द्र वर्मा का ब्रजभाषा व्याकरण और भोलानाथ तिवारी की पुस्तक 'हिन्दी भाषा' देखिए).

साहित्य में ब्रजभाषा का प्रयोगः

जिस प्रकार तुलसीने प्रमाणिक अवधी में साहित्य रचना की उसी प्रकार सूर ने भी अपनी कृतियों में प्रामाणिक ब्रजभाषा का व्यवहार किया। ब्रजभाषा मुसलमानों में भी लोकप्रिय हुई। अकबर ने भी ब्रजी में पद्यरचना की। दरबारी संगीत की भाषा ब्रजी ही थी। ब्रजभाषा को बादशाही बोली के नाम से पुकारा जाता था। मीरजाखान ने फारसी में ब्रज का व्याकरण लिखा था। जब मुगल दरबार आगरा में आगया, तो ब्रजभाषा के विकास के लिए और भी अनुकूल वातावरण तैयार हुआ। सांस्कृतिक दृष्टि से ब्रजभाषा कृष्णभक्ति से संबंधित रहीं।

BRAOU

प्राचीन ब्रजभाषा काव्यः

जैन काव्य सिद्ध युग में या उससे भी पहले ब्रजभाषा में जैन काव्यधारा मिलती है। इस धारा का कुछ साहित्य तो प्रकाश में आया है और कुछ अभी तक छुपा पडा है। जैन साहित्य का शुक्लजा ने इसलिए अपने इतिहास में स्थान नहीं दिया क्यों कि उनकी दृष्टि से यह साहित्य, साहित्य की कोटि में नहीं आता। अपभ्रंश में जैन साहित्य की उन्नत परंपरा मिलती है। प्राचीन ब्रजभाषा ने इस परंपरा का वहन किया। इस परंपरा में 'प्रद्युम्न चरित' के रचयिता सधार, अग्रवाल, गुणवेली के कवि ठक्कुरसी तथा कवि छहिल आते हैं। इस काव्यधारा की प्रमुख विशेषता यह है कि यह जन साधारण के जीवन क्षेत्र में रहीं।

यद्यपि इस काव्य धारा में वैराग्य भावना प्रमुख है। फिर भी प्रेमभावना पूर्व रूप से उपेक्षित नहीं रही। सिध्द साहित्य की अपेक्षा, जैन साहित्य धारा में प्रेम और सौन्दर्य का चित्रण अधिक हुआ है। जैन काव्य धारा में व्यंग विनोद और नीति परक साहित्य भी कम नहीं है। "प्रद्युम्न चरित" में सत्यभाषा के द्वारा करारा व्यंग कराया हैं,इसी प्रकार प्रद्युम्न कृष्ण पर व्यंग करता है। नीति साहित्य की रचना भी ब्रजभाषा की जैन काव्यधारा में हुई। छाहल की बाचनी में नीति मुक्तक ही संग्रहीन है। परवर्ती ब्रजभाषा के नीति साहित्य को इसने प्रभावित किया।

भक्तिकाव्यः

दूसरी काव्यधारा भक्तिमत से संबंधित है। शुक्लजी ब्रजभाषा के क्षेत्र में भक्ति अंदोलन का सूत्र पात आचार्य वल्लभ के आगमन के समय से मानते है। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार 16वीं शती के पहले भी कृष्ण काव्य लिखा गया था किन्तु वह या तो संस्कृत मे है जैसे जयदेवकृत गीत गोविंद अथवा अन्य प्रादेशिक भाषाओं में जैसे विद्यापति की पदावली। ब्रजभाषा में लिखी हुई रचनाएँ 16वी शताब्दी से पहले की उपलब्ध नहीं हैं। परवर्ती खोजों से यह सिद्ध हो गया है कि 16वीं शताब्दी से पहले का ब्रजभाषा कृष्णभक्ति साहित्य मिलता है।

ब्रजभाषा की स्त्रोत शौरसेनी अपभ्रंश में पुष्पदंत ने अपने महापुराण में कृष्ण वृत्त को विस्तार से दिया है। यह वृत्त भागवत के ही आधार पर दिया गया है। 14वीं शती में पिंगल ब्रजभाषा में प्राकृत पैंगलम लिखा गया। इसमें कृष्ण भक्ति सम्बन्धी कई पद्य हैं। एक पद्य में दशावतार का वर्णन है। कुछ पद्यों में शिव, राम और कृष्ण की स्तुति की गई है। कृष्ण संबंधी पदों में परमात्मा कृष्ण के गोपीप्रेम की व्यंजना मिलती है। कृष्ण को नारायण रूप में देखा गया है। एक दूसरे पद्य में वीर कृष्ण राधा के मुख मधु का पान करते हुए दिखलाया गया है।

चाणूर विहंडिय, णिय कुल मंडिअ
राहा मुखमहु पान करे, जिमि भ्रमर वरें।
सो तुम परायण पिष्प परायण
चित्तर चिंतिय दोड वरा भयभीअ हुए।

इसमें राधा प्रिय कृष्ण का उल्लेख है जो विद्यापति और चंडीदास के पहले का है। एक पद्य में कृष्ण और विष्णु को साथ साथ स्तुत्य बताया है। इस प्रकार आरंभिक ब्रजभाषा में रचित भक्ति परक स्फुट उक्तियाँ मिल जाती हैं।

कुछ संगीतज्ञों ने भी कृष्णभक्ति संबंधि गीत ब्रजभाषा में लिखे। उनमें गोपाल नायक, बैजू बावरा जैसे कवि आते हैं। यह परंपरा आगे चलकर सूर, नंददास, कृष्णदास जैसे कृष्ण भक्त संगीतज्ञ कवियों से आदर जुड़ जाती है। पीछे 16वीं शती से तो ब्रजभाषा में अनेक भक्त कवियों ने भक्तिकाव्य की रचना की। इस साहित्य के आधार पर ही भक्तिकाल को स्वर्णयुग कहा जाता है।

BRAOU

ब्रजी की पदशैलीः

निर्गुणियों संतों ने पदशैली का प्रयोग किया। इनके पदों की भाषा ब्रजी या उससे अधिक प्रभावित है। वैष्णव भक्त कवियों में इस शैली का चरम विकास हुआ। इस साहित्य रूप का विकास 12-13वीं शती में हो गया था। 13वीं शती के खुसरो, गोपाल नायक जैसे गायकों के गेय पदों से इसका परिचय मिलता है। नाथ कवियों ने भी गेय पदों की रचना की। ब्रजभाषा के गेय पदों का प्रभाव आसाम से गुजरात तक देखा जा सकता है आसाम के शंकरदेव ने ब्रजभाषा में पद लिखे राजस्थान में इस शैली का विकास मीरा की पदावली में मिलता है। इसमें ब्रजी और राजस्थानी की धूप-छांह मिलती है।

ब्रजी के पदशैली का बृहत्तर क्षेत्र मिलता है। असम के शंकरदेव, महाराष्ट्र के नामदेव, गुजरात के भक्त कवि, राजस्थान की मीरा उल्लेखनीय है। मध्यकालीन भाक्तकवियों ने तो ब्रजभाषा की पद रचना को चरमस्पर्शी बना दिया। कृष्ण भक्त कवियों ने इस परंपरा का विशेष उपकार किया। इस परंपरा में सूरदास, अष्टछाप के अन्य कवि, हरिदासजी, हित-हरिवंशजी जैसे कवि आते हैं। रामभक्ति शाखा के कवियों ने भी ब्रज भाषा में पदरचना की। तुलसी की 'गीतावली' और 'विनय पत्रिका' के गीतों की भाषा ब्रजी ही है।

श्रृंगार शौर्यकाव्य (रीतिकाल):

ब्रजभाषा काव्य की रीतिधारा में श्रृंगार या लौकिक श्रृंगार का विस्फोट है। रीतिकालीन ब्रजभाषा श्रृंगार काव्य के दो प्रेरणा स्त्रोत हैं: ऐहिक श्रृंगार की प्राकृत परंपरा तथा भक्त कवियों की भक्ति मिश्रित श्रृंगारी रचनाएँ, श्रृंगार मिश्रित भक्तिकाव्य की परंपरा जयदेव (गीत गोविंद), बौध्द वज्रयानी साहित्य, तंत्र साधना और साहित्य विद्यापति, मधुर भक्ति से संबंधित रामकृष्ण संबंधी साहित्य तथा अन्य मधुर भक्ति संप्रदायों के कवियों को जोड़कर बनती है। निर्गुणियों की रहस्यानुभूति में भी प्रस्तुत या अप्रस्तुत रूप से श्रृंगार समन्वित है।

ऐहिक श्रृंगार संबंधी रचनाएँ संस्कृत प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषा में बहुत पहले से ही मिलने लगती है। इस परंपरा में आर्येतर जन जातियों का योगदान पर्याप्त रहा इस परम्परा का उच्चतम शिखर हाल की सतसई है।

आधुनिक युग में भारतेन्दु युग तथा द्विवेदी युग तक ब्रजभाषा काव्य की परंपरा चली आई है। भारतेन्दु ने तो अपनी काव्य रचना के लिए ब्रजभाषा को ही माध्यम बनाया, चाहे गद्य के लिए उन्होंने खड़ी बोली हिन्दी को अपनाया हो। भारतेन्दु के परिवार के अन्य कवि भी ब्रजी में लिखते रहे। जगन्नाथ दास रत्नाकर ने "गंगावतार", "उध्दव शतक" जैसी रचनाएँ की। सत्यनारायण "कविरत्न" तो आधुनिक युग में ब्रज कोकिल ही कहे जाते हैं। इन्होंने ब्रजी का व्यापक प्रयोग अपनी साहित्य साधना में किया। इनका 'भँवरगीत' प्रसिध्द रचना है। पं.रामचन्द्र शुक्ल ने "बुध्दचरित" ब्रजी में ही प्रस्तुत किया। लाला भगवानदास हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त की प्रारंभिक रचनाएँ ब्रजी में ही है। यह परंपरा "सनेही" जी तक चली। आज भी फुटकर रचना ब्रजी में होती है किन्तु यह परंपरा भी अत्यंत शिथिल होती जा रही है। साहित्य के क्षेत्र में खड़ी बोली हिन्दी का ही प्रयोग अधिक हो रहा है। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि आज ब्रजभाषा में साहित्य रचा ही नहीं जाता। आधुनिक युग में भी मुकुन्द चतुर्वेदी ने "कृष्ण कौसाभ" गोविंद कविने 'महाराज' तथा ऋषिकेश चतुर्वेदी ने 'रामकृष्णायन' जैसे प्रबंध काव्यों की रचना की।

काव्य के अतिरिक्त अन्य विधाएँ भी ब्रजभाषा में लिखी गई। रामनारायण अर्गवाल, बरसानेलाल चतुर्वेदी, मोहन स्वरूप भाटिया आदि ने रेडियो नाटक, रूपकों की रचना की। गोपाल प्रसाद व्यास, बरसाने लाल चतुर्वेदी और काका हाथरसी ने हास्य, व्यंग की कविताएँ ब्रजी में रची है।

6.4 पाठ का सारांश

BRAOU

हिन्दी की कई बोलियाँ है। इनमें से कुछ में साहित्य रचना भी हुई है। और कुछ में केवल लोकसाहित्य मिलता है। जिन बोलियों में साहित्य रचना हुई है, उनमें ब्रज, अवधी, मैथिली और खड़ी बोली उल्लेखनीय है। इस पाठ्यक्रम में ब्रजी और अवधी की साहित्यिक गतिविधियों का परिचय दिया गया है।

साहित्य की दृष्टि से सबसे अधिक महत्वपूर्ण ब्रजभाषा है। यह मूलतः ब्रजक्षेत्र की भाषा है। इसकी स्थिति मध्यप्रदेश की है इसका केन्द्र मथुरा हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से इस भाषा का संबंध शौरसेनी अपभ्रंश से है। शौरसेनी अपभ्रंश अपने समय में सबसे बडे क्षेत्र की काव्य भाषा थी। इसने एक प्रकार से सारे उत्तर भारत का नाम लिया था। इसकी विरासत ब्रजभाषा को मिली। हिन्दी के आदिकाल की जैन साहित्यधारा, रासो काव्यधारा में ब्रजी के तत्व सघन रूप से मौजूद है। रासो साहित्य जिस पिंगल भाषा में लिखा गया, उसकी आधारभूत भाषा ब्रजी ही है। मध्यकाल में आकर भक्ति साहित्य और रीतिकालीन साहित्य की भाषा प्रमुख रूप से ब्रजी ही बनी रही। ये दोनों युग ब्रजभाषा काव्य के कारण ही स्वर्णयुग कहलाते हैं। आधुनिक युग में भारतेन्दु काल तक ब्रजभाषा सहित्य की परंपरा चली आई है। रत्नाकर जैसे कवियों ने अपनी रचनाओं से ब्रजभाषा काव्य की परंपरा को आगे बढ़ाया। इसके बाद खडीबोली हिन्दी काव्य की भाषा बन गई और ब्रज भाषा पिछड गई। फिर भी फुटकर साहित्य की रचना इसमें आज भी होती है।

दूसरी साहित्यिक भाषा अवधी है। आदिकालीन हिन्दी काव्य की भाषा में इसके तत्व मिलते है। निर्गुणियों काव्य की भाषा को मूल रचना तो खड़ी बोली की है पर उसमें अवधी के तत्व भी पर्याप्त मिलते हैं। जायसी आदि सूफी कवियों ने काव्यभाषा के रूप में अवधी का संस्कार किया और इसमें प्रचुर सूफी काव्य की रचना हुई। सगुन भक्ति धारा के काव्य की रामभक्ति शाखा का काफी साहित्य अवधी में रचा गया। इस शाखा के सर्वोच्च कवि तुलसीदास है। कुछ कवियों ने कृष्ण काव्य भी अवधी में लिखा। आधुनिक युग में यह प्रमुख काव्यभाषा के रूप में तो मान्य नहीं है, फिर भी फुटकर साहित्य की रचना इसमें होती है।

6.5 पारिभाषिक शब्दार्थ

पारिभाषिक शब्द न होने के कारण अर्थ नहीं दिया गया।

6.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.6.1 (अ) श्रेणी के प्रश्नोत्तर (250 शब्दों में)

1. आदिकालीन साहित्यिक बोलियों/शैलियों का परिचय दीजिए।
2. मध्यकालीन साहित्यिक भाषा पर विचार कीजिए।
3. अवधी के विकास की रूपरेखा प्रस्तुत कीजिए।
4. ब्रजभाषा के विकास का निरूपण कीजिए।
5. हिन्दी साहित्य में अवधी के प्रयोग का इतिहास प्रस्तुत कीजिए।

6.6.2 (ब) श्रेणी के प्रश्नोत्तर (125 शब्दों में)

1. अवधी भाषा की व्याकरणिक विशेषताएँ बताइए।
2. ब्रजभाषा की व्याकरणिक विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
3. अवधी के आरंभिक विकास पर विचार कीजिए।
4. आधुनिक काल में ब्रजभाषा के स्वरूप और साहित्य का विश्लेशण कीजिए।
5. अवधी और ब्रजभाषा के साथ हिन्दी की अन्य बोलियों और विभाषाओं के योग को स्पष्ट कीजिए।

BRAOU

6.7 नमूने के प्रश्नोत्तर

6.7.1 (अ) श्रेणी के उत्तर (250 शब्द)

प्रश्न : अवधी के विकास की रूपरेखा प्रस्तुत कीजिए।
उत्तर : अवधी और हिन्दी एक ही सांस्कृतिक क्षेत्र से संबंधित है। इनके संबंध में अध्ययन से विद्वान इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि हिन्दी और अवधी एक ही भाषा की बोलियाँ है। अवधी का दूसरा नाम कोसली भी है। मध्य हिन्दी काल में अवधी प्रमुख साहित्यिक भाषाओं में से एक थी। इस क्षेत्र की कई बोलियों ने विकसित और समान्वित होकर अवधी भाषा का मिश्रित रूप धारण किया। अवधी का क्षेत्र उन्नाव, सीतापुर, इलाहाबाद और जैनपुर जिले हैं। यहाँ की अवधी में परस्पर बहुत भेद हैं। ये सभी भेद मिलकर साहित्यिक अवधी का सूत्रपात करते हैं।

अवधी का विकास :

ग्रियर्सन अवधी को शौरसेनी और मागधी के बीत की अर्धमागधी से उत्पन्न माना है। बाबूराम सक्सेना ने कहा है कि अवधी जैन ग्रंथों में प्रयुक्त अर्धमागधी से नहीं मिलती। वह पालि से अधिक समानताएँ रखती है।

अवधी की उत्पत्ति अन्य आधुनिक आर्यभाषाओं की तरह 100-1200 ईसवीं के आसपास हुई। कुवलयमाला में कौसली भाषा का उल्लेख मिलता है जिसे पूर्वी हिन्दी या अवधी का पूर्व रूप माना जा सकता है। अवधी भाषा के विकास को तीन कालखंडों में बाँटा जा सकता है। 1) प्रारंभ से 1400 तक, (2) 1400 से 1700 तक, (3) 1700 से आज तक। 100 ई. से पहले अवधी के रूप भी झलक प्राकृत, अपभ्रंश और अवहट्ठ में मिल जाती है।

1400 ईसवीं तक अवधी का निर्माण काल है और उसके बाद 1700 उसका मध्य काल है। अवधी भाषा का प्रयोग उत्कर्ष पर पहुँचता गया। तुलसी ने इसी भाषा में मानस की रचना की है। जायसी ने ठेठ अवधी का प्रयोग किया। इस समय भारत पर मुसलमानों का शासन हो गया था। भारत में इस्लमी धर्म का प्रचार बदला गया। अवधी को अपनाने वाले कई कवि सूफी संत या साधक थे। सहज ही अवधी भाषा में शासन संबंधी, मुस्लीम धर्म सम्बन्धी और सूफी साधना संबंधी शब्दों का प्रयोग होने लगा। मध्यकाल की 300 वर्षों की अवधी में भाषा का विकास स्वाभाविक है।

6.7.2 (ब) श्रेणी के प्रश्नोत्तर (125 शब्दों में)

प्रश्न : अवधी भाषा की व्याकरणीय विशेषाएँ बताइए।

उत्तर : खड़ी बोली हिन्दी के प्रायः सभी स्वरों और व्यंजनो का प्रयोग होता।

1) है। ड, ढ़ न्ह, म्ह रह का प्रयोग दृष्टव्य है। ए और ओ के ह्रस्व और दीर्घ दोनों रूप है। स श ष के स्थान पर केवल स मिलता है। या सागर के स्थान पर ल का प्रयोग-हल हर, मूसल-मूसर/संयुक्त ध्वनियों को अलगाने की प्रवृत्ति भगत, रकत।
2) संज्ञा के सामान्य दीर्घ और दीर्घतर रूप मिलते हैं। घोड़ा-घोड़वा, घोडउना कर्ताकारक ने का प्रयोग नहीं होता।
3) प्राचीन साहित्य में सहायक क्रिया का प्रयोग कम ही हुआ है। "अह, अछ, य, रह, अह और ह" का ही प्रयोग सहायक क्रिया के रूप में है।
4) संज्ञा विशेषण और भूतकालिक कृतन्त आकारान्त होते हैं। संज्ञार्थक क्रिया की रचना में ब प्रत्यय का योग होता है। देखब, जाइब आदि। भविष्य काल की रचना में भी 'ब' प्रत्यय मिलता है।

6.8 पठनीय सामग्री

1) दक्षिणी हिन्दी का गद्य और पद्य - डॉ. श्रीराम शर्मा
2) पुरानी हिन्दी - चन्द्रधर शर्मा गुलेरी।
3) ब्रजभाषा - डॉ. धीरेन्द्र वर्मा।
4) भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी - डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी
5) हिन्दी साहित्य का आदिकाल - डॉ हजारी प्रसाद द्विवेदी।
6) हिन्दी साहित्य की भूमिका - डॉ हजारी प्रसाद द्विवेदी।
7) अवधी और उसका साहित्य - डॉ त्रिलोकी नारायण दीक्षित।
8) जैन साहित्य का इतिहास - नाथुराम प्रेमी
9) सूर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य - डॉ शिव प्रसाद सिंह
10) हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग - डॉ नामवर सिंह

BRAOU

इकाई-7: खड़ीबोली हिन्दी का ऐतिहासिक विकास और प्रसार

7.0 विषय प्रवेश
7.1 उद्देश्य
7.2 पाठ परिचय
7.3 मूल पाठ
7.3.1 खड़ीबोली के विकास के कारण
7.3.2 संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश
7.3.3 आदिकाल में विकास
7.3.4 मध्यकाल में विकास
7.3.5 आधुनिक काल में विकास
7.3.6 साहित्येतर क्षेत्रों में प्रयोग
7.3.7 संपर्क भाषा, राष्ट्र भाषा, राजभाषा
7.4 पाठ का सारांश
7.5 शब्दार्थ
7.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
7.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न
7.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न
7.7 नमूने के प्रश्नोत्तर
7.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर
7.7.2 'ब' श्रेणी के प्रश्नोत्तर
7.8 पठनीय पुस्तकें

BRAOU

7.1 उद्देश्य

इस पाठ में खड़ी बोली हिन्दी के ऐतिहासिक विकास और प्रसार पर प्रकाश डाला गया है। इस पाठ के अध्ययन से आपः

- राष्ट्रभाषा हिन्दी की आवश्यकता और उसकी भूमिका पर विचार कर सकेंगे।
- राजभाषा हिन्दी के विकास और उसकी संरचनात्मक विशेषताओं पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- 'दक्खिनी हिन्दी' की विशेषताओं को स्पष्ट कर सकेंगे।
- 'संपर्क भाषा' हिन्दी के स्वरूप को रेखांकित कर सकेंगे।
- हिन्दी की अखिल भारतीय स्वीकार्यता को उसकी प्रकृति के संदर्भ में समझ सकेंगे।
- खड़ीबोली हिन्दी की प्रमुख विशेषताओं को रेखांकित कर सकेंगे।

7.2 पाठ-परिचय

प्रस्तुत पाठ में बोली के रूप में प्रचलित "खड़ीबोली" से मानक हिन्दी का जो स्वरूप विकसित हुआ है उसका ऐतिहासिक व रूपगत विवेचन प्रस्तुत किया गया है। वैदिक कालीन संस्कृत से क्रमशः प्राकृत और अपभ्रंश युग में जो लोक भाषा का विकास हुआ उसका परिचय देते हुए हिन्दी में उसकी संरचनात्मक विशेषताओं को उभारा गया है। हिन्दी भाषा का विकास आदिकाल, मध्यकाल, और आधुनिक काल में बांट कर देखते हुए प्रत्येक काल में उसकी साहित्यिक उपलब्धियों भाषिक विशेषताओं और

सामाजिक परिपेस्य के निरूपण का प्रयत्न किया गया है। खड़ीबोली हिन्दी के विकास में 'दक्खिनी' के योगदान को संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है और "हिन्दी" "उर्दू" के संदर्भ में भी खड़ी बोली हिन्दी को देखा गया है।

प्रस्तुत पाठ का प्रमुख उद्देश्य यह कि इसके द्वारा विद्यार्थी को खड़ी बोली शब्द, उसके प्रचलन और उसके हिन्दी भाषा के रूप में विकास का परिचय मिल सके। खड़ी बोली के स्त्रोत शौरसेनी प्राकृत से चर्चा प्रारंभ करते हुए उसके आधुनिक युग में व्यगयावाद तक के विकास का पूरा परिचय देने का प्रयत्न इस पाठ में है जिससे हिन्दी के ऐतिहासिक विकास का पूरा परिचय विद्यार्थी को मिल सके।

सर्वप्रथम हिन्दी के ऐतिहासिक क्रम को समझने के लिए कुछ मूल तत्व दिए गए हैं। उसके बाद प्राकृत युग से लोक भाषा के प्रारूप के साथ खड़ीबोली के विकास को देखते हुए उसे तीन कालों में क्रमबद्ध ढंग सो रखा गया है। इस क्रम में हिन्दी की संरचनात्मक ऐतिहासिक विशेषताओं, साहित्यिक प्रवृत्तियों, रचनाकारों, और सामाजिक राजनैतिक परिस्थितियों की प्रसंगानुसार चर्चा की गई है।

7.3 मूलपाठ

7.3.1 खड़ीबोली के ऐतिहासिक विकास के कारण

किसी भी भाषा के ऐतिहासिक विकास के पीछे कई कारण होते है। इन कारणों का प्रभाव भी उस भाषा पर पड़ता है और उसके प्रसार का दायित्व भी इन्हीं कारणों पर होता है। यदि हम खड़ीबोली हिन्दी के विकास को देखने का प्रयत्न करे तो कई ऐसे कारण हैं जिन पर हमें विचार करना होता है। यह कारण या तथ्य हिन्दी के ऐतिहासिक विकास को समझने में हमारी दृष्टि को वैज्ञानिक बनाते हैं।

BRAOU

1. भारतीय आर्य भाषाओं की उत्पत्ति के कुछ समय बाद ही भारत विदेशी आक्रमण द्वारा आक्रांत हो गया।

2. इन विदेशी आक्रमणों की अपनी संस्कृति सभ्यता और भाषा थी। ये सब भारतीय समाज में जुलने मिलने में एक सीमा तक सफल भी हुऐ। उन्होंने यहाँ की सभ्यता, संस्कृति और भाषा को अपनाने के साथ–साथ यहाँ की भाषा ओं को प्रभावित भी किया।

3. मुस्लिम शासनकाल में भारतीय राजनीति फिर से दिल्ली में केंद्रित हुई।

4. राजपथों, नगरों के निर्माण से व्यापार का प्रसार हुआ और अंर्तप्रदेशीय बोलियों के बोलने वालों में संपर्क के साथ ही सभी भाषाओं को प्रसार का अवसर मिला।

5. 18 वीं, 19 वी. शताब्दी में अंग्रेजों ने भारत को पराधीन ही नहीं किया बल्कि उन्होंने भारतीय संस्कृति को प्रभावित करने और मोड़ने का भी प्रयत्न किया।

6. भाषा, सभ्यता और संस्कृति की वाहिका होती है। अंग्रेजों ने इसे भी विवाह का विषय बना हिन्दी, उर्दू का भेद पैदा करने की कोशिश की। महात्मा गांधी ने इस सांप्रदायिक भेद को मिटाने के लिए हिन्दुस्तानी का पक्ष लिया।

7. स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हिन्दी को राजभाषा के रूप में परिनिष्ठित करने की आवश्यकता ने हिन्दी के स्वरूप को संस्कृतनिष्ठ बनाया, पारिभाषिक शब्दों के निर्माण में हिन्दी की संस्कृतनिष्ठता को देखा जा सकता है।

8. "हिन्दी शब्द की सृष्टि हिन्दु रचनाकारों ने नहीं, मुस्लिम रचनाकारों ने ही की। तुलसी आदि इसके लिए "भाषा" शब्द का प्रयोग करते थे।

उपरोक्त सभी तथ्य हिन्दी के ऐतिहासिक विकास को समझने में सहायक होंगे। हिन्दी के ऐतिहासिक क्रम को संस्कृत के साथ जोड़ कर देखते हुए हम उस पर चर्चा करेंगे।

7.3.2 संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश

प्राचीन भारत में जब आर्य आए तो वे विभिन्न स्थानों पर बस गए। उनकी भाषा संस्कृत के दो रूप प्रचलन में रहे- वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत। विभिन्न स्थानों पर बसने के कारण उनकी व्यावहारिक संस्कृत का रूप विभिन्न स्थानों पर प्रादेशिक विशेषताओं से युक्त था, जिसे लौकिक संस्कृत कहा गया। आर्य यज्ञपरायण और कर्मकांडी थे जिनमें वे वैदिक सूत्रों का प्रयोग करते थे, जो वैदिक संस्कृत थी। वैदिक संस्कृत का सुरक्षित कोश और उसके आधार पर रचा गया संस्कृत भाषा का व्याकरण हमें आज भी उपलब्ध है। परन्तु लौकिक संस्कृत के स्वरूप का अनुमान हम अन्य, बाद में विकसित भाषा रूपों के आधार पर ही कर पाते हैं।

प्राचीन भारतीय आर्यभाषा का काल अर्थात् वैदिक, लौकिक संस्कृत का काल 500ई.पू. तक लगभग समाप्त हो जाता है। इसके बाद मध्यभारतीय आर्यभाषाओं का युग आता है। इस युग में प्राकृत रूप की प्रधानता रही है। प्राकृत युग में चार प्रकार की प्राकृत हमें दिखाई देती हैं :

1. शौरसेनी प्राकृत
2. मागधी प्राकृत
3. अर्ध मागधी प्राकृत
4. महाराष्ट्री और पैशाची प्राकृत

इसके बाद अपभ्रंश का युग आता है जिसे हम हिन्दी भाषा का आदिकाल भी कह सकते है इसका समय 1000 ईसवी से 1500 ईसवी तक माना जाता है। अपभ्रंश से सभी वैयाकरणों का अभिप्राय मानी जाती है। इनके वर्गीकरण भी शौरसेनी अपभ्रंश, मागधी अपभ्रंश, अर्धमागधी अपभ्रंश, पैशाची अपभ्रंश, महाराष्ट्री अपभ्रंश के नाम से किया गया है। वास्तव में देखा जाय तो संस्कृत भाषा के प्रयोग रूढ़ होने पर लोक प्रचलिक भाषा का विकास "प्राकृत" के रूप में हुआ था जो कालांतर में साहित्य सर्जन की रूढ़ भाषा बन गई। उसके परिनिष्ठित रूप के स्थिर हो जाने पर उसी लोक प्रचलित भाषा को "अपभ्रंश" शब्द द्वारा अभिहित किया गया। अपभ्रंश को समृद्ध बनाने का श्रेय जैन और सिद्ध कवियों, लेखकों को है। इन्होंने अपने धर्म प्रचार के लिए अपभ्रंश को माध्यम बना लिया।

BRAOU

7.3.3 आदिकाल

अपभ्रंश जिसे 'अपभ्रष्ट' कहा गया था, इसका एक और नाम 'अवहट्ट' भी हमें मिलता है इस युग में भाषा के तीन रूप हमें प्रमुखतः दिखाई देते है।

क) अपभ्रंशाभास रूपः यह रूप अपभ्रंश रूपों से प्रभावित है जिसमें हमें सिद्धों नाथों और जैनियों का साहित्य मिलता है।

ख) पिंगल रूपः स्थानीय भाषा और मध्य देश या ब्रजभूमि की भाषा के मिश्रित रूप को पिंगल कहा जाता है।

ग) डिंगल रूपः अपभ्रंश और राजस्थानी के मिश्रित रूप डिंगल कहा गया है। चारणों की वीरगाथाओं में यही भाषा रूप प्रयुक्त है। हिन्दी के आदिकालीन साहित्य की रचनाओं जैसे "बीसलदेव रासो", "पृथ्वीराज रासो" आदि की भाषा डिंगल ही है।

Dr BRAOU LIBRARY

Acc. No: H-769
Class No: 491.43 HIN

इस युग के उत्तरार्द्ध में ऊपर के तीन प्रमुख भाषा रूपों के अतिरिक्त दो और भाषा रूप विकसित होते हुए दिखाई देते हैं। एक रूप पुरानी हिन्दी का है जिसे 'हिन्दवी' कहा गया है और जिसमें अरबी, फ़ारसी रूपों की अधिकता है। वास्तव में यही भाषा रूप आगे चल कर "खड़ी बोली" हिन्दी के रूप में विकसित होता है। इसी में 12वीं शताब्दी में अमीर खुसरो की रचनाएं "खालिक बारी" मिलती है, जिनसे खड़ीबोली का आदि ग्रंथ माना जाता है। दूसरा रूप पूर्व में विकसित पुरानी से मैथिली का है जिसमें महान कवि विद्यापति की रचनाएं उपलब्ध हैं।

इस आदिकालीन स्थिति को ध्यान में रखते हुए ही हम आगे खड़ीबोली हिन्दी के विकास को देखेंगे। 'अपभ्रंश' भाषा रूप लोक व्यवहार में प्रयुक्त भाषा रूप है। नामवर सिंह ने लिखा है 'प्रत्येक युग में साहित्य रूढ़ भाषा के समानांतर कोई न कोई देशी भाषा अवश्य ही रही है और यही देशी भाषा उस साहित्यिक भाषा को नया जीवन प्रदान कर सदैव विकसित करती चलती है। यह बात बिलकुल सही है। पालि और प्राकृत में प्रचलित ध्वनि परिवर्तन संबंधी सभी प्रवृत्तियां अपभ्रंश ने नए सुबंतों (क्रिया रूपों) और तिङ्तों (क्रिया के अतिरिक्त अन्य व्याकरणिक तत्व) की रचना की। परसर्गों का प्रयोग इसमें अधिक होने लगा। संयुक्त क्रिया का प्रयोग बढ़ा। ध्यान दीजिए कि अपभ्रंश की प्रायः सभी ध्वनियाँ हिन्दी में आ गई हैं। 'ऐ' "औ" जैसी संयुक्त ध्वनियाँ हिन्दी में भी विकसित हुई। अपभ्रंश लोकभाषा थी अतः उसमें तद्भव और देशज शब्दों की संख्या अधिक थी, जिनका संकलन हमें बारहवीं शताब्दी में निर्मित हेमचन्द के "देशी नाममाला" शब्द कोश में मिलता है आदिकालीन हिन्दी में भी यह प्रवृत्ति हमें दिखाई देती है और आज की हिन्दी में भी देशज शब्दों की संख्या पर्याप्त है। आदिकाल में हिन्दी भाषा अपभ्रंश के अति निकर थी, कारण अपभ्रंश से ही उसका उद्भव हुआ था। ऊपर की कुछ विशेषताओं के अतिरिक्त आदिकाल की हिन्दी की कुछ अन्य विशेषताएँ इस प्रकार हैः-

1. च, छ, ज, झ संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश में स्पर्श व्यंजन थे। आदिकालीन हिन्दी में ये स्पर्श, संघर्षी हो गए।
2. न, ल, स संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश में दंत्य ध्वनियाँ थी, आदिकालीन हिन्दी में ये वर्त्स्य हो गए।
3. अपभ्रंश में ड़, ढ़ व्यंजन नहीं थे, आदिकालीन हिन्दी में इनका विकास हुआ।
4. न्ह, म्ह, ल्ह पहले संयुक्त व्यंजन थे, अब वे क्रमशः न, म, ल के महाप्राण रूप हो गए।
5. आदिकालीन हिन्दी में नपुंसक लिंग का प्रयोग लगभग समाप्त हो गया।
6. अपभ्रंश वाक्यों में शब्दक्रम निश्चित नहीं थी, वाक्य रचना में यह धीरे-धीरे निश्चित होने लगा था।

BRAOU

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का आधार अपभ्रंश ही है। खड़ीबोली, का विकास शौरसेनी अपभ्रंश से माना जाता है। शौरसेनी से गुजराती, राजस्थानी पश्चिमी हिन्दी, पहाड़ी विकसित हुई, मागधी से बिहारी, बंगला, अयामी, उड़िया का विकास हुआ, अर्धमागधी से पूर्वी हिन्दी विकसित हुई और महाराष्ट्री से मराठी। आदिकाल में ही मुसलमानों के साथ बढ़ते हुए संपर्क के कारण मुसलमानी भाषाओं फ़ारसी अरबी, तुर्की आदि के कई शब्द हिन्दी में आ गए। इस काल में एक ओर चंदबरदायी (पृथ्वीराज रासो), नरपति नाल्ह (बीसलदेव रासो), जगनिक (आल्हाखंड) की रचनाएं मिलती हैं, दूसरी ओर सिधों, नाथों, जैनियों का साहित्य और विद्यापति की मैथिली में रचित रचनाएं मिलती हैं; तीसरी ओर ख्वाड़ा बंदेलवाड़, ख्वाजा़ मसअद, अमीर खुसरो आदि की हिन्दवी में रचित रचनाएं भी मिलती हैं।

7.3.4 मध्यकाल

हिन्दी भाषा का मध्यकाल 1600 ई. से 1800ई. तक निर्धारित किया गया है। मुस्लिम शासन का यह काल हिन्दी भाषा के निखार और हिन्दी साहित्य के उत्थान का काल था। इस काल का भक्तियुग हिन्दी साहित्य का 'स्वर्ण युग' कहा जाता है। यह काल राजनीतिक स्थिरता, व्यवस्था और शान्ति का काल था। उत्तर, के शासकों के प्रश्रय व प्रोत्साहन से देशी भाषाओं को और उनके साहित्य को विकसित होने का अवसर मिला। इस युग का साहित्य मुख्य रूप से पद्यात्मक था। काव्य ग्रंथों की टीका के रूप में कुछ गद्य रचनाएं भी मिलती हैं।

इस काल में भाषा के दो मुख्य रूप विकसित हुएः ब्रज और अवधी। ब्रज का विकास शौरसेनी प्राकृत के अपभ्रंश रूप से हुआ था जबकि अवधी का संबंध अर्धमागधी प्राकृत के अपभ्रंश रूप से माना गया है। ब्रज हिन्दी क्षेत्र के पश्चिम में और अवधी उसके पूर्व में विकसित हुई। सूफी कवियों कुतुबन, मंझन, जायसी और रामभक्त कवि तुलसी ने अवधी के विकास में योगदान दिया। ब्रजभाषा का प्रयोग केवल पश्चिम क्षेत्र में ही नहीं हुआ बल्कि वह संपूर्ण हिन्दी क्षेत्र में साहित्य का माध्यम बनी और मध्यकाल से आधुनिक काल तक इसमें रचनाएं होती रहीं।

मध्यकाल के पूर्वार्द्ध में मुख्य रूप से धार्मिक साहित्य रचा गया। अवधी राम साहित्य का माध्यम रही और ब्रज कृष्ण साहित्य का। अवधी में सूफी काव्य रचना का आदर्श उपस्थित हो चुका था। इस काल का उत्तरार्द्ध रीति साहित्य का समय है। केशव, भूषण, देव, बिहारी आदि की रचनाएं इसका प्रमाण हैं। परवर्ती भक्ति साहित्य में खड़ीबोली का विन्यास यत्र तत्र दिखाई देता है जो आकस्मिक है या अनजाने में बढ़ते हुए संपर्क के कारण आया हुआ माना गया है। आधुनिक भारतीय आर्यभाषा काल में खड़ीबोली सांस्कृतिक प्रेरण के आभाव में ही दीर्घकाल तक ब्रजभाषा को विधिवत् अपदस्थ न कर सकी। सूफी कवियों ने खड़ीबोली की इस दुर्बलता को लक्ष्य करके ही संभवतः अवधी को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया जो ब्रजभाषा से होड़ लेने लगी थी। उत्तरार्द्ध में रीतिकालीन कवियों द्वारा खड़ी बोली के विकास की दिशा में सजग प्रयास आरंभ होता है। इसके कारण ही खड़ीबोली की छाया हमें ब्रजभाषा पर पड़ती हुई दिखाई देने लगती है। इतना ही नहीं इस युग में खड़ीबोली में स्वतंत्र रचनाएं भी लिखी जाने लगी थीं। उदाहरण के लिए रहीम के 'रेख़्ते' और घनानंद के 'बिरह लाला' जैसे ग्रंथों का नाम लिया जा सकता है।

साहित्य की उपलब्धता की दृष्टि से अवधी और ब्रज से भी प्राचीन साहित्य खड़ीबोली का है, इसमें संदेह नहीं। अमीर खुसरो आदि की रचनाएं इसमें मिलती हैं। मध्य युग के पूर्वार्द्ध में ही हमें 'दक्खिनी' भाषा रूप मिलता है जिसका विकास दक्षिण भारत में हुआ। मुस्लिम शासन काल में दिल्ली और मेरठ के आसपास बोली जानेवाली 'खड़ीबोली' दक्षिण में पहुँची। मुहम्मद तुगलक के शासन काल में दिल्ली के आसपास के अनेक मुसलमान दक्षिण में हैदराबाद, बीजापुर, गोलकोंडा पहुँचे। इनके साथ ही वहाँ की भाषा साहित्य और संस्कृति भी यहां पहुंची। उत्तर भारत की 'खड़ीबोली' कई बोलियों के मेलजोल से बोलचाल की भाषा के रूप में विकसित हो चुकी थी। 'दक्खिनी' रूप में फ़ारसी और मूल दक्षिणी भाषाओं के योग से एक भाषा विकसित हुई। इसे मुसलमान शासकों के दरबार में भी सम्मान मिला और मुस्लिम साहित्यकारों में भी इसे प्रतिष्ठा मिली। तेरहवीं शताब्दी से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक दक्खिनी का विकास काल माना जाता है। इसका बोलचाल का रूप आज भी आंध्रा, कर्नाटक, महाराष्ट्र के कुछ भागों में प्रचलित है। इसका साहित्यिक रूप भी अनेक कवियों में संग्रहित है। इसके प्रमुख साहित्यकारों में कुली कुतुबशाह, वज़ही, नुसरती, वली आदि प्रसिद्ध हैं। दक्खिनी का विकास काल लंबा है इसलिए इसमें कभी फ़ारसीकरण की प्रवृत्ति दिखाई देती है और कभी हिन्दीकरण की। इसके कुछ छंद देखे जा सकते हैं जो इसके और खड़ीबोली के संबंध को प्रमाणित करते हैं:

दखन में जो दखनी, मिठी बात का।
अदा नइं किया कोई उस छात का॥
(वज़ही, कुतुब मुश्तरी)

के दखनी जबां सूं इसे बोलना
जो सीपी ते मोती नमन सेलना॥
(सनती किरसा बेनज़ीर, 1714)

दक्खिनी भाषा और साहित्य पर बाबूराम सक्सेना, राहुल सांस्कृत्यायन और श्रीराम शर्मा ने अध्ययन प्रस्तुत किए हैं।

BRAOU

मध्यकाल में हिन्दी में क़, ख़, ज़, फ़ जैसी ध्वनियों का प्रयोग प्रारंभ हुआ क्योंकि अरबी, फारसी के आगत शब्दों के शुद्ध लेखन और उच्चारण की प्रवृत्ति उस समय थी। शसकों की शासन की भाषा या 'दरबारी भाषा' फ़ारसी थी अतः फ़ारसी का प्रचार प्रसार बढ़ा और हज़ारों की संख्या में फ़ारसी के शब्द और फ़ारसी के माध्यम से अरबी-तुर्की के शब्द हिन्दी में प्रविष्ट हुए। इस काल में धार्मिक साहित्य की प्रधानता थी इसलिए संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग भी बढ़ा। इस काल में हिन्दी का व्याकरण अपभ्रंश के प्रभाव से पूरी तरह मुक्त हो गया। परसर्गों व सहायक क्रियाओं का प्रयोग बढ़ा तथा हिन्दी बाक्य रचना पर फारसी वाक्य रचना का प्रभाव पड़ा, 'कि' का प्रयोग और आदर के लिए एक वचन क्रिया के स्थान पर बहुवचन क्रिया का प्रयोग हिन्दी में फ़ारसी के प्रभाव के कारण ही आया है।

7.3.5 आधुनिक काल

हिन्दी भाषा का आधुनिक काल 19वीं शताब्दी के आसपास से माना जाता है। इस समय तक अंग्रेजी की स्थिति भारत में सुदृढ़ हो चुकी थी। पश्चिमी सभ्यता, साहित्य और भाषा का आगमन भारत में हो चुका था। फ़ारसी का राजभाषा पद समाप्त हो चुका था और अंग्रेजी को उसके स्थान पर प्रोत्साहन मिल रहा था। अपना शासन वे सुचारू ढंग से चला सकें इसलिए अंग्रेजों ने यहाँ की भाषाओं को भी प्रोत्साहन करने का प्रयत्न किया। 'दक्खिनी' 18वीं शताब्दी में उत्तर भारत में 'उर्दू' के नाम से स्थिर ही रहीं थी। अंग्रेजों को शासन मुसलमानों से प्राप्त हुआ था अतः 'उर्दू' के प्रति उनका विशेष प्रेम था। हिन्दी मध्य देश की मुख्य देश की मुख्य भाषा थी अतः उसकी ओर भी उनका ध्यान गया। 'हिन्दी' 'उर्दू' के बीच एक भेद पैदा करना भी उनका लक्ष्य था ही। 'हिन्दी' 'उर्दू' के विकास के लिए ही अंग्रेजों ने कलकत्ता में कोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की। वास्तव में देखा जाय तो हिन्दी, 'उर्दू' एक ही भाषा की दो शैलियाँ हैं जिनमें भेद केवल लिपि का है। यदि 'उर्दू' के इतिहास को भी देखा जाय तो उसके लिए 'हिन्दी', 'रेख़्ता', 'हिन्दवी', हिन्दुस्तानी शब्दों के प्रयोग मिलते हैं। 'रेख़्ता' और 'हिन्दी' शब्द तो उर्दू के लिए उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक मिलता है। मीर और ग़ालीब ने भी 'उर्दू' के लिए 'हिन्दी' शब्द का ही प्रयोग किया है। अरबी-फ़ारसी बहुल भाषा को 'उर्दू' का नाम देने का श्रेय फोर्ट विलियम कालेज के अध्यापकों को है जो ब्रिटिश शासन की अलगाववादी नीति को बढ़ावा देना चाहते थे।

आधुनिक काल वैज्ञानिक अविष्कारों और औद्योगीकरण का काल था जिसके माध्यम से ब्रिटिश उपनिवेशवाद ने भारत में अपने पैर जमाए। 1857 की पराजय के बाद यह महसूस किया गया कि एक भाषा के माध्यम से ही राष्ट्रीय चेतना का निर्माण किया जा सकता है। उसी समय से हिन्दी स्वातंत्र्य चेतना की वाहिका बनी। सुधारवादी आंदोलनों ने हिन्दी के विस्तार में और भी योगदान दिया। दयानंद, राजाराम मोहन राय, महात्मा गांधी आदि ने हिन्दी के राष्ट्रभाषा पद की मांग की। इस उभरते जन आंदोलन के लिए गद्य की आवश्यकता थी जिसके उपयुक्त ब्रजभाषा नहीं थी, खड़ीबोली ही थी। अतः खड़ीबोली का परिस्किरण यहीं से प्रारंभ हुआ।

आधुनिक काल के पूर्वार्द्ध तक पद्य की भाषा ब्रज ही बनी रही। हिन्दी की गद्य शैली का जो विकास हुआ उसका प्रतिनिधित्व करने का श्रेय खड़ीबोली को मिला।

यहाँ खड़ी बोली शब्द के संदर्भ में जो विचार आए हैं उनकी चर्चा भी अनिवार्य है। खड़ी शब्द का प्रयोग दो अर्थों में किया गया है। एक तो दिल्ली मेरठ के आसपास बोली जानेवाली बोली के रूप में और दूसरे लिखित हिन्दी के शुद्ध रूप में। यह स्पष्ट है कि बोलचाल की खड़ीबोली से ही आज की हिन्दी का विकास हुआ है। खड़ीबोली शब्द के प्रयोग करने वालों में लल्लू जी लाल, सदल मिश्र और गिल क्राइस्ट के नाम प्रमुख हैं। कई विदेशी विद्वानों जॉन प्लेट्स केलॉग इत्यादि ने भी इस शब्द का प्रयोग किया है। सुधाकर द्विवेदी और चंद्रबली पांडेय इसे खरी बोली कहते हैं। भारतेन्दु युग में खड़ीबोली को नई भाषा नाम भी दिया गया। भारतेन्दु ने स्वयं भी, राजाशिवप्रसाद सितारे हिन्द ने भी और ग्रियरसन ने भी नई भाषा का प्रयोग खड़बोली के लिए किया है। लेकिन

यह कोई नई भाषा नहीं थी इस भाषा का पूर्व प्रचलित नाम हिन्दवी था। भारतेन्दु युग में गद्य के लिए इसका प्रयोग प्रारंभ होता है। उस समय तक इसका रूप परिनिष्ठित नहीं हुआ था और खड़ी बोली गद्य पर ब्रज, अवधी आदि का प्रभाव दिखाई देता था। आगे द्विवेदी युग में खड़ीबोली में एकरूपता आई और उसका रूप धीरे धीरे निखरने लगा और उस पर किसी बोली का भी प्रभाव नहीं था और यही खड़ीबोली हिन्दी का पर्याय बन गई।

इस काल में खड़ीबोली हिन्दी में निम्नलिखित विकास हुए:

1. अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार के कारण हिन्दी में ऑ (कॉलेज, डॉक्टर, ऑफिस) ध्वनि आ गई।

2. शब्दांत में 'अ' का लोप हो गया। अब हिन्दी उच्चारण में कोई भी शब्द अकारांत नहीं रहा।

3. इस युग में ब्रज, अवधी, भोजपुरी, मैथिली आदि बोलियों का व्याकरणीय स्वरूप निश्चित हो गया और खड़ीबाली भी इनके प्रभाव से मुक्त हो गई।

4. अंग्रेजी वाक्य रचना व शब्दावली ने हिन्दी वाक्य रचना व शब्दावली को प्रभावित किया।

साहित्यिक भाषा के रूप में हिन्दी का स्वरूप छायावाद युग में अपने चरम विकास पर पहुँचा। छायावाद के पहले के युग में हिन्दी का साहित्यिक रूप परिनिष्ठित न हो सका था। द्विवेदी युग में उसे काव्य भाषा के रूप में प्रयुक्त किया जा रहा था पर उसमें सौंदर्य व भावों की गहन अनुभूति को व्यक्त करने की क्षमता नहीं आ पाई थी। छायावाद युग में हिन्दी काव्य भाषा के रूप में पूर्ण विकास पा गई। छायावाद युग के चार प्रमुख कवियों ने प्रसाद, पंत, महादेवी, निराला ने इसके विविध प्रयोग द्वारा इसकी क्षमता को बढ़ा दिया। सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों को खड़ीबोली हिन्दी में व्यक्त किया गया और नाटक, निबंध, कहानी, उपन्यास आदि विधाओं में भी खड़ीबोली हिन्दी की अभिव्यक्ति क्षमता निखर कर सामने आई। छायावादी युग का समय 1918 से 1938 निर्धारित किया गया है। इस युग के पूर्वार्द्ध में अनेक कारणों से तत्सम शब्दों का प्रयोग हिन्दी में खूब बढ़ गया, प्रमाण स्वरूप महादेवी, प्रसाद आदि की कई रचनाएँ देखी जा सकती हैं। परन्तु इसके उत्तरार्द्ध में यह प्रवृत्ति कम होने लगी और कविता में भी सामान्य हिन्दी के प्रयोग की ओर रचनाकार प्रवृत्त हुए– निराला, पंत की अनेक रचनाएं इस बात का प्रमाण हैं। समस्त साहित्य में बोलचाल की भाषा को नए संदर्भ, नए अर्थ देकर प्रयुक्त करने की प्रवृत्ति बढ़ी और हिन्दी के नाटकों, उपन्यासों आदि में अरबी, फारसी, अंग्रेजी के जनप्रचलित शब्द प्रयुक्त होने लगे। आलोचना की भाषा इस समय भी संस्कृत बहुत और जटिल वाक्य रचना से बंधी रही।

BRAOU

7.3.6 साहित्येतर क्षेत्रों में प्रयोग

आधुनिक युग में खड़ीबोली हिन्दी का साहित्यिक क्षेत्र में विकास तो हुआ ही साहित्येतर क्षेत्रों में भी उसका प्रयोग इसी युग में शुरू हुआ। जिस परिनिष्ठित हिन्दी ने द्विवेदी युग में 'साधु हिन्दी' का रूप प्राप्त किया, उसका प्रयोग द्विवेदी युग में ही वैज्ञानिक विषयों और इतिहास, समाज शास्त्र आदि विषयों के लिए होने लगा था। द्विवेदी युग की प्रमुख पत्रिका सरस्वती में इन विभिन्न विषयों पर लेख छपते थे। राष्ट्रीय जागरण की माध्यम भाषा होने के कारण पत्रकारिता के क्षेत्र में भी हिन्दी का एक स्वरूप निर्मित हुआ और सुधारवादी आंदोलन के कारण सामाजिक और राष्ट्रिय समस्याओं से संबंधित लेख आधि भी इसमें आने लगे जिनमें समसामायिक भारतीय जन जीवन का चित्र प्रस्तुत होने लगा। नागरी प्रचारिनी सभा और हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना इसी समय हुई जिसमें हिन्दी के कोश निर्माण जैसे महत्वपूर्ण कार्य किए गए। न्यायालयों तथा विश्वविद्यालयों में भी हिन्दी का प्रवेश इसी काल में हुआ। आधुनिक युग में हिन्दी विकास का काल 19वीं शताब्दी के मध्य से आरंभ होकर 20वीं शताब्दी के मध्य तक, स्वतन्त्रता आंदोलन के साथ–साथ स्वतंत्रता की प्राप्ति तक चलता आया है।

7.3.7 संपर्क भाषा

हिन्दी का सामान्य प्रयोग संपर्क भाषा के रूप में अखिल भारतीय स्तर पर आधुनिक काल के भी पहले से होता रहा है। भारतीय भाषाओं के बीच और हिन्दी की अपनी बोलियों के बीच हिन्दी ने संपर्क भाषा के रूप में अपनी भूमिका निभाई है। कई क्षेत्रों मेंइस पर क्षेत्रीय प्रभाव भी पड़े हैं और इस क्षेत्रों में संपर्क भाषा का स्वरूप भी निर्मित हुआ है। कलकत्तिया हिन्दी, हैदराबादी हिन्दी, बंबइया हिन्दी, हिन्दी के इसी प्रकार के रूप हैं। जब एक से अधिक भाषा समुदाय एक दूसरे के संपर्क में आते हैं या एक ही भौगोलिक क्षेत्र में रहते हैं तब भाषा का यह रूप विकसित होने लगता है। ऐसे रूपों को भाषाविज्ञान 'पिजिन' नाम से अभिहित करता है। दोनों भाषाओं का व्याकरणीय रूप जटिल होता है। दोनों भाषाओं का सरलीकरण करते हुए दोनों के अवमिश्रण द्वारा ये रूप बनते हैं। यह अवमिश्रण संरचना के प्रत्येक स्तर पर होता है। उदाहरण के लिए बंबइया हिन्दी और हैदराबादी हिन्दी के कुछ ऐसे पक्ष देखे जा सकते हैं। ध्वनि के स्तर पर हाथ > हात, झूठा > झूटा, सेठ > सेट, चाय > चा, जाओ > जाव जैसे प्रयोग इनमें होते हैं। शब्द के स्तर पर भी कहना के स्थान पर बोलना का प्रयोग (उसने कहा > वह बोला), चाहिए के स्थान पर मांगना (मुझे पैसा चाहिए > मेरेकुँ पइसा मांगता) मेरा मुझे के स्थान पर 'अपन का' 'अपन को' का प्रयोग 'ही के स्थान पर 'च' का प्रयोग (दिखताच, बोलताच, उठताच) आदि को देखा जा सकता है। सामान्य रूप से कहा जाय तो हिन्दी संपर्क भाषा होने के कारण उसके अनेक क्षेत्रीय रूप बन गए हैं। इस हिन्दी पर क्षेत्र विशेष का प्रभाव रहता है। इसी आधार पर पूर्वी हिन्दी, पश्चिमी हिन्दी जैसे भेद भी किए गए हैं। संपर्क भाषा हिन्दी का बोलचाल का रूप भिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न है। कहीं वह हिन्दी की बोलियों से प्रभावित है तो कहीं भारती य भाषाओं से।

राष्ट्र भाषाः

संपर्क भाषा के अतिरिक्त खडी बोली हिन्दी की दो और भूमिकाएँ भी रही है राष्ट्रभाषा के रूप में, राजभाषा के रूप में। स्वतंत्रेता आंदोलन के समय इस बात को समझ लिया गया कि यदि देश की खोई हुई स्वतंत्रता, राष्ट्रीय एकता तथा अस्मिता (Identity) को पुनः प्राप्त करना है तो पूरे राष्ट्र में एक सांस्कृतिक लोकभाषा की परंपरा को स्थापित करना अनिवार्य है। इस दृष्टि से राष्ट्रभाषा के उत्थान को अनिवार्य माना गया और सभी विद्वानों ने, राष्ट्रनायकों ने हिन्दी को यह दायित्व दिया। राष्ट्र के चरित्र को उजाकर करने के लिए राष्टभाषा के उत्थान में सभी लग गए। राष्ट्रपिता गांधी ने इसीलिए हिन्दी प्रचार के काम को केवल भाषा प्रचार का काम न मानकर उसे जन-जन में राष्ट्रीय जागरण का आह्वान करने वाला माध्यम भी माना। इस प्रकार हिन्दी के राष्ट्रभाषा के रूप में प्रयोग प्रयत्न और ग्रहण का काम प्रारंभ हुआ। उमरते जन आंदोलन में जन भाषा हिन्दी का प्रयोग और प्रचार बढ़ा। जो क्षेत्र जितने जागरूक थे, वे राजनीतिक आंदोलन में उतने ही प्रभावशाली बने। इसलिए स्वभावतः हिन्दी में बोलचाल के शब्दों की भरमार हुई और हिन्दी भाषा को राष्ट्रभाषा बनने का गौरव प्राप्त हुआ। भारतीय भाषाओं और हिन्दी के माध्यम से होने वाले इस राष्ट्रीय समान्वयने हिन्दी में भारत की संपूर्ण सामाजिक-सांस्कृतिक विशिष्टताओं को उभर कर अपने अंदर आत्मसात किया। अतः राष्ट्रभाषा की दृष्टि से हिन्दी विकास एक ही भाषा या बोली का नाम नहीं हैं अपितु एक सामासिक (Composite) भाषा परंपरा की संज्ञा है जिसका आकार-प्रकार विभिन्न भाषाओं और बोलियों के ताने बाने से निर्मित हुआ है। भारत के लिए एक प्रतिनिधि भाषा की आवश्यकता है, यह बात स्वतंत्रता आंदोलन में ही स्पष्ट हो गई थी और वह भाषा अपेक्षाकृत अधिक लोगों द्वारा बोली जाने के कारण हिन्दी ही हो सकती है, यह भी निश्चित कर लिया गया था।

राजभाषाः

स्वतंत्रता प्रप्ति के बाद हिन्दी को 'राजभाषा' बनाया गया। संविधान की धारा 343 में यह कहा गया है कि 'संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागिरी होगी। राजभाषा के रूप में हिन्दी प्रशासनिक कार्यों और विधि संबंधी कार्यों की भाषा बनी तथा उसमें वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली का निर्माण भी प्रारंभ हो गया। राजभाषा के रूप में हिन्दी का स्वरूप कैसा हो इस पर भी संविधान की धारा 351 में विचार किया गया है- हिन्दी भाषा का प्रसार वृद्धि करना, उसका विस्तार करना ताकि वह

BRAOU

भारत की सामासिक संस्कृति के सब तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके, तथा उसकी आत्मीयता में हस्तक्षेप किये बिना हिन्दुस्तानी और अष्टम अनुसूची में उल्लिखित अन्य भारतीय भाषाओं के रूप, शैली और पदावली को आत्मसात करते हुए तथा जहाँ तक आवश्यक और वांछनीय हो वहाँ उसके शब्द भण्डार के लिए मुख्यतः संस्कृत से तथा गौणतः वैसी उल्लिखित भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि करना संघ का कर्तव्य होगा। इस दिशा में हिन्दी का विकास करने की दृष्टि से 1955 में राजभाषा आयोग का गठन किया गया जिसकी सिफ़ारिशों के अनुसार वैज्ञानिक तकनीकी शब्दावली हिन्दी में प्रस्तुत करने का कार्य, सभी प्रमुख सरकारी प्रपत्रों के अनुवाद का काम, सभी केन्द्रीय कर्मचारियों को हिन्दी में काम करने का प्रशिक्षण देना जैसे कार्य आरंभ किए गए। 'राजभाषा' के रूप में हिन्दी का विकास संविधान की धारा 351 को ध्यान में रखकर ही किया गया। सामान्य शब्दावली को पारिभाषिक बनाया गया जैसे फ़िल्माना, फसपैठिया, आकाशवाणी आदि। राजभाषा के रूप में हिन्दी विज्ञान, वाणिज्य, विधि आदि विषयों की भाषा भी बन गई। अतः उसमें अनेक शब्द अंग्रेजी से देवनागरी में लिप्यंतरीत करके ले लिए गए और संस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओं के आधार पर भी अनेक शब्द बनाए गए। हिन्दी का शब्द भंडार 'राजभाषा के रूप में बहुत विस्तृत हुआ और हिन्दी की अभिव्यंजना अधिक, सटीक, निश्चित, गहरी तथा समर्थ होती चली गई है।

राजभाषा के रूप में हिन्दी का यह विकास क्रमशः और व्यापक होता गया है। ज्ञान-विज्ञान के विविध क्षेत्रों में इसका प्रयोग अब होने लगा है। बोलचाल की भाषा के रूप में तो इसका प्रसार है ही, साथ ही साहित्य, पत्रकारिता, वाणिज्य, विज्ञान, खेलकूद, प्रशासन आदि अनेक क्षेत्रों में इसके प्रयोग दृढ़ व सुनिश्चित हुआ है। इन सभी क्षेत्रों में हिन्दी की संरचना भिन्न-भिन्न है। इस प्रकार के विविध रूपों को 'प्रयुक्ति' कहा जाता है। हिन्दी का यह स्वरूप बहुत ही विशिष्ट है। इसमें हमें अरजिस्ट्रीकृत जैसे शब्द भी मिलते हैं जैसे बजट सत्र, शेयर-बाज़ार, सूचना-ब्यूरो, रोज़गार अधिकारी, मतदान-बूथ आदि। कभी-कभी तीन स्त्रोतों से मिल कर भी एक शब्द निर्मित किया गया है जैसे अतिरिक्त ज़िला मजिस्ट्रेट (Additional District Megistrate) राजभाषा हिन्दी की एक बड़ी विशेषता शैली भेद का शब्द है। इसका एक मात्र कारण यह है कि हिन्दी के राजभाषा घोषित होने के पूर्व हिन्दी प्रवेश में प्रायः उर्दू राजभाषा थी जो अपनी परंपरा से संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश से संबंध नहीं थी। इसीलिए उस राजभाषा के अधिकांश पारिभाषिक शब्द अरबी, फ़ारसी और तुर्की के थे। जैसे अदालत, ज़िला, दफ़्तर, मुक़दमा, खज़ाना इत्यादि ये शब्द हिन्दी में आवश्यकतानुसार अपनाए भी गए। परन्तु हिन्दुस्तानी या उर्दू या दक्खिनी के ये शब्द भारत की सभी भाषाओं में नहीं है और इन्हें सभी भारतीय भाषाएं स्वीकार भी नहीं कर सकती। अतः संस्कृत शब्दों को प्रमुखता देना अखिल भारतीय स्वीकार्यता के लिए अनिवार्य माना गया। इसीलिए हिन्दी में पहले से प्रचलित अरबी, फ़ारसी शब्दों के साथ-स्थ संस्कृत के शब्द भी निर्मित किए गए हैं जैसे नामंज़ूर अर्ज़ी, अस्वीकृत आवेदन पत्र, करार-अनुबंध, हफनामा, शपथपत्र, दफ्तर-कार्यालय, पेश की गई दलीलें-प्रस्तुत तरक आदि। इसके साथ ही संस्कृत शब्दावली की प्रकृति प्रजनक (Generative) है जिसके एक मूल शब्द से अनेक शब्द निर्मित किए जा सकते हैं। यह प्रजनक शक्ति अई, हिन्दुस्तानी (देशज) शब्दों में नहीं है। उदाहरण के लिए संस्कृत शब्द राष्ट्र से राष्ट्रीय राष्ट्रीयकृत, राष्ट्रीयकरण, राष्ट्रीयकरण, राष्ट्रीयता आदि अनेक शब्द बनाए जा सकतें हैं। इस दृष्टि से शब्द बनाने की समता प्रचलित भाषा रूपों में नहीं है। अतः ये भाषा रूप साहित्य में प्रयुक्त होते हैं, हो सकतें है परन्तु हिन्दी के राजभाषा स्वरूप के पूर्ण विकास के लिए ये उतने उपयुक्त नहीं हैं।

7.4 सारांश

आधुनिक युग में खड़ीबोली हिन्दी का बहुमुखी विकास हुआ है। अनेक क्षेत्रों में इसने अपने स्वरूप को वैज्ञानिक बनाया है। हिन्दी का एक अखिल भारतीय स्वरूप राजभाषा के रूप में निर्मित हो चुका है। ज्ञान-विज्ञान के विकास को भारतीय भाषाओं में पहुँचाने का काम अंग्रेजी एक लंबे समय तक करती रही है। आज हिन्दी इस दायित्व को पूरी तरह निभा सकती है। भाषाओं के बीच संपर्क व ज्ञान-विकास के आदान-प्रदान में हिन्दी अनुवाद एवं महत्वपूर्ण भूमिका निभा भी रहे हैं। भारतीय भाषाओं में रचित साहित्य हिन्दी में प्रस्तुत होकर अखिल भारतीय स्तर पर अपनी पहचान

निर्मित कर सकता है। राजभाषा के रूप में हिन्दी की अखिल भारतीय स्वीकार्यता राष्ट्र को एक व संगठित करने में तथा राष्ट्र के विकास में सहायक हो सकती है। क्योंकि अपने देश, अपने परिवेश की भाषा द्वारा ही कोई राष्ट्र समुचित प्रगति कर पाता है। रूस, जापान जैसे देश इसके प्रमाण हैं। हिन्दी ने अपने विकास क्रम में इस बात को प्रमाणित भी कर दिया है कि वह ज्ञान-विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र की सक्षय अभिव्यक्ति कर सकती है। विभिन्न समयों में उपेक्षित हिन्दी अनेक विपरीत स्थितियों को लांघ कर अपने में भारतीय तत्वों को समेटती-पचाती हुई अपने इस चरम विकास तक पहुँची है। अखिल भारतीय संबंध को एक सूत्र में बांधने की उसमें पूरी क्षमता है। यह उसने समय-समय पर अपने भीतर अपेक्षित परिवर्तन करके सिद्ध भी कर दिया है। हिन्दी प्रारंभ से ही जीवन और लचीली प्रकृति वाली भाषा रही है।

पारिभाषिक शब्द और उनके अंग्रेजी पर्याय:

ध्वनि परिवर्तन
रूप
व्याकरणिक तत्व
व्यंजन
मध्यकाल
अवमिश्रण
संपर्क भाषा
राष्ट्रभाषा
राजभाषा
प्रयुक्ति

7.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

7.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न (250 शब्दों में उत्तर दीजिए)

1. हिन्दी भाषा के आदिकाल का विवेचन कीजिए।
2. हिन्दी भाषा के मध्यकाल पर संक्षिप्त लेख लिखिए।
3. आधुनिक काल में हिन्दी भाषा के विकास पर प्रकाश डालिए।
4. राष्ट्रभाषा हिन्दी की आवश्यकता और भूमिका पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।
5. राजभाषा हिन्दी के विकास व उसकी संरचनात्मक विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

7.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न (100 शब्दों में उत्तर दीजिए)

1. 'दक्खिनी' की विशेषताओं व ऐतिहासिकता को स्पष्ट कीजिए।
2. संपर्क भाषा हिन्दी और उसके स्वरूप की चर्चा कीजिए।
3. हिन्दी की अखिल भारतीय स्वतंत्रता को उसकी प्रकृति के संदर्भ में प्रमाणित कीजिए।

7.7 नमूने के उत्तर

7.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर

प्रश्न :हिन्दी भाषा के आदिकाल का विवेचन कीजिए।

उत्तर :अपभ्रंश के युग को हम हिन्दी का आदिकाल भी कह सकते हैं। इसका समय 1000 ईसवी से 1500 ई. तक माना जाता है। "अपभ्रंश" से सभी वैयाकरणों का अभिप्राय लोकप्रचलित भाषा ये है, अपभ्रंश भी प्राकृतों की भाँति स्वतंत्र लोक भाषाएं मानी जाती है। इसका वर्गीकरण शौरसेनी अपभ्रंश,

BRAOU

मागधी अपभ्रंश, अर्धमागधी अपभ्रंश, पैशाची अपभ्रंश, महाराष्ट्री अपभ्रंश के नाम से किया गया है। वास्तव में देखा जाय तो संस्कृत भाषा के प्रयोग रूढ़ होने पर लोकप्रचलित भाषा का विकास "प्राकृत" के रूप में हुआ था जो कालांतर में साहित्य सर्जन की रूढ़ भाषा बन गई, उसे परिनिष्ठित रूप के स्थिर हो जाने पर उसी लोकप्रचलित भाषा को 'अपभ्रंश' राष्ट्र द्वारा अभिहित किया गया। अपभ्रंश को समृद्ध बनाने का श्रेय जैन और सिद्ध कवियों-लेखकों को है। उन्होंने अपने धर्म प्रचार के लिए अपभ्रंश को माध्यम बना लिया।

अपभ्रंश जिसे अपभ्रष्ट कहा गया था, इसका एक और नाम 'अवहट्ट' भी हमें मिलता है। इस युग के भाषा के तीन रूप हमें प्रमुखतः दिखाई देते हैः

1. **अपभ्रंशाभास रूप :** यह रूप अपभ्रंश रूपों से प्रभावी है जिसमें हमें सिद्धों नाथों और जैनियों का साहित्य मिलता है।

2. **पिंगल रूप :** स्थानीय भाषा और मध्यदेश या ब्रजभूमि की भाषा के मिश्रित रूप को पिंगल कहा गया है।

3. **डिंगल रूप :** अपभ्रंश और राजस्थानी के मिश्रित रूप को डिंगल कहा गया है, चारणों की वीरगाथाओं में यहीं भाषा रूप प्रयुक्त है। हिन्दी के आदिकालीन साहित्य की रचनाओं जैसे 'बीसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो, आदि की भाषा डिंगल ही है।

इस युग के उत्तरार्द्ध में ऊपर के तीन प्रमुख भाषा रूपों के अतिरिक्त दो और भाषा रूप विकसित होते हुए दिखाई देते हैं। एक रूप पुरानी हिन्दी का है जिसे 'हिन्दवी' कहा गया है और जिसमें अरबी, फ़रसी रूपों की अधिकता है। वास्तव में यही भाषारूप आगे चल कर खड़ी बोली "हिन्दी के रूप में विकसित होता है, इसी में 12वीं शताब्दी में अमीर खुसरो की रचना 'खलि कबारी' मिलती है जिसे खड़ीबोली का आदिग्रंथ माना जाता है। इसका दूसरा रूप पूर्व में विकसित पुरानी मैथिली का है जिसमें महान कवि विद्यापति की रचनाएँ उपलब्ध है।

7.7.2 'ब' श्रेणी के प्रश्नोत्तर

प्रश्न : 'दक्खिनी' की विशेषताओं व ऐतिहासिकता को स्पष्ट कीजिए।
उत्तर : मध्य युग के पूर्वार्द्ध में ही हमें 'दक्खिनी' भाषा रूप मिलता है जिसका विकास दक्षिण भारत में हुआ। मुस्लिम शासन काल में दिल्ली और मेरठ के आस पास बोली जाने वाली 'खड़ी बोली' दक्षिण में पहुँची। मुहम्मद तुगलक के शासन काल में दिल्ली के आसपास अनेक मुसलमान दक्षिण में हैदराबाद, बीजापुर, गोलकोंडा पहुँचे, इनके साथ ही वहाँ की भाषा, साहित्य और संस्कृति भी यहाँ पहुँची। उत्तर भारत की 'खडी बोली' कई बोलियों के मेलजोल से बोलचाल की भाषा के रूप में विकसित हो चुकी थी। 'दक्खिनी' रूप में फारसी और दक्षिणी भाषाओं के योग से एक भाषा विकसित हुई। इसे मुसलमान शासकों के दरबार में भी सम्मान मिला और मुस्लिम साहित्यकारों में भी इसे प्रतिष्ठा मिली। तेरहवीं शताब्दी से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक दक्खिनी का विकास काल माना जाता है। इसका बोलचाल का रूप आज भी आन्ध्र, कर्नाटक और महाराष्ट्र के कुछ भागों में प्रचलित है। इसका साहित्यिक रूप भी अनेक कृतियों में संग्रहीत है, इसके प्रमाण साहित्यकारों में कुलीकुतुबशाह, वजही, नुसरती, वली आदि प्रसिद्ध है। दक्खिनी का विकास काल लंबा है इसीलिए इसमें कभी फ़रसीकरण की प्रकृति दिखाई दैती है और कभी हिंदीकरण की। दक्खिनी भाषा और साहित्य बाबूराम सक्सेना, राहुल सासंकृत्यायन और श्रीराम शर्माने पर अध्ययन प्रस्तुत किए हैं।

BRAOU

7.8 पठनीय पुस्तुकें

1. हिन्दी भाषा : डॉ. भोलानाथ तिवारी
2. हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योगदान : डॉ. नामवर सिंह
3. भाषाशास्त्र की रूपरेखा : डॉ. उदयनारायण तिवारी
4. भाषाविज्ञान और हिन्दी भाषा : डॉ. सरयू प्रसाद अग्रवाल
5. भाषा और समाज : डॉ. रामविलास शर्मा

BRAOU

इकाई-8: हिन्दी के विविध रूप-हिन्दी, उर्दू, हिन्दूस्तानी और दक्खिनी

8.0 विषय प्रवेश
8.1 पाठ का उद्देश्य
8.2 पाठ परिचय
8.3 मूल पाठ
    8.3.1 हिन्दी का भाषिक परिवेश, उसके विविध रूप और विविध नाम
    8.3.2 हिन्दी, उर्दू, हिन्दूस्तानी और दक्खिनी का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य
    8.3.3 हिन्दी, उर्दू, हिन्दूस्तानी और दक्खिनी और अन्य रूपों का भाषिक संगठन
    8.3.4 हिन्दी के विभिन्न रूपों पर विभिन्न भाषाओं का प्रभाव तुलनात्मक विवेचन
    8.3.5 हिन्दी के विविध रूपों का प्रयोग क्षेत्रः साहित्य एवं साहित्येतर क्षेत्र-सामाएँ एवं संभावनाएँ
8.4 पाठ का सारांश
8.5 पारिभाषिक शब्द और अर्थ
8.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
    8.6.1 (अ) श्रेणी के प्रश्न (250 शब्दों में)
    8.6.2 (ब) श्रेणी के प्रश्न (125 शब्दों में)
8.7 नमूने के उत्तर
    8.7.1 (अ) श्रेणी के नमूने के उत्तर (250 शब्दों में)
    8.7.2 (ब) श्रेणी के नमूने के उत्तर (125 शब्दों में)
8.8 पठनीय पुस्तकें

BRAOU

8.1 पाठ का उद्देश्य

भारत के विभिन्न प्रातों में अनेक भाषाएँ बोली जाती है। विशिष्ठ भाषाओं की उपभाषाएँ तथा प्रकार हैं। उत्तर प्रदेश की हिन्दी, हिमाचल प्रदेश की हिन्दी, पंजाब की हिन्दी, बम्बई की हिन्दी, कलकत्ता की हिन्दी, अर्थात उस प्रांत का प्रभाव उस भाषा पर पड़ता है। हिन्दी भाषा पर उर्दू का प्रभाव, उर्दू का और हिन्दी मिलना हिन्दुस्तानी तो दक्षिण में दक्खिनी, कहीं तेलुगु का प्रभाव तो कहीं अन्य भाषा का प्रभाव किस प्रकार पड़ा, इस सम्बन्ध में जानकारी देना यहीं इस पाठ का उद्देश्य है।

8.2 पाठ का परिचय

हिन्दी, उर्दू, हिन्दूस्तानी और दक्खिनी- एक ही स्वरूप की इन भाषाओं में भिन्नता है। एक दूसरे पर प्रभाव और इन चारों का तुलनात्मक अध्ययन इस पाठ में प्रस्तुत किया गया है। हिन्दी, उर्दू भाषा का प्रयोग क्षेत्र, उनका भाषिक परिवेश, उनके विविध रूप और विविध नामों का परिचय, इस पाठ में दिया गया है।

●

8.3 मूलपाठ

8.3.1 हिन्दी का भाषिक परिवेशः उस के विविध रूप और विविध नाम

भाषा संबद्ध समाज की संस्कृति की संवाहिका होती है, और अलग-अलग समाजों की सांस्कृतिक दृष्टि से अलग-अलग विशेषताएँ पायी जाती हैं। किसी भाषा समुदाय की इस प्रकार की सांस्कृतिक विशेषताएँ उस समुदाय के सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश के अंग माने जाते हैं। इस परिवेश के अतिरिक्त प्रत्येक भाषा समुदाय का अपना भाषिक परिवेश होता है जो उस समुदाय की भाषागत विशेषताओं का द्योतक होता है। ये दोनों परिवेश – सामाजिक – सासंकृतिक एवं भाषिक एक दूसरे पर निर्भर भी रहते हैं एवं एक दूसरे को प्रभावित भी करते हैं। डॉ. रामविलास शर्मा (1975) कहते हैं कि सामाजिक-सांस्कृतिक (जातीयता) की दृष्टि से हिन्दी बोलनेवालों की संख्या दुनिया में सब से ज्यादा है। विशाल हिन्दी भाषी जन समूह का गठन उस की जातीय भाषा का विकास सांस्कृतिक अभ्युत्थान, उस साहित्य की प्रगति सारे भारत देश की प्रगति की महत्वपूर्ण कड़ी है। हिन्दी की अपनी कुछ विशेषताएँ हैं जिन के फलस्वरूप वह सारे देश की प्रगति एवं सांस्कृतिक विकास की कड़ी के रूप में काम करने में सक्षम रही।

दक्षिण भारत के और महाराष्ट्र के प्रभाव (भक्ति आंदोलन) हिन्दी ने ब्रज मंडल में ग्रहण किये और फिर सुदूर असम तक वितरित कर दिये। इसी प्रकार बंगाल और नेपाल से सांस्कृतिक प्रवृत्तियों को ग्रहण करके उस नेसुदूर दक्षिण तक पहुँचाया। सही अर्थों में हिन्दी एक सांस्कृतिक क्लियरिंग हाउस (Clearing House) का काम करती रही। इस प्रकार हिन्दी उन दिनों में ब्रज मंडल से बाहर सारे देश में समान रूप में सम्मान पाती थी। और इस का कारण यह नहीं था कि ब्रज मंडल का कोई समर्थ और शक्तिशाली राज्य था जिस के दबदबे के कारण दूसरे राज्य उस की भाषा को सम्मान देते हों। कारण यही था कि हिन्दी भारतीय संस्कृति की समग्रता की वाणी भी थी, भारतीय चेतना के प्रसार में योग देती थी और भारतीय प्रतिभा की उपलब्धियों को सारे देश से संग्रह कर के सारे देश में वितरित करती थी।

भक्ति के प्रचार एवं साहित्य की रचना के लिए दो भाषाएँ प्रचलित थी--ब्रज और अवधी। ब्रज कृष्ण भक्ति साहित्य के लिए, अवधी राम भक्ति साहित्य एवं सूफी साहित्य के लिए प्रयोग में लायी जाती रही। तीनः हिन्दी की विशेषता यह है कि हिन्दी दूसरी प्रादेशिक भाषाओं से जितना प्रभावित होती है, उतना दूसरी भाषाओं को प्रभावित नहीं करती। जैसे, बम्बइया (मराठी से प्रभावित) हिन्दी, कलकतिया (बंगला से प्रभावित) हिन्दी आदि नाम तो हम सुनते हैं। लेकिन इसके विपरीत हिन्दी से प्रभावित मराठी या हिन्दी से प्रभावित बंगला आदि नाम नहीं सुनते। चार : हिन्दी के हिन्दी भाषा के रूप में परिवर्तन। संभवतः भारत में ऐसी कोई दूसरी भाषा नहीं है जो भाषा वैज्ञानिकेतर (Extra-Linguistic) कारणों से इतने विविध रूपों में प्रकट होती हो और जो राजनीति की दाँव पेंचों से इतनी निकटता से जुड़ी हो। सामाजिक स्तर भेद से हिन्दी भाषा के प्रमुखतः तीन स्तर माने जाते हैं। वे है (क) निम्न स्तर पर स्थानीय/जनपदीय या ग्रामीण बोलियाँ (Local/Folk Dialects) हैं। ये सभी बोलियाँ एक श्रृंखला बनाती है अर्थात् निकट की बोलियों में बोधगम्यता रखती है। (ख) इस श्रृंखला के ऊपर उप भाषाएँ है जो उप प्रादेशिक बोलियाँ (Sub Regional Dialects) कहलाती हैं। भाषा भेद की दृष्टि से यह दूसरा स्तर है। यदि कुछ ग्रामीण या स्थानीय बोलियों का कोई व्यापार विनिमय या विचार विनिमय केंद्र है यो छोटा टाउन या कस्बा है तो वहाँ इस उप भाषा का प्रयोग किया जाता है। इसी उप भाषा के रूप में अपने-अपने उप भाषा भाषी क्षेत्रों में ब्रज या अवधी आदि का मानक रूप निर्धारित होता है। (ग) इन दोनों स्तरों के बाहर आने की केंद्रप्रसारी शक्ति तीसरे स्तर की भाषा में है जो मानक हिन्दी और उर्दू कहलाती है। इस मानक रूप का प्रचलन शहरों में पढ़े लिखे विशिष्ट वर्ग (Elite group) में होता है। अंतर प्रादेशिक व्यवहार में लेखन में एवं साहित्य में इसी तीसरे स्तर के भाषा रूप का प्रयोग किया जाता है। लेकिन साहित्यिक शैली के अंतर्गत हिन्दी और उर्दू अलग अलग इकाई के अर्थात अलग अलग भाषाओं के रूप में प्रकट होती है जिस का उल्लेख दूसरी विशेषता

BRAOU

के अंतर्गत भी शैली में आकर इन का भेद मिट जाता है। इस दृष्टि से हिन्दी क्षेत्र की भाषा को पाँच शैलियों में निम्न प्रकार से विभाजित किया जा सकता है:-

1. उच्च हिन्दी 2. उच्च उर्दू

3. सामान्य हिन्दी 4. सामान्य उर्दू

5.मध्यम शैली
(NEUTRAL STYLE)

उच्च हिन्दी एवं उच्च उर्दू में अधिक अंतर दिखाई देता है लेकिन सामान्य हिन्दी एवं सामान्य उर्दू में यह अंतर कम हो जाता है। और ये दोनों रूप लिपि के अंतर को छोड़ एक दूसरे के निकट को प्रतीत होती है।

मातन या तीसरे स्तर को भाषा की केंद्र पसारी शक्ति के एवं सामाजिक प्रतिष्ठा के कारण मानक हिन्दी एवं निम्न स्तर की स्थानीय बोलियों के बीच के संबंध को लेकर भारत में जो दृष्टिकोण विकसित हुए है उन्हें निम्न प्रकार से अंकित किया जा सकता है:-

1. भारत के विद्वान बोलियों को हिन्दी व्यवस्था के अंग मानते है। दोनों के सह संबंध को स्वीकार करते हुए स्तरीय साहित्य के लिए हिन्दी के प्रमुख रोल को प्रधानता देते हैं।

2. हिन्दी प्रदेश की बोली भाषी जनता मानती है कि अपने सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास के लिए हिन्दी आवश्यक है। उन के विकास के लिए हिन्दी का प्रमुख दायित्व है।

3. नयी पीढ़ी के लिए हिंदी के द्वारा विकास पाने की संभवता अधिक दिखाई पढ़ती है।

4. हिन्दी के लोकतंत्रीकरण एवं मानवीकरण में बोलियाँ अधिक रोल अदा करती हैं। शुद्ध निरपेक्ष रूप से मानवीकरण से हिन्दी अलग-अलग हो जाएगी।

5. बोली से हिन्दी का अंतरंग ग्रामीणीकरण से शहरीकरण कह सकते है।

हिन्दी के भाषिक परिवेश की पाँचवी विशेषता है उस के विविध रूप जो विविध नामों से अभिहित किये जाते है और जिन के ऐतिहासिक कारण भी हैं। इन नामों में प्रमुख हैं, हिन्दी, उर्दू, हिन्दुस्तानी और दक्खिनी जिन पर इस पाठ में विस्तार से चर्चा की गयी है। इस के अतिरिक्त जो नाम प्रचलित है वे हैं- भाषा/भाखा/हिन्दुई, देहलवी, रेख्ता, बाजार हिन्दी/लघु हिन्दी, बम्बइया हिन्दी, कलकतिया हिन्दी आदि। इन पर भी संक्षेप में इस पाठ में विचार किया गया है।

BRAOU

8.3.2 हिन्दी, उर्दू, हिन्दुस्तानी और दक्खिनी का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

"हिन्दी" शब्द व्यापक अर्थ में समग्र भारत/हिन्दुस्तान की भाषाओं या वस्तुओं का द्योतक है। "हिंद से संबंधित" के अर्थ में यह हिंद का विशेषण है। लेकिन अब इस अर्थ में इस शब्द का व्यवहार नहीं होता। वर्तमान समय में "हिन्दी" उस भाषा का नाम है जो संविधान की धारा 343.1 के तहत (पाठ 2 देखें) देवनागरी लिपि में अंकित भारत संघ की राज भाषा है। यह भारत के उन सात राज्यों की राज भाषा है जो हिन्दी भाषी राज्य कहलाते हैं। वे राज्य हैं- दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और बिहार। इस दृष्टि से इन राज्यों में व्यवहृत जन पदीय बोलियों को भी जो हिन्दी की बोलियाँ कहलाती है हिन्दी कहा जा सकता है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि हमारी किसी भी प्राचीन भाषा में हिन्दी शब्द का उल्लेख नहीं है। तब यह शब्द कहाँ

से आया? इस पर विद्वान विविध प्रकार के मत व्यक्त करते हैं। असलियत में यह शब्द विदेशियों के द्वारा दिया गया है। कहते हैं कि ऋग्वेद में उल्लिखित सिंधु और सप्त सिंधवः शब्दों का अंकन वर्तमान ईरान के फारसियों के धर्म ग्रंथ जंद अवेस्ता में हिन्द, हिन्दु हफत हिंदवः नाम से हुआ क्यों कि पुरानी पहलवी (वर्तमान फारसी) भाषा में /स/ का उच्चारण है होता था। पहलवी भाषा के पुराने शिलालेखों में भी ऐसा ही अंकन मिलता है।

मध्यकाल में यहाँ की भाषाओं को अरबी- फ़ारसी में जबाने हिन्दी कहा गया। अर्थात् विदेशों में हिन्दी शब्द उस समय भारत में प्रचलित सभी भाषाओं जैसे संस्कृत, पाली, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के लिए द्योतित होता था। उस समय भारत में रहनेवाले फ़ारसी भाषा के मुसलमान लेखक भी हिन्द को देशी भाषा के लिए हिन्दी या हिंदवी शब्द का प्रयोग करते थे। 13वीं सदी के फ़ारसी कवि यौंकी ने सर्व प्रथम भारत के मध्य देश की भाषा के लिए हिंदवी शब्द का प्रयोग किया। 13-14वीं सदी में देशी भाषा को हिन्दी, या हिंदवी या हिन्दुई नाम देने में अमीर खुसरो का बड़ा हाथ है। फ़ारसी कवि खुसरो हिंदवी के ज्ञाता थे। उन्होंने इस बात को स्वयं स्वीकार किया। मुसलमानी परंपराओं से संबंधित तत्काली कवि। (15वीं-16वीं सदी) प्राचीन भाषा अरबी फ़ारसी से अलग करने के लिए देशी भाषा को हिंदवी कहते थे तो भारतीय परंपरा के कवि संस्कृत से अलग पर्कट करने के लिए उसी हिंदवी को भाषा/भाखा कहते थे। कबीर ने कहा कि संस्कृत के कूप जल, भाषा बहता नीर। रसखान को भी जो ब्रज भाषा के कवि है उन दिनों हिन्दी कवि कहा गया। इस से स्पष्ट है कि सामान्यता भाषा/भाखा, हिन्दी/हिन्दवी/हिन्दुई समानार्थक शब्द थे। 16वीं-17वीं सदी के दक्खिनी हिन्दी के कवियों ने भी हिन्दी और भाखा शब्दों का प्रयोग इसी अर्थ में किया। 17वीं सदी के दक्खिनी के प्रसिद्ध कवि व गद्य लेखन मुल्ला वझ़ी ने अपने सब रस की भूमिका में हिन्दुस्तान को देशवाचक के रूप में और हिन्दी को भाषावाचक के रूप में प्रयोग किया।

जो भाषा मध्य देश में व्यहृत होकर साहित्य के माध्यम से प्रायः हिंदुओं के द्वारा देवनागरी लिपि में और मुसलमानों द्वारा फारसी लिपि में प्रकट होती रही, साथ ही दक्खिन के बीजापुर गोलकोंडा की रियासतों में साहित्यिक माध्यम तो, वह हिन्दी और हिन्दवी दोनों नामों से जानी जाती रही। एक अनुमान के अनुसार हिंदवी शब्द हिंदुओं में और हिंदी शब्द मुसलमानों में अधिक प्रयुक्त होता था।

18वीं. सदी तक आते आते "हिंद" और "हिंदुस्तान" भारत देश के लिए प्रयुक्त होता था। व्यापक अर्थ में भारत के निवासियों के लिए इन शब्दों से निर्मित "हिन्दी" और "हिन्दुस्तानी" शब्दों का भी प्रचलन होने लगा। अर्थात् भारत के देशीय/जातीय (Indian National) सीमित अर्थ में इस का द्योतन मध्य देश के निवासी जो मध्य देश की भाषाएँ (हिन्दी/हिन्दवी/हिंदुई/हिंदुस्तानी) बोलते हैं, के लिए हुआ था।

BRAOU

शेष भारत के निवासी जैसे गुजराती (गुजरात प्रांत के रहनेवाले) पंजाबी (पंजाब प्रांत के रहनेवाले/ बंगाली (बंगाल के रहनेवाले) मद्रासी (मद्रास प्रसीडंसी के रहनेवाले) आदि से अलग प्रकट करने के लिए उपर्युक्त सीमित अर्थ में हिन्दी/हिन्दुस्तानी का प्रचलन हुआ था। यही जाति (व्यक्ति/निवासी) वाचक भाषावाचक भी बन गये। जैसे हिन्दी (भाषा) हिंदुस्तानी (भाषा) गुजराती (भाषा) पंजाबी (भाषा) आदि। लेकिन भाषावाचक हिन्दी/हिंदवी/हिंदुस्तानी/भाखा/भाषा आदि इन समानार्थक शब्दों में 18वीं सदी में नये अर्थों का विकास होने लगा तथा कुछ नये शब्द भी जुड़ने लगे। जैसे भाखा/भाका का अर्थ संकोच होकर वह सामान्य रूप में मध्य देश की ग्रामीण बोलियों के लिए और विशिष्ट रूप से ब्रज भाषा के लिए प्रयुक्त होने लगा दक्खिनी रियासतों में निर्मित दक्खिनी साहित्य में प्रयुक्त हिन्दी/हिंदवी को जब उत्तर भारत के मुसलमान कवियों ने फ़ारसी के साँचे में ढालकर अपनाया तो उसे एक नया नाम दिया गया रेख़्ता। फ़ारसी जामा पहन कर रेखता के नाम से आयी हुई यह हिन्दी की विशेष शैली शाही दरबार में पनपने लगी। इसी शाही शैली को 18वीं सदी के उत्तरार्ध में "जबान उर्दू" ए मुअल्लम की संज्ञा दी गयी। यही बाद में उर्दू कहलायी। हिंदुओं द्वारा प्रयुक्त इसी भाषा की वह शैली जो विदेशीपन (फ़ारसीपन) कम लिये हुए और भाखापन को लिये रहती थी उसे हिंदवी कहकर हिंदवी के अर्थ को सीमित कर दिया गया।

ऊपर हमने उल्लेख किया कि सीमित अर्थ में मध्य देश को हिन्दुस्तान और वहाँ के निवासी एवं उन की भाषाओं के लिए हिन्दुस्तानी की संज्ञाएँ दी जाती रहीं। जब इस मध्य देश में कार्यरत अफ़सरों को हिंदुस्तानी सिखाने की वकालत करते हुए गिलक्राइस्ट ने ये दलीलें पेश की कि हिन्दी और हिंदुस्तानी समानार्थक है। लेकिन हिन्दी शब्द से हिन्दी, हिंदवी, हिंदुई, हिंदू का भ्रम होता है। अतः हिन्दुस्तानी स्वीकार्य है। उनके अनुसार हिंदुस्तानी की तीन शैलियाँ हैं। 1. उच्च या दरबारी या फ़ारसी शैली, 2. मध्यम या वास्तविक हिंदुस्तानी और 3. ग्रामीण या हिंदवी शैली। प्रथम शैली फारसी लिपि में अंकित होती है। दूसरी शैली दोनों लिपियों फारसी एवं नागरी लिपि में अंकित की जा सकती है और तीसरी शैली को नागरी लिपि में। उन के अनुसार हिंदवी + अरबी + फ़ारसी = हिंदुस्तानी है। उन्होंने अपने प्रयासों से 1800में विलियम कालेज में हिंदस्तानी विभाग की स्थापना करवायी और खुद उस विभाग के अध्यक्ष बन गये। उक्त कालेज में गिलक्राइस्ट के समय तक हिंदुस्तानी (उर्दू) और फ़रसी लिपि को विशेष महत्व मिला। वे समझते थे कि यही बहुप्रचलित संस्कृत (Cultured) भाषा है। लेकिन उक्त कालेज में प्रशिक्षित व्यक्ति अफ़सर के रूप में हिंदुस्तान (मध्य देश) में जब नियुक्त होकर चले गये तब उन्होंने महसूस किया कि उनकी सीखी हुई भाषा के माध्यम से जनता से संपर्क नहीं हो पा रहा है। 1812 में कैप्टन टोलर ने उक्त कालेज का वार्षिक विवरण प्रस्तुत करते हुए "हिन्दी" शब्द का प्रयोग किया जो प्रायः प्रथम बार उस का प्रयोग आधुनिक अर्थ में हुआ। उन का कहना है कि हिन्दी वह भाषा है जिस की अपनी लिपि है, जिस में अरबी-फ़ारसी शब्दों का प्रयोग नहीं होता और मुसलमानी आक्रमण से पहले जो भारत वर्ष के समस्त उत्तर पश्चिम प्रांत की भाषा थी। 1824 में उक्त कालेज में नियुक्त होकर विलियम प्राइस ने सर्वप्रथम अपने को हिन्दी प्रोफ़ेसर लिखा और ब्रज भाषा, खड़ी बोली, हिंदवी, हिंदुई, ठेठ हिन्दी आदि नामों के बदले अपने विभाग के लिए हिन्दी नाम को चुना।

उर्दूः ऊपर हिन्दी शब्द पर विचार करते हुए हमने देखा कि "जबान उर्दू ए मुअल्ला" से इस शब्द का निर्माण हुआ। धीरे धीरे इस शब्द से पहले जबान और बाद में मुअल्ला छूट गया तो अकेला उर्दू शब्द रह गया। यही शब्द दिल्ली के शाही वातावरण से संबधित सुसंस्कृत मुसलमानों की शिष्ट भाषा के लिए प्रयुक्त होने लगा। मूलतः उर्दू शब्द तुर्की भाषा का है। अंग्रेजी का (Horde) और रूसी भाषा का ओर्द इसी से निष्पन्न है जहाँ इस का अर्थ होता है समूह या गिरोह। अनुमान है कि यह शब्द बाबर के समय तुर्की से भारत आया होगा और शाही शिविर या शाही किले के अर्थ में प्रयुक्त होता रहा होगा। भाषा के अर्थ में इस का प्रयोग बहुत बाद में होने लगा- पहले रेख़्ता छंद में प्रयुक्त अरबी फ़ारसी से युक्त हिंदवी भाषा को विशेष साहित्यिक शैली के अर्थ में और फिर दिल्ली के लाल किले में अथवा शाही महल में जो बाजार अमीर उमराव अथवा बादशाह और बेगमों के लिए लगता था (उर्दू ए मुअल्ला) उस में प्रयुक्त भाषा के लिए। मोगल सल्तनत की राजधानी उन्हीं दिनों आगरा से स्थानांतरित होकर दिल्ली आयी थी। इस कारण स्वभाविक है कि उन दिनों की वहाँ की जूबान में दिल्ली- मेरठ की भाषा और अरबी- फ़ारसी के शब्दों के साथ ब्रज भाषा की मिठास भी मिली हो। जैसा कि पहले भी बताया गया बीजापुर एवं गोलकोंडा आदि दक्षिण के मुसलमानी राज्यों ने अपने साथ उत्तर से लाये तत्कालीन हिन्दी/हिन्दवी का (जो बाद में स्थानीय भाषाओं के प्रभाव से दक्खिनी कहलायी) दक्षिण में प्रचलन किया। यहीं पर मुसलमानी कवियों ने इस भाषा में साहित्य रचा। यहीं साहित्य जब पुनः वली औरंगाबादी के द्वारा उत्तर पहुँच गया तो उस में फ़ारसी का शरीफना रंग चढ़ा कर रेख़्ता छंद में उसे साहित्य के लिए प्रयोग में लाया गया। अर्थात् प्रायः 18वीं सदी तक उत्तर में इस भाषा में (जिसे आजकल उर्दू कहते हैं) कविता नहीं लिखी जाती थी। यह शिष्ट सुसंस्कृत दरबारी मुसलमानों की जूबान भी इस वजह से इस की प्रतिष्ठा बढ़ी। राजदरबार में आदर मिला। इस कारण से सामान्य जन भी इसे अपनाने लगे।

फिर 19वीं सदी के प्रारंभ में फोर्ट विलियम कालेज में इसे स्थान देकर हिंदुस्तानी के नाम पर फारसी लिपि में अंकित इस उर्दू को कंपनी ने बढ़ावा दिया। साथ ही अंग्रेज़ों ने दो कौम या दो राष्ट्र को नीति के आधार पर हिन्दू और मुसलमानों में फूट डालने के लिए यह प्रचारित किया कि हिन्दी हिन्दुओं की भाषा है और उर्दू मुसलमानों की भाषा राष्ट्रीय आंदोलन के दिनों में दोनों वर्गों के शुद्धतावादियों ने अपनी अपनी भाषाओं के विकास के नाम पर उन्हें दो भिन्न दिशाओं में आगे बढ़ाया।

BRAOU

प्रचलित तद्भव शब्दों को निकाल निकाल कर तत्सम शब्दों को भरने की प्रवृत्ति एक और सक्रिय रही तो दूसरी और आम प्रचलित शब्दों के इस्तेमाल के स्थान पर अरबी-फारसी शब्द इस्तेमाल में आने लगे। दोनों दो भिन्न लिपियों देवनागरी और फ़ारसी लिपि को पहले से अपना चुकी थीं। जहाँ एक ओर हिंदू महा सभा एवं जन संघ भारतीयपरंपरा एवं संस्कृति के अनुरक्षण के लिए हिन्दी भाषा एवं साहित्य के विकास में योग देते रहे तो दुसरी ओर मुसलीम लोग अपनी संस्कृति को भारतीय संस्कृति से भिन्न मानकर अरब-ईरान की तरफ़ मुख़ातिब होकर इन संस्कृतियों से भरने के लिए उर्दू भाषा एवं साहित्य को एक ज़रिया मान कर कार्य करने लगे। इस तरह हम देखते हैं कि भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से कुछ शब्द एवं लिपि को छोड़ कर हिन्दी-उर्दू में कोई अंतर नहीं है। दोनों की मूल आधार भाषा एक ही है। लेकिन साहित्य की दृष्टि से उच्च वर्गों के दृष्टिकोण से ये दो भिन्न भाषाएँ दिखाई देती है। जैसा कि अन्यत्र बताया गया उच्च हिन्दी और उच्च उर्दू के स्तर पर जो अंतर दिखाई पड़ता है, वह सामान्य हिन्दी एवं सामान्य उर्दू में नहीं रहता। मध्यगा शैली (बोलचाल की शैली) में ये दोनों एक हो जाती है। समाज भाषा विज्ञानी गफ़र्ज ने अपने अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला कि हिन्दी क्षेत्र के ग्रामीण अंचल के हिन्दु और मुसलमानों की भाषा में जो अंतर है वह न के बराबर है जब कि हिंदू समाज के सवर्णों की भाषा एवं हरिजनों की भाषा में काफी अंतर दिखाई पड़ता है। रफीक जकरिया ने अपनी पुस्तक (Rise of Muslims in Indian Politics) पृष्ठ 293) में ठीक ही कहा है कि हिन्दी-उर्दू का विवाद वास्तव में कुछ नहीं सिवाय पढ़े लिखे बुद्धि जीवी हिंदू और मुसलमानों का द्वंद्व।

अब फ़ारसी लिपि में अंकित यही उर्दू पाकिस्तान की राष्ट्र भाषा है। भारत के संविधान में अष्टम अनुसूची में उसे स्थान दिया गया। भारत में जम्मू-कश्मीर की यह राज भाषा है तथा आंध्र प्रेदेश में कुछ जिलों में सह राज भाषा है।

हिंदुस्तानी :

हिंद और इससे प्रसूत हिंदुस्तान दोनों देशवाचक हैं। सि दृष्टि से समस्त भारत हिंदुस्तान है। लेकिन सीमित अर्थ में इस शब्द का द्योतन केवल मध्यदेश का होने लगा। हिंदुस्तान से निर्मित विशेषण वाचक शब्द हिंदुस्तानी दो अर्थ में प्रयुक्त होता है। एकः व्यक्ति (जाति) वाचक; हिंदुस्तान का रहने वाला दूसराः भाषा वाचक, हिन्दुस्तान की भाषा। हिंदुस्तान के समान हिंदुस्तानी शब्द भी अपनी व्यापकता छोड़कर सीमित व विशिष्ट अर्थ में होने लगा। जैसेः मध्यदेश का रहनेवाला अर्थात् हिन्दी क्षेत्र का रहनेवाला और मध्यदेश की भाषा अर्थात् हिन्दी। हिंदुस्तानी शब्द आजकल भले ही इसी अर्थ में व्यक्ति (जाति) वाचक के लिए प्रयुक्त हो रहा हो लेकिन भाषावाचक के रूप में इस शब्द के अर्थ में परिवर्तन हुआ। अब भाषा के संदर्भ में हिन्दी और हिंदुस्तानी समानार्थक या पर्याय नहीं है। इस शब्द के वर्तमान अर्थ को समझने के लिए हमें यह जानना आवश्यक है कि वास्तव में इस शब्द का प्रचलन सर्व प्रथम कब हुआ और किस के द्वारा हुआ। कुछ विद्वानों का कहना है कि इस शब्द का प्रयोग बाबर के समय से हो रहा है। शाहजहाँ (1627-1657) के समय के बादशाहनामा में इस शब्द का उल्लेख मिलता है। दूसरे विद्वान कहते हैं कि यह शब्द यूरोपीय लोगों की देन है। ग्रियर्सन एवं धीरेंद्र वर्मा इस मत का समर्थन करते हैं। दोनों मतों में आंशिक सत्य है। वास्तव में देखा जाए तो यूरोपीय लोगों से पहले हिंदुस्तानी शब्द का प्रचलन होता था। लेकिन इस का प्रयोग हिन्दी/हिन्दुवी के समानार्थक के रूप में होता था। 18वीं. सदी तक उर्दू शब्द का भी प्रचलन हो चुका था। यूरोपीय लोगों के द्वारा और खासकर फोर्ट विलयम कालेज की स्थापना के बाद से अंग्रेजों द्वारा हिंदूस्तानी शब्द का जो प्रयोग हुआ उस का द्योतन कदाचित मुसलमानों की भाषा, शहर के शिष्ट जनों की भाषा, उर्दू, और फ़ारसी लिपि में लिखित भाषा के लिए अधिक मात्रा में होता रहा। गिलक्राइस्ट के अनुसार हिंदुस्तानी = हिंदव + अरबी + फ़ारसी थी। और उन के द्वारा प्रतिपादित हिंदुस्तानी की तीन शैलियों उच्च या दरबारी या फ़ारसी शैली, मध्य या वास्तविक हिंदुस्तानी और ग्रामीण या हिंदवी शैली में से यह अर्थ निकलता था कि हिंदवी या हिन्दी ग्रामीण बोली है जिस की सभ्य समाज में कोई प्रतिष्ठा नहीं। बाकी दो शैलियाँ दोनों लिपियों में अंकित की जा सकती है। इन दो शैलियों में भी प्रथम शैली को उन दिनों तरजीह दी गयी थी। गिलक्राइस्ट से पहले हेलहेड ने हिंदुस्तानी का विभाजन क्यों किया शुद्ध हिंदुस्तानी (PURE HINDUSTANI) हिंदवी/हिंदी और

मिश्रित हिंदुस्तानी (MIXED HINDUSTAN) अर्थात् उर्दू गिलक्राइस्ट की हिंदुस्तानी का तात्पर्य मिश्रित हिंदुस्तानी से था। जन आंदोलन के बावजूद फोर्ट विलियम कालेज में और राज काज में अंग्रेजों के द्वारा हिंदुस्तानी को बढ़ावा मिलता रहा।

परवर्ती काल में विशेषकर राष्ट्रीय आंदोलन के समय गाँधी जी की प्रेरणा से भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के द्वारा स्वीकृत हिंदुस्तानी के अर्थ में कुछ परिवर्तन हुआ। इस समय हिंदुस्तानी शब्द का प्रचार हिन्दी और उर्दू (आधुनिक अर्थ में) इन दोनोंके मिले जुले सरल रूप के लिए होने लगा। पाठ के प्रारंभ में भाषिक परिवेश के अंतर्गत हमने जिन पाँच शैलियों (उच्च हिन्दी, उच्च उर्दू, सामान्य हिन्दी, सामान्य उर्दू और मध्यम शैली) का उल्लेख किया है, उन में से अंतिम शैली (जो लिपिबद्ध नहीं रहती) के समानार्थक के रूप में इस हिंदुस्तानी को प्रायः स्वीकार किया जा सकता है। गाँधी जी और नेहरू जी ने इसी शैली की वकालत की थी। प्रेमचंद की भाषा को इस शैली का उत्तम लिखित नमूना माना जाता रहा। कांग्रेस के द्वारा हिंदुस्तानी आंदोलन के बावजूद, हिन्दी और उर्दू को निकट लाकर एक सर्वमान्य हिंदुस्तानी के निर्माण में प्रचारित करने के सारे प्रयास देश के विभाजन के कारण असफल ही रहे। हिन्दी क्षेत्र की अधिकांश जनता यही समझती थी कि हिन्दुस्तानी हिन्दी नहीं है अपितु देवनागरी लिपि में अंकित की जानेवाली उर्दू ही है या उर्दू का बाजारू रूप है। इस वजह से संविधान संघ की राज भाषा के रूप में एवं अष्टम अनुसूची में देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी को ही स्थान दिया गया। केवल एक स्थान पर अनुच्छेद 351 में हिन्दी भाषा के प्रसार वृद्धि के संदर्भ में हिंदुस्तानी का उल्लेख किया गया। इस तरह हिंदुस्तानी आंदोलन समाप्त हो गया और इस शब्द का प्रयोग भाषा वाचक के रूप में अब समाप्त-सा हो गया। हिंदुस्तानी शब्द के प्रयोग के समाप्त हो जाने का मतलब यह नहीं लेना चाहिए कि "हिंदुस्तानी भाषा रूप भी समाप्त हो गया। अब भी हिन्दी क्षेत्र में मध्यम शैली के रूप में कम पढ़े लिखे व अनपढ़ लोगों में इस भाषा रूप का व्यवहार होता है। साथ ही हिन्दी फिल्मों के गीतों में व संवादों में यह रूप अब भी प्रचलित है।

न कह कर या तो तुरकम कहते हैं या तुलकम। इसी का प्राचीन नाम मुसलमानी था।

यह भी विचित्र स्थिति है कि साहित्य के स्तर पर दक्खिनी साहित्य है लेकिन बोलचाल के स्तर पर दक्खिनी को अपनी मातृभाषा घोषित करनेवाले कोई नहीं है। इसी प्रकार "हिंदुस्तानी" जिस की वकालत जोरों से की गयी थी, उस के बोलनेवालों की संख्या भारत में मात्र 11,053 है (1971 के जनगणना के आधार पर)।

हिन्दी, उर्दू, हिंदुस्तानी और दक्खिनी की चर्चा के बीच में हम भाषा/भाका/भाका, हिंदवी/हिंदुई, देहलवी, रेख्ता रूपों पर विचार करचुके है। अब यहाँ संक्षेप में बाजार हिन्दी/लघु हिन्दी, बम्बइया हिन्दी, कलकतिया हिन्दी, और हैदराबादी हिन्दी पर विचार करेंगे।

BRAOU

बाजारू हिन्दी या लघु हिन्दी :

हिन्दी, देश के मध्य भाग के विस्तृत क्षेत्र में बोली जाती है। हिन्दी क्षेत्र के बाहर भी अन्य भाषायी क्षेत्रों के महानगरों में हिन्दी संपर्क भाषा के रूप में प्रयुक्त होती है। यह संपर्क एक हिन्दी भाषी और एक अहिन्दी भाषी के बीच में हो सकता है या भिन्न भिन्न भाषाएँ बोलने वाले दो अहिन्दी भाषियों के बीच भी हो सकता है। दोनो स्थितियों में संवाद के अंतर्गत व्यक्ति एक दूसरे की भाषाएँ नहीं जानते। "अपने अपने भाषायी समाज में अपनी अपनी भाषाओं का प्रयोग करते हुए किसी प्रयोजन विशेष के लिए जब दो भिन्न भाषायी समुदाय संपर्क में आते है तब उनके द्विभाषिक संपर्क के परिणाम स्वरूप एक तीसरी भाषा जन्म लेती है। इस में दोनों की भाषागत विशेषताएँ मिली रहती हैं। यह समाज द्वारा स्वीकृत भाषा रूप होता है क्योंकि इस के अभाव में दो भिन्न समूहों में संप्रेषण संभव नहीं होता और सामाजिक आदान-प्रदान रूक जाता है। इस में भाषा की शुद्धता पर ध्यान नहीं दिया जाता। संप्रेषण की सहूलियतों पर विशेष बल दिया जाता है। अतः यह भाषा रूप सामाजिक यथार्थ होता है। ऐसे भाषा रूप को भाषाविज्ञान की शब्दावली में "पिजिन"कहते हैं। (रेड्डी विजयराघवः 1986) चूँकि ऐसा भाषा रूप प्रायः बाजारों में व्यवहार होता रहता है इस कारण सुनीतिकुमार चटर्जी

इसे बाजार हिन्दी कहते हैं। चूँकि संपर्क में आनेवाले दोनों समुदायों को भाषाओं की मिश्रित व्यवस्था रहती है और व्याकरण की दृष्टि से सरलीकरण एवं न्यूनता रहती है, इस कारण इस हिन्दी रूप को लघु हिन्दी भी कहा जाता है। अलग अलग स्थानों/बाजारों में प्रयुक्तऐसी हिन्दी (पिजन) को उन स्थान या महानगरों के नाम पर बम्बइया हिन्दी/कलकतिया हिन्दी/हैदराबादी हिन्दी आदि नाम दिया जाता है। आगे हम हिन्दी के इन विविध रूपों के भाषायी गठन की चर्चा करेंगे।

8.3.3 हिन्दी, उर्दू, हिंदुस्तानी, दक्खिनी और अन्य रूपों का भाषिक संघटन

भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से हिन्दी तथा इस के विविध रूप जैसे उर्दू, हिंदुस्तानी एवं दक्खिनी तथा अन्य रूपों की संरचना (संकठन) का मूल आधार दिल्ली- मेरठ के आस-पास की बोली खड़ीबोली मानी जाती है। इसी खड़ी बोली को देहलवी भी कहा गया। अब तक यही माना जाता रहा है कि खड़ी बोली तीन तरह के सामाजिक-संप्रेषण के रोल अदा करती है। जैसे, स्थानीय या जनपदीय बोली (दिल्ली मेरठ) अंतर जन पदीय बोली उप भाषा और मानक व आधुनिक साहित्यिक हिन्दी। लेकिन राहुल सांस्कृत्यायन का कहना है कि स्थानीय या जनपदीय बोली के रूप में दिल्ली- मेरठ के आस पास प्रयुक्त बोली वास्तव में कौरवी है जो शेष सभी जनपदीय बोलियों के समान अपने जनपद तक सीमित है। वे कहते हैं कि अंतर जनपदीय वाली या उप भाषा के रूप में तथा साहित्यिक भाषा के रूप में खड़ीबोली का विकास हुआ है। अर्थात् कौरवी में एवं खड़ीबोली में भाषावैज्ञानिक दृष्टि से अंतर देखा जा सकता है।

हिन्दी तथा उस के प्रमुख रूप उर्दू, हिंदुस्तानी और दक्खिनी तथा हिन्दी की समस्त जनपदीयबोलियों एवं अन्य महानगरीय लघु हिन्दी के रूपों में भाषिक संरचनागत विभिन्नता होते हुए भी किसी न किसी स्तर पर समानता पायी जाती है। इसी समानता को सर्वसमावेशी अभिरचना की संज्ञा दी जाती है। ये समान तत्व ही भाषा की समान कोड (Code) कहलाते हैं। इन समान तत्वों के कारण हिन्दी के इन विभिन्न रूपों में बोधगम्यता (Comprehensibility) है जिस के कारण हिन्दी समाज (समुदाय) के विभिन्न स्तर एवं वर्ग के लोगों में संप्रेषण हो पाता है। अपनी ध्वनिगत और व्याकरण (अभिरचना) गत तथा मूल शब्दावलीगत विशिष्ट मूलाधार तत्वों के साथ हिन्दी अन्य भाषाओं जैसे अंग्रेजी, संस्कृत, अरबी-फ़ारसी, तुर्की पुर्तगाली आदि भाषाओं के शब्द भी प्रयुक्त होते हैं जो निरक्षर लोगों के द्वारा भी सहजता से प्रयुक्त किये जाते हैं। ये हिन्दी की प्रकृति के अनुरूप ढलकर उस के अंग बन चुके हैं।

इस पाठ में भाषिक परिवेश के अंतर्गत हमने बताया कि हिन्दी के लोक तंत्रीकरण एवं मानकीकरण में हिंन्दी की जनपदीय बोलियाँ अधिक रोल अदा करती हैं। शुद्ध निरपेक्ष रूप में मानकीकरण से हिन्दी अलग अलग हो जाएगी। भारतेन्दु काल तक हिन्दी के गद्य के रूप निर्माण में इन बोलियों का योगदान होता रहा। अब भी कुछ मामलों में ये बोलियो की जमीन छोड़कर अब हिन्दी उर्दू के टकसालीपन का विकास एक साथ हो रहा है। क्रिया रूप रचना में यह विशेषता देखी जा सकती है। "व" वाले रूपों को हटा कर- य/ए वाले रूपों की प्रतिष्ठा हिन्दी उर्दू को टकसाली बनाने की सामान्य विशेषता है। जैसेः समझावें/दिखावें/आवेंगे- समझायें/समझाएँ, दिखायें/दिखाएँ, आयेंगे/आएँगे, इसी प्रकार पुराने क्रिया रूपों के साथ/या/स्वर की जोड़ना जैसे, पछताय/नहाय - पछताया/नहाया। कृंदत रूपों में कर जोड़ना जैसे- सुनाय/नवाय- सुनाकर नवाकर। भये का बहिष्कार कर होना क्रिया रूपों का प्रयोग आधुनिक हिन्दी-उर्दू की विशेषता बन गयी है। इसी प्रकार पुराने पदबंध, कोई कहे हैं। दीवाली पूजे हैं के स्थान पर कोई कहता है, दीवाली पूजते हैं का प्रयोग आधुनिक माना जाता है। (रामविलास शर्माः 1975)

वाक्य संरचना के अंतर्गत अब तक मानक (Standard) कहे जानेवाले रूपों के साथ अवमानक (Sub-standard) रूपों का प्रयोग धड़ल्ले से इस समय किया जा रहा है, खास कर के बोलचाल की भाषा में जैसे, मैंने खाना खाना है। आपने कहा जाना है। मैंनें यह काम नहीं करना। हम ने कोशिस करी। मेरे को तेरे से बात नहीं करनी। हम रोटी, भात/खाये। आप क्या पूछे? अंतिम दो उदाहरण पूरब की बोली भाषियों के हैं तो शेष सभी पश्चिमी विशेषकर दिल्ली- हरयाणा की बोली

BRAOU

भाषियों के हैं। हिन्दी बृहदकार विकासशील देश की आधुनिक भाषा है जिस में अधिक मात्रा में परिवर्तन होते रहेंगे। यह स्वाभाविक ही है। इस परिवर्तन के अनुसार जो जन प्रयोग में टिके रह सकते हैं उन के अनुसार नये मानकों का निर्धारण एवं नये व्याकरणों के निर्माण की आवश्यकता होती है।

8.3.4 हिन्दी के विविध रूपों पर विभिन्न भाषाओं का प्रभाव-तुलनात्मक विवेचन

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि उच्च हिन्दी शैली पर संस्कृतका अधिक प्रभाव दिखाई देता है। यह भाषा तत्सम बहुला होती जा रही है। ऐसा लगता है कि आम प्रचलित एवं तद्भव शब्दों को छाँट छाँट कर निकालने एवं उन के स्थान पर संस्कृत शब्दों को जोड़ने की प्रक्रिया इस समय काम कर रही है. राज काज की भाषा में भी यह प्रक्रिया देखी जा सकती है। पुलिस थानों और कचहरियों की फ़ाइलो को भाषा एवं सचिवालय और उसके अधीनस्थ कार्यालयों की भाषा में इन दिनों अंतर दिखाई देता है। सचिवालय आदि कर्यालयों में परंपरा से चली आ रही मिली जुली भाषा के पूर्ण बहिष्कार, जन सामान्य में प्रचलित फ़ारसी के शब्दों को भी निकलने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। इसे "हेतु" प्रधान भाषा कह सकते हैं क्यों कि उस में "लिए" "के लिए" का प्रयोग कहीं भूल से ही मिल सकेगा। (ब्रजेश्वर वर्मा: 1979) बोलचाल की भाषा में चाहे वह हिन्दी हो, या उर्दू या हिन्दुस्तानी उस में अंग्रेजी के शब्द ही नहीं, अंग्रेजी के पदबंध (Phrase) और वाक्य भी अधिक मात्रा में प्रयुक्त होने लगे हैं। ऐसे भाषा रूप को हम क्या "हिंग्लीस" की संज्ञा दे सकते हैं? (ब्रजेश्वर वर्मा 1979) वर्तमान हिन्दी के स्वरूप पर टिप्पणी करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा कहते है कि हमारी हिन्दी क्षेत्र की 90 प्रतिशत जनता नहीं समझती।

उच्च उर्दू की शैली में दूसरी तरफ़ आम जनता में प्रचलित तदभव शब्दों को निकाल निकाल कर उन के स्थान पर अरबी-फ़ारसी एवं अंग्रेजी शब्दों को भरा जा रहा है। न केवल शब्दों के बल्कि पद बंध के स्तर पर फ़ारसी के तर्ज पर हिन्दी के पासर्गों को पूर्व सर्ग के रूप में प्रयोग किया जाता है। जैसेः पंजाबकेसरी/पंजाब का शेर - शेर-ए-पंजाब, असल में दर असल, नये सिरे से-अज़-सरे-नौ, किनारे में हर किनारा। इसी प्रकार उच्चारण में शुद्धता बनायें रखने के लिए शब्दों के उच्चारण में परिवर्तन लाना जैसे नादानी नादाँ, ज़बानी-ज़बाँ, हिन्दुस्तान-कब्रस्तान - हिंदेस्ता - कब्रस्ताँ आदि का प्रयोग। इसी प्रकार अनेक अरबी फ़ारसी के विशेषण, क्रिया विशेषण एवं अव्ययों का प्रयोग।

हिन्दी और उर्दू के समान हिंदुस्तानी जो बोलचाल के रूप में है, उस में भी अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग अनपढ़ लोगों के द्वारा भी किया जाता है। समाज के उच्च वर्ग के लोगों की भाषा का अनुकरण कर ये अनपढ़ लोग अपने को भी सभ्य व आधुनिक कहलवाने की ललक से संभवतः ऐसा करते होंगे।

जहाँ तक लघु हिन्दी या बाजारू हिन्दी का संबंध है उन रूपों में स्थानीय भाषाओं का प्रभाव देखा जा सकता है। जैसे दक्खिनी (हैदराबादी) हिन्दी में तेलुगु, बम्बइया हिन्दी में मराठी एवं कलकतिया हिन्दी में बंगला का प्रभाव। इस प्रभाव को निम्न लिखित उदाहरणों से समझा जा सकता है।

दक्खिनी (हैदराबादी) हिन्दीः

बातों, लोगों, आरतों, टिकटों, मौजों -	सभी शब्दों के बहुवचन रूप एक सा बनाने की प्रक्रिया तेलुगु में- लु/जोड़कर बहुवचन बनाने की प्रक्रिया के अनुरूप है।
तुम को क्या होना? मिठाई होना?	नीकु तेलुगु प्रयोग एमि कावालि
नको।	मिठाई कावाला? बद्दा?
तुम घर को कब आये?	नीवु इंटिकि एप्पुडु वच्चुनु?
मैं आतुम करने उन बोला	नेनु वस्तानिनि वाडु चेप्पाडु
वह आता न कते	वाडु राडंट

BRAOU

बम्बइया हिन्दीः

कोन (कोण) भोत/बोत (बहुत) पेला (पहला) नई (नहीं) धंदा (धंधा) धोखा (धोका) सुब (सब) इकतला (अकेला) ऐसे प्रयोग मराठी/गुजराती के अनुसार बने हैं। इसी प्रकार निम्नलिखित वाक्य जो बम्बइया हिन्दी में प्राप्त होते है वे सब मराठी/गुजराती से प्रभावित कहे जा सकते हैं। क्या किया में (मैं ने क्या किया ह?) कोन बुलाया में रे को (मुझे किसने बुलाया)
तेरेकू पहसा देती मे जाने का (मैं तुझे जाने के लिए पैसा देती हूँ)
तुम तीसरा कमरा में जाउ (आप तीसरे कमरे में जाएँ)
जास्ती तंग मत कर मे बोल देतो तेरे से (मैं तुझे कह रही हूँ मुझे ज्यादा तंग मत कर)

कलकतिया हिन्दीः

निम्न लिखित उदाहरण कलकतिया हिन्दी में इसी प्रकार उत्तर पूर्वांचल के बड़े नगरों की हिन्दी में प्राप्त होते हैं जिन पर बंगला तथा अन्य पूर्वांचल भाषाओं की संरचना का प्रभाव देखा जा सकता हैः

हम बोला था।	हम दिया।
सुबह में गिया।	उधर में जायेगा।
नीचू में मिलेगा।	बोलने नहीं सकता।
देने नहीं सकेगा।	नहीं सका।
आज नहीं सकेगा।	थौरा और बैठिए।
थोरा चीनी होने से होगा।	नहीं देने से भी होगा।

8.3.5 हिन्दी के विविध रूपों का प्रयोग क्षेत्रः साहित्य एवं साहित्येतर क्षेत्रः सीमाएँ एवं संभावनाएँः

BRAOU

जैसा कि ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि बाजार हिन्दी या लघु हिन्दी का प्रयोग क्षेत्र बाजारों तक, सामाजिक प्रयोजनों तक सीमित है। बोलचाल के रूप में सीमित सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति इस से होती है। लिखित साहित्य या लोक साहित्य तक की कल्पना इस में नहीं की जाती। यह अलग बात है कि कोई कथा लेखक अपने पात्रों के चित्रण में स्वाभाविकता लाने के उद्देश्य से इस रूप का प्रयोग अपनी रचनाओं में करें। हिन्दी की जनपदीय बोलियाँ पार लोक साहित्य की निधियाँ हैं। कुछ बोलियों में जैसे ब्रज, अवधी, राजस्थानी आदि में लिखित साहित्यिक परंपरा रही और कुछ में अब भी छुटपुट साहित्य रचा जा रहा है। कुछ बोलियाँ अपने अपने इलाकों में, स्कूलों में, कुछ कक्षाओं तक पढ़ायी जाती हैं और पढ़ाई का माध्यम भी है, जैसे मैथिली आदि। लेकिन ज्ञान विज्ञान और आधुनिक भाव बोध के लिए इन बोली भाषियों को भी किसी स्तर पर हिन्दी को अपनाने की आवश्यकता पड़ती है। हिन्दुस्तानी केवल बोलचाल के रूप में व्यवहृत होती है। ग्रामीण अंचलों में इस का प्रचलन है जो हिन्दी-उर्दू का मिला जुला रूप माना जाता है।

इस में साहित्य नहीं है। "दक्खिनी" हिन्दी की एक शैली रही है जिस में दक्षिण भारत के बहमनी वंशज, बीजापुर एवं गोलकोंडा की रियासतों में 13-18 वीं सदी तक साहित्यिक रचनाएँ हुई हैं। अपने समय में ये रचनाएँ खूब प्रचारित रहीं। वे उस समय के भाषा रूप एवं साहित्यिक गतिविधियों को जानने के लिए ऐतिहासिक महत्व, रखती हैं। आज कल दक्खिनी साहित्य की परंपरा लुप्त सी हो गयी है। अब इस का स्थान उर्दू ने लिया है। उर्दू और हिन्दी में साहित्य ही नहीं अपितु ज्ञान-विज्ञान का वाङ मय भी प्रस्तुत किया जा रहा है। दोनों संविधान में उल्लिखित आधुनिक भाषाएँ हैं जिनके विकास के लि राज्य एवं केंद्र सरकार की तरफ़ से प्रयास किये जा रहे हैं। अब प्रायः हिंदुओं की नई पीढ़ी न उर्दू पढ़ती है और न उस में साहित्य की रचना करती है। संघ की राज भाषा एवं 7 राज्यों की राज भाषा होने के कारण समस्त भारत में सामान्य स्तर के लोगों की संपर्क

भाषा होने के कारण हिन्दी में साहित्य ही नहीं ज्ञान विज्ञान का वाड़ मय भी द्रुत गति से विकसित किया जा रहा है। हिन्दी के विकास की संभावनाएँ अन्य भारतीय भाषाओं की तुलना में अधिक है। भारतीय समाज के विकास का संबंध हिन्दी के विकास के साथ जुड़ी हुई है इस बात को अधिकाश लोग स्वीकार करते हैं।

3.4 सारांश

इस पाठ में हिन्दी की सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश के साथ उस के भाषिक परिवेश पर प्रकाश डालते हुए यह विवरण दिया गया कि उस के भाषिक परिवेश की पाँच विशेषताएँ है। इस संदर्भ में हिन्दी क्षेत्र की भाषा की पाँच शैलियों का परिचय दियागयासाथ हीजनपदीय बोलियों के साथ मानक हिन्दी के संबंध को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया। पाठ के दूसरे शीर्षक में हिन्दी, उर्दू, हिंदुस्तानी दक्खिनी एवं उन के विविध अन्य नामों का अर्थ समझाते हुए उनके विकास के संबंध में ऐतिहासिक परिचय दिया गया। इसी में एक दूसरे के सह संबंध को स्पष्ट करते हुए उन की वर्तमान स्थिति पर सप्रमाण व्याख्या प्रस्तुत की गयी। बाद में हिन्दी के प्रमुख रूप हिन्दी, उर्दू, हिंदुस्तानी, दक्खिनी एवं अन्य रूपों का भाषिक गठन का सोदाहरण विवरण प्रस्तुत करते हुए यह दिखाया गया कि सर्व समावेशी अभि रचना एक होते हुए भी वे किस तरह से भिन्न भिन्न माने जाते हैं। इस के बाद इस पर विचार किया गया है कि इन रूपों पर किन किन भाषाओं का प्रभाव पड़ा है। अंत में इस पर चर्चा की गयी है कि हिन्दी के विविध रूपों का भारतीय समाज में क्या स्थान है। उनकी साहित्यिक और साहित्येतर स्थितियों का परिचय देते हुए भावी संभावनाओं पर भी विचार किया गया।

दक्खिनीः

दक्षिण के बहमनी वंश और बीजापूर, गोलकोंडा, और अहमदनगर के राज्योंके मुलमानी कवियों ने जिस भाषा में 15–18 वीं सदियों में रचनाएँ की है, उस भाषा को दक्खिनी/दखनी/दकनी कहा गया तथा उस भाषा में लिखित साहित्य को दक्खिनी साहित्य। उत्तर के शासक, व्यापारी, कारीगर, सैनिक एवं सूफी संत अपने साथ तत्कालीन उत्तर की भाषा जो हिंदवी/हिन्दी कहलाती थी, लाये। इन लोगों ने दक्षिण की स्थानीय भाषाओं जैसे मराठी, तेलुगु, कन्नड़ व तमिल को न अपना कर बोलचाल व साहित्य में तथा कथित हिन्दी/हिंदवी का प्रयोग किया। चूँकि इन में से अधिकांश लोग दिल्ली–मेरठ से संबंधित थे, अतः इनकी भाषा में मध्यकालीन खड़ी बोली और बाँगरू का नमूना सुरक्षित है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उत्तर में अकबर के दरबार में इन्हीं कवियों ने राजाश्रय में तत्कालीन हिंदवी/ हिन्दी की साहित्यिक शैली ब्रज और अवधि में साहित्य का निर्माण किया। उत्तर में तब तक बोलचाल के रूप में प्रचलित देहलवी या खड़ी बोली/बाँगरू शैली को दक्षिण में आकर इन दक्खिनी मुसलमानों के कारण साहित्य की प्रतिष्ठा मिली। उन दिनों इस भाषा को दक्षिण के राज्यों में राज भाषा की तरह सम्मान मिला था। यही दक्खिनी साहित्यि शैली पुनः उत्तर में पहुँचकर रेख़्ता शैली में फ़ारसी के शरीफ़ाना रंग में रंगकर उर्दू ए मुअल्ला और बाद में उर्दू के नाम से साहित्यिक भाषा बन गयी। इस कारण से खड़ी बोली पर आधारित हिन्दी साहित्य के निर्माण में दक्षिण का पड़ा हाथ माना जाता है और दक्खिनी साहित्य हिन्दी साहित्य की निधि भी माना जाता है। दक्खिनी साहित्यिक अवश्य फ़ारसी लिपि में लिखा गया तथापि भाषा, भाव आदि सभी क्षेत्रों में कवियों ने भारतीयता नहीं छोड़ी। इन की भाषा में अनेक संस्कृत शब्द तत्सम व तद्भव रूप में प्रयुक्त हुए हैं। धार्मिक साहित्य में अरबी–फ़ारसी के शब्द थे किंतु आधुनिक उर्दू की तुलना में ऐसे शब्द बहुत ही कम थे। जहाँ भी इन शब्दों का प्रयोग हुआ तद्भव रूप में न कि आजकल के समान तत्सम रूप में। दक्खिनी साहित्य में ही हमें खड़ी बोली गद्य का प्राचीन रूप भी मिलता है। चूँकि यहाँ के कवि सभी मुसलमान थे और भाषा मुसलमानों द्वारा प्रयुक्त थी, इस कारण दकिख्नी हिन्दी को मुसलमानी भी कहा गया। प्रारंभिक दिनों में बोलचाल की एवं साहित्यक दक्खिनी में भले ही स्थानीय भाषाओं का प्रभाव न रहा हो, लेकिन परिवर्ती काल में राज भाषा के रूप में जब इस का व्यवहार बढ़ गया, स्थानीय गैर मुसलमानी जनता के साथ इस भाषा का एवं शासक वर्ग का संपर्क होने लगा तब दक्षिण की भाषाओं का विशेषकर मराठी, तेलुगु और कन्नड का प्रभाव इस पर और इस भाषा का प्रभाव उन पर पड़ने लगा। इस

दृष्टि से बोलचाल की दक्खिनी में स्थान भेद के आधार पर काफ़ी अंतर आने लगा। आजकल चूँकि इन दक्षिण राज्यों में राजकाल एवं शिक्षा के माध्यम को भाषा के रूप में उर्दू को स्थान दिया गया, इस कारण से दक्षिण के अनपढ़ मुसलमान भी भले ही उन की बोलचाल की भाषा स्थानीय दक्खिनी ही क्यों न हो अपनी मातृभाषा को उर्दू की संज्ञा देता है न कि दक्खिनी। इसलिए जनगणना के आंकड़ों में दक्खिनी मातृ भाषियों का उल्लेख नहीं रहता। इस संदर्भ में इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि अपनी मातृभाषा उर्दू घोषित करनेवाला कोई दक्षिण के ग्रामीण अंचल का अनपढ़ मुसलमान हिन्दी क्षेत्र के उर्दू भाषी मुसलमान से संपर्क करना चाहेगा तो दोनों में संप्रेषण नहीं हो पाता। दक्षिण के ग्रामीण अंचल में गैर मुसलमानी लोग अपने मुसलमानी भाइयों की भाषा को उर्दू न कह कर या तो तुरकम कहते हैं या तुलकम। इसी का प्राचीन नाम मुसलमानी था।

8.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

8.6.1 (अ) श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 250 शब्दों में दीजिए:

1. हिन्दी भाषा के सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश पर प्रकाश डालिए।
2. हिन्दी शब्द के विकास के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य पर प्रकाश डालिए।
3. हिंदुस्तानी की विशेषताओं पर अपनी राय दीजिए।
4. दक्खिनी और उस के साहित्य का विवरण दीजिए।
5. भाषा के गठन की दृष्टि से हिन्दी, हिंदुस्तानी और उर्दू के अंतर को स्पष्ट कीजिए।
6. हिन्दी की संभावनाओं पर प्रकाश डालिए।

8.6.2 (ब) श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 125 शब्दों में दीजिए।

1. हिन्दी के भाषिक परिवेश की पाँच विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
2. हिन्दी क्षेत्र की भाषा की कितनी शैलियाँ मानी गयी हैं? वे क्या हैं?
3. हेतु प्रधान भाषा
4. वर्तमान दक्खिनी साहित्य

BRAOU

8.7 नमूने के उत्तर

8.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर

प्रश्न : हिन्दी भाषा के सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश पर प्रकाश डालिए।

उत्तर : हर भाषा की अपनी अलग भाषिक संस्कृति होती है। यह ही उस भाषा का सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश कहलाता है। सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश की दृष्टि से हिन्दी भाषा की कुछ विलक्षण विशेषताएँ पायी जाती है जो अन्य भाषाओं में नहीं मिलतीहै। डॉ. रामविलास शर्मा के शब्दों में सामाजिक सांस्कृतिकता की दृष्टि से हिन्दी बोलनेवालो की संख्या दुनियां में सब से ज्यादा है। विशाल हिन्दी भाषी जन समूह का गठन, उस की जातीय भाषा का विकास उस का सांस्कृतिक अभ्युत्थान, उस के साहित्य की प्रगति सारे भारत देश की प्रगति की महत्वपूर्ण कड़ी है। हिन्दी की दूसरी विशेषता यह है कि उसने कभी प्रतिष्टान नहीं चाहीं। किसी भाषिक समाज की तुलना में अपने आप को श्रेष्ठ घोषित नहीं किया। हिन्दी की तीसरी विशेषता यह है कि मध्य देश की भाषा होने के कारण वह देश भर में होनेवाली सांस्कृतिक गतिविधियों को ग्रहण करती रही। इन्हें आत्मसात कर देश के सुदूर प्रांतों तक उस सांस्कृतिक दाय को वितरित करती रही। जैसीदक्षिण के भक्ति आंदोलन को ग्रहण कर उस का प्रचार

सुदूर आसाम तक किया। इसी प्रकार नेपाल और बंगाल की सास्कृतिक प्रवृत्तियों को ग्रहण कर उन्हें दक्षिण के राज्यों में प्रचारित किया। इस प्रकार हिन्दी प्रारंभ से संपर्क की भाषा रही। अज्ञेय जी की शब्दावली में यह 'क्लियरिंग हाउस' का करती रही।

हिन्दी देश की संस्कृति की समग्रता की वाणी भी थी और भारतीय चेतना में योग देती थी और भारतीय प्रतिभा की उपलब्धियों को सारे देश में संग्रह कर सारे देश में वितरित करती थी।

8.8 पठनीय पुस्तकें

1. अज्ञेय सच्चिदानंद वात्सायन (1978): निबंध और विचार, नई दिल्ली, सरस्वती विहार।
2. गाँधी धर्मपाल (1984) पिजित और क्रयोलः हिन्दी के संदर्भ में: (पृष्ठ 116-137)
   हिन्दी का सामाजिक संदर्भ (सं): श्रीवास्तव रवींद्रनाथ, सहाय रमानाथ, आगरा, केंद्रीय हिन्दी संस्थान।
3. जगन्नाथन, वी.रा. (1981) प्रयोग और प्रयोग, दिल्लीः आक्सफोर्ड यूनिर्सिटी प्रेस
4. रेड्डी विजयराघव (1978) (सं): संस्थान बलिटिन, अंक 28-29, राजभाषा विशेषांक (पृ.32-33) आगरा, केंद्रीय हिन्दी संस्थान
5. रेड्डी विजयराघव (1986): व्यक्तिरेकी भाषाविज्ञान, आगरा, विनोद पुस्तक मंदिर।
6. शर्मा रामविलास (1975): भारतेंदु युग और हिन्दी भाषा की विकास परंपरा, दिल्ली, राजकमल प्रकाशन।

BRAOU

इकाई-9: प्रयोजनपूर्वक हिन्दी और उसकी विभिन्न शैलिया

9.0 विषय प्रवेश
9.1 उद्देश्य
9.2 पाठ-परिचय
9.3 मूलपाठ
    9.3.1 प्रयोजनमूलक भाषा-शैली का तात्पर्य
    9.3.2 प्रयोजनमूलक भाषा-प्रयोग के क्षेत्र
    9.3.3 प्रशासन का क्षेत्र
    9.3.4 वैज्ञानिक तकनीकी क्षेत्र
    9.3.5 विधि और न्याय का क्षेत्र
    9.3.6 वाणिज्य-व्यापार बैंकों का क्षेत्र
    9.3.7 प्रयोजनमूलक शैलियों का विकास: आधारभूत विचारधाराएँ
    9.3.8 प्रयोजनमूलक प्रयुक्तियों के अन्य क्षेत्र
9.4 सारांश
9.5 शब्दार्थ
9.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
    9.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न
    9.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न
9.7 नमूने के प्रश्नोत्तर
    9.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर
    9.7.2 'ब' श्रेणी के प्रश्नोत्तर
9.8 पठनीय पुस्तकें

BRAOU

9.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ में प्रयोजन मूलक हिन्दी और उसकी विभिन्न शैलियों पर विचार किया गया है। इसके अध्ययन से आप:

- प्रयोजनमूलक भाषा-शैली का तात्पर्य समझ सकेंगे।
- प्रयोजनमूलक हिन्दी की विभिन्न शैलियों पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- प्रयोजनमूलक शैलियों की आधारभूत विचारधाराओं पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- प्रयोजनमूलक प्रयुक्तियों की विशेषताओं को रेखांकित कर सकेंगे।

9.2 पाठ परिचय

इस पाठ में प्रयोजनमूलक भाषा के संदर्भ में प्रयोजनमूलक हिन्दी का विवेचन किया गया है/ ऐतिहासिक कारणों से प्रयोजनमूलक भाषा के रूप में भारत में विदेशी भाषाओं का वर्चस्व रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ही प्रयोजनमूलक भाषा के रूप में हिन्दी को विकसित-प्रचलित होने का अवसर मिला। इस दृष्टि से प्रयोजनमूलक हिन्दी की कई शैलियाँ (प्रयुक्तियाँ) विकसित हुई। इनमें से कुछ की चर्चा उसकी शैलिगत, शब्दगत, स्वरूपात्मक विशेषता के साथ इस पाठ में की गई है।

पाठ का मूल उद्देश्य यह है कि हिन्दी के साहित्यिक भाषा के रूप के अतिरिक्त उसके साहित्येतर तथ्यपरक विषयों में प्रयोग को भी विद्यार्थी समझ सके। किसी भाषा के संबंध में उसका व्याकरण नहीं बल्कि उसके प्रयोग के नियम जानना अधिक आवश्यक माना जाता है। विभिन्न विषय क्षेत्रों में हिन्दी की शब्दावली और वाक्यरचना विद्यार्थी को हिन्दी की बहुआयामी और लचीला प्रकृति की जानकारी दे सकेंगे और वह हिन्दी के प्रयोजनमूलक स्वरूप के विकास की दृष्टि व इसकी प्रक्रिया से परिचित हो सकेगा।

पाठ में प्रयोजनमूलक भाषा हिन्दी के प्रयोजनमूलक प्रभाव वर्गों की चर्चा प्रयुक्ति के साथ जोड कर की गई है। प्रयुक्तियाँ प्रयोजनमूलक भाषा की बोलियाँ है, यह तथ्य स्पष्ट किया गया है। साहित्यिक साहित्येतर हिन्दी के प्रयोग क्षेत्र की चर्चा करते हुए प्रशासन, विज्ञान-तकनिकी, विधि-न्यायालय, बैंक, व्यापार-वाणिज्य के साहित्येतर क्षेत्रों में हिन्दी की स्वरूपगत प्रमुख विशेषताओं को दिया गया। हिन्दी के प्रयोजनमूलक स्वरूप के विकास के लिए जो दिशाएँ निर्धारित की गई है उनकी चर्चा करते हुए उसके विकास की भावी संभावनाओं को दिखाया गया है।

9.3 मूलपाठ

9.3.1 प्रयोजनमूलक भाषा- शैली का तात्पर्य

प्रयोजनमूलक भाषा (Functional Language) की चर्चा उसके प्रकार्य की दृष्टि में रख कर की जाती है। प्रयोजनमूलक भाषा अर्थात् जिसका कोई न कोई प्रयोजन हो। यह प्रश्न भी उठता है कि क्या कोई भाषा प्रयोजनहीन भी होती है? सभी भाषा एँ या भाषा रूप प्रयोजन से बंधे रहते हैं पर जिसे हम प्रयोजनमूलक भाषा कहते हैं वह विशिष्ट विषय क्षेत्र से बंधी रहती है। ये विषय क्षेत्र हमारी सामाजिक आवश्यकताओं से जुड़े रहते है। इसीलिए प्रयोजनमूलक भाषा की एक से अधिक शैलियाँ भी होती हैं जिनका प्रयोग भिन्न भिन्न विषयों में अलग अलग रूपों में किया जाता है। प्रयोजनमूलक भाषा की इन शैलियों को प्रयुक्ति (Register) कहा गया है। इन्हें भाषा के विकल्पन (Variants) भी कहा जाता है। भाषा में ऐसी शैलियों या विकल्पों को देखने की दृष्टि हैलिडे नामक विद्वान ने दी है। उन्होंने इनके तीन आयाम निर्धारित किए हैः

1. वार्ता – शैली (Style of discourse)
2. वार्ता प्रश्न – (Mode of discourse)
3. वार्ता क्षेत्र – (Field of discourse)

BRAOU

वार्ता शैली से संबंधित विकल्प हमारे व्यवहार में ही मिल जाते हैं। कभी हम सुसंस्कृतनिष्ठ हिन्दी का प्रयोग करते है, कभी सामान्य हिन्दी का और कभी उसकी बोलियों का। यह विकल्प वक्ता-श्रोता के संबंधों पर निर्भर करता है/वार्ता प्रकरण का तात्पर्य व्यवहार के माध्यम को चुनने से है। इसीलिए मौखिक लिखित माध्यम में भरे रहता है। बोलते समय हम पूरा वाक्य नहीं बोलते, भाषेतर माध्यमों का (जैसे आँख नचाना, पैर पटकना) का भी प्रयोग करते हैं और बोलने के समय स्वर को आवश्यकतानुनार धीमा-तेज करते है। वार्ता क्षेत्र का संबंध भाषा व्यवहार के विषय क्षेत्र से रहता है। हम यहाँ विषय क्षेत्र से जुडी शैलियों को ही हिन्दी के संदर्भ में देखने जा रहे हैं।

9.3.2 प्रयोजन मूलक भाषा-प्रयोग के क्षेत्र

जिस प्रकार एक ही भाषा की कई बोलियाँ होती हैं जैसे हिन्दी की बोलियाँ-ब्रज, अवधी, भोजपुरी आदि, उसी प्रकार प्रयोजनमूलक भाषा की विभिन्न प्रयुक्तियाँ या शैलियाँ भी एक प्रकार की बोलियाँ ही है। जब हम किसी विशेष विषय क्षेत्र से जुडे भाषा रूप को देखते हैं जो वास्तव में हम इन्हीं प्रयुक्तियों की शैलीगत विशेषता को देखते हैं। भाषा के व्यवहार क्षेत्रकी सीमा उसकी प्रयोजन मूलक

शैलियों नियंत्रित करती है। उदाहरण के लिए याने हिन्दी भाषा को लिया जाय तो उसमें भी पत्रकारिता, वाणिज्य, बैंकिंग, तकनीकी, वैज्ञानिक आदि व्यवहार क्षेत्रों में उसकी प्रयोजन मूलक शैलियाँ विकसित हुई है। भाषा प्रकार्य के आधार पर हिन्दी के प्रयोगजनमूलक वर्गों का निर्धारण कुछ विद्वानों ने किया है जो इस प्रकार है:-

1. साहित्यिक हिन्दी
2. विज्ञान और तकनीकी हिन्दी
3. विधि कार्यों से संबद्ध हिन्दी
4. प्रशासनिक/कार्यालय हिन्दी
5. जनसंचार के माध्यम (पत्रकारिता, रेडियो) के रूप में हिन्दी
6. वाणिज्य और व्यवसाय की हिन्दी।

साहित्यिक हिन्दी के प्रयोजन मूलक वर्ग के अंतर्गत कविता, कथा साहित्य, आलोचना, नाटक, निबंध की भाषा को विभिन्न प्रयुक्तियों के रूप में देखा जा सकता है। वैज्ञानिक और तकनीकी हिन्दी के प्रयोजनमूलक वर्ग के अंतर्गत हम विज्ञान से संबद्ध इंजीनियरी, लुहारी, प्रेस, फैक्टरी, मिल आदि की प्रयोजनसिद्ध शैलियों को देख सकते है। विधि से संबद्ध वर्ग में न्यायालय कानून की हिन्दी को देखा जा सकता है। कार्यालय हिन्दी के अंतर्गत विभिन्न सरकारी अर्धसरकारी कार्यालयों में प्रयुक्त हिन्दी को रखा जा सकता है। जनसंचार के माध्यम के रूप में पत्र-पत्रिकाओं, रेडियों और टी.वी. पर प्रयुक्त हिन्दी की प्रयुक्ति के रूप में विश्लेषण किया जा सकता है और व्यवसायों से जुडे प्रयोजनमूलक वर्ग में वाणिज्य, व्यापार, मंडियों, बैंकों में प्रयुक्त हिन्दी शैलियों को देखा जा सकता है।

यह बात सर्वविदित है कि इन विभिन्न विषय क्षेत्रों में हिन्दी भाषा और प्रयुक्तियों का विशाल प्रयोग स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हुआ है। इस के पहले आधुनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति इन क्षेत्रों में अंग्रेजी भाषा के माध्यम से की जाती थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद आधुनिक समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति का दायित्व हिन्दी भाषा को मिला क्योंकि उसे भारत की "राजभाषा" के रूप में भारतीय संविधान में स्वीकृति दी गई। इसके पहले तक हिन्दी अधिकतर साहित्य लेखन का ही माध्यम थी और विद्वान भाषा की साहित्यिक दृष्टि से अध्ययन करते थे। परन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उसका यह सीमित क्षेत्र विकसित हो कर साहित्येतर क्षेत्रों तक भी पहुँचा। तब हिन्दी के व्यवहारिक स्वरूप पर भी अध्ययन व विचार प्रस्तुत किए जाने लगे। व्यवहारिक या प्रयोजनमूलक हिन्दी के संबंध में यह कहा जा सकता है कि जीवन की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उपयोग में लाई जाने वाली हिन्दी ही व्यावहारिक/प्रयोजनामूलक हिन्दी है। आधुनिक समाज के भाषा-व्यवहार के संदर्भ बदल गए है। ये बदले हुए संदर्भ ही दफ्तर, बैंक व्यवसाय आदि साहित्य से सर्वथा भिन्न हैं जिनसे बंधकर हिन्दी के इन विभिन्न व्यावहारिक पक्षों के विभिन्न रूप स्पष्ट देखे जा सकते हैं।

BRAOU

व्यावहारिक क्षेत्रों से जुड़े हुए इन शैली भेदों या प्रयुक्तियों को सामूहिक रूप से हम प्रयोजन मूलक हिन्दी की संज्ञा दे सकते है। जैसा कि अभी संकेत दिया गया कि हिन्दी के प्रयोजनमूलक रूप का और उसकी प्रयुक्तियों का विकास काफी बाद में हुआ है। पिछले कुछ वर्षों में भारत सहित जो राष्ट्र स्वतंत्र हुए हैं उनके लिए यह आवश्यक हो गया कि वे अपनी राष्ट्रीय पहचान को बनाए रखते हुए अपनी प्रयोजनपरक हुआ आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए स्वभाषा पर निर्भर हों। इस स्वभाषा का निर्माण-विकास भी इन राष्ट्रों को करना पड़ा है। हिन्दी के साहित्येतर विषयों में प्रयोग के लिए भी राजभाषा आयोग, पारिभाषिक शब्दावली बोर्ड, केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरों जैसे राष्ट्रीय संघठनों ने अमा योगदान दिया है। इस प्रकार आधुनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जो प्रयत्न किए जाते हैं उन्हें भाषा का वैधानीकरण कहा जाता है। इस प्रक्रिया द्वारा केवल भाषा को समृद्ध ही नहीं किया जाता उसका आधुनिकीकरण किया जाता है। भाषा के इस आधुनिकीकरण का सीधा संबंध समाज के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से रहता है। क्योंकि भाषा का संबंध इन विषयों से भी रहता है और भाषायी समाज की पूरी चिंतन प्रक्रिया सेभी। इसीलिए प्रयोजनमूलक भाषा को शब्द संचार, शब्द निर्माण वाक्य संरचना, अर्थपरक अभिव्यक्ति इन सभी स्तरों पर आधुनिक व संस्कारित बनना

पड़ता है। इस आधुनिकीकरण की दृष्टि से ही यहाँ हम हिन्दी के कुछ प्रयोजन मूलक क्षेत्र के संदर्भ में उसकी विशेषताओं की चर्चा करेंगे।

9.3.3 प्रशासन का क्षेत्र

प्रशासन के क्षेत्र में प्रयुक्त हिन्दी के प्रयोग के लिए विकसित इस हिन्दी का उद्देश्य यह है कि इसके द्वारा प्रशासन के उन कार्यों की पूर्ति हो सके, जो पहले अंग्रेजी के माध्यम से और उसके भी पहले फारसी के माध्यम से होती थी। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि प्रशासनिक हिन्दी प्रयुक्ति की वाक्य-संरचना या उसकी शैली अंग्रेजी वाक्य संरचना या उसकी शैली से पूरी तरह प्रभावित है। इसकी शैली में निर्वैयक्तिक वाक्य रचना का प्रयोग अधिक होता है। इसका कारण यह है कि प्रशासन में कोई व्यक्ति कोई आदेश, निर्णय नहीं देता। अतः निर्वैयक्तिकता का यह पक्ष अनिवार्य रूप से कार्यालयीन हिन्दी शैली में आ गया है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित वाक्य देखिए:-

1. सूचित किया जाता है (न कि मैं सूचित करना हूँ)
2. यह आदेश दिया जाता है
3. आप को सूचना दी जाती है
4. आपको चेतावनी दी जाती है

यह निर्वैयक्तिकता इस प्रकार के वाक्यों में ही नहीं "आज्ञा" "अनुरोध" वाले वाक्यों में भी हिन्दी में आ गई हैं।

1. कार्यवाही की जाय (न कि आप कार्यवाही करें)
2. इस सूचना को घुमाया जाय
3. आवश्यक निर्णय लिया जाय।

कार्यालय हिन्दी की शैली एक अन्य स्तर पर भी विशिष्ट है। सामान्य या साहित्यिक हिन्दी में वाक्य प्रायः समस्त्रोतीय शब्दावली के ही होते है जैसे मुझे संध्या समय एक सभा में भाषण देना है या मुझे शाम को एक जलसे में तकरीर करनी है। परन्तु कार्यालय हिन्दी शैली में विषमस्त्रोतीय शब्दावली का प्रयोग बहुतायत से होता है।

1. मसौदा अनुमोदन के लिए पेश है
2. यह कागज विचाराधीन है
3. मिसिल रजिस्टर में दर्ज कर ली गई है।

अनिश्चयार्थक वाक्यों का प्रयोग निश्चयार्थक वाक्य के लिए भी कार्यालय हिन्दी शैली की एक विशेषता है:

1. श्वीकृति दी जा सकती है (न कि स्वीकृति दें दीजिए)
2. कार्यवाही की जा सकती है
3. मसौदा तैयार किया जा सकता है।

ऊपर कार्यालयी हिन्दी की वाक्यगत विशेषताएँ, उसकी विशिष्ट शैली या प्रयुक्ति को प्रभावित करती है। इसीलिए कार्यालयी हिन्दी प्रयुक्ति जैसी उपरोक्त प्रकार की वाक्य रचनाएँ अन्य प्रयुक्ति क्षेत्रों में व्यवहार में नहीं मिलतीं। शब्दावली की कुछ विशेषताएँ व कुछ संरचनाएँ भी हैं जिनकी संक्षिप्त चर्चा की जाएगी।

BRAOU

कार्यालयी हिन्दी में अधिकांश शब्द मूलतः संस्कृत के हैं और प्रशासनिक भाषा में ही प्रयुक्त होते हैं। इनका यदि अन्य प्रयुक्तियों में प्रयोग होता भी है तो उन्हें कार्यालयी हिन्दी से ही लिया जाता है। इस संदर्भ में नीचे दिए गए कुछ शब्द देखे जाते हैं:-

आयुक्त - Commissioner
प्रशासकीय - Administrative
प्राधिकरण - Authority
निविदा - Tender
लिपिक - Clerk
शपथपत्र - Affidavit

वैसे हिन्दी में समानस्त्रोतीय शब्दों द्वारा ही शब्द-रचना होती है जिसे निर्धन ता (निर्धनता) कारीब ई (गरीबी)/इसके स्थान पर गीबता या निर्धनी शब्द नहीं बनेंगे। परन्तु कार्यालयी हिन्दी में विषमस्त्रोय घटकों से मिला कर कई शब्द बनाए गए हैं:

उपकिरायेदारी - Subletting
अरद्द - Uncancelled
अरजिस्ट्रीकृत - Unregistered
अस्टांपित - Unstamped

उपर की स्थिति उपसर्गों की दृष्टि से कार्यालयी हिन्दी में उनके प्रयोग को दिखाती है। प्रत्ययो की दृष्टि से भी कार्यालयी हिन्दी में प्रायः यह स्थित दिखाई देती है:

मुद्राबंद - Sealed
स्टांपित - Stamped
डिक्रीदार - Decree-holder

समास प्रक्रिया से बननेवाले शब्दों में विषमस्त्रोतों से नियमित शब्दावली की संख्या कार्यालयी हिन्दी में और भी अधिक है, इन्हें संकर शब्दावली कहा जाता है।

मतदान बूथ - Polling Booth
कोटा निर्धारण - Fixation of Quota
उपस्थिति रजिस्टर- Attendence Register
बजट-प्राक्कलन - Budget Estimate
कलेंडर वर्ष - Calender year
राशन अधिकारी - Rationing Officer

जैसा कि पहले भी कहा गया, हिन्दी के राजभाषा पर प्रतिष्ठित होने के पहले फारसी राजभाषा थी अतः कार्यालयी हिन्दी में भी अरबी-फारसी तुर्की के ये प्रचलित शब्द आ गए हैं:

अदालत - Court
जिला - District
जमानत - Security
खजाना - Tresury
सरकार - Government
मुकदमा - Case

BRAOU

इसी कानून से कार्यालयी हिन्दी में कई ऐसे शब्द हैं जिनके दो दो रूप प्रचलित हैः

Rejected application	नामंजूर अर्जी	– अस्वीकृत आवेदन पत्र
Agreement form	करारनामा	– अनुबंध पत्र
Court	अदालत	– न्यायालय
Officer	अफसर	– अधिकारी

9.3.4 वैज्ञानिक तकनीकी क्षेत्र

विकासशील देशों में विज्ञान और तकनीक का विकास उनकी अपनी भाषा के माध्यम से काफी बाद में हुआ है। विकसित देश इस दृष्टि से संपन्न रहे है/वैज्ञानिक और तकनीकी हिन्दी का विकास भी अभी पूरी तरह नहीं हुआ है, परन्तु इस क्षेत्र में उसका एक स्वरूप निर्मित हो चुका है। वैज्ञानिक हिन्दी की शैली तथ्यपरक व रचनात्मक है। इसकी शैली स्पष्ट, सरल और तर्कसंगत रहती है, तर्कसंगत होने के कारण ही वैज्ञानिक तकनीकी हिन्दी शैली मुहावरों या अर्थ विषयेतर प्रसंगों से बोझिल नहीं बनने पाई है। छोटे, सरल, सुबोध वाक्यों से बंधी यह शैली विचारप्रधान होती है। वैज्ञानिक तकनीकी शैली में वाक्य रचना छोटी व स्पष्ट होती है/इस संदर्भ में कुछ वाक्य देखे जा सकते हैं।

1. एक छोटा कण है
2. कणपर प्रकाश पडता है
3. प्रकाश तरंग विखरती है
4. कण से दूर एक बिंदु है

इस प्रकार की सरल वाक्य रचना वैज्ञानिक हिन्दी शैली को सुबोध व सरल बनती है/वैज्ञानिक विषय अपने विचार में जटिल होते हैं और उनकी भाषा-शैली भी जटिल हो जाय तो उसके विचारों को समझने में भी कठिनाई होगी अथवा व्यक्त विचार भ्रमात्मक बन जाएगे।

विज्ञान – तकनीक की हिन्दी शैली में कुछ विशेषताएँ विज्ञान-भाषा की अपनी विशेषताओं के कारण भी आ गई हैं। वैज्ञानिक भाषा काल भाषा के अधिक निकट होती है। उदाहरण के लिए सूर्य को दिनकर कहना और पानी को कहना तकनीक दृष्टि से एक ही तरह के भाषिक विस्तार हैं। इसके साथ ही वैज्ञानिक हिन्दी प्रयुक्ति में सामान्य सहड शब्दावली को पारिभाषिक बनाने का प्रयत्न किया गया है। बल, गति, गुरूत्व सामान्य हिन्दी में भिन्न अर्थ रखते हैं, वैज्ञानिक हिन्दी में ये वैज्ञानिक विचार को व्यक्त करते हैं। इस प्रकार गैस, द्रव्य, तना, जड, दाल, स्तनपायी, उभयचर आदि शब्दों को भी देखा जा सकता है।

वैज्ञानिक तकनीकी हिन्दी प्रयुक्ति में वैज्ञानिक उपकरणों, वस्तुओं आदि के नामों को देवनागरी लिपि में लिपयंतरित करके ग्रहण कर लिया गया है जैसे नाइट्रोजन, मीटर, लीटर, बीकर, ट्यूब आदि। हिन्दी में आक्सीजन (प्राणवायु) जैसे शब्द वैज्ञानिक क्षेत्र में निर्मित भी किए गए हैं।

9.3.5 विधि और न्याय का क्षेत्र

विधि और न्याय के क्षेत्र का हिन्दी प्रयुक्ति का प्रयोग वैधनिक नियमों, आदेशों आदि में तथा न्यायालयकी कार्य विधि में किया जाता है। इस हिन्दी प्रयुक्ति का मूलाधार अंग्रेजी भाषा रही है। विधिक अधिनियमों का अनुवाद और विधि शब्दावली का अनुवाद के सहारे निर्माण ये दोनों कार्य साथ साथ प्रारंभ किए गये थे। विधि की शब्दावली में हमें संस्कृत की तत्सम शब्दावली के आधार पर निर्मित शब्दावली प्रचुर मात्रा में मिलती है।

BRAOU

आदेश	–	Order
नियम	–	Rule
अधिनियम	–	Act
राज्यपाल	–	Governor
विनिमय	–	Regulation
भारतीय दंड संहिता	–	Indian Penal Code
दंड प्रक्रिया संहिता	–	Criminal Procedure Code

इसके साथ ही न्याय की भाषा फारसी समय तक रही, इसलिए न्यायालयी हिन्दी में हमें पालिश, बाबत, सम्मान, तारीख, बरकत, मार्फत, वकील, दावा, दस्तावेज, इत्तिला जैसे शब्दों का प्रयोग भी मिलता है। इस प्रयुक्ति में वाक्य रचना कार्यालयीन हिन्दी की भाँति ही अधिकतर निर्वैयक्तिक होती है। नीचे दिए गए एक न्यायालय के घोषणा पत्र को देख कर यह बात स्पष्ट हो जाएगी।

"ऊपर लिखे धर्मचन्द्र जैन ने इस न्यायालय में दीवानी विधि प्रक्रिया संहिता के नियम 9के अन्तर्गत एक आवेदन पत्र दिया है। इसलिए इस घोषणा के जरिए आपको सावधान किया जाता है कि आपको उक्त आवेदन पत्र के स्वीकार कर लेने के विरोध में यदि कुछ कहना है तो आप समर्थ वकील के माध्यम से पेश हों। ऐसा न करने पर उक्त आवेदन एक पक्षीय सुना और निर्णय सुना और निर्णय किया जाएगा।

ऊपर के अंश में विशिष्ट वाक्य रचना के साथ-साथ हिन्दी व उर्दू के शब्दों के प्रयोग को भी साफ देखा जा सकता है/इन पक्षों को गद्यांश में रेखांकित कर दिया गया है।

9.3.6 वाणिज्य व्यापार और बैंकों का क्षेत्र

व्यापार, वाणिज्य और बैंक के क्षेत्र एक दूसरे से संबद्ध है। व्यापार का क्षेत्र सीमित होता है, वाणिज्य का व्यापक। व्यापार में राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय व्यापर आ जाते हैं। राष्ट्रीय स्तर पर थोक व्यापार, फुटकर व्यापार प्रमुख रूप हैं और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आयात - निर्यात/वाणिज्य का संबंध उद्योगों द्वारा निर्मित वस्तु का सही वितरण व उसके बाजारसा है। बैंक इन दोनों क्षेत्रों में व्यापार-वाणिज्य की मदद करता है। देश-विदेश में व्यापार में, क्रय-विक्रय में मुद्रा द्वारा ही मूल्य चुकाया जाता है।

BRAOU

देश के एक कोने से दूसरे कोने तक तथा विदेशों तक में, मूल्य की अदायगी कब, कैसे की जाय इसका समाधान बैंक ही करते हैं। बैंक व्यवसाय के लिए साधन भी उपलब्ध कराते है और उनका संबंध बढ़ाने में भी मदद करते हैं।

व्यापार, वाणिज्य बैंक इन सभी क्षेत्रों में हिन्दी का प्रयोग प्रशासनिक धरातल पर भी होता है और व्यावसायिक धरातल पर भी। व्यापार में सरकार से सहयोग प्राप्त करने के लिए, कोटा, परमिट लाइसेंस, आयकर, बिक्रीकर आदि के संबंध में पत्र व्यवहार के लिए प्रशासनिक हिन्दी प्रयुक्ति का प्रयोग किया जाता है। बैंकों में भी प्रशासनिक स्तर पर छुट्टी, वेतन आदि मामलों में कार्यालयी हिन्दी का प्रयोग होता है।

व्यापर-वाणिज्य की शैली विशेष प्रकार की है। व्यपारिक क्षेत्र में बाजार-मूल्य, कुल व्यापार, बाजार-तेज बाजार-मंद, बाजार गिरना, बाजार टूटना जैसी अभिव्यक्तियाँ हिन्दी प्रयुक्ति की विशेषता है।

इसके साथ ही व्यापार-वाणिज्य के क्षेत्र में जो पारिभाषिक शब्दावली है उसमें तत्सम शब्दावली के आधार पर अनेक शब्द प्रचलित है:

Bill of Entry - आगम पत्र
Balance Sheet - स्थिति विवरण
Call Letter - मांग पत्र
Damage Claim - क्षतिपूर्ति दावा

व्यापार-वाणिज्य के क्षेत्र में अंग्रेज़ी, अरबी, फारसी के आगम शब्द भी बड़ी संख्या में आ गए है जैसे अमानत (Deposit), नुकसान (Loss), खपत (Consumption), बेदखली (Eviction), गिरवी (Pawn), बाजार (Market), जालसाज़ी (Forgery) आदि। इसके साथ ही व्यापार - वाणिज्य की हिन्दी में एक अंग्रेज़ी शब्द के लिए दो रूपों का प्रचलन भी हमें दिखाई देता है:

क्षति-नुकसान - Damage
वृद्धि-इज़ाफा - Increase
अग्रिम-पेशगी - Advance
संविदा-करार - Agreement

इस हिन्दी प्रयुक्ति में देशज या लोक शब्द भी बड़ी संख्या में पारिभाषिक बनाए गए हैं:

दुलाई - Drayage
भाड़ा - Freight
टिकाऊ - Durable
पट्टा - Lease
कटौती - Concession

व्यापार-वाणिज्य की हिन्दी प्रयुक्ति की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें एक ही शब्द जब भिन्न संदर्भों में प्रयुक्त होता है तो उसके लिए भिन्न हिन्दी पर्यायों का प्रयोग किया जाता है। पर स्थिति, प्रयोग की दृष्टि से समस्या भी उत्पन्न करती है। उदाहरण के लिए नीचे शब्द के संदर्भ में भिन्न स्थितियों में दिए जाने वाले हिन्दी पर्यायों को देखिए:

Home Consumtpion - निजी खपत
Home Industry - गृह उद्योग
Home Market - देशी बाजार
Home Trade - आंतरिक व्यापार

BRAOU

बैंकिग हिन्दी की शब्दावली और व्यापार-वाणिज्य की शब्दावलरी में हिन्दी प्रयुक्ति में समानता ही है/बैंकिग के संदर्भ में कुछ ऐसे शब्दों को देखने का प्रयत्न किया जाता है जिनके हिन्दी पर्याय बहुत स्पष्ट नहीं हो पाए है। उदाहरण के लिए Loan, Advance, Credit और Debit के अर्थ की भिन्नता समझ पाना बड़ा कठिन है। हिन्दी के इनके लिए क्रमशः ऋण, अग्रिम, साख और कर्ज का प्रयोग किया जाता है जो बहुत स्पष्ट व सटीक नहीं है/ बैंकिंग हिन्दी प्रयुक्ति में महाजनी व्यवस्था के कर्ज शब्द अपना लिए गये है। बैंकों के प्रचलन के पहले लेन-देन का काम महाजनी व्यवस्था द्वारा ही भारत में होता था। इस स्त्रोत से सर्राफ़, नामें, जमा खाता, लेनदेन बही, निकासी ब्याज जैसे शब्द बैंकिंग हिन्दी में आगए है। बैंकिंग हिन्दी शब्दावली में संकर शब्दों की संख्या भी कम नहीं है/ उदाहरण के लिए खातादारी चेककर्ता, जांचकर्ता, लॉरपधारी ड्राफ़्टकर्ता जैसे शब्दो को देखा जा सकता है। अंग्रेज़ी मूल शब्दों को देवनागरी में लिप्यंतरित करके भी बैंकिंग हिन्दी में स्वीकृत कर लिया गया है जैसे चेक, शेयर, इक्विटी, बुलियन, मार्जिन, कोटा, वारचर, लॉकर, काउंटर, टोकन, आदि।

9.3.7 प्रयोजनमूलक शैलियों का विकासः आधारभूत विचार धाराएँ

ऊपर के कुछ प्रयोजनमूलक क्षेत्रों में हिन्दी प्रयुक्ति की शैलीगत विशेषताओं द्वारा उसके स्वरूप की प्रमुख बातों को सामने रखने का प्रयत्न किया गया। इससे आपके सामने एक बात स्पष्ट हुई होगी कि प्रयोजनमूलक हिन्दी का विकास विभिन्न दिशाओं में भिन्न धरातलों पर हुआ है। संविधान की धारा 351 में हिन्दी के जिस मिलेजुले रूप के विकास की बात की गई थी इन प्रयुक्तियों के विकास में हिन्दी में पूर्ण तरह अपनाया गया है/हिन्दी की प्रयोजनमूलक शैलियों का विकास मूलतः इस धाराओं में हुआ है। ये धाराएँ हिन्दी का प्रयोजनमूलक स्वरूप के विकास में शब्दावली और वाक्य विन्यास के धरातल पर प्रमुख प्रवृत्ति के रूप में कार्य करती रही हैं।

1. पुनरूपत्थानवादी धारा
2. लोकवादी धारा
3. अंतरराष्ट्रियतावादी धारा
4. समन्वयवादी धारा

पुनरुत्थानवादी धारा को ही राष्ट्रीयतावादी या शुद्धतावादी भी कहा जाता है। इस धारा के आधार पर ही हिन्दी प्रयुक्तियों में संस्कृत के तत्सम प्रचलित शब्दों को यथावत ग्रहण किया गया है और नए शब्दों का निर्माण भी संस्कत के उपसर्ग, प्रत्यय, धातु, शब्द आदि के आधार पर किया गया है/इस धारा की एक विशेषता यह है कि इस में एक शब्द से अनेक शब्द बनाने का सामर्थ्य है जैसे "विधि"से संविधि, विधान, संविधान, विधायी, विधायिका आदि। इसी प्रकार "ईक्षण" संस्कृत धातु के साथ उपसर्ग-प्रत्यय लगाकर भी वीक्षण (Incestigation), संवीक्षण (Seroviting), परीक्षण (Testing), निरीक्षण (Inspection), सर्वेक्षण (Survey) आदि शब्द बनाए जा सकते हैं।

लोकवादी धारा लोकप्रचलित शब्दों व वाक्य संरचना के आधार पर प्रयुक्तियों के रूप विकसित करने के पक्ष में है। उदाहरण के लिए यदि पुनरुत्थानवादी धारा (Maternity Home) के लिए "प्रसूतिगृह" शब्द को अपनाती है तो लोकवादी धारा उसके स्थान पर "जच्चाघर" के प्रयोग के पक्ष में है/ दलबदलू, घुसपैठिया, मसौदा आदि इसी धारा के शब्द हैं/ ऐसे शब्द हिन्दी भाषा में बहुत कम हैं, अतः इस धारा के आधार पर प्रयुक्तियों का विकास संभव नहीं माना गया है। अर्थात् इस प्रवृत्ति के अनुसार प्रयुक्तियाँ समृद्ध नहीं हो जाएँगी।

BRAOU

अंतरराष्ट्रीयवादी धारा को आदानवादी धारा भी कहा जाता है। अंग्रेजी को अंतरराष्ट्रीय भाषा और भारत को एक बहुभाषी देश मानते हुए यह धारा अंग्रेजी के शब्दों को यथावद या हिन्दी की ध्वनि व्यवस्था के अनुसार (जैसे Academy अकादमी) बनाकर अपना लेने के पक्ष में है। सारी पारिभाषिक शब्दावली को अंग्रेजी का ही स्तरीय कर पाना कठिन ही नहीं अनुचित भी है। फिर भी हिन्दी प्रयुक्तियों ने अपनी संप्रेषणीयता को बनाए रखते हुए अंतरराष्ट्रीय शब्दों को ग्रहण किया है जैसे मीटर, राडार, ड्यूटी, रेडियो, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, ट्रेडयूनियन, कंपनी, बजट, लेबल गोदाम आदि। समन्वयवादी धारा को मध्यमार्गी भी कहा जाता है/इस के द्वारा उपरोक्त तीनों धाराओं को आवश्यकतानुसार समन्वय द्वारा हिन्दीप्रयुक्तियों को विकसित करने पर बल दिया गया है। जहाँ तीन शब्द एक साथ स्वीकृत किये गये हैं जिनका संदर्भानुसार चयन का प्रयोग किया जा सकता है जैसे कचहरी- कोर्ट, न्यायालय; सरकार, शासन, गवर्नमेन्ट; चुनाव-निर्वाचन - इलेक्शन आदि।

हिन्दी प्रयुक्तियों के विकास में इन दिशाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। प्रयोजनमूलक हिन्दी में ये शैलियाँ संस्कृत की ओर झुकी हुई, साथ-साथ संदर्भानुसार प्रयुक्त होती हैं। इस प्रवृत्ति ने हिन्दी के प्रयोजनमूलक स्वरूप को व्यापकता भी दी है और उस के अखिल भारतीय स्तर पर स्वीकार्यता की संभावना भी बढ़ी है।

9.3.8 प्रयोजनमूलक प्रयुक्तियों के अन्य क्षेत्र

उपरोक्त हिन्दी के प्रयोजनमूलक स्वरूपों के अतिरिक्त अब हिन्दी के कई अन्य विशिष्ट रूप भी उभर कर हमारे सामने आ गए हैं। पत्रकारिता में ही राजनैतिक समाचार, खेलकूद समाचार, फिल्म समीक्षा, बाल जगत, विज्ञापन आदि ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें हिन्दी की भिन्न-भिन्न शैलियाँ प्रयुक्त होती हैं और जिनके द्वारा हिन्दी की शब्द संपदा व अभिव्यक्ति शैली में आशातीत वृद्धि हुई है। इस के साथ ही औद्योगिक क्षेत्रों में, तकनीकी क्षेत्रों में हिन्दी के प्रयोग ने उस के स्वरूप को इन क्षेत्रों में परिनिष्ठित आदर्श रूप प्रदान किया है। इस का प्रमाण है कि अब हिन्दी में विज्ञान-लोक, आविष्कार जैसी पत्रिकाएँ वैज्ञानिक तकनीकी विषयों को केन्द्र में रखकर निकलने लगी हैं और औद्योगिक-सूचना-समाचार दैनिक पत्रों में भी और नियतकालीन पत्रों में भी नियमित प्रकाशित होते है।

9.4 सारांश

संक्षेप में कहा जाय तो प्रयोजनमूलक हिन्दी के स्वरूप का निर्माण और विस्तार स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के वर्षों में अपना आकार ग्रहण करता है। अखिल भारतीय स्वीकार्यता को और संविधान की धारा 351 को ध्यान में रखते हुए ही प्रयोजनमूलक हिन्दी में मूलतः संस्कृत को ही प्रमुखता दी गई है। जिस प्रकार अंग्रेजी के प्रयोजनमूलक स्वरूप का आधार ग्रीक लैटिन जैसी प्राचीन भाषाएँ बनी, उसी प्रकार हिन्दी के प्रयोजनमूलक स्वरूप का आधार संस्कृत बनी है। अखिल भारतीय स्तर पर प्रयोजनमूलक हिन्दी को स्वीकार्य और ग्राह्य बनाने के उद्देश्य से अंग्रेजी और अरबी, फारसी के बहुत से शब्दों को इसमें ले लिया गया है। उसी के साथ ही लोकप्रचलित शब्दों को पारिभाषिक बना कर भी प्रयोजनमूलक हिन्दी का सहजता, सुबोधता प्रदान करने का प्रयत्न किया गया है।

प्रयोजनमूलक हिन्दी की पारिभाषिक शब्दावली, उसकी वाक्य रचना, उसकी अभिव्यक्तियाँ इस बात को प्रमाणित करती हैं कि हिन्दी ने आधुनिक समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने का अपना दायित्व जिस प्रकार भी संभव हुआ है पूरा करने का प्रयत्न किया है/इससे दूसरी बात यह भी सिद्ध होती है कि हिन्दी भाषा की व्यवस्था एक लचीली व्यवस्था है जिसके कारण वह प्रत्येक विषय के अनुरूप अपना आकार ग्रहण करने में सफल हो सकी है।

BRAOU

9.5 पारिभाषिक शब्द और अंग्रेजी पर्याय

प्रयोजनमूलक –
शैली
प्रकार्य
भाषांतर
भाषा व्यवहार
बोली
प्रयुक्ति
जन संचार
वैधानीकरण
आधुनिकीकरण
प्रक्रिया

9.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

9.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न

1. हिन्दी के प्रयोजनमूलक वर्गों की सोदाहरण चर्चा कीजिए।
2. प्रयोजनमूलक भाषा के विकास पर हिन्दी के संदर्भ में विचार कीजिए।
3. प्रशासनिक हिन्दी की वाक्य रचना की सोदाहरण चर्चा कीजिए।
4. वैज्ञानिक भाषा तर्कसंगत होती है/ इस कथन को सोदाहरण सिद्ध कीजिए।
5. विधि और न्याय के क्षेत्र में हिन्दी प्रयुक्ति की चर्चा कीजिए।
6. बैंकिंग हिन्दी शब्दावली का विवेचन कीजिए।

9.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न (125 शब्दों में)

1. आधुनिकीकरण क्या है?
2. वाणिज्य-व्यापार और बैंक का संबंध।
3. व्यापार में प्रशासनिक शैली का प्रयोग क्यों होता है?
4. पुनरुत्थानवादी धारा।

9.7 नमूने के उत्तर

9.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर

प्रश्न : बैंकिंग हिन्दी की शब्दावली का विवेचन कीजिए।

उत्तर :बैंकिंग हिन्दी की शब्दावली और व्यापार-वाणिज्य की शब्दावली में हिन्दी प्रयुक्ति में समानता ही है। बैंकिंग के संदर्भ में कुछ ऐसे शब्दों को देखने का प्रयत्न किया गया है जिनके हिन्दी पर्याय बहुत स्पष्ट नहीं हो पाए है/उदाहरण के लिए Loan, Advance, Credit और Debit के अर्थ की भिन्नता समझ पाना बड़ा कठिन है। हिन्दी में इस के लिए क्रमशः रुण, अग्रिम, साख और कर्ज का प्रयोग किया जाता है जो बहुत स्पष्ट व सटीक नहीं है। बैंकिंग हिन्दी प्रयुक्ति में महाजनी व्यवस्था के कई शब्द अपना लिए गए है। बैंकों के प्रचलन के पहले लेनदेन का कार्य महाजनी व्यवस्था द्वारा ही भारत में होता था। इस स्त्रोत के सर्राफ, नामे, जमा, खाता, देनदार, बही, निकासी ब्याज जैसे शब्द बैंकिंग हिन्दी में आ गए है/बैंकिग हिन्दी शब्दावली में संकर शब्दों की संख्या भी कम नहीं है, उदाहरण के लिए खाताधारी, चेककर्ता, जांचकर्ता, लॉकरधारी, ड्राफ्टकर्ता जैसे शब्दों को देखा जा सकता है। अंग्रेजी मूल शब्दों को देवनागरी में लिप्यांतरित करके भी बैंकिंग हिन्दी में स्वीकार कर लिया गया है जैसे चैक, शेयर, इक्विटी, बुलियन, मार्जिन कोटा, वाउचर, लॉकर, काऊंटर, टोकन आदि।

BRAOU

9.7.2 'ब' श्रेणी के प्रश्नोत्तर

प्रश्न :लोकवादी एवं अतर्राष्ट्रीयतावादी की चर्चा हिन्दी के प्रयोजनमूलक स्वरूप के संदर्भ में कीजिए।

उत्तर :लोकवादी धारा लोगप्रचलित शब्दों व वाक्यसंरचना के आकार पर प्रयुक्तियों का रूप विकसित करने के पक्ष में है। उदाहरण के लिए यदि पुनरुत्थानवादी धारा (Maternity Home) के लिए "प्रसुतिगृह" शब्द को लेती है तो लोकवादी धारा उसके स्थान पर जच्चाघर के प्रयोग के पक्ष में है/दलबदलू, घुसपेटिया, मसौदा आदि इसी धारा के शब्द हैं। ऐसे शब्द हिन्दी भाषा में बहुत कम है। अतः इस धारा के आधार पर प्रयुक्तियों का विकास संभव नहीं माना गया है। अर्थत् इस प्रकृति के अनुसार प्रयुक्तियाँ समृद्ध नहीं हो पायेगी।

अंतर्राष्ट्रियतावादी धारा को आदानवादी धारा भी कहा गया है। अंग्रेजी को अंतर्राष्ट्रिय भाषा और भारत को एक बहुभाषी देश मानते हुए यह धारा अंग्रेजी के शब्दों को यथावत या हिन्दी की ध्वनिव्यवस्था के अनुरूप जैसे अकादमी बनाकर अपना लेने के पक्ष में है/सारी पारिभाषिक शब्दावली को अंग्रेज़ी की ही स्वीकार कर पाना कठिन ही नहीं अनुचित भी है, फिर भी हिन्दी प्रयुक्तियों ने अपनी संप्रेषणीयता को बनाए रखते हुए अंतर्राष्ट्रिय शब्दों को ग्रहण किया है जैसे मीटर, राडार, ड्यूटी, रेडियों, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, ट्रेडयूनियन, कंपनी बडट, लेबल, गोदाम आदि।

प्रश्न :आधुनिकीकरण क्या है?
उत्तर :आधुनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जो प्रयत्न किये जाते हैं उन्हें भाषा का वैधानिकरण कहा जाता है। इस प्रक्रिया द्वारा केवल भाषा को समृद्ध नहीं किया जाता बल्कि उसका आधुनिकीकरण किया जाता है। भाषा के इस आधुनिकीकरण का सीधा संबंध समाज के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से रहता है। क्योंकि भाषा का संबंध इन विषयों से भी रहता है और भाषायी समाज की पूरी चिंतन प्रक्रिया से भी, इनकी प्रयोजनमूलक भाषा को शब्दसंपदा, शब्दनिर्माण वाक्यसंरचना, अर्थपरक अभिवयक्ति इन सभी स्तरों पर आधुनिक व संस्कारित बनाना पड़ता है। इस आधुनिकीकरण की दृष्टि से हिन्दी के कुछ प्रयोजनमूलक क्षेत्रों के संदर्भ में उसकी भाषिक विशेषताओं की चर्चा की जाती है।

9.8 पठनीय पुस्तकें

1. राजभाषा हिन्दी – डॉ. भोलानाथतिवारी
2. प्रयोजनमूलक हिन्दी – सं. श्रीवास्तव, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान
3. व्यवहारिक हिन्दी – डॉ. के.के. गोस्वामी
4. व्यावहारिक हिन्दी – डॉ. दिलीप सिंह

BRAOU

इकाई-10: हिन्दी भाषा के आधुनिकीकरण के प्रयत्न

10.0 विषय प्रवेश
10.1 पाठ का उद्देश्य
10.2 पाठ परिचय
10.3 मूल पाठ
10.3.1 भाषा और समाज
10.3.2 समाज का विकास और भाषा का विकास
10.3.3 दो भिन्न संस्कृतियों का दृष्टिकोण और भाषा के विकास का संदर्भ
10.3.4 पुनर्जागरण युग और हिन्दी के आधुनिकीकरण का प्रारंभ
10.3.5 भाषा आधुनिकीकरण का पहला संदर्भ- भाषा रूप व प्रतिमान का चयन
10.3.6 भाषा आधुनिकीकरण का दूसरा संदर्भ- भाषा के प्रयोग क्षेत्रों का विस्तार
10.3.7 भाषा आधुनिकीकरण का तीसरा संदर्भ- पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण व प्रयोग
10.3.8 भाषा आधुनिकीकरण का चौथा संदर्भ- मानवीकरण
10.3.9 भाषा आधुनिकीकरण का दूसरा संदर्भ- मशीनीकरण
10.3.10 सामाजिक संस्कृति का संदर्भ- हिन्दी भाषा और साहित्य का आधुनिकीकरण
10.4 पाठ का सारांश
10.5 पारिभाषिक शब्दावली
10.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
10.6.1 'अ' श्रेणी के (प्रश्न (250 शब्दों में)
10.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न (125 शब्दों में)
10.7 नमूने के उत्तर
10.7.1 'अ' श्रेणी के नमूने के उत्तर (250 शब्दों में)
10.7.2 'ब' श्रेणी के नमूने के उत्तर (125 शब्दों में)
10.8 पठनीय पुस्तकें

10.1 पाठ का उद्देश्य

हिन्दी भाषा के आधुनिकीकरण के सम्बन्ध में विस्तार से इस पाठ में विचार किया गया है। मानव सामाजिक प्राणी है। इसीलिए समाज में अपने विचारों के आदान-प्रदान के लिए वह भाषा का उपयोग करता है। समाज के अभाव में भाषा की कल्पना नहीं की जा सकती। भाषा की सार्थकता समाज में है। अतः भाषा सामाजिक यथार्थ है, सामाजिक वस्तु है। अतः भाषा और समाज, समाज का विकास और भाषा का विकास, हिन्दी के आधुनिकीकरण का प्रारंभ तथा प्रयास के संदर्भ में इस पाठ द्वारा जानकारी दी गई है।

10.2 पाठ परिचय

समाज में, सामाजिक और सास्कृतिक मूल्यों में परिवर्तन के साथ साथ भाषा में भी परिवर्तनहोता रहता है। कोई भी भाषा उस समाज के भौतिक व सामाजिक परिवेश का परिचायक है। यदि समाज विकसित है तो इस की भाषा भी स्वतः विकसित मानी जाएगी। इस दृष्टि से हिन्दी भाषा के आधुनिकीकरण के प्रयत्न के सम्बन्ध में इस पाठ में विचार किया है। भाषा का रूप, भाषा के प्रयोग क्षेत्रों का विस्तार पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण व प्रयोग, मानवीकरण, मशीनीकरण भाषा के साथ साथ साहित्य का आधुनिकीकरण, इस दृदिकोण के द्वारा हिन्दी भाषा के आधुनिकीकरण के संदर्भ में इस पाठ में विचार किया गया है।

BRAOU

10.3 मूलपाठ

10.3.1 भाषा और समाज

भाषा मानव मस्तिष्क की उपज है। मानव मस्तिष्क ही एक ऐसी अदभुत रचना है जो जटिल भाषायी संरचनाओं को अपने में अंकित कर लेने की क्षमता रखती है। मानवेतर प्राणियों के मस्तिष्क में यह क्षमता नहीं है। इस कारण उन में भाषा नहीं है। मानव सामाजिक प्राणी है। इसलिए समाज में अपने विचारों के आदान-प्रदान के लिए वह भाषा का उपयोग करता है। समाज के अभाव में भाषा की कल्पना नहीं की जा सकती। भाषा की सार्थकता समाज में ही है। अतः भाषा सामाजिक यथार्थ है, सामाजिक वस्तु है। भाषा समाज सापेक्ष है। अलग अलग भाषायी समाजों में अलग अलग भाषाएँ या एक ही भाषा के अलग अलग रूप जिन्हें भाषा के परिवर्तन भी कहा जाता है, प्रयुक्त होते हैं। भाषा समाज सापेक्ष होने के कारण संबद्ध समाज जितना जटिल व विषम होता है, उसकी भाषा भी उतनी ही जटिल व विषम होगी। समाज के व्यक्ति वास्तविक जगत या यथार्थ का अवबोधन अपनी भाषा के माध्यम से कर लेते हैं। उन के अवबोधन में उस की भाषायी संरचना का बड़ा हाथ रहता है। दूसरे शब्दों में भाषा समुदाय की संस्कृति उस की भाषा में प्रतिबिंबित होती है: संस्कृति भाषा का निर्धारक होती है तो भाषा उस समुदाय के वास्तविक जगत के दृष्टिकोण का निर्धारक। कहने का तात्पर्य यह है कि हम अपनी भाषा के चश्में से प्रकृति को देखते हैं। भाषा के व्याकरण को चश्मे के "फ्रेम" से तुलना करते हैं तो भाषा की शब्दावली की तुलना चश्मे के शीसे से कर सकते हैं। इसलिए यह कहा जाता है कि भाषा और समाज का संबन्ध अन्योन्याश्रित है और दोनों एक दूसरे को इतनी गहराई, व्यापकता और सघनता से प्रभावित करते है कि एक का सही सही अध्ययन दूसरे की उपेक्षा करके सफलतापूर्वक नहीं किया जा सकता।

10.3.2 समाज का विकास और भाषा का विकास

ऊपर की चर्चा से यह स्पष्ट होता है कि भाषा समाज सापेक्ष प्रतीक व्यवस्था है और उस की प्रकृति में ही सामाजिक तत्व अंतर्भुक्त है। सामाजिक तत्वों में संस्कृति भी सम्मिलित है। किसी भी समाज की भाषा उस समाज के सामाजिक तथा सांस्कृतिक मूल्यों का प्रतिफलन होती है। सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों में परिवर्तन के साथ साथ भाषा में भी परिवर्तन होता रहता है। अर्थात सामाजिक परिस्थितियों एवं रुचियों के अनुसार क्रमशः भाषा में परिवर्तन होता जाता है। भाषा समाज-अनुबंधित वस्तु है। समाज परिवर्तन शील है। इस वजह से भाषा भी जो अपने अस्तित्व में स्वयता होने के बावजूद वह समाज की तरह जीवित है और परिवर्तन शील है। भाषा की सामाजिक सार्थकता इसी में निहित है कि वह समाज के परिवर्तन के साथ साथ परिवर्तित हो। समाज के परिवर्तन की प्रक्रिया को यदि हम विकास की प्रक्रिया से समतुल्य मानते हैं तो भाषा के परिवर्तन को भाषा विकास की प्रक्रिया से अभिहित कर सकते हैं। कोई भी भाषा उस समाज के भौतिक व सामाजिक परिवेश का परिचायक होती है। यदि समाज विकसित है तो उस की भाषा भी स्वतः विकसित मानी जाएगी। जो समाज संपन्न तथा शक्तिशाली के रूप में स्वीकृत है, उस समाज की भाषा को भी संपन्न एवं शक्ति की भाषा की संज्ञा मिलती है। संपन्नता एवं शक्ति की दृष्टि से विश्व के राष्ट्र प्रमुखतः तीन श्रेणियों में विभाजित है जैसे- विकसित, विकासशील और अविकसित राष्ट्र। इन राष्ट्रों की भाषाएँ इन के आधार पर क्रमशः विकसित, विकासशील एवं अविकसित भाषाएँ कहलाती हैं। लेकिन भाषाओं के इस प्रकार का वर्गीकरण भाषाविज्ञान की दृष्टि से अस्वीकार है क्योंकि कोई भी भाषा अपने समाज के संदर्भ में अविकसित या अक्षय नहीं होती। समाज के चिंतन, क्रिया कलाप व संस्कृति और सांस्कृतिक मूल्यों की अभिव्यक्ति के लिए उस समाज की भाषा जितनी सक्षम होती है, उतनी सक्षम कोई दूसरी भाषा नहीं हो सकती। विकसित कही जानेवाली भाषा यहाँ तक कि तथाकथित विश्व भाषा', 'अंग्रेजी भी छोटे से छोटे समुदायों की संस्कृति की अभिव्यक्ति के लिए पंगु साबित हो सकती है। उदाहरण के लिए पाँच लाख आबादवाले मिज़ो समुदाय की संस्कृति की अभिव्यक्ति जिस बखूबी से मिजो भाषा के माध्यम से की जा सकती उस तरह अंग्रेजी के माध्यम से हम नहीं कर सकते। इसलिए कहा जाता है कि भाषा संस्कृति सापेक्ष होती है, यह भाषायी संस्कृति कहलाती है।

विकसित भाषा, विकासशील भाषा या अविकसित भाषा का नामकरण वास्तव में भ्रामक है। भाषाएँ जिन समाजों में बोली जाती है, उन समाजों के विकास की दशा व दिशा को दृष्टि में रख कर यह नामकरण किया जाता है। इस प्रकार से ये नाम समाज सापेक्ष हैं, भाषा संक्षेप नहीं हैं, सामाजों की संस्कृतियों की तुलना के संदर्भ में ये नाम दिये गये हैं। यह तुलना दो भिन्न संस्कृतियों और उन संस्कृतियों से संयुक्त दो भिन्न समाजों के संदर्भ में की जाती है।

10.3.3 दो भिन्न संस्कृतियों का दृष्टिकोण और भाषा के विकास का संदर्भ

प्राच्य देशों की संस्कृति तथा पाश्चात्य देशों की संस्कृति में मूलभूत अंतर विद्यमान है। इस अंतर को दृष्टि में रख कर इन दोनों संस्कृतियों का नामकरण भी किया गया है। प्राच्य देशों की संस्कृति अभिव्यक्ति परक कहलाती है तो पाश्चात्य देशों की संस्कृति प्रगतिपरक। अभिव्यक्तिपरक संस्कृति में धर्म, सौंदर्य और साहित्य चेतना की प्रमुख प्रवृत्ति होती है। इस में लोक जीवन एवं परंपरा का आभास अधिक मिलता है। इस कारण से यहाँ की भाषाओं में इन से संबंधित विषय पर बारिकी से विवेचना प्राप्त होती है। और यहाँ इन विषयों से संबद्ध शास्त्र विकसित हुए हैं। प्रगतिपरक संस्कृति में ज्ञान-विज्ञान चेतना से संबद्ध प्रवृत्ति प्रमुख होती है। जीवन तथा जगत को समझने व पकड़ने की आर्थिक वृत्ति यहाँ प्रबल रूप से सक्रिय रहती है। इस में औद्योगिक, तकनीकी व भौतिक पक्ष की प्रधानता रहती है। अतः इसे भौतिक संस्कृति भी कहा जाता है। यहाँ ज्ञान-विज्ञान से संबंधित अनेक आधुनिक शास्त्र विकसित हुए हैं। अतः यहाँ की भाषाओं में इन शास्त्रों से संबंधित विषयों पर बारीकी से विवेचन हुआ है। आधुनिक शास्त्रों की प्रगति के कारण यहाँ सर्व प्रथम आधुनिकीकरण की प्रक्रिया प्रारंभ हुई है। इन से यहाँ औद्योगिकीकरण एवं शहरीकरण का भी विकास हुआ। पाश्चात्य देशों के इस प्रकार के विकास या प्रगति को देख कर अकसर विकास या प्रगति को पाश्चात्यीकरण का समानार्थ माना जाता है। धर्म, सौंदर्य एवं साहित्यपरक वृत्ति का ज्ञानात्मक एवं आर्थिक वृत्ति में डालने, अर्थात अभिव्यक्ति परक संस्कृति को प्रगति परक संस्कृति में परिवर्तित करना विकास की पहली आवश्यकता समझी जाने लगी है। इसी को कुछ लोग आधुनिकीकरण व पाश्चात्यीकरण की संज्ञा देते हैं। इस दृष्टि से भाषाओं के संदर्भ में भी भाषाओं के विकास वआधुनिकीकरण की बात की जाती है। अर्थात प्रगति परक संस्कृति की अभिव्यक्ति की क्षमता जिन भाषाओं में हैं वे विकसित व आधुनिकीकृत भाषाएँ कहलाने लगीं। जो भाषाएँ इस प्रकार की क्षमता हासिल करने की प्रक्रिया से गुजर रही हैं, वे विकासशील व आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में प्रवृत्त भाषाएँ कहलाने लगी हैं।

BRAOU

जैसे कि पहले बताया जा चुका है भाषा का विकास समज के विकास से जुड़ा हुआ है। भाषायी समुदाय की चिंतन प्रक्रिया, जीवन दृष्टि और उस के परिवर्तन की भाषिक अभिव्यक्ति असल में उस के जीवन के व्यवहार में आनेवाले प्रत्येक मोड़ की अभिव्यक्ति है। इसलिए सामाजिक व्यवहार और सांस्कृतिक मूल्यों में आनेवाले परिवर्तनों के साथ प्रत्येक स्तर पर भाषा के गठन में प्रभाव दिखाई देता है। शब्द संपदा, शब्द-निर्माण, वाक्य, वाक्य संरचना, ध्वनि संयोजन एवं अर्थ परक अभिलक्षणों से भाषा का संस्कार होता रहता है। भाषा में संस्कार व भाषा के विकास की प्रतिक्रियाएँ निरन्तर चलनेवाली होती है जो उस भाषायी समाज के विकास की प्रक्रिया को घोषित करती है।

कोई समाज और सामाजिक मूल्य स्थिर नहीं रहते, वे परिवर्तनशील होते हैं। बहुधा प्रत्येक परिवर्तन विकास का द्योतक होता है। प्रगतिपरक संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में विकास को परखते हैं तो वह आधुनिक बोध से जुड़ा दिखाई देता है। इस कारण से भाषा में परिवर्तन भाषा का नवीन संस्कार, भाषा का विकास ये भाषा के आधुनिकीकरण की परिकल्पना के बहुत हद तक संपोषक एवं समानार्थक संकल्पनाएँ मानी जाती है।

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है कोई भी भाषा अपने में विकसित या अविकसित नहीं होती। भाषा उस के संकुचित या सीमित प्रयोग के कारण अविकसित रूप में रहती है लेकिन उन के व्यापक प्रयोग से वह विकसित होती जाती है। यदि किसी भाषा को व्यापक संदर्भों में बढ़ने का मौका दिया जाए तो वह भाषा अपने युग व समाज की माँग के अनुरूप अपने आप समृद्ध और सक्षम बनती चली जाएगी।

हिन्दी एवं भारत की अन्य आधुनिक भाषाएँ समृद्ध एवं सक्षम बनने की प्रक्रिया से गुजर रही हैं। दूसरे शब्दों में अभिव्यक्ति परक संस्कृति से प्रगतिपरक संस्कृति का उद्घाटन करने की प्रक्रिया से चल रही है। यह प्रक्रिया; विकास या आधुनिकीकरण की प्रक्रिया आज की नहीं है। इतिहास के आधुनिक या पुनर्जागरण युग या साहित्य के आधुनिक काल से ही भाषा आधुनिकीकरण की प्रक्रिया प्रारंभ हो गयी थी। भारतीय भाषाओं के आधुनिकीकरण के इस ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य के आध्ययन से ही हम हिन्दी या किसी आधुनिक भारतीय भाषा के आधुनिकीकरण के प्रयास को सम्यक रूप से समझ पाएँगे।

10.3.4 पुनर्जागरण युग और हिन्दी के आधुनिकीकरण का प्रारंभ

19वीं सदी विशेषकर उसका उत्तरार्ध हिन्दी भाषा समाज में प्रकारांतर से भारतीय सामाजिक इतिहास में बहुत ही महत्वपूर्ण रहा है। पूरा समाज नयी करवट ले रहा था। उस समय हिन्दी क्षेत्र में और अन्यत्र जो आंदोलन हुए है उन्हें तरह तरह के नामों से अभिहित किया गया जैसे, स्वतंत्रता का आंदोलन, राष्ट्रीयता का आंदोलन, शोषकों के प्रति शोषितों का आंदोलन और दो भिन्न संस्कृतियों की टकराहट, समाजिक उन्नयन का आंदोलन, जनवादी आंदोलन आदि। समाज व साहित्य के संदर्भ में इस काल को पुनर्जागरण युग, नयी चेतना का युग व आधुनिक युग तथा भाषा के संदर्भ में गद्य युग कहा गया। ये परिवर्तनशील स्थितियाँ केवल हिन्दी क्षेत्र या पूरे भारत तक सीमित नहीं थीं। इनका विस्तार समस्त दक्षिण पूर्व एशिया के देशों तक देखा जा सकता है जहाँ के देश पाश्चात्य उपनिवेशवादियों के चुंगल में जकड़े हुए थे।

राष्ट्रीय आंदोलन के एक अभिन्न अंग के रूप में सारे देश में भाषिक आंदोलन उभरकर आया। स्वदेशी या निज भाषाओं के सर्वांगीण अभ्युत्थान के लिए छटपटाहट शुरू हुई। नयी संस्कृति से जिसे पहले प्रगतिपरक संस्कृति कहा गया है, टकराहट के कारण आधुनिक ज्ञान विज्ञान का जो बोध हुआ, आधुनिकता के जो नये-नये आयाम खुल रहे थे उनके प्रचार-प्रसार एवं अभिव्यक्ति के लिए निज भाषाओं को सशक्त माध्यम, बनाने की ललक सर्वत्र दिखायी देने लगी। वास्तव में भाषा संप्रेषण सामर्थ्य के संदर्भ मे यह विस्फोटक स्थिति थी। हमारे बुद्धिजीवियों ने इसका सामना किया। शुक्ल जी की शब्दावली में (चिंतामणि भाग-1 – भारतेन्दु हरिश्चन्द्र निबंध) हिन्दी क्षेत्र के बुद्धिजीवियों को भाषा को दौड़ाना पड़ा। देश की सभी भाषाओं के तत्कालीन मनीषी अपनी भाषाओं को सचमुच दोड़ाते रहे। लेकिन इस दोड़ में रास्तें चुनने की दिसा में उन में मतभेद था। यह मतभेद तीन प्रकार का दृष्टिगोचर होता है। असलियत में यह मतभेद भाषा रूप चयन से, अर्थात भाषा के प्रतिमान तय करने से संबंधित रहा।

BRAOU

राष्ट्रीय आंदोलन प्रकारांतर से भाषिक आंदोलन से जुड़े हुए देश के बुद्धिजीवी तीन गुटों में विभाजित थे जिन्हें भाषिक राष्ट्रवादी त्रय या त्रिक कहा जा सकता है। प्रथम गुट के लोग आधुनिक तो थे लेकिन वे देशीय परंपरा को पाश्चात्य परंपरा से निम्न कोटि की समझते थे। जहाँ तक देशीय भाषाओं के विकास का संबंध है उनका दृष्टिकोण साफ़ नहीं था। दूसरा गुट आधुनिकता की परंपरा में अर्थात देशीयपन में ढालना चाहता था। इस गुट के लोग देशीय भाषाओं को इस लायक बनाना चाहते थे कि वे आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के संप्रेषण के लिए सक्षम बन सके। भाषा के संदर्भ में ये जनवादी थे। लोकतंत्रीकरण या जनपदीकरण या दूसरे अर्थ में भारतीयकरण की दृष्टि से वे भाषाओं को विकसित करना चाहते थे। वास्तम में ये भाषा के टकसालीपन के हिमयती थे। इनके विचार में भाषा ऊपर से थोपा गया कोई राष्ट्रीय प्रतीक नहीं है बल्कि जन संचार माध्यम में संप्रेषण का माध्य मात्र है। यह वास्तव में श्रेष्ठ/विशिष्ट भाषा-अंकित के प्रतिमान का उल्लंघन था जिस में पांडित्यवाद का तिरस्कार निहित है। ये समझाते थे कि प्रतिष्ठाप्रद प्रतिमान बहुसंख्यकों के प्रयोजन से परे रहता है। प्रयोजन मूलक साहित्य के निर्माण में सरल व सर्व जन सुलभ भाषा के प्रयोग को ये चाहते थे। वास्तव में ये भाषा के समाजीकरण प्रक्रिया से जुड़े हुए थे। तीसरा गुट शुद्ध परंपरावादी था जो अपने पुराने जातीय उन्नत वैभव से जुड़ा हुआ था। यह नयेपन से घबराता था। इस गुट के लोग समझते थे कि विदेशी प्रभाव से स्वदेशीय व स्वजातीय संस्कृति भ्रष्ट हो जाएगी। इसलिए ये शुद्धतावादी कहलाये। भाषा में भी ये शुद्धतावाद के हिमायती थे।

10.3.5 भाषा आधुनिकीकरण का पहला संदर्भः भाषा रूप या प्रतिमान का चयन

उस समय देश की भाषाओं में से भाषा रूप चयन या भाषा प्रतिमान चयन की समस्या उपर्युक्त तीन भिन्न दृष्टिकोणवाले गुटों के कारण कुछ समय तक सुलझ नहीं पा रही थी हिन्दी को छोड़ देश की अन्य भाषाओं के संदर्भ में उपयुक्त चयन की समस्या प्रमुखतः दो प्रकार की दिखायी पड़ती है, (1) अंतरभाषीय (एक भाषा के अंतर्गत उसके प्रचलित विविध रूपों में से किसी एक रूप का चयन) की समस्या और (2) अंतरभाषीय (दो भिन्न भाषाओं में से किसी एक भाषा का चयन) समस्या। प्रथम के उदाहरण के रूप में तेलुगु-तमिल एवं मलयालम को ले सकते हैं जहाँ विवाद क्रमशः ग्रांथिकमु और शिष्ट व्याव धरिकमु चेंतमिल और पेल्लू तमिल, "साधु भाषा और चलित भाषा" और "मणिप्रवालम और नाटट भाषा" में रहा। दूसरे के उदाहरण के रूप में असमिया भाषा को ले सकते है जहाँ विवाद रहा असमीया और बंगला में। ओड़िया का संघर्ष भी प्रारंभ में बंगला से रहा।

लकिन हिन्दी में रूपचयन या प्रतिमान चयन का विवाद एक ओर अंतरभाषीय रहा और दूसरी ओर अंतरप्रांतीय भी। हिन्दी की विशिष्ट स्थिति के कारण यहाँ रूप या प्रतिमान चयन की समस्या बहुत विकट रही है। वास्तव में देखा जाय तो जातीयता की दृष्टि से हिन्दी बोलनेवालों की संख्या दुनिया में सबसे ज्यादा मानी जाती है। डॉ. रामविलस शर्मा कहते हैं (देखें भारतेंदु युग और हिन्दी भाषा का विकास, उसका सांस्कृतिक अभ्युत्थान, उसके साहित्य की प्रगति सारे भारत देश की प्रगति की महत्वपूर्ण कड़ी है, वह समूची मानवता के संदर्भ में भी महत्वपूर्ण है। वे आगे कहते हैं कि समामाजिक, सांस्कृतिक परिवेश के साथ हिन्दी का एक भाषागत परिवेश है। उस परिवेश की दो महत्वपूर्ण विशेषताएँ है। एक अंतर जनपदीय परिवेश, हिन्दी की जनपदीय बोलियाँ हिन्दी भाषा को प्रभावित करती हैं, और स्वयं भी हिन्दी से प्रभवित होती हैं और दोः हिन्दी उर्दू के दो साहित्यिक अथवा शिष्ट रूपों का सह अस्तित्व, कभी ये दोनों शांतिपूर्ण सह अस्तित्व में रहकर एक दूसरे को प्रभावित और समृद्ध करती रहती हैं और कभी अशांतिपूर्ण तनाव की स्थिति में रहती हैं। वास्तव में यह विचित्र है जो संसार में विरले ही मिलते है।

वास्तव में देखा जाए तो दिल्ली की ऐसी भौगोलिक ही नहीं अपितु भाषिक स्थिति भी सही है जहाँ खड़ी बोली, पंजाबी, राजस्थानी, बाँगरू और ब्रजभाषा के क्षेत्र मिलते हैं, इस कारण दिल्ली की और उसके आसपास की भाषाओं के निर्माण में इन पाँचों भाषाओं का योग रहा है। साथ ही इन में शासक वर्ग की भाषाएँ, फ़रसी और तुर्की भी मिल गयी हैं। वास्तविकता यह है कि हिन्दी पराबोली विशेषताओं से युक्त है। हिन्दी की एक और विशेषता गिनायी जा सकती है। वह यह है कि हिन्दी दूसरी प्रादेशिक भाषाओं से जितना प्रभावित होती है उतना दूसरी भाषाओं को प्रभावित नहीं करती। मराठी से प्रभावित हिन्दी को 'बंबइया हिन्दी' और बंगला से प्रभावित हिन्दी को 'कलकतिया हिन्दी' के नाम से जाना जाता है और इन नामों से वहाँ की हिन्दी को पुकारते हुए हम सुनते हैं, लेकिन हिन्दी से प्रभावित मराठी या हिन्दी से प्रभावित बंगला ऐसे नाम हम नहीं सुनते।

हिन्दी की उपयुक्त विशिष्ट विशेषताओं के कारण पुनर्जागरण के युग में अर्थात् भारतेन्दु के युग में इसे अपनी नयी चाल में ढलने में अंतरभाषीय संघर्ष झेलना पड़ा। ऊपर जिन भाषिक राष्ट्रीयवादी त्रय की चर्चा की गयी है वे तो हिन्दी क्षेत्र में भी अपने अपने पक्ष मजबूत करने में कार्यरत थे ही साथ में अंग्रेज़ी अफ़सरों की दुलमुल नीति ने उक्त त्रय के दूसरे गुट को दो खेमें में- हिन्दी और उर्दू में खड़ा कर दिया। इससे आधुनिक संदर्भ में अपने रूप निर्माण कर विकासोन्मुख होने में हिन्दी को दुगुना संघर्ष झेलना पड़ा। भारतेन्दु की भाषा में न तो लल्लुलाल का ब्रजभाषापन आ पाया; न मुंशी सदासुख का पंडिताऊपन, न सदल मिश्र का पूरब पन, न राजा विश्वप्रसाद सितारे हिन्दी का उर्दूपन और न राजा लक्ष्मण सिंह का खालिसपन और आगरापन। इतने पनों से एक साथ पीछा छुड़ाना भाषा के संबंध में बहुत ही परिष्कृत रूचि का परिचय देता है।

BRAOU

इन तमाम पनों से छुटकारा पाकर अपना रूप निर्माण कर लेने पर भी हिन्दी का संघर्ष साहित्य में पद्य और गद्य की भाषा को लेकर चलता ही रहा। इसे वास्तव में अंतरभाषीय संघर्ष या अंतर-बोली संघर्ष कहा जा सकता है। भारतेन्दु ने अपने संस्कारों के कारण या ब्रज भाषा में कृष्णभक्ति साहित्य की भव्य परंपरा के कारण ब्रजभाषा में कविता लिखते रहे और यह भी प्रकट करते रहे कि खड़ीबोली में कविता करना उनसे संभव नहीं हो पा रहा है और खड़ीबोली की कविता में ब्रजभाषा की कविता-सा रस नहीं आ पाता, फिर भी वे जानते थे कि आगे चल कर एक ही भाषा का रूप दोनों के लिए स्वीकृत होगा। संभवतः इसलिए उन्होंने 'कवि वचन सुधा' के 10 जनवरी, 1872 के अंक में 'हिन्दी कविता' शीर्षक, लेख में यह आशा प्रकट की थी कि यदि खड़ीबोली में पद्य रचना हो तो भाषा के सुधर जाने की पूर्ण संभावना है। इस प्रकार भरतेन्दु ने काव्य साहित्य में भी खड़ीबोली को स्वीकृत किया।

जिस भाषा की उन्नति में उन्होंने तन मन धन का व्यय किया ही है, स्वदेश प्रेम और स्वभाषा प्रेम के संबंध में उन्हों ने जो उद्‌गार प्रकट किये वे सारे के सारे आज हमारे लिए उक्तियों, मुहावरों एवं सूत्रों के रूप में विद्यमान है। जैसे-

निज भाषा उन्नति अहे सब उन्नति को मूल
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय के सूल।

● ● ●

उन्नति भाषा की तरहु, अहे भ्रत गन आय।

● ● ●

प्रचलित करहु जहान में, निज भाषा करि जत्न
राजकाज दरबार में, फैलवहु यह रत्न।

● ● ●

भाषा सोधहु अपनि, होयि सबे एकत्र।
पढ़हु, वढ़ावहु लिखहु, मिलि छपवावहु कुछ पत्र।

बात यह थी कि वे सब तरह से अपनी भाषा का खज़ाना चाहते थे। वह जीवन भर अपना यह लक्ष्य पूरा करते रहे। इस लक्ष्य की पूर्ति में उन्होंने पत्र-पत्रिकाएँ चलाये। दूसरों द्वारा संपादित पत्रों में अपनी रचनाएँ भेजीं। अपनी अल्पायु में ही उन्होंने 12 काव्य ग्रंथ, 47 प्रबंध काव्य एवं मुक्तक कविता, 17 नाटक और 40 निबंधों की रचना की जो हिन्दी की अनुपम निधि है। हिन्दी को तो भारतेंद्र ने ही चार चाँद लगाये। भाषा एवं साहित्य में अपने अथक प्रयास से भारतेंदु ने जो आधुनिकता लाये, उस की नींव पर ही आज के हिन्दी भाषा एवं साहित्य का भव्य महल खड़ा है। हिन्दी भाषा के आधुनिकीकरण एवं साहित्य में नयापन लाने में भारतेंदु ने पुरोधा के रूप में रास्ता दिखाया जिस का अनुगमन भारतेन्दु मंडल ने किया।

परवर्ती काल में महावीर प्रसाद द्विवेदी अपनी रचनाओं एवं अपने संपादक में प्रकाशित सरस्वती पत्रिका के माध्यम से खड़ीबोली हिन्दी में निखार लाए। उन के समय में ही पद्य एवं गद्य की भाषा एक हो गयी। उन्होंने प्रोत्साहन देकर अनेक लोगों को हिन्दी की ओर आकृष्ट कर उन्हें लेखक बनाया, उन लेखकों की रचनाओं की त्रुटियों को पत्र व्यवहार के द्वारा दूर करते हुए एक प्रकार से पत्राचार द्वारा लेखकों का प्रशिक्षण ही किया। इस के बाद से हिन्दी भाषा का बहुमुखी विकास निरंतर होता जा रहा है, जिस के कारण साहित्य के अलावा नये से नये विषय को, चाहे वह कितना ही वैज्ञानिक व तकनीकी हो, उसे अभिव्यक्त करने की क्षमता अब हिन्दी भाषा में विकसित हो पाया है। इस में कोई संदेह नहीं है भाषा आधुनिकीकरण की कसौटी पर हिन्दी भाषा भी खरी उतरेगी।

19.3.6 भाषा आधुनिकीकरण का दूसरा संदर्भः भाषा के प्रयोग क्षेत्रों का

भाषा के आधुनिकीकरण का दूसरा संदर्भ है भाषा के प्रयोग क्षेत्रों का विस्तार। पुनर्जागरण के युग में देश के युग निर्माताओं ने यह महसूस किया कि आधुनिक युग के संदर्भ में भाषा तभी विकसित व सार्थक मानी जा सकती है जब उसका प्रयोग साहित्य के अतिरिक्त विविध आधुनिक सामाजिक संदर्भों में सार्थक रूप से प्रयोग हो।

युग निर्माता होने के नाते भारतेन्दु ने यह महसूस किया कि आधुनिक संदर्भ में हिन्दी भाषा का विकास तभी संभव है जब कि साहित्य के अतिरिक्त अन्य सामाजिक संदर्भों में हिन्दी भाषा का प्रचार व प्रसार हो। भारतेन्दु ने खुद इन क्षेत्रों में रचना कर हिन्दी के प्रयोग क्षेत्र को विकसित किया ही है साथ ही अपने समय के साहित्यकारों को इस ओर प्रयुक्त भी किया। उन दिनों साहित्य के अतिरिक्त निम्न लिखित आठ क्षेत्रों में हिन्दी भाषा का प्रयोग हुआ और प्रत्येक क्षेत्र विशेष का भाषा रूप व्यय हो इस परभी विस्तार से चर्चाएँ चलीं और उनके समाधान भी ढूंढे गये।

वे प्रयोग क्षेत्र हैः-

1. उपयोगी साहित्य
2. संदर्भ साहित्य
3. शिक्षण का माध्यम
4. पाठ्य पुस्तकों का निर्माण
5. परीक्षा का माध्यम
6. प्रशासन - माध्यम
7. ईसाई मशीनरियों का प्रचार माध्यम
8. जन संपर्क व जन संचार माध्यम
9. आम सभा एवं औपचारिक संदर्भों का माध्यम

जहाँ तक उपयोगी साहित्य का निर्माण और उसकी भाषा का प्रश्न है उन दिनों हिन्दी भाषा में विविध साहित्येतर विषयों पर बहुत सी पुस्तकें प्रकाशित हुई है। ये विषय हैं- भूगोल, राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, धर्मनीति, गणित, बीजगणित, जामित्रि, क्षेत्रविज्ञान, आईन, कृषिकार्य, ग्राम प्रशासन, दस्तकारी आदि। जैसे पहले बताया गया भरतेन्दु ने खुद इन में से कुछ विषयों पर पुस्तकें लिखीं, सहयोगियों से पुस्तुकें लिखवायीं और उस समय के विविध प्रकाशकों से भी इन विषयों पर पुस्तुकें प्रकाशित करवायीं। इस प्रकार के साहित्य की रचनाओं, में प्रयुक्त हिन्दी भाषा सरल और बोधगम्य होती थी ही, साथ ही भारतेन्दु के समय के रचनाकारों ने पहली बार ऐसे नये विषयों से संबंध पारिभाषिक ही भारतेन्दु के समय के रचनाकारों ने पहली बार ऐसे नय विषयों से संबंध पारिभाषिक शब्दावली का भी प्रयोग किया जिसके तत्कालीन जनता को समझने में कोई विशेष कठिनाई नहीं होती थी। इस का प्रमुख कारण है कि आजकल के समान पारिभाषिक शब्दों को विजातीय संस्कृति वाली अंग्रेजी भाषा से अनुवाद करके। ऐसी रचनाओं में हमें अनेक जनपदीय शब्द भी मिलते हैं, जिनकी जीवंत शक्ति और प्रयोग से हम लोग आज अपरिचित होते जा रहे हैं। पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण और हिन्दी में उनके विकास की चर्चा आगे की जा रही है।

शिक्षण में एवं पाठ्य पुस्तकों के निर्माण में और परीक्षा में कौन सी भाषा प्रयुक्त हो इसको लेकर हिन्दी क्षेत्र में बहुत विवाद उठ खड़ा हुआ था। भरतेन्दु ने इस मसले पर समय समय पर अपने विचारों को तो पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से व्यक्त किया ही साथ ही उन्होंने संयुक्त प्रांत में 1882 में गठित एजुकेशन कमिशन जो हंटर आयोग कहलाता है, के सामने जो सप्रमाण विचार प्रकट किये थे वे इस बात के सबूत हैं कि उन्होंने इस दिशा में कितना सोचा और विविध प्रयोजनों में हिन्दी के विकास के लिए उनके मन में क्या-क्या योजनाएँ थीं।

BRAOU

प्रशासन की भाषा, मिशनरियों के प्रचार साहित्य एवं जन संचार माध्यमों के भाषा-रूप के संबंध में भी भारतेन्दु के स्पष्ट विचार थे। जैसा कि पहले बताया गया है उन दिनों हिन्दी को उर्दू से संघर्ष झेलना पडा था। प्रशासन में उर्दू हिन्दी के झगडे को सुलझाने के लिए भारतेन्दु को तीखे एवं व्यंग स्वर में उर्दू एवं उर्दू के हिमायतों की आलोचना करनी पड़ी। 'उर्दू का श्यापा' रचना में तथा हंटर आयोग के सामने प्रस्तुत विचारों में उनके ये स्वर तथा व्यंग बाण उभरकर आये थे। इसी प्रकार आम सभाओं के औपचारिक भाषाणों में भारतेन्दु जिस भाषा रूप का प्रयोग कर श्रोताओं को मंत्र मुग्ध करते थे और उन्हें विचार मग्न कर डालते थे, वहीं रूप आगे चलकर के हिन्दी क्षेत्र के सभा समारोहों के लिए एक आदर्श भाषा रूप बनता गया।

इस प्रकार भारतेन्दु ने हिन्दी भाषा के प्रयोग क्षेत्रों के विस्तार की जो दिशा दिखायी है वह परवर्ती काल में अन्यान्य क्षेत्रों में भी प्रयोग में विकास को प्राप्त करती गयी और आज यह कहना समीचीन लगता है कि हिंन्दी के प्रयोग क्षेत्रों का विस्तार किसी भी विकसित भाषा का समतुल्य है।

10.3.7 भाषा आधुनिकीकरण का तीसरा संदर्भः पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण प्रयोग

पहले हमने यह बताया कि भाषा के प्रयोग क्षेत्रों के विस्तार के साथ साथ भाषा में विकास होता जाता है। आधुनिक तकनीकी एवं वैज्ञानिक विषयों की अभिव्यक्ति जब किसी भाषा में पहली बार हो रही हो, तब उन विषयों के संबद्ध संकल्पनाओं को शब्द देने के लिए भाषा को या तो उस मूल भाषा से जिस में यह संकल्पना पहले व्यक्त हो चुकी है, उधार लेना होता है या अपने शब्दों को नया अर्थ देना पड़ता है या नये शब्द गढ़ने पड़ते हैं। विशिष्ट प्रयोग क्षेत्रों में जिन्हें प्रयुक्ति की संज्ञा दी जाती है, प्रयुक्त विशिष्ट शब्द ही एक प्रकार से पारिभाषिक शब्द कहलाता हैं। वहाँ उपयुक्त शब्दों की व्याख्या विशिष्ट प्रसंग में, विशिष्ट व्याख्या के संदर्भ में उनकी विशिष्ट भूमिका के संदर्भ में करनी पड़ती है। इस विवेचन के आधार पर भाषा की समस्त शब्दावली का मोटे रूप से दो भागों में विभाजन किया जा सकता है- समान्य शब्दावली और पारिभाषिक शब्दावली। भाषाओं में यह भी देखा गया है कि जो शब्द एक समय में पारिभाषिक शब्द कहलाते रहें, वे कालांतर में जन सामान्य के आम प्रयोग में आकर सामान्य शब्दावली की गिनती में आ गये। भाषा प्रयोक्ताओं के सामाजिक, सांस्कृतिक विकास के साथ साथ भाषा विस्तार (प्रयोग क्षेत्रों का विस्तार) को प्राप्त करती है, उसके लोक व्यवहार का दायरा बढ़ता जाता है, तब उन विशिष्ट शब्दों और अर्थों को सामान्य की तरह ग्रहण किया जाता है। हिन्दी के मंडी, हुंडी, कफ़, ज्वर, पित्त, नाड़ी आदि ऐसे शब्द हैं जो एक समय में पारिभाषिक थे आज सामान्य शब्द या लोक व्यवहार के शब्द के रूप में बदल गये हैं। ये शब्द मानव मेधा या शास्त्र के समान्यीकरण या लोक प्रचलन के द्योतक हैं। इसके विपरीत भाषाओं में जो शब्द एक समय में लोक व्यवहार में प्रचलित होकर सामान्य शब्द कहलाते रहे, वे कालांतर में पारिभाषिक शब्द बन गये। हिन्दी शब्द 'श्रम' को इस के लिए उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है। भाषा विकास के आदिकाल में अर्थात जब मानव मेधा में अर्थ शस्त्र एक शास्त्र के रूप में अपनी रूप कल्पना नहीं कर पाया था, इस शब्द का मात्र अर्थ रहा था 'शारीरिक मेहनत'। तब यह लोक व्यवहार का सामान्य शब्द रहा। परंतु शास्त्रीय चिंतन (अर्थशास्त्र) में यह शब्द उसके एक निश्चित विशेष अर्थ में प्रयोग किया जाता है। अब यह अर्थशास्त्र में मनुष्य के उन सभी क्रिया कलाओं की समस्त कल्पना का द्योतक है जो उत्पादन में साधन बनते हों। इस शास्त्र में 'श्रम' से किसान जमीन जोतता भी है, और श्रम से जोंते हुए खेतों में श्रम की उत्पदकता एक विशेष गणन सूत्र द्वारा आँकी जाती है।

"पारिभाषिक शब्द वे शब्द हैं जो मानव की विशिष्ट गतिविधियों या प्रकृति के किसी विशेष पहलू से संबंधित ज्ञान की शाखा के विद्वान या कुशल व्यक्ति के लिए विशेष महत्व का या मूल्यवान हो" चेम्बर्स टेक्नीकल डिकशनरी की इस व्याख्या से स्पष्ट है कि ये शब्द आम व्यक्ति की अभिव्यक्ति के नहीं होते। विद्वानों ने पारिभाषिक शब्दावली के कुछ विशिष्ट गुण निर्धारित किये जो उन्हें भाषा के समान्य शब्दों से अलग करते हैं। उन में प्रमुख हैं- संक्षिप्तता, निश्चितार्थकता, सामरस्य, सरलता/

BRAOU

लघुता, अधिक रूप निष्पाद सामर्थ्य, भेदकता, लोक व्यावहारिकता, स्वीकार्यता आदि। इन गुणों के अतिरिक्त पारिभाषिक शब्द निर्माण में इस बात पर भी ध्यान रखा जाता है कि यदि कोई शब्द रूढ़ हो चुका हो तो उसे स्वीकार किया जाए और एक भाषा परिवार या राष्ट्रीय भाषा समूह के लिए यथासंभव समान पारिभाषिक शब्द हो। पारिभाषिक शब्द निर्माणगत उपयुक्त बातों को ध्यान में रखकर भारत सरकार के द्वारा 1950-51 में "वैज्ञानिक पारिभाषिक बोर्ड" के नाम से स्थापित और पुनः 1960 में वैज्ञानिक तथा तकनीकी पारिभाषिक शब्दावली आयोग के नाम से पुनर्गठित स्थायी आयोग ने गत 30-35 वर्षों में विविध विषयों से संबंधित हिन्दी की लगभग 4 लाख की पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण कर प्रकाशित किया।

हिन्दी भाषा के प्रतिमान के निर्धारण में बुद्धिजीवी तीन गुटों में विभाजित थे। इस की चर्चा हम ऊपर कर चुके हैं। हिन्दी की पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण में भी इन तीन गुटों के विचार कार्यरत रहे, साथ ही अंतराष्ट्रीय पारिभाषिक शब्दावली से तालमेल बिठाने के विचार से अंग्रेजी से भी शब्द यथावत् लिये गये। इस कारण हिन्दी की पारिभाषिक शब्दावली में भी संस्कृतनिष्ठ हिन्दी, अरबी, फ़ारसी मिश्रित हिन्दी, सामान्य हिन्दी और अंग्रेजी मिश्रित हिन्दी जैसे रूप मिलते हैं और कहीं कहीं हमें एक ही संकल्पना के लिए चारों पर्याय मिलते है जैसे, शासन, हुकूमत, सरकार, गवर्नमेंट, तथा न्यायालय, अदालत, कचहरी, कोर्ट आदि। लेकिन इन विविध रूपों के कारण भाषा के मानवीकरण में अधिक कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं, जिन की चर्चा अलग से की जा रही है।

हिन्दी की पारिभाषिक शब्दावली की निर्माण-प्रक्रिया पर गौर करने से यह प्रतीत होता कि इस में कुछ भाषा वैज्ञानिक आधार काम में लाये गये हैं। इन में से दस प्रमुख आधार इस प्रकार हैं:-

विस्तारित अभिव्यक्ति या अभिव्यक्ति का विस्तारः- इस कोटि में ऐसे शब्द लिये जा सकते हैं जिनके पहले की अभिव्यक्तियाँ तो हैं, लेकिन नये संदर्भ उनके अर्थ में विस्तार भी हुआ है। जैसे,

पारिभाषिक शब्द	पहले की अभिव्यक्ति	अर्थ विस्तार का शब्द
आकाशवाणी	देव वाणी	All India Radio
विद्युत / बिजली	तड़ित	Electricity
तारा (सितारा)	आकाश का तारा	Star

संकुचित अभिव्यक्ति या अभिव्यक्ति-संकोचः

इस में ऐसे शब्द आते हैं जिन की अभिव्यक्ति कई संदर्भों में होती थी लेकिन अब उन के अर्थ क्षेत्र का संकुचन किया गया और ये शब्द केवल एक ही संकल्पना को द्योतित करते हैं। जैसे:

पारिभाषिक शब्द	पहले की अभिव्यक्तियाँ	संकुचित अर्थ
संसद	धार्मिक संस्था, न्यायालय, सभा मंडल	Parliament

अनुदित अभिव्यक्तिः

इस में स्रोत भाषा के जो प्रायः अंग्रेजी होती है, शब्द का शब्दशः पूर्णानुवाद कर उसकी अभिव्यक्ति के समान हिन्दी को अर्थ दिया जाता है। इस प्रकार की प्रक्रियाको ऋणानुवाद भी कहते हैं। उदाहरण हैं:-

स्रोत भाषा का शब्द	हिन्दी के पारिभाषिक शब्द
White paper	श्वेत पत्र
Security Council	सुरक्षा परिषद
Ministry of Human Resource Development	मानव संसाधन विकास मंत्रालय

BRAOU

मिश्रित अभिव्यक्तिः

इस में स्त्रोत भाषा के शब्द का अंशानुवाद किया जाता है और दूसरे का नहीं। जैसे,

स्त्रोत भाषा का शब्द	हिन्दी का पारिभाषिक शब्द
Cloth Mill	कपड़ा मिल
Tear Gas	आँसू गैस

सृजनात्मक अभिव्यक्तिः

इस में स्त्रोत भाषा के शब्दों के अर्थ या भाव के आधार पर हिन्दी में नयी अभिव्यक्ति दी जाती है। जैसे,

स्त्रोत भाषा का शब्द	हिन्दी का पारिभाषिक शब्द
Registrar	कुल सचिव
Governor	राज्यपाल
Faculty	संकाय
Nepotism	भाई-भतीजावाद

पुनः प्रस्तुत अभिव्यक्तिः

इस में स्त्रोत भाषा के भाव या अर्थ को समेटनेवाली अभिव्यक्ति ली जाती है जो स्त्रोत भाषा में पहले से विद्यमान है। जैसे,

स्त्रोत भाषा का शब्द	हिन्दी का पारिभाषिक शब्द
Death Anniversary	पुण्य तिथि
Non-alignment	गुट निरपेक्षता
Auditorium	सभा कक्ष

रूपांतरित अभिव्यक्तिः-

इस में स्त्रोत भाषा के शब्दों में हिन्दी को ध्वनि व्यवस्था के अनुसार सरलीकृत रूप में ग्रहण किया जाता है। जैसे,

स्त्रोत भाषा का शब्द	हिन्दी का पारिभाषिक शब्द
Academy	अकादमी
Technique	तकनीक
Interim	अंतरिम

गृहीत अभिव्यक्तिः

इस में स्त्रोत भाषा के शब्दों को हिन्दी में बिना अनुवाद या ध्वनि परिवर्तन किये ग्रहण कर लिया जाता है। हिन्दी में इन शब्दों में इन शब्दों को वही अभिव्यक्ति रहती हो जो स्त्रोत भाषा में रहती है। जैसे,

स्त्रोत भाषा का शब्द	हिन्दी का पारिभाषिक शब्द
Bonus	बोनस
Cancer	कैंसर
Aids	एड्स (बीमारी)

BRAOU

द्विरूपी अभिव्यक्तिः

इस में स्त्रोत भाषा में विद्यमान अभिव्यक्ति के समानांतर एक नयी अभिव्यक्ति का अनुवाद कर दिया जाता है किन्तु उसी अनुरूप हिन्दी में पहले से ही उसी संकल्पना के लिए एक शब्द विद्यमान रहता है। इस तरह इस में एक ही संकल्पना के लिए दो-दो पारिभाषिक शब्द प्रयुक्त होते हैं। जैसे,

स्त्रोत भाषा का शब्द	हिन्दी में पहले से विद्यामान शब्द	हिन्दी में नया पारिभाषिक शब्द
Hunger strike	अनशन	भूख हड़ताल
Maternity Home	जच्चाघर	प्रसूति गृह
Black-list	काली सूची	वर्ज्य सूची

व्याख्यात्मक अभिव्यक्तिः-

इस में स्त्रोत भाषा के शब्दों (विशेषकर संयुक्त शब्दों) के भाव या अर्थ के अनुसार हिन्दी में व्याख्यात्मक शब्द रख लिये जाते है। जैसे,

स्त्रोत भाषा का शब्द	हिन्दी का पारिभाषिक शब्द
Environmental handicap	परिवेशजन्य सीमाएँ
Yellow press	सनसनी खेज पत्रकारिता

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हिन्दी के पारिभाषिक शब्द निर्माण में संस्कृत निष्ठ हिन्दी की तरफ़ अधिक झुकाव रहा है। इस संबंध में डॉ. कैलासचंद्र भाटिया का लेख, हिन्दी का विकासशील स्वरूपः शब्दावली के संदर्भ में जो तृतीय विश्व हिन्दी सम्मेलन के अवसर पर प्रकाशित "विश्व हिन्दी" में संकलित है दृष्टव्य है।

पारिभाषिक शब्दावली निर्माण के मार्गदर्शक सूत्रों में यह बताया जाता है कि एक भाषा परिवार या राष्ट्रीय भाषा समूह के लिए यथा संभव समान पारिभाषिक शब्द हो। ऊपर हमने देखा कि हिन्दी के पारिभाषिक शब्द निर्माण में यह विचार काम कर रहा था कि जो शब्द हिन्दी में बनेंगे वे शब्द समस्त भारतीय भाषाओं में स्वीकृत हो जिस से कि सार्वदेशिक पारिभाषिक शब्दावली की संकल्पना को परिपुष्ट किया जा सके। लेकिन इस में अनेक व्यावहारिक समस्याओं के उठ खड़े हो जाने से लगता है कि यह शायद ही संभव हो पायेगा।

डॉ. गोपाल शर्मा ने जो भारत सरकार की पारिभाषिक शब्दावली निर्माण कार्य से बहुत समय तक संबद्ध थे, एक जगह कहा है कि "जो कार्य किया गया है वह निःसंदेह अंग्रेजी पारिभाषिक शब्दावली की यांत्रिक संरचना के हिन्दी-संस्कृत प्रतिरूप तैयार करते हुए किया गया। इस के शिवाय हिन्दी की सहज प्रकृति की उपेक्षा जानबूझकर की गयी है ताकि संस्कृत के राष्ट्र व्यापी परिचित शब्दों और उप सर्ग प्रत्ययों का प्रयोग करते हुए सार्वदेशिक पारिभाषिक शब्दावली तैयार की जाए।

आयोग के द्वारा निर्मित शब्दावली का प्रयोग जब हिन्दी क्षेत्रों की राज्य सरकारें खुद नहीं कर रही है, और जब Director एवं Directorate के लिए उत्तर प्रदेश में निर्देशक एवं निर्देशालय शब्द प्रयुक्त हो, और मध्य प्रदेश में संचालक एवं संचालनालय प्रयुक्त हो तो "अन्य भारतीय भाषाओं में हिन्दी के शब्द प्रयुक्त किये जायेंगे", इस में संदेह प्रतीत होता है। पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण भारतीय भाषाओं में आपस में उचित समन्वय के अभाव में तथा कुछ भिन्न भिन्न भाषिक एवं सांस्कृतिक कारणों से दो भिन्न परिवार की भाषाओं में समान पारिभाषिक शब्दावली की स्वीकृति में कठिनाइयाँ महसूस की जा रही है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित कुछ तेलुगु एवं हिन्दी की पारिभाषिक शब्दावली दृष्टव्य है:-

BRAOU

तेलुगु का पारिभाषिक शब्द	हिन्दी का पारिभाषिक शब्द	अंग्रेजी में शब्द
कालुष्यमु	प्रदूषण	Pollution
कुटुंब नियंत्रण	परिवार नियोजन	Family Planning
ऐक्य राज्य समिति	संयुक्तराष्ट्र संघ	UNO
प्रणालिक	योजना	Plan
राज्यांगमु	संविधान	Constitution
अलीनोद्यमु	गुट निरपेक्ष आंदोलन	Non-align Movement
निरायुधीकरण	निरस्त्रीकरण	Disarmment
मानव वनरूल अभिवृद्धि	मानव संसाधन विकास	Human Resource Development
विद्या मंत्री	शिक्षा मंत्री	Education Minister

10.3.8 भाषा आधुनिकीकरण का चौथा संदर्भः मानवीकरण

भाषा मानवीकरण की संकल्पना एक तरफ़ भाषा आधुनिकीकरण से जुड़ी हुई है तो दूसरी तरफ़ भाषा जनतंत्रीकरण से। समय के परिवर्तन के साथ साथ भाषा समुदाय के सभी स्तर के लोग चाहे वे ग्रामीण हो या शहरी या परंपरावादी आधुनिक राजनैतिक व सार्वजनिक जीवन के साझेदार होने की प्रक्रिया से गुजर रहे हैं। भाषा समुदाय के सभी स्तरों के अधिक से अधिक लोगों की इस साझेदारी के कारण भाषा में सामाजिक स्तर सापेक्ष जो विविध रूप प्रचलित थे और उन विविध रूप में जो अंतर था वह क्रमशः समाप्त- सा होता जा रहा है और अब भाषा में विषय रूप के स्थान पर भाषा समरूप (भाषा में एकरूपता) की आवश्यकता अधिक महसूस होती जा रही है। भाषा मनुष्य मनुष्य के बीच पाई जानेवाली संप्रेषण व्यवस्था है और इस प्रकार वह सामाजिक अनुबंधित वस्तु है। जब सामाजिक अनुबंधन में समाज के विविध स्तर के लोग आते हैं, तब भाषा की बोधगम्यता या संप्रेणीयता सर्व जन सुलभ होनी चाहिए। ऐसी स्थिति में बहुमत के लोग भाषा के जिस प्रतिमान से परिचित होंगे उस रूप की स्वीकृति समाज में मिलने लग जाती है। वास्तव में यही भाषा की जनतंत्रीकरण की प्रक्रिया कहलाती है। कहना न होगा कि बहुमत के भाषाई रूप के मानवीकरण से समाज के सदस्यों में संतोष जनक संप्रेषण होगा और गलतफहमी की गुंजाइश कम होगी तथा सामाजिक संबंधों को बेहतर बनाने एवं समाज में भावात्मक एकता हासिल करने में मदद मिलेगी। भाषा नियोजन में भाषा मानवीकरण एक प्रमुख कार्य होता है। अकसर यह देखा गया है कि समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त वर्ग जिस भाषाई रूप का प्रयोग करता है उस रूप को स्वीकार कर उसी रूप का स्थिरीकरण अर्थात मानवीकरण किया जाता है। इस प्रकार अल्पमत का भाषाई रूप बहमत पर थोपा भी जाता है। ऐसे समाजों में जनता के हित में और उन के विकास के लिए किये जानेवाले कार्यक्रमों में बहुमत की साझेदारी नहीं हो पाती है। मानवीकरण की प्रक्रिया में शुद्धतावादी भी दूसरी तरफ़ भाषाई रूप के निर्धारण व मानवीकरण में अपना जोर लगाते रहते है और इस प्रकार वे भाषा में आर्ष प्रयोगों की स्वीकृति एवं उन के मानवीकरण के पक्षधर होते हैं।

BRAOU

संरचनात्मक एकरूपता का आदर्श रूप वह है जिसमें किसी एक शब्द का एक ही उच्चरित तथा एक ही लिखित रूप (वर्तनी) हो। प्रत्येक शब्द के लिए एक भिन्न शब्द तथा प्रत्येक शब्द का अलग अर्थ हो और वाक्य संरचना के स्तर पर अपवाद रहित एक ही व्याकरणिक ढाँचा हो। यह तभी संभव है जब भाषा स्थिर हो अर्थात् उसमें किसी प्रकार का भाषायी परिवर्तन न आ पाये। प्रयोग की अधिकतम सीमा निश्चित करना तो संभव ही नहीं है क्योंकि जहाँ तक मनुष्य के विचार एवं चिंतन की सीमा है वहाँ तक भाषा की सीमा है।

लिखित भाषा की मानकता को निर्धारित करना आसान होता है, परंतु मौखिक भाषा में मानकता के प्रतिमान का निर्धारित करना कठिन होता है, विशेष कर हिन्दी जैसी भाषा में जो विस्तृत क्षेत्र में व्यवहृत होती है। कुछ भाषाओं में लिखित भाषा की मानकता के आधार पर उस के मौखिक रूप की मानवुता को निर्धारित किया ज़ाता है। हिन्दी और तमिल को इस कोटी में रखा जा सकता है।

इस के विपरीत कुछ भाषाओं में मौखिक रूप की मानकता को आधार मान कर उस के लिखित रूप में मानकता तय की जाती है। तेलुगु और बंगला इस प्रकार की भाषाएँ मानी जाती है।

जब किसी भाषाई रूप को मानक भाषा के रूप में स्वीकृति प्राप्त होती है, तब उस में चार अभिलक्षण होना आवश्यक होता है- (1) मानवीकरण, (2) स्वायत्तता, (3) ऐतिहासिकता और (4) जीवंतता।

1) मान्य प्रयोगों को निर्धारित करने के लिए नियमों का कोडीकरण आवश्यक होता है जो उस के प्रयोक्ता को यह निर्देश दे सके कि शुद्ध प्रयोग क्या है। यह प्रक्रिया अंतर्क्षेत्रिय एकता लाकर संप्रेषण व्यापार में स्थिरता और एकता लाना होता है। इस अभिलक्षण के आधारपर यह देखा जाता है कि भाषा के लिए औपचारिक स्तर पर ऐसी कोडबद्ध नियमावली है या नहीं जिससे भाषा प्रयोगो की विभिन्नता में "एकता", "स्थिरता" एवं "शुद्धता" आती है।

2) स्वायत्तता वास्तव में भाषिक व्यवस्था का वह प्रयोजन है जो सामाजिक और सास्कृतिक संदर्भों में भाषा को एकनिष्ठ और स्वतंत्र बनाता हो। इस अभिलक्षण के आधार पर यह देखा जाता है कि प्रयोग के अपने सामाजिक प्रकार्य में वह भाषा अन्य भाषा की मुखापेक्षा है या नहीं।

3) ऐतिहासिक का तात्पर्य यह है। समय के धरातल पर भाषा की विकास यात्रा की प्रकृति सहज और सामान्य हो। इस अभिलक्षण में यह देखा जाता है कि भाषा अपने सहज और सामान्य विकास का परिणाम है अथवा वह कुछ व्यक्तियों क अन्वेषण का परिणाम।

4) मातृ भाषा के प्रयोग से ही कोई भाषा सजीव और सक्रिय बनती है, यही भाषा की जीवंतता है। इसी अभिलक्षण के आधार पर यह देखा जाता है कि भाषा को व्यवहार में लानेवाले मातृभाषा भाषियों का कोई अपना समुदाय है कि नहीं।

उतर्युक्त चारों अभिलक्षणों की कसौटी में यदि हम हिन्दी भाषा को परखते हैं तो हम पाते हैं कि उस के खड़ीबोली का रूप जो हिन्दी क्षेत्र के पढेलिखे लोगों में आपसी व्यवहार में संप्रेषण माध्यम के रूप में प्रयुक्त होते है, खरी उतरता है। हिन्दी क्षेत्र के अंतर प्रादेशिक स्तर पर संपर्क माध्यम के रूप में काम में आने के अतिरिक्त हिन्दी के इस मानक रूप को सार्वदेशिक स्तर पर अहिन्दी प्रांतों में भी संपर्क माध्यम के रूप में अपना उत्तरदायित्व निभाना है। इस कारण से हिन्दी की मानवीकरण की समस्या अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं के मानवीकरण की समस्या से भिन्न कोटि की है और साथ ही कठिन भी है। इसलिए हिन्दी का मानक वर्तमान स्थिति में दो ध्रुवों में झुकता है। इस का मूल कारण मातृभाषियों की मानक की धारणा और अन्य अहिन्दी भाषियों की मानक संबंधी अपेक्षा। यह स्वाभाविक है कि जब कोई भाषा मातृ भाषिक क्षेत्र से अन्य सांस्कृतिक या विषय सांस्कृतिक और अन्य प्रकार के भाषा क्षेत्र में पहुँचती है तो निश्चित रूप से स्थिर मानक के निर्धारण में अनेक कठिनाइयाँ आती हैं। अन्य सांस्कृतिक और अन्य भाषा भाषी लोगों के द्वारा व्यवहृत होने के कारण मातृभाषा भाषी क्षेत्रों के मानक से हटाव आ जाता हैं। ऐसी स्थिति में मध्यस्थ मानक स्थिपित करने की आवश्यकता होती है। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए भाषा नियोजन की जरूरत होती है। भाषा नियोजन का दायित्व संबद्ध राज्य/राष्ट्र के प्रशासन को निभाना पड़ता है। संविधान के निर्देशों के अनुसार हिन्दी का यह दायित्व भारत का संघ प्रशासन वहन कर रहा है। इस के अधीन भारत सरकार ने हिन्दी प्रचार-प्रसार की विविध उपयोगी योजनाओं को हाथ में लेने के साथ साथ पारिभाषिक शब्दावली निर्माण, देवनागरी लिपि के मानवीकृत हिन्दी वर्णमाला, परिवर्धित देवनागरी एवं मानक हिन्दी वर्तनी से संबंधित चार्ट व पुस्तिकाएँ आदि प्रकाशित कर वितरित किया। इस सिलसिले में उल्लेखनीय कार्य इस प्रकार हैः-

1) उत्तर प्रदेश शासन ने 1953 एवं 1957 में देवनागरी वर्णों में जो सुधार सुझाये उन्हें भारत सरकार ने देश के विशेषज्ञों के सम्मुख विचारार्थ प्रसुतत किया तथा उन की राय को दृष्टि में रखकर 8-9 अगस्त 1959 को संपन्न भारत के शिक्षा मंत्रियों के सम्मेलन में मानक देवनागरी लिपि को अंतिम रूप

देकर उसे केंद्रीय निर्देशालय द्वारा प्रसारित करवाया। इस प्रक्रिया में एक ही वर्ण के जो एकाधिक रूप प्रचलित थे उन में से एक ही रूप को स्वीकार किया गया। संयुक्त वर्ण निर्माण की विधिमें जो विविधता थी उसे समाप्त कर एक ही वैज्ञानिक विधि की स्वीकृति दी गयी है। इसी प्रकार वर्णों जिन रेखाओं के योग से बनता है, उन को क्रमिक रूप से तथा आनुपातिक लंबाई एवं चौड़ाई से जोड़ने की विधि निर्धारित कर वर्ण की बनावट में सुंडौलता, सुस्पष्टता और सुंदरता लाने का प्रयास किया गया। अनुस्वार एवं अनुनासिक चिह्न आदि विशेषक चिह्नों को निर्धारित कर उन के स्थानगत प्रयोग की विधि स्पष्ट कर दी गयी।

2) अहिन्दी भाषियों के हिन्दी लिपि-लेखन अभ्यास के लिए केंद्रीय हिन्दी संस्थान आगरा द्वारा पाँच लाइनों एवं चार खानों में निर्मित हिन्दी लिपि भाग 1,2 और 3 तथा Hindi Script (Work Book) की विधि को मानक स्वीकार कर केंद्रीय हिन्दी निर्देशालय, भारत सरकार, नई दिल्ली ने "देवनागरी लिपि अभ्यास पुस्तिका" तैयार कर उस को प्रसारित किया।

3) 15 अक्तूबर 1959 को संपन्न केंद्र की मंत्रि मंडलीय बैठक के निर्णय के अनुसार भारत सरकार ने हिन्दी में अन्य भारतीय भाषाओं के मानक लिप्यंतरण की आवश्यकता को दृष्टि में रखकर देवनागरी में अन्य भारतीय भाषाओं के जिन विशिष्ट ध्वनियों के लिए लिपि चिह्न नहीं है, उन के लिए नये लिपि चिह्नों के निर्धारण के लिए 1960 में भाषाविदों की एक समिति गठित की थी, जिस ने जून 1960 में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। इस प्रतिवेदन की सिफारिशों को देश के विविध विश्वविद्यालयों के भाषा विभागों एवं अन्य शैक्षिक संस्थाओं एवं विद्वानों के पास भेज कर उन की राय माँगी गयी। इस प्रतिवेदन की सिफारिशों का संस्थाओं/विद्वानों से प्राप्त अभिप्रायों को दृष्टि में रख कर भारत सरकार ने 23 मार्च, 1966 को अंतिम रूप देकर उसे अनुमोदित कर "परिवर्धित देवनागरी वर्णमाला" के नाम से प्रसारित किया।

4) हिन्दी वर्तनी में प्रचलित विविध रूपों को दूर कर उस में एकरूपता स्थापित करने के उद्देश्य से शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार ने 1961 में आठ सदस्यीय एक हिन्दी वर्तनी समिति का गठन किया। इस समिति ने 19 अप्रैल 1961 को संपन्न अपनी अंतिम और चौथी बार हिन्दी वर्तनी के संबंध में एक नियमावली निर्धारित की। इस नियमावली को अन्य विद्वानों एवं संस्थाओं के पास प्रेषित कर उस के सुझावों के आधार पर समिति ने अपनी सिफ़ारशें सरकार के पास अप्रैल 1962 में प्रेषित की। शिक्षा मंत्रालय ने इस विषय पर विभिन्न भाषाविदों के विचारों एवं हिन्दी वर्तनी समिति की सिफारिशों पर गंभीरता से विचार विमर्श के बाद अपनी संस्तुतियाँ 1967 में "हिन्दी वर्तनी का मानकीकरण" नामक पुस्तिका के रूप में प्रकाशित कीं।

BRAOU

5) किसी भाषा के मानकीकरण में लिपि एवं वर्तनी के अतिरिक्त उस के संरचना में भी एकरूपता व मानकीकरण की आवश्यकता होती है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भारत सरकार ने 1954 में 5 सदस्यीय एक समिति का गटन किया। इस समिति ने आधुनिक संदर्भ में हिन्दी की भूमिका को दृष्टि में रखकर हिन्दी व्याकरण की रूपरेखा तैयार की। समिति का सदस्य आ. आयेंद्र शर्मा ने इस रूपरेखा के आधार पर अंग्रेजी में एक व्याकरण ग्रंथ प्रस्तुत किया जिसे शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार ने 1958 में "A Basic Grammer of Modern Hindi" के नाम से प्रकाशित कर प्रसारित किया।

6) तृतीय विश्व हिन्दी सम्मेलन के अवसर पर 1983 में केंद्रीय हिन्दी निर्देशालय भारत सरकार ने देश के लगभग 30 भाषाविदों से परामर्श कर देवनागरी लिपि तथा हिन्दी वर्तनी का मानकीकरण नाम से एक 30 पृष्ठीय पुस्तिका प्रकाशित कर प्रसारित की है जिस में मानकीकरण से संबद्ध कुछ नये विंदु जोड़ दिये गये।

मात्र सरकार के प्रचारों से हिन्दी या किसी भाषा के मानकीकरण की समस्या का समाधान नहीं मिल सकता। देश भर के हिन्दी भाषा के प्रयोक्ता जब मानकीकृत रूप को प्रयोग में लाएँगे तभी भाषा में एकरूपता आ पाएगी तथा हिन्दी भाषा, शक्ति एवं एकता की भाषा बन पाएगी।

भारत जैसे विशाल भूभाग के 7 राज्यों एवं संघ के राज भाषा के रूप में स्वीकार्य हिन्दी जैसी भाषा जो आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से गुजर रही उस भाषा के मानकीकरण में कई बातों पर ध्यान देने की आवश्यकता होती है। डा.गोपाल शर्मा (देखेः निबंध-जनतंत्र में भाषा-योजन की समस्या और उन का स्वरूप-गवेषण अंक 31 (1978) ने इस संबध में जो निम्नलिखित प्रश्न उठाया उन के समाधान ढूँढने पर ही मानकीकरण की समस्या बहुत हद तक परिष्कृत की जा सकती है:

(क) एक सामान्य शिक्षित की व्यवहारिक आवश्यकताओं को पूरा करनेवाली भाषा के अपेक्षाकृत स्थिर रूप क्या है?

(ख) हिन्दी की बोली के प्रभाव को किस सीमा तक विस्तृत प्रयोग की हिन्दी में आत्मसात किया जाए?

(ग) अन्य भाषा भाषियों के लिए हिन्दी के रूप पदावली और मुहावरे में हटाव की स्वीकृति की सीमा (सह्य सीमा) क्या मानी जाए?

(घ) विभिन्न क्षेत्रों की पयुक्तियों के रूप में लिखे या बोली जानेवाली आज की हिन्दी में शब्दावली, और पद और वाक्य की दृष्टि से क्या सुधार लाया जाए ताकि वह सरल होते हुए भी विशिष्ट क्षेत्रों की जरूरतों को सही सही पूरा कर सके, और

(ङ) सरलता का मापदंड किसे माना जाए-

i) हिन्दुस्तानीपन

ii) फैली हुई विशिष्ट वाक्य रचना

iii) पारिभाषिक शब्दावली में सुधार

iv) अंग्रेजी शब्दों का बड़े पैमाने पर स्वीकरण, स्थितियों में भी जहाँ कि सकल्पनात्मक अंग्रजी शब्दों के लिए हम व्युत्पन्न भारतीय शब्दों का प्रयोग कर सकते हैं?

10.3.9 भाषा आधुनिकीकरण का पाँचवाँ संदर्भ-मशीनीकरण

ऊपर हम ने यह देखा है कि आधुनिक युग भौतिक संस्कृति से संबद्ध है जो औद्योगिकीकरण पर आधारित है। औद्योगिकीकरण के आधार मशीनें होती हैं। मशीनों की सहायता से भौतिक सुख सुविधाओं से संबद्ध विविध प्रकार की वस्तुओं की उत्पादकता की अप्रत्याशित रूप से वृद्धि की जाती है। इस प्रकार मानव का कार्यव्यवहार पूरी तरह मशीनों पर आश्रित होता गया। व्यवहार के एक सबल माध्यम होने के नाते मानक की भाषा को भी यांत्रिक परिचालन के दौर से गुजराना अत्यंत आवश्यक हो गया। यही यांत्रिक परिचालन भाषा का मशीनीकरण कहलाता है। विकसित देशों में भाषा के मशीनीकरण से संबद्ध अनेक तकनीकें व मशीनें विकसित हो चुकी है। भारत जैसे विकासशील देश की भाषा हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में मशीनीकरण की प्रक्रिया शुरू हो गई है। इस मशीनीकरण की प्रक्रिया को हम तीन मशीनों के संदर्भ में देख सकते हैं। वह हैः- (1) टंकण मशीन, (2) दूर मुद्रण यंत्र और (3) संगणक यंत्र।

1) टंकण मशीनः- देवनागरी लिपि में हिन्दी के मुद्रण यंत्र वैसे, सत्रहवीं सदी में ही बन गये थे। लेकिन टंकण मशीनें बहुत बाद में बन कर तैयार हुई। मशीनें तो बन गयीं लेकिन कुंजीपटल के मानवीकरण के अभाव में अनेक कठिनाइयाँ होती रहीं। एक कंपनी के द्वारा निर्मित मशीन में तथा दूसरे कंपनी के द्वारा निर्मित मशीन में कुंजीपटल में एकरूपता न होने के कारण टंककों को बड़ी असुविधा होती रही। इस असुविधा को दूर करने के उद्देश्य से शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार ने देवनागरी सुधार समिति के लखनऊ सम्मेलन (1953) की सिफ़ारिशों के आधार पर 1955 में एक विशेषज्ञ समिति का गठन किया। टंकण मशीन व दूर मुद्रण यंत्रों के लिए मानक देवनागरी के कुंजीपटल का निर्धारण करने का कार्य उस समिति को सौंपा गया। उक्त समिति के प्रतिवेदन के आधार पर भारत सरकार ने 1964 में हिन्दी टंकण मशीन के लिए मानक कुंजीपटल की तथा हिन्दी दूरमुद्रण यंत्र के लिए 1965 में मानक कुंजीपटल की घोषणा की थी। टंकण गति को बढ़ने एवं व्यावहारिक कठिनाइयों को दूर करने के लिए हिन्दी की टंकण मशीनों में निरंतर सुधार भी किया जा रहा है। इन के कारण आज यह कहा जा सकता है कि हिन्दी की टंकण मशीन विकसित अधुनातन अंग्रेजी टंकण मशीन से भी किसी भी मात्रा में क्रम नहीं है।

BRAOU

आज हिन्दी में चैक आदि बनाने के लिए बैंकों के उपयोगार्थ टाइपराइटर, रेल्वे रिजर्वेशन चार्ट आदि बनाने के लिए मोटे अक्षरों के टाइपराइटर एवं अनेक प्रकार के डिजाइनों के अक्षर टाइप कर सकने वाले वैरी टाइपराइटर भी उपलब्ध होने लगे हैं। गति में तेजी लाने के लिए एक तरफ़ बिजली चालित टाइप मशीनें बन रही है तो दूसरी तरफ़ इलैक्ट्रानिक टाइपराइटर निर्मित होने लगे हैं जिन में डिस्क के परिवर्तन कर हिन्दी भाषा के बाद दूसरी भारतीय भाषा को उसी भाषा की लिपि में टंकित करने की सुविधा है। इन मशीनों में लिप्यंतरण की सुविधा भी है। टंकण करते समय टंकित सामग्री को पारदर्शी परदे पर भी देखा जा सकता है। इस में स्मृति की व्यवस्था रहने के कारण एक बार टंकित सामग्री विशेष कर प्रपत्र आदि को स्मृति में संचित कर आवश्यकता पड़ने पर बटन दबने से पूरी सामग्री तुरंत टंकित हो जाती है। इस मशीन में बिंदु-बिंदु (डॉट-मैट्रिक्स) की व्यवस्था होने के कारण देवनागरी के जो शब्द बनते हैं, वें काफ़ी अच्छे होते हैं। इस डॉट-मैट्रिक्स के कारण एकधिक लिपियों के टंकण को एक साथ करने की सुविधा भी उपलब्ध है।

2) **दूर मुद्रण यंत्रः-** ऊपर हमने बताया है कि भारत सरकार ने 1965 में दूर मुद्रण के लिए मानक देवनागरी कुंजीपटल की घोषणा की है। तब से मशीन में भी निरंतर सुधार हो रहे हैं। वैसे तीस-एक साल पहले जबलपुर के डाक तार विभाग के एक मैकानिक ने देवनागरी के दूर मुद्रण यंत्र का निर्माण कर प्रदर्शित किया था। कुछ समय पहले तक रोमन लिपि के दूर मुद्रण की डिजाइन के आधार पर देवनागरी लिपि के दूर मुद्रण को बिठाया गया था लेकिन उस में अनेक कठिनाइयाँ होती रहीं। अब स्वदेशी डिजाइन में अर्थात स्वभाषाओं की प्रकृति के आधार पर मशीन में परिवर्तन कर बिजली चालित एवं इलेक्ट्रानिक दूर मुद्रण भी तैयार किये गये हैं जिस की सहायता से अंग्रेज़ी के साथ साथ एकाधिक भारतीय भाषा एवं लिपियों में समाचार का प्रसारण व मुद्रण संभव हो सकता है। इन इलेक्ट्रानिक दूर मुद्रण के कुंजीपटल को संगणक यंत्र के कुंजीपटल के साथ जोड़कर इलेक्ट्रानिक कोड में समानता लायी जा रही है। इस संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि मुद्रण के क्षेत्र में कंपोज़िंग के लिए नागरी लिपि की मोनो टाइप तथा लाइनों टाइप मशीनों के अलावा अब फोटोसेटिंग की आधुनिकतम प्रक्रिया आ चुकी है। इस का लाभ अनेक प्रेस उठा रहे हैं।

3) **संगणक यंत्रः-** इलेक्ट्रानिक्स के विकास से भाषा के लिए संगणक यंत्र निर्मित करना संभव हो पाया है। मानवीय एवं औद्योगिक क्रियाओं के बढ़ते हुए परिणाम व स्तर के कारण वैज्ञानिक तथा तकनीकी उच्च शोध-अनुसंधान के साथ ही अन्य कई दैनिक कार्यों के संपादन हेतु भारत में भी कंप्युटर का व्यापक रूप से इस्तेमाल अनिवार्य हो गया है। अब तक यह काम सिर्फ़ अंग्रेज़ी माध्यम से हो रहा था। अब हिन्दी कंप्युटर की उपलब्धि के बाद अंग्रेज़ी के वर्चस्व को समाप्त करने हेतु जो तकनीकी काम बचा था, अब वह पूरा हो गया है। भारत में जो पहला द्विभाषिक (अंग्रेजी-हिन्दी) संगणक बना है उस का नाम "सिद्धार्थ" रखा गया है। इस में हिन्दी के स्थान पर तमिल का उपयोग किया जा सके, ऐसी व्यवस्था बाद में विकसित की गयी है। तमिल व्यवस्था का नाम "तिरूपल्लुवर" रखा गया है। रोमन लिपि के अक्षरों को इलक्ट्रानिक व्यवस्था से दृश्य पटल पर अंकित करने के लिए मोर्स संकेत प्रणली "बिंदु और डेश" उपयुक्त है। लेकिन हिन्दी और भारतीय लिपियों की व्यवस्था रोमन से भिन्न होने के कारण इन के लिए बिंदु-बिंदु (डॉट मैट्रिक्स) प्रणाली विकसित की गयी है जिससे भारतीय लिपियों को सुंदर ढंग से अंकित करने में सुविधा मिली। भारतीय परिस्थितियों के लिए कुछ समय पहले तक जो सर्वाधिक विकसित कंप्युटर तैयार किया गया था उस का नाम "लिपि" रखा गया। यह त्रिभाषिक कंप्युटर है। इस में अंग्रेज़ी के अलावा हिन्दी, तेलुगु, कन्नड़ मलयालम, तमिल आदि में से किन्हीं दो दो भाषाओं की व्यवस्था संभव है। इस में फिलहाल अंग्रेज़ी के अलावा हिन्दी और तेलुगु के संसाधक (प्रोसेसर) तथा "प्रिंटर" की व्यवस्था की गयी है। "लिपि" कंप्युटर को कानपूर स्थित भारतीय तकनीकी संस्थान (I.I.T. Kanpur) ने Graphics and Indian Script Terminal की पकरयोजना के अंतर्गत विकसित किया है।

"लिपि" कंप्युटर में एक मानक शब्द संसाधक (Word Processer) के सभी साधन है। जैसे, स्मृति कोश, आंतरिक शब्द कोश, हिज्जे ठीक करने की व्यवस्था भारतीय भाषाओं के शब्दों के साथ ही अंग्रेज़ी शब्दों को सीखने की, व्यवस्था लिप्यंतरण की व्यवस्था आदि। "लिपि" के इस 12 इंची दृश्य

BRAOU

पटल पर प्रत्येक भाषा में 40 अक्षर वाले पंक्तियाँ भी दर्शायी जा सकती हैं। "लिपि" में उपयोग करने के लिए शब्दमाला नामक एक अंग्रेज़ी-हिन्दी शब्द साधन भी तैयार किया गया है। इस का 114 संकेतों का हिन्दी कुंजी पटल "रेमिंगटन हिन्दी के कुंजीपटल के अनुरूप हैं।"

कंप्युटर के माध्यम से भाषा गत अनेक कार्य आसानी से व वैज्ञानिक तरीके से संपन्न कराये जा सकते हैं जैसेः भाषा शिक्षण कार्य, भाषा विश्लेषण व शोध कार्य तथा अनुवाद कार्य।

भारतीय भाषाओं की व्यवस्थाओं का अध्ययन कर कंप्युटर के प्रयोग के लिए ऐसा साफ्टवेर (Software) तैयार किया जा रहा है जिस से एक भाषा भाषी दूसरी भारतीय भाषा को कंप्युटर की सहायता से सीख सके। विदेशों में तो भाषा शिक्षण के लिए कंप्युटरों की बड़ीमात्रा में इस्तेमाल किया जा रहा है। इस कार्य को वहाँ "C A D" (Computer Aided Language Devices) कहते हैं। भारतीय भाषाओं के वैज्ञानिक विश्लेषण, शब्द आवृत्ति निकालना संरचनाओं की तुलना से संबंधित अनेक शोध कार्य कंप्युटर की सहायता से किये जा सकते हैं। विदेशों में तो भाषा विज्ञान के अंतर्गत एक नयी शाखा ही विकसित हुई है जिसे वहाँ Computational Linguistics कहा जाता है। भारतीय भाषाओं में से एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद कंप्युटर की सहायता से सीमित मात्रा में ही सही, किया जा सकता है। विदेशों में आजकल मशीन "एडेड ट्रान्सलेशन" के अंतर्गत कंप्युटरों का अधिक प्रयोग किया जा रहा है। इस के लिए पहले से वहाँ ट्रान्सफर व्याकरण का निर्माण किया जाता है। विदेशों में विशेष प्रकार के भाषाओं का आविष्कार भी किया जा चुका है। जो हम बोलते हैं यों यंत्र उसे संकेतात्माक रूप में अंकित कर लेता है, और फिर किसी दूसरी भाषा के शब्दों व वाक्यों में अनुवादित करलेता है। ऐसे यंत्रों का भारत में भी निर्माण किया जा सकेगा ऐसी आशा हमें है। हम यह भी आशा कर सकते हैं कि कंप्युटर के प्रयोग से भारत के जन सामान्य का जीवन प्रभावित होगा, जीवन स्तर बेहतर होगा, तकनीकी उपलब्धियों को समझने और प्रयोग में लाने की अभिरूचि बडेगी। तभी "सूचना क्रांति" के लाभ जन जन तक पहुँचा सकेंगे।

10.3.10 सामाजिक संस्कृति का संदर्भः हिन्दी भाषा और साहित्य का आधुनिकीकरण

संविधान का अनुच्छेद 351 अपने आप में अद्वितीय है और वह देश के भाषिक इतिहास, वर्तमान तथ्यों और भविष्य की आकांक्षाओं को एक सुबद्ध योजना के रूप में प्रस्तुत करता है। इस में यह संकल्पना की गयी है कि हिन्दी भारत की समाजिक संस्कृति की संवाहिका बने, और इसलिए उस का विकास इस संकप्लना को दृष्टि में रख कर अन्य भारतीय (अष्टम अनुसूची में उल्लिखित भाषाएँ) भाषाई तत्वों को आवश्यकता के अनुसार आत्मसात करते हुए करना चाहिए। आधुनिक बनने की दौड़ में लगी हुई हिन्दी को उक्त अनुच्छेद की भावना को भूलना नहीं होगा। भारत की सामाजिक संस्कृति की संवाहिका बनने की क्षमता हासिल न करते हुए यदि वह आधुनिक बन भी जाती है तो उस का आधुनिकीकरण पाश्चात्यीकारण मात्र कहलाएगा न कि भारत के संदर्भ में आधुनिकीकरण। इस तरह हम देखते हैं कि हिन्दी के आधुनिकीकरण का प्रश्न भारतीयकरण एवं भारत की सामाजिक संस्कृति से जुड़ा हुआ है।

सामाजिक संस्कृति की संवाहिका बनने के लिए हिन्दी भाषा का विकास ऐसा हो कि उस में सार्वदेशिक तत्व उभर कर आए, वह सार्वदेशिक भाषा बने, भारत के नागरिक चाहे वे हिन्दी प्रदेश के हो या अहिन्दी प्रदेश के, उसे अपनी ही संस्कृति से संबद्ध भाषा समझे, राष्ट्रीय गौरव की भाषा समझे, राष्ट्र की शक्ति, अपने समाज व अपने साहित्य का प्रतिरूप देख सके। कोई भी देश का भाग या समाज व अपने साहित्य का प्रतिरूप उस में देख सके। कोई भी देश का भाग या समाज चाहे वह जितना भी छोटा क्यों न हो, या वह हिन्दी क्षेत्र या वह हिन्दी क्षेत्र से जितनी भी दूर पर स्थित हो, उस का स्पंदन हिन्दी के माध्यम से अभिव्यक्त हो। इस का दायित्व दोनों को हिन्दी भाषियों को तथा अहिन्दी भाषियों को निभाना है। तभी सांस्कृतिक समन्वय होगा, सामाजिक संस्कृति की संवाहिका के रूप में हिन्दी का विकास होगा। अहिन्दी भाषी तो अपना उत्तर दायित्व इस दिशा

में कई साल से निभाते आ रहे हैं, हिन्दी में रचना करते हुए अपनी संस्कृति समाज व साहित्य संबंधी विशिष्टताओं को हिन्दी को दे रहे हैं। लेकिन कोई भी भाषा तब तक संपन्न नहीं होती, जब तक आधुनिक नहीं हो पाती, जब तक सार्वदेशिक नहीं बन पाती, जब तक उस को मातृभाषा के रूप में बोलनेवाले इस दिशा में सक्रिय नहीं होते। मातृभाषा भाषी लोग जब दूसरे समाज व साहित्य व दूसरी संस्कृतियों का अध्ययन कर अपनी भाषा व साहित्य के भंडार को भरेंगे तभी वह भाषा समृद्ध व सार्वदेशिक बन सकेगी, सार्वदेशिक मुहावरा उस में आ पाएगा। अन्यथा नहीं। अंग्रेजी आज संपन्न भाषा इसलिए है, उसे विश्व भाषा बनाने के लिए अंग्रेज़ों ने स्वयं दूसरी संस्कृति व समाज का अध्ययन कर अपनी भाषा और साहित्य का भंडार भर लिया। इस लिए अंग्रेज़ी संपन्न व विश्व भाषा नहीं बनी कि उस में विश्व भर के लोग लिखते है।

उसी प्रकार साहित्य की दृष्टि से भी हिन्दी का ऐसा विकास होना चाहिए जिससे कि समस्त भारतीय साहित्यों का प्रतिनिधि रूप को वह प्रतिबिंबित कर सके। सच्चे अर्थ में "भारतीय साहित्य" की संकल्पना को यदि विकसित करना है तो उस के माध्यम भाषा के रूप में अंग्रेजी (जो आजकल यह काम निभा रही है) कदापि सार्थक माध्यम नहीं हो सकता। इस कार्य को किसी भारतीय भाषा को निभाना है। यह कार्य हिन्दी को निभाना चाहिए। इस दायित्व को निभाने लायक हिन्दी को विकसित करना है तो हिन्दी भाषियों को पहल करना होगा। अहिन्दी भाषियों के प्रयासों से यह संभव न होगा।

10.4 सारांश

इस पाठ में हिन्दी भाषा के आधुनिकीकरण के प्रयत्न पर विस्तार से चर्चा प्रस्तुत की गयी है। इस में भाषा और समाज के साथ संबंधों की विवेचना करते हुए यह दिखाया गया है कि भाषा का विकास तभी संभव होगा जब संबद्ध भाषा बोलने वाला समाज भी विकसित है। दो भिन्न संस्कृतियों- अभिव्यक्ति परक एवं प्रगतिपरक के दृष्टिकोणों की व्याख्या करते हुए उन के संदर्भ में भाषा विकास और भाषा आधुनिकीकरण पर टिप्पणि प्रस्तुत किया गया। बाद में यह बताने का प्रयास किया गया है कि पुनर्जागरण युग के दिनों में अन्य बातों के अलावा हिन्दी समेत समस्त भारतीय भाषाओं में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का श्री गणेश हुआ। इस के बाद क्रमशः भाषा आधुनिकीकरण की प्रक्रिया प्रभाव समस्याः भाषा प्रतिमान या रूप चयन की समस्या की हिन्दी ने कैसे और कितनी कठिन परिस्थितियों में सुलझाया-इस का विवरण प्रस्तुत किया गया। भाषा के आधुनिकीकरण का तात्पर्य यह भी होता है कि वह विविध आधुनिक कार्य क्षेत्रों में प्रयुक्त हो। इस की व्याख्या हिन्दी के संदर्भ में प्रस्तुत की गयी है। पारिभाषिक शब्दावली के लक्ष्यों का विवरण देते हुए हिन्दी की पारिभाषिक शब्दावली पर सम्यक समीक्षा प्रस्तुत की गयी है। इस में इस ओर भी संकेत दिया गया कि हिन्दी की पारिभाषिक शब्दावली को सार्वदेशिक शब्दावली के रूप में स्वीकार करने में क्या कठिनाइयाँ उपस्थित हो सकती है। मानकीकरण के अंतर्गत मानकीकरण प्रक्रिया का परिचय देते हुए हिन्दी के मानकीकरण के लिए किये गये सरकारी प्रयत्नों का विवरण प्रस्तुत किया गया। साथ में इस पर भी विचार किया गया कि अखिल भारतीय स्तर पर हिन्दी के मानक रूप निर्धारित करने में क्या कठिनाइयाँ उपस्थित हो रही हैं और उनके समाधन क्या हो सकते हैं। मशीनीकरण के अंतर्गत यह विचार किया गया है कि भाषा के संदर्भ में मशीनीकरण क्या है; हिन्दी भाषा के मशीनीकरण के संदर्भ में टंकण मशीन, दूर मुद्रण एवं संगणक के निर्माण, प्रयोग और भविष्य की संभावनाएँ क्या हैं। अंत में सामाजिक संस्कृति का संवाहिका बनने की क्षमता हासिल कर आधुनिक बनने के लिए हिन्दी भाषा का रूप क्या हो, और साहित्य के निर्माण में क्या किया जाए और इस में मातृभाषा भाषियों का क्या उत्तर दायित्व है आदि पर मार्मिक ढंग से विचार किया गया।

10.5 पारिभाषिक शब्दावली

अंतर प्रादेशिक – Inter-State
अंतर भाषिक – Inter-Lingual

BRAOU

अंतर भाषीय	– Inter-Lingual
अंतर्क्षेत्रीय एकता	– Inter-Regional Unity
अनुवादकता	– Translatability
अवबोधन	– Comprehension
अभिव्यक्ति परक संस्कृति	– Expressive Culture
आंतरिक शब्द कोश	– Internal Lexicon
आधुनिकीकरण	– Modernisation
ऐतिहासिकता	– Historicity
औद्योगिकीकरण	– Industrialisation
कुंजीपटल	– Key Board
जन संचार माध्यम	– Mass Communication
जीवंतता	– Vitality
टंकण मशीन	– Typewriter
दूर मुद्रण	– Teleprinter
दूर लेख	– Telex
परंपरावादी	– Traditionalist
पराबोली विशेषताएँ	– Trans-dialect-charactor
पांडित्यवाद	– Pedanticism
पारिभाषिक शब्दावली	– Technical Terminology
प्रगतिपरक संस्कृति	– Progressive Culture
प्रतिमान	– Norm
प्रयोजनमूलक साहित्य	– Functional Literature
बौद्धिकीकरण	– Intelectualisation
भाषा नियोजन	– Language Planning
भाषा परिवर्त	– Language Varient
भाषा संप्रेषण सामर्थ्य	– Communicative Competence of Language
भाषिक राष्ट्रीयवादी त्रय	– Linguistic Nationalistic Triumvirate
भारतीयकरण	– Indianisation
भौतिक संस्कृति	– Meterialistic Culture
मानकीकरण	– Standardisation
यांत्रिक पकरचाले	– Mechanical Manipulation
राष्ट्रीय प्रतीक	– National Symbol
लोक तंत्रीकरण	– Democratization
व्याकरणिक ढाँचा	– Grammatical Pattern
शक्ति एवं एकता की भाषा	– Language of Power and Solidarity
शब्द संसाधान	– Word Processor
शहरीकरण	– Urbanisation
शुद्धतावादी	– Purist
संकल्पनाएँ	– Concepts
संगणक	– Computer
संप्रेषण व्यवस्था	– Communicative System
संसक्ति	– Cohision
समतुल्य	– Equivalent
समाज अनुबंधित वस्तु	– Socially contracted phenomena
सामाजिक सार्थकता	– Social Significance
सामासिक संस्कृति	– Composite Culture
सार्वदेशिक पारिभाषिक शब्दावली	– Pan Indian Terminology
सूचना क्रांति	– Information Revolution
स्वायत्तता	– Autonomy

BRAOU

10.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

10.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न

निम्न लिखित प्रश्नों के उत्तर 250 शब्दों में लिखिए।

1. भाषा और समाज के सह संबंध को स्पष्ट करते हुए यह निरूपित कीजिए कि समाज के विकास पर भाषा का विकास निर्भर है।
2. आधुनिकीकरण की दृष्टि से हिन्दी भाषा के प्रतिमान के निर्धारण में भारतेंदु की देन की विवेचना कीजिए।
3. हिन्दी की पारिभाषिक शब्दावली की आलोचना प्रस्तुत कीजिए।
4. हिन्दी भाषा के मानकीकरण की समस्याओं का उल्लेख करते हुए हिन्दी के मानकीकरण की दिशा में केंद्र सरकार के प्रयासों पर प्रकाश डालिए।
5. मशीनीकरण से तात्पर्य क्या है। हिन्दी भा,ा के मशीनीकरण की वर्तमान स्थिति का विवरण प्रस्तुत कीजिए।
6. साहित्य की दृष्टि से हिन्दी के आधुनिकीकरण पर अपनी राय प्रस्तुत कीजिए।

10.6.2 'ब' श्रणी के प्रश्न

निम्न लिखित प्रश्नों के उत्तर 125 शब्दों में लिखिए।

1. भाषा आधुनिकीकरण के कितने संदर्भ है? वे क्या है?
2. आधुनिक संदर्भ में भाषा के प्रयोग क्षेत्र क्या क्या हो सकते हैं?
3. पारिभाषिक शब्दावली के संदर्भ में हिन्दी और तेलुगु के अंतर को चार उदाहरणों से उल्लेख करें?
4. अभिव्यक्ति परक संस्कृति से क्या तात्पर्य है?

BRAOU

10.7 नमूने के उत्तर

प्रश्न :

उत्तर : भाषाविज्ञान की दृष्टि से भाषा एक संरचना है जिस का विश्लेषण वैज्ञानिक तरीके से किया जा सकता है। लेनिक अन्य भौतिक वस्तुओं के समान भाषा कोई निरपेक्ष पदार्थ नहीं है।

भाषा समाज सापेक्ष वस्तु है। समाज के बिना किसी भी भाषा का अस्तित्व नहीं होता। भाषा की सार्थकता संबद्ध समाज में ही है। अर्थात संबद्ध समाज के क्रिया-कलाप, रीतिरिवाज, आचार-विचार, संस्कृति आदि की पूर्ण और सफल अभिव्यक्ति उस भाषा के माध्यम से ही संभव है अन्य किसी भी भाषा से यह संभव नहीं है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भाषा और समाज का अन्योन्याश्रित संबंध है।

समाज परिवर्तनशील है। समाज के परिवर्तन के साथ साथ भाषा का परिवर्तन भी अवश्यंभावी है, क्यों कि भाषा समाज अनुबंधित वस्तु होती है। यदि परिवर्तन को हम विकास की संज्ञा देते हैं तो भाषा परिवर्तनको भी भाषा का विकास कह सकते हैं। लेकिन सभी समाजों का विकास समान-सा नहीं होता। विकास की दिशाएँ अलग अलग हो सकती हैं और स्तर अलग अलग हो सकते हैं। तुलनात्मक दृष्टि से एक समाज के विकास में और दूसरे समाज के विकास में अंतर हो सकता है। इसलिए कुछ समाज विकसित कहलाते हैं तो कुछ अविकसित और कुछ विकासशील। विकास का यह मापन भौतिक संपन्नता पर आधारित है। विकास की इस परिभाषा के आधार पर विश्व के सभी राष्ट्रों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जाता है। जैसे, विकसित देश, विकसशील देश और अविकसित देश। इन देशों की भाषाओं को इस के आधार पर विकसित भाषाएँ, विकासशील भाषाएँ एवं अविकसित भाषाएँ

भी कहा जाता है। विकास को आधुनिकता में भी जोड़ा जाता है। ऐसी स्थिति में जो समाज अधिक विकसित माना जाता है, वह अधिक आधुनिक भी कहलाता है, और उस आधुनिक समाज को अभिव्यक्त करनेवाली उस समाज की भाषा आधुनिक भी कहलाती है। वास्तव में देखा जाए तो भाषाओं का इस प्रकार का विभाजन भाषा वैज्ञानिक न होकर समाज सापेक्ष होता है। इस तरह भाषा का विकास समाज के विकास पर निर्भर रहता है।

10.7.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न

प्रश्न : अभिव्यक्तिपरक संस्कृति से क्या तात्पर्य है?

उत्तर : विश्व भर के समाजों की संस्कृतियों पर ध्यान देंगे तो हम पाएँगे कि उन्हें आसानी से दो वर्गों में विभाजित किया जा सकताहै। प्राच्य संस्कृति एवं पाश्चात्य संस्कृति। लेकिन यह विभाजन भौगोलिक लगता है। इन दोनों संस्कृतियों में मूल भूत अंतर भी विद्यमान है। इस अंतर के कारण इन्हें क्रमशः अभिव्यक्ति परक संस्कृति एवं प्रगतिपरक संस्कृति की संज्ञा दी जाती है। अभिव्यक्तिपरक संस्कृति में धर्म, सौन्दर्य एवं साहित्य चेतना की प्रवृत्ति अधिक रहती है। इस में भौतिकवादिता के स्थान पर आध्यात्मकता अधिक रहती है। इसी कारण इस संस्कृति से संबद्ध देशों में धर्म, सौंदर्य आध्यात्मक एवं साहित्य से संबद्ध शास्त्रों का विकास हुआ। इन शास्त्रों के विषयों को बारीकी से व्यक्त करने ही क्षमता यहाँ की भाषाओं में विद्यमान है।

10.8 पठनीय पुस्तकें

1. Takdir Alisjahbana (1976) Language Planning for Modernisation: The case of Indonesian and Malaysian: Mouton.
2. K.Eswaran-(Ed) (1978) Contribution to Asian Studies - Vol.11 Language and Civilization change in South Asia: Leiden.
3. रवीन्द्र नाथ श्रीवास्तव एवं रमानाथ सहाय (1976)- हिन्दी का सामाजिक संदर्भ, केंद्रिय हिन्दी संस्थान, आगरा।
4. राम विलास शर्मा- (1975) भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परंपरा: राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
5. कमला कनोड़िया- (1971) भारतेन्दु कालीन हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठ भूमिः विश्वविद्यालय प्रकाशन, वारणासी।
6. केंद्रीय हिन्दी निर्देशालय, नई दिल्ली (1983) देवनगरी लिपि तथा हिन्दी वर्तनी का मानकीकरण।
7. केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा- गवेषण: अंक 31 और 41
8. विजयराघव रेड्डी (1986) भाषा के आधुनिकीकरण का संदर्भः भारतेन्दु एवं वीरेशलिंगम की देन-भारतेन्दु बाबु, हरिश्चन्द्र पुण्य शती समारोह संगोष्ठी रिपोर्ट केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरी।
9. विजयराघव रेड्डी (1986) व्यतिरेकी भाषा विज्ञानः विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।

BRAOU

इकाई-11: हिन्दीतर प्रांतों और विदेशों में हिन्दी भाषा और साहित्य

11.0 विषय प्रवेश
11.1 पाठ का उद्देश्य
11.2 पाठ परिचय
11.3 मूल पाठ
11.3.1 हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी
11.3.2 हिन्दी तर प्रांतों में हिन्दी का विकासः दक्खिनी
11.3.3 हिन्दी प्रचार आन्दोलन
11.3.4 हिन्दी साहित्य को हिन्दीतर प्रांतों की देन
11.3.5 विदेशों में हिन्दी का प्रसार
11.4 पाठ का सारांश
11.5 पारिभाषिक शब्द-अर्थ
11.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
11.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न
11.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न
11.7 नमूने के प्रश्नोत्तर
11.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर
11.7.2 'ब' श्रेणी के प्रश्नोत्तर
11.8 पठनीय पुस्तकें

11.0 विषय प्रवेश

हिन्दी एक आधुनिक, मानक और जीवन के अधिकतम क्षेत्रों में प्रयुक्त भाषा है, यह हमारी राष्ट्रभाषा, राजभाषा और सम्पर्क भाषा है। इसे सरकार का और जनता का समान रूप से संरक्षण प्राप्त है। इसलिए इस पाठ में हिन्दी के व्यापक प्रसार-प्रचार का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

BRAOU

11.1 पाठ का उद्देश्य

यद्यपि भारतीय संविधान के अनुसार हिन्दी "संघ की राजभाषा" है और इसका प्रचार-प्रसार करना संघ का कर्तव्य है, लेकिन यहाँ केवल सरकारी आदेश के पालन की बात नहीं है। हिन्दी भारत की वाणी है, उसकी सामासिक संस्कृति की संवाहिका है और स्वतंत्र भारत की अस्तित्व है। इसीलिए हिन्दी का हिन्दीतर प्रदेशों और विदेशों में विभिन्न संस्थाओं, संस्थानों, व्यक्तियों और कार्यक्रमों के द्वारा जो प्रसार हो रहा है, उसी का संक्षिप्त परिचय देना इस पाठ का उद्देश्य है।

11.2 पाठ-परिचय

भाषा का प्रसार दो स्तरों पर होता है- भाषा सीख कर और सिखा कर, तथा प्रसार दोनों ही स्तरों पर हुआ। राजनैतिक दृष्टि से हिन्दी प्रदेश वे है जहाँ प्रशासन की भाषा हिन्दी है, जैसे हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश ओर बिहार हिन्दीतर प्रदेश वे है जहाँ प्रशासन की भाषा हिन्दी नहीं है, जैसे कर्नाटक, आध्रप्रदेश, तमिलनाडु आदि। इन प्रांतों में और विदेशों में हिन्दी की स्थिति का विवेचन इस पाठ में किया जा रहा है।

11.3 मूल पाठ

11.3.1 हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी

हिन्दी नाम से प्रचलित इस में खड़ी बोली से है जो दिल्ली और मेरठ के आसपास विकसित हुई। उसी क्षेत्र में उर्दू का भी विकास हुआ। इसी करण हिन्दी और उर्दु को दो स्वतंत्र भाषाएँ नहीं बल्कि एक ही बाषा की दो शैलियाँ माना जाता है। वैसे साहित्य के स्तर पर दोनों भाषाओं का स्वतंत्र विकास हुआ है। भारत की सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी और उर्दू मिश्रित लोकभाषा ही को 'हिन्दुस्तानी' कहा जाता है। जॉर्ज ग्रियर्सन ने उसका रूप स्पष्ट करते हुए लिखा था "हिन्दुस्तानी मुख्य रूप से उत्तरी दोआब की भाषा है, साथ ही यह भारत की राष्ट्र भाषा भी है। यह फारसी तथा नागरी दोनों ही लिपियों में लिखी जा सकती है, तथा बिना किसी शुद्धि (अर्थात परिवर्तन) के ही फारसी तथा संस्कृत शब्दों की अत्यधिक बहुलुता को बचाते हुए साहित्य में भी इसका प्रयोग हो सकता है। हिन्दुस्तानी के इसी अखिल भारतीय स्वरूप को देखते हुए महात्मा गाँधी ने इसका समर्थन किया था।

11.32 हिन्दी तर प्रांतों में हिन्दी का विकासः दक्खिनी

दक्षिण में हिन्दी का जो एक रूप विकसित हुआ, उसे दक्षिणी या दक्खिनी कहा जाता है। यह हिन्दी का वह रूप है जो सन 1300 के बाद से महाराष्ट्र, आन्ध्र, कर्नाटक और तमिलनाडु में विकसित हुआ। यह खड़ी बोली, ब्रज और अवधी का मिलाजुला रूप दक्षिण की प्रांतीय तेलुगु, तमिल, कन्नड, मराठी आदि के सम्पर्क से इस प्रकार विकसित हुआ कि इसका सम्बन्ध एक और हिन्दी तो दूसरी ओर उर्दू से भी जुड़ गया है। दक्खिनी के प्रमुख कवि हुए हैं- ख्वाजा बंदेनवाज गेसूदराज, (1330-1430ई.), निजामी बीदारी (सन 1460) शाह असरफ (1554 सन) मुल्ला वजही (सन 1575) वली (सन 1668) आदि।

11.3.3 हिन्दी-प्रचार - आन्दोलन

हिन्दी के प्रसार और विकास के आरम्भ का श्रेय अन्य भारतीय भाषाओं की तरह अंग्रेज़ विद्वानों को ही जाता है। सन 1800 में फोर्ट विलियम कॉलेज (कलकत्ता) में प्राच्य भाषाओं के शिक्षण और अध्ययन की व्यवस्था के साथ ही हिन्दी का विकास आरम्भ होता है। लल्लूलाल, इशाउल्लाखां आदि ने हिन्दी गद्य को आरम्भ किया। लेकिन हिन्दी का वास्तविक प्रसार हुआ राष्ट्रीय स्वतंत्रता-आन्दोलन के साथ। महात्मा गाँधी ने यह अनुभव किया कि भारत की आज़ादी तब तक संभव नहीं जब तक कि हम भाषा के स्तर पर अंग्रेज़ी गुलामी से मुफ्त नहीं हो जाते। इसके लिए एक सम्पर्क भाषा और राष्ट्रभाषा की आवश्यकता हो और यह भाषा हिन्दी ही हो सकती है। गाँधीजी ने इसे "हिन्दुस्तानी" कहा। सन 1918 में इन्दोर के हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में अध्यक्ष के रूप में गाँधीजी ने हिन्दी के प्रचार-प्रसार को आन्दोलन के स्तर पर शुरु किया। सन 1918ही में गाँधीजी ने मद्रास में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की स्थापना की। इस संस्था का उद्देश्य बताया गया हिन्दी भाषा के प्रति सद्भावना जगाना, भाषा और साहित्य का ज्ञान देना, अध्यापक तैयार करना, पुस्तकों की रचना, परिक्षाएँ चलाना व उपाधि देना आदि। इसके अतिरिक्त वर्धा (महाराष्ट्र) में सन 1936 में राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रचार समिति की स्थापना हुई। हैदराबाद में हैदराबाद हिन्दी प्रचार सभा बनी। इसी प्रकार दक्षिण में कई संस्थाओं की स्थापना हुई।

आज दक्षिण के सभी विश्वविद्यालयों में हिन्दी विभाग हैं और हिन्दी में स्नातकोत्तर शिक्षण, अनुसंधान और शोध की व्यवस्था है। आंध्र प्रदेश में राज्यसरकार द्वारा हिन्दी अकादमी की स्थापना हुई। यहीं पर देश का पहला सार्वत्रिक विश्वविद्यालय (आ.प्र.ओपन युनिवर्सिटी) स्थापित हुआ जिसमें हिन्दी भी एक विषय है। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा (मद्रास और हैदराबाद) में तो हिन्दी में कम्पूटर का उपयोग सिखाया जाता है।

BRAOU

11.3.4 हिन्दी साहित्य को हिन्दीतर प्रांतों की देन

हिन्दी के हिंन्दीतर प्रांतों में प्रसार का दूसरा स्तर है साहित्य। स्वतंत्रता के बाद ही से यह स्थिति आगई कि हिन्दीतट प्रांतों में हिन्दीतर भाषा भाषियों द्वारा हिन्दी में साहित्य-रचना आरंभ हो गई। ऐसे रचनाकारों में प्रमुख है- आंध्र के बालशौरि रेड्डी और रमेश चौधरी 'अरिणपूड़ि'। वैसे, कम लोगों को पता है कि हिन्दी के प्रसिद्ध रचनाकार रांगेय राघव भी तमिल भाषी और गजानन माधव मुक्तिबोध मराठी भाषी हैं। श्री आनन्द माधवन मलयालम भाषी हिन्दी लेखक है।

इसके अतिरिक्त अनुवादों के माध्यम से हिन्दीतर प्रांतों ने हिन्दी साहित्यको योगदान दिया। यह अनुवाद दो तरफ हुआ, हिन्दी से हिन्दीतर भाषा में, और हिन्दीतर भाषा से हिन्दी में। लगभग सभी प्रसिद्ध कृतियों के अनुवाद किये जा चुके हैं।

इसके अतिरिक्त शैक्षिक संस्थाओं में किये जाने वाले अनुसंधान-कार्य से भी हिन्दी शोध और आलोचना का क्षेत्र समृद्ध हुआ है।

साथ ही, हिन्दीतर प्रदेशों की साहित्यिक देन की चर्चा में यह नहीं भूलना चाहिए कि अद्वैत वेदान्त के प्रखर चिन्तक श्री शंकराचार्य, भक्ति आन्दोलन के प्रसिद्ध आचार्य श्री रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य और वल्लभाचार्य दक्षिण ही से आए थे, और रीतिकालीन आचार्य कवि पद्माकर भट्ट तेलुगु भाषी तेलुगु ब्राह्मण थे।

स्वपरीक्षणार्थ प्रश्नः

1) हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी का अंतर बतलाइए।
2) दक्खिनी का विकास कैसे हुआ।
3) हिन्दी प्रचार आन्दोलन में महात्मा गाँधी की भूमिका स्पष्ट कीजिए।

11.3.5 विदेशों में हिन्दी का प्रसार

भाषा भाषियों की संख्या की दृष्टि से हिन्दी विश्व में चौथे स्थान पर है। आज हिन्दी का अध्ययन अध्यापन अनेक देशों में हो रहा है। यह बात तो सर्वविदित है कि हिन्दी भाषा के आरंभिक प्रसार और इसके साहित्य रचना को प्रोत्साहन देने वाले ईसाई मिशनरी थे। हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन का पहला प्रयत्न एक फ्रेंच विद्वान गार्सां द तासी ने किया, उनके बाद जॉर्ज अब्राहम गिर्यर्सन का स्थान है। जार्ज ग्रियर्सन ने ही हिन्दी की बोलियों का अध्ययन प्रस्तुत किया। हिन्दी व्याकरण लेखन के आरंभ का कार्य भी जॉन जोशुआ फुटोलर, पादरी आदम, पादरी शुल्जे, मोनियंट विलियम्सु, जैसे विद्वानों ने किया। आज हिन्दी विश्व के लगभग सौ से अधिक विश्वविद्यालयों में विषय के रूप में पढ़ी व पढ़ाई जाती है। इनमें से प्रमुख है अमेरिका के लगभग 33 विश्वविद्यालय, इंगलैंड में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय, सोवियत स्टेस में मास्को युनिवर्सिटी, लेनिनग्राद युनिवर्सिटी और ताशकंद युनिवर्सिटी। जर्मनी, आस्ट्रेलिया, थाईलैण्ड आदि में हिन्दी शिक्षण का प्रबंध है। मॉरिशस, श्रीलंका, सूरीनाम आदि में हिन्दी माध्यमिक कक्षाओं में भी पढ़ाई जाती है, उच्छ शिक्षा का प्रबंधतो इसमें है ही। सन 1975 की जनवरी में नागपुर में हुए प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन में ही स्पष्ट हो चला था कि विश्व के अधिकांश देशों में हिन्दी के प्रति रूचि है। इस सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए मॉरीशस के प्रधानमंत्री ने कहा था कि- "हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा तो है ही, लेकिन हमारे लिए इस बात का अधिक महत्व है कि यह एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है।"

विदेशों में हिन्दी के प्रसार का दूसरा स्तर साहित्य अध्ययन और सृजन का है। हिन्दी में साहित्य रचना करने वालों में प्रमुख नाम हैं मॉरिशस के मधुकर, मुनीश्वरलाल चिन्तामणि, अभिमन्यु अनत, हरिनारायण सीता, नेपाल के ज्योतिर्मल्ल, जयस्थिति मल्ल आदि प्राचीन और मोतीराम भट्ट, भवानी भिक्षु जैसे आधुनिक लेखक। सोवियट रूस के डॉ.ई.पी. चेलिशेव, तथा पी.ए. वरान्निकोव, पश्चिमजर्मनी के डॉ. लोठार लुत्से

BRAOU

तथा चेकोस्लावाकिया के डॉ. ओदोलेन स्मेकल प्रसिद्ध हैं। आज भी फादर कामिल बुल्के जैसे अनेक विदेशा विद्वान हिन्दी के आकर्षण से खिंचकर भारत में रहकर हिन्दी में लेखन व अध्यापन करने के लिए कृतानश्चय विद्वान है।

मौलिक लेखन के अतिरिक्त अनुवाद एक सशक्त और सर्वव्यापक माध्यम है जिससे होकर विश्व भर का साहित्य हिन्दी में और हिन्दी साहित्य विश्व-भर में पहुँच रहा है।

11.4 पाठ का सारांश

हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा, राजभा,ा और सम्पर्क भाषा है। अपने सामासिक चरित्र के कारण हिन्दी देश के सभी प्रदेशों से जुड़ी हुई है हिन्दी का हिन्दीतर प्रदेशों में प्रसार करना सरकार का दायित्व है। लेकिन यह प्रसार सरकार से अधिक जनता के द्वारा किया जा रहा है। इसी के कारण हिन्दी विदेशों में भी पढ़ी और पढ़ाई जाती है। भाषा का प्रसार दो स्तरों पर होता है। भाषा सीखकर और सिखाकर तथा साहित्य पढ़कर और पढाकर। हिन्दी का प्रसार दोनों ही स्तरों पर हुआ। हिन्दी प्रचार आन्दोलन का आरम्भ महात्मागाँधी ने सन् 1918 में किया। इसके बाद दक्षिण में अनेक संस्थाओं के द्वारा हिन्दी का प्रसार हुआ। गाँधीजी ने हिन्दुस्तानी का समर्थन किया था। दक्षिण में हिन्दी का विकास यहाँ की तेलुगु, तमिल, मराठी इत्यादि भाषाओं के साथ जुड़कर सन् 1300 से 1700 के बीच में दक्खिनी के रूप में हुआ था। आज इसे हिन्दी की ही एक शैली के रूप में ऐतिहासिक महत्व प्राप्त है। हिन्दीतर प्रदेशों ने हिन्दी में साहित्य रचकर तथा अनुवाद के द्वारा इसे समृद्ध किया हिन्दी भाषा का आरम्भिक रूप निर्माण विदेशी विद्वानों के द्वारा किया गया था। आज भी विदेशों में 100 से अधिक जगहों पर हिन्दी पढ़ी और पढ़ाई जा रही है। हिन्दी में रचना करने वाले विदेशी विद्वान मौजूद हैं अनुवाद के द्वारा भी हिन्दी और विदेशी भाषाओं के बीच लेनदेन का सम्बन्ध बना हुआ है।

11.5 पारिभाषिक शब्द-अर्थ

BPAOU

हिन्दीतर	= हिन्दी से इतर, हिन्दी के अतिरिक्त किसी और भाषा का मातृभाषा के रूप में प्रयोग करने वाले।
संघ की राजभाषा	= केन्द्रीय प्रशासन की भाषा
सम्पर्क भाषा	= विभिन्न हिन्दीतर प्रांतों और व्यक्तियों के बीच प्रशासन और सम्प्रेषण के लिए उपयोग की जाने वाली भाषा।

11.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

11.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न

निम्न लिखित प्रश्नों का उत्तर लगभग 250 शब्दों में दीजिए-

1) हिन्दी प्रचार आन्दोलन के आरम्भ और विकास का परिचय दीजिए।
2) विदेशों में हिन्दी किन रूपों में लोकप्रिय है?

11.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न

निम्न लिखित प्रश्नों का उत्तर लगभग 125 शब्दों में दीजिए-

1) हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।
2) दक्खिनी के आरंभ और विकास पर प्रकाश डालिए।

11.7 नमूने के प्रश्नोत्तर

11.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर

निम्न लिखित प्रश्न का उत्तर लगभग 250 शब्दों में दीजिए।

प्रश्न : हिन्दी प्रचार-आन्दोलन के आरंभ और विकास का परिचय दीजिए।

उत्तर : भारत की बहुभाषिक स्थिति को देखते हुए एक सम्पर्क-भाषा के रूप में हिन्दी को हिन्दीतर प्रांतों में प्रचरित करने का कार्य महात्मा गाँधी ने सन 1918 में मद्रास में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार की स्थापना के साथ आरम्भ किया। हिन्दी के प्रचार-प्रसार के साथ राष्ट्रीय चेतना भी जूड़ी हुई थी। अंग्रेजी की गुलामी से छूटकर हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का लक्ष्य हिन्दी प्रचार आन्दोलन के साथ जुड़ा था। स्वतंत्रता से पूर्व ही दक्षिण में राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रचार समिति (वर्धा) हैदराबाद हिन्दी प्रचार सभा आदि स्थापित हो चुके थे। इन संस्थाओं का लक्ष्य था हिन्दी में परीक्षाएँ चलाना, हिन्दी अध्यापकों को प्रशिक्षित करना, ज्ञान-विज्ञान की पुस्तकों का प्रकाशन, साहित्य-रचना और हिन्दी के अनुकूल वातावरण निर्माण। जब किसी आन्दोलन को जनता का सहयोग मिलता है तो वह निश्चय ही सफल होता है। हिन्दी के प्रसार का भी अधिकतर श्रेय भारतीय जनता को है। स्वतंत्रता के बाद भारत सरकार की ओर हिन्दी को सम्पर्क भषा के रूप में विकसित करने का कार्य आरंभ हुआ। केन्द्रीय हिन्दी निर्देशालय द्वारा हिन्दी और हिन्दीतर भाषाओं के कोश-निर्माण, अनुवाद और प्रशासनिक प्रयोग के लिए साहित्य प्रकाशित हुए। आज हिन्दीतर प्रदेशों में सभी विश्वविद्यालयों में हिन्दी अध्यापन, शोध और प्रशिक्षण के पाठ्यक्रम हैं। इसके अतिरिक्त साहित्य के स्तर पर हिन्दी का प्रचारकार्य अधिक रचनात्मक रूप में चला। हिन्दीतर लेखकों ने हिन्दी में साहित्य-रचना की। अनुवाद के माध्यम से हिन्दीतर भाषाओं का साहित्य हिन्दी में और हिन्दी साहित्य इन भाषाओं में लाया गया। इस प्रकार हिन्दी प्रचार करने वाली इकाइयाँ तीन वर्गों में रखी जा सकती है- सरकारी संस्थाएँ, स्वैच्छिक संस्थाएँ, और लेखक तथा अनुवादक। हिन्दी प्रचार के इस सुदीर्घ प्रयास के फलस्वरूप ही आज हिन्दी, हिन्दीतर प्रदेशों में सम्पर्क भाषा, प्रशासनिक भाषा और रचनात्मक साहित्य के रूप में प्रयुक्त है।

11.7.2 'ब' श्रेणी के प्रश्नोत्तर

निम्न लिखित प्रश्न का उत्तर लगभग 125 शब्दों में दीजिए।

प्रश्न : दक्खिनी के आरंभ और विकास पर प्रकाश डालिए।

उत्तर : दक्खिनी से तात्पर्य वह भाषा है जो सन 1300 से 1700 के बीच दक्षिण के बहमनी वंश बीजापुर, गोलकुण्डा, अहमदनगर आदि से संबंधित मुसलमान लेखकों द्वारा विकसित की गई। इस भाषा में तमिल, तेलुगु, मराठी, कन्नड, बंगरू और खड़ी बोली का मिश्रण है। दक्खिनी के पहले लेखक हैं ख्वाजा बन्दानवाज माने जाते हें, और पहले कवि निज़ामी को माना जाता है। दक्खिनी के अन्य प्रसिद्ध कवि-लेखक हैं- मुल्ला बजही, गोलकुण्डा के सुलतान कुली कुतुबशाह आदि। वली औरंगाबादी दक्खिनी के अंतिम कवि माने जाते हैं। दक्खिनी साहित्यकार सभी मुसलमान थे लेकिन वस्तु भाव और भाषा में अखिल भारतीय संस्कृति प्रकट हुई है। इस साहित्य की लिपि फारसी है। इसमें संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्द मिलते है। इस साहित्य को राज्य का संरक्षण मिलने के कारण यह प्रामाणिक साहित्य है। आज भी दक्खिनी इन प्रांतों में लोकभाषा के रूप में प्रचलित है।

BRAOU

11.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिन्दी का सामाजिक संदर्भ – सं. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव और रमानाथ सहाय, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा।
2. दक्षिण भारत के हिन्दी प्रचार आन्दोलन का समीक्षात्मक इतिहास – पी.के.केशवन, विद्यामंदिर, हिन्दी बुक सेंटर, 588, एवेन्यू रोड, बंगलूर।
3. विश्व हिन्दी (तृतीय विस्श हिन्दी सम्मेलन स्मारिका) नई दिल्ली।

BRAOU

इकाई-1: साहित्य का इतिहासः दृष्टिकोण और स्वरूप

1.0 विषय प्रवेश
1.1 पाठ का उद्देश्य
1.2 पाठ-परिचय
1.3 मूलपाठ
1.3.1 इतिहास, साहित्येतिहास और इतिहासदर्शन
1.3.2 साहित्येतिहास लेखन की समस्यायें
1.3.3 हिन्दी साहित्येतिहास लेखन की समस्यायें
1.3.4 साहित्येतिहास लेखन की पद्धति
1.3.5 साहित्येतिहास और इसिहास दृष्टि
1.3.6 मूल्यांकन
1.4 पाठ का सारांश
1.5 पारिभाषिक शब्द अर्थ
1.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
1.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न
1.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न
1.7 नमूने के प्रश्नोत्तर
1.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर
1.7.2 'ब' श्रेणी के प्रश्नोत्तर
1.8 पठनीय पुस्तकें

1.0 विषय प्रवेश

BRAOU

इतिहास-लेखन किसी भी देश, जाति या सभ्यता के लिए बहुत स्वस्थ और वैज्ञानिक प्रवृत्ति है, क्योंकि इतिहास-लेखन के द्वारा कोई पीढ़ी न केवल अपने अतीत का हिसाब-किताब रखती है बल्कि उसके आलोक में भविष्य का मार्ग भी निर्धारित करती है। हर प्रकार के मानवीय क्रियाकलाप का इतिहास होता है, चाहे वह विज्ञान हो, दर्शन हो, धर्म हो, कला हो या साहित्य हो। प्रस्तुत पाठ में साहित्येतिहास और विशेषकर हिन्दी साहित्य के इतिहास के स्वरूप और समस्याओं का समग्र विवेचन किया गया है।

1.1 पाठ का उद्देश्य

इस पाठ में इतिहास लेखन की सामान्य प्रवृत्तियों, पद्धतियों और समस्याओं का विवेचन करते हुए हिन्दी साहित्य के इतिहास पर विशेष विचार किया गया है। इससे आप जान सकेंगे कि

1) इतिहास न केवल तथ्यों पर आश्रित रहता है, बल्कि इतिहासकार की व्याख्या उन्हें एक स्वरूप प्रदान करती है।
2) इसके लिए इतिहास कार का दृष्टिकोण प्रमुख है।
3) इसीलिए इतिहास का बार-बार लेखन होता रहता है।
4) हिन्दी साहित्य के विभिन्न इतिहासों में इसी दृष्टिकोण-समस्याओं को सुलझाने की क्षमता और युगीन परिवेश के कारण निरन्तर विकास होता रहा है।

1.2 पाठ परिचय

इस पाठ में मूलतः हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन, उसकी समस्याओं, पद्धतियों, सिद्धान्तों और मान्यताओं पर प्रकाश डाला गया है। इसे समग्र रूप देने के लिए इतिहास-दर्शन और साहित्येतिहास लेखन में उसके उपयोग पर भी विचार किया गया है इस पाठ का उद्देश्य है हिन्दी साहित्य के विभिन्न इतिहासों का मूल्यांकन करना और यह देखना कि इतने सारे प्रयत्नों के बावजूद कितनी समस्याएँ अनसुलझी रह गई हैं और कितनी सम्भावनाएँ शेष हैं।

1.3 मूल पाठ

1.3.1 इतिहास, साहित्येतिहास और इतिहासदर्शन

इतिहास शब्द का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है इति (इस प्रकार से) + ह (निश्चय) + आस (था) : आर्थात अतीत की निश्चित रूप से होने वाली घटना का नाम इतिहास है। इतिहास अतीत का आख्यान है, लेकिन यह यहीं तक सीमित नहीं है, इसमें वर्तमान का भी योग होता है क्योंकि हर इतिहासकार जिसयुग में वह रह रहा है उसी युग की दृष्टि से इतिहास-लेखन करता है। इतिहास की एक तीसरी आँख होती है और वह है भविष्य वर्तमान दृष्टि से अतीत का लेखा जोखा करने पर जो सामान्य सूत्र मिलते हैं वे भविष्य का मार्ग प्रशस्त करते हैं। हर युग की अपनी दृष्टि होती है जिसके अनुसार इतिहास की व्याख्या बदलती रहती है। उदाहरण के लिए सन् 1857 के संघर्ष को अंग्रेज इतिहासकारों ने "कुछ सिपाहियों का विद्रोह" कहा जबकि आगे चलकर भारतीय इतिहासकारों ने इसका सही मूल्यांकन करते हुए इसे "भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम" कहा। इसलिए इतिहासकार स्पेंग्लर ने लिखा है कि "हर पीढ़ी को अपना इतिहास नए सिरे से लिखना चाहिए।"

साहित्य का इतिहास साहित्येतिहास होता है इसका अर्थ है साहित्य की विकासमान परम्परा, उसके जन्म से लेकर अद्यतन स्थिति तक का क्रमबद्ध अध्ययन। इतिहास और साहित्येतिहास दोनों के लिए एक निश्चित दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है, और यह दृष्टिकोण मिलता है इतिहास दर्शन से। इतिहास दर्शन वास्तव में इतिहास लेखन की विभिन्न दृष्टियों का समन्वित रूप है। युग के परिवर्तन के साथ साथ इसमें नए सिद्धान्त और नई मान्यताएँ जुड़ती चली जाती हैं। कहा जा सकता है कि इतिहास लेखन यदि व्यावहारिक कार्यक्रम है तो इतिहास दर्शन उसका सैद्धान्तिक आधार है।

B R A O U

स्वपरीक्षणार्थ प्रश्न :

1. इतिहास से क्या तात्पर्य है?
2. इतिहास दर्शन किसे कहते है?
3. इतिहास और साहित्येतिहास से क्या आशय है?

1.3.2 साहित्येतिहास लेखन की समस्याएँ

किसी भी जाति या सभ्यता का इतिहास वास्तव में उसकी अतीत मानसिकता में प्रवेश करने का प्रयत्न होता है। सामान्य इतिहास में जहाँ घटनाएँ महत्वपूर्ण होती हैं साहित्य के इतिहास में वहीं रचनाएँ आधार-सामग्री बनती है, सामग्री की खोज दोनों प्रकार के इतिहास-लेखन में करनी पड़ती है। साहित्य के इतिहास में प्राचीन से प्राचीन रचनाओं की खोज, उनकी प्रामाणिकता का निर्णय, उनका काल निर्धारण, इतिहास में उनका स्थान और साहित्य में उनका महत्व बताने की प्रक्रिया से गुजरकर ही साहित्य का इतिहास लेखन सम्भव होता है। इस दृष्टि से साहित्य के इतिहास-लेखन की तीन प्रमुख समस्याएँ हैं (1) सामग्री संकलन, (2) काल विभाजन, (3) साहित्यिक मूल्यांकन

सामग्री संकलन साहित्य के इतिहास लेखन की सबसे पहली समस्या है। जिस प्रकार किसी भवन के निर्माण के लिए ईंट, चूना, गारा, मिट्टी सिमेन्ट आदि मूलभूत उपादानों की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार साहित्य के इतिहास की रचना के लिए पाण्डुलिपियाँ, अभिलेख, दानपत्र, ऐतिहासिक विवरण आदि अनेक प्रकार की सामग्री चाहिए। समय के प्रवाह में प्रायः पाण्डुलिपियाँ नष्ट हो जाती है। जब कोई प्राचीन पाण्डुलिपि कहीं से प्राप्त होती है तो साहित्य के इतिहास में जैसे बड़ा भूचाल आ जाता है। पाण्डुलिपि की भाषा, विषयवस्तु आदि के माध्यम से उसके ऐतिहासिक महत्व का निर्णय किया जाता है। इसी का दूसरा चरण है- काल विभाजन। जिस प्रकार किसी पुस्तकालय का स्वरूप अस्त-व्यस्त बिखरी हुई पुस्तकों के ढेरों से स्पष्ट नहीं होता, उसी प्रकार साहित्य के इतिहास लेखन के लिए केवल सामग्री का मिलना पर्याप्त नहीं है। सामग्री का कालक्रमानुसार वर्गीकरण, युगीन प्रवृत्तियों के अनुसार विभाजन आदि कार्य भी आवश्यक है। यह विभाजन इतिहासकार किस आधार पर करेगा, यह उसके दृष्टिकोण पर निर्भर होता है। साहित्येतिहास-लेखन का तीसरा महत्वपूर्ण चरण है साहित्यिक मूल्यांकन का। साहित्येतिहास-लेखन के मार्ग में जो भी कठिनायाँ आती है, वे इन तीनों चरणों पर ही उठती हैं हर इतिहासकार अपने दृष्टिकोण और अपनी क्षमता के अनुसार इन समस्याओं को सुलझाता है।

1.3.3 हिन्दी साहित्येतिहास लेखन की समस्याएँ

इस आलोक में हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की समस्याओं पर विचार करने से पता चलता है कि ये समस्याएँ मूलतः इन्हीं तीन चरणों से सम्बन्धित हैं। सामग्री संकलन, कालविभाजन और मूल्यांकन से। हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन में सबसे पहली कठिनाई सामग्री संकलन की है। यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि जो जाति और संस्कृति जितनी प्राचीन होती है उसके विषय में सामग्री उतनी ही दुर्लभ और विवादास्पद होती है। इसलिए यह समस्या किसी भी प्राचीन भाषा के साहित्येतिहास लेखन में उठती है। हिन्दी के सन्दर्भ में यह समस्या अधिक कठिन इसलिए है कि हिन्दी के प्राचीन ग्रन्थ अधिकांशतः नष्ट हो चुके हैं। प्राचीन पाण्डुलिपियाँ, उनके रचनाकारों का परिचय और अन्य सहायक सामग्री जब तक नहीं मिलती तब तक यह तय करना मुश्किल होता है कि किसी भाषा का साहित्य कब से आरम्भ हुआ। शुक्ल जी ने सन् 1929 में जो साहित्येतिहास लिखा उसके पीछे 'मिश्रबन्धु विनोद' में संग्रहित सामग्री और उसके भी पीछे सन् 1900 से लेकर 1911 तक के समय में कई विद्वानों द्वारा प्राचीन पुस्तकालयों, मन्दिरों और अन्य ऐसे स्त्रोतों से खोज कर प्रकाशित की गई सामग्री थी। सामग्री का प्रामाणिक होना भी आवश्यक है, इसके अभाव में क्या परिणति होती है, यह स्वयं शुक्ल जी के इतिहास में आदि काल या वीर गाथाकाल के विवेचन से स्पष्ट है। जिन ग्रन्थों के आधार पर शुक्ल. जी ने इसे वीर गाथाकाल कहा वे अधिकांश में बाद के अनुसन्धानों द्वारा अप्रमाणिक सिद्ध कर दी गई। बाद में 'संदेश रासक' जैसी कृतियों के मिलने से हिन्दी साहित्य का आरम्भ बिन्दु निश्चित करने में मदद मिली। यह मदद शुक्ल जी को नहीं मिल सकी थी। भारत में प्राचीन कवियों द्वारा अपने व्यक्तिगत जीवन को नैपथ्य में रखकर केवल रचना को आगे रखने की प्रवृत्ति के कारण भी कठिनाई होती है, जैसे संस्कृत कवि कालिदास का सही कालनिर्णय आज तक नहीं हो सका है, तुलसीदास कहाँ जन्में थे इसका ठीक-ठीक पता नहीं है और यहाँ तक कि सूरदास जन्मांध थे या नहीं, यह भी निश्चित करना कठिन है। दूसरी समस्या है कालविभाजन की। वास्तव में कालविभाजन और नामकरण ही किसी भी साहित्येतिहास का आधार-तन्त्र बनाता है सामग्री यदि यथेष्ट मिले और उसकी प्रामाणिकता का निर्णय हो जाय तो काल विभाजन का कार्य आसान होता है। इसके लिए सामाजिक, राजनैतिक इतिहास का सहारा लेना पड़ता है। इतिहासकारों ने अलग अलग ढंग से इस समस्या को सुलझाया है। उसके साथ नामकरण का भी कार्य जुड़ा हुआ है। नामकरण के लिए साहित्य की प्रवृत्ति को आधार बनाया जाय या ऐतिहासिक परिस्थितियों को- इस पर भी विद्वानों के मत अलग अलग है। उदाहरण के लिए हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन के आरम्भिक प्रयत्नों में प्रथम इतिहासकार गार्सां द तासी ने कालविभाजन नहीं किया, लेखकों का विवरण उन्होंने वर्णानुक्रम से दिया, ऐसा उन्हें इसलिए करना पड़ा कि उनके पास सामग्री के विषय में पूरी जानकारी नहीं थी जैसा कि वे स्वयं स्वीकार करते हैं- "मौलिक जीवनियाँ, जो मेरे ग्रन्थ का मूलाधार है, सब अकारादि क्रम से रखी गई है, मैने यही पद्धति ग्रहण की है, यद्यपि शुरू में मेरा विचार कालक्रम ग्रहण करने का था और यह मैं छिपाना नहीं चाहता कि यह क्रम अधिक अच्छा रहता या कम से कम जो शीर्षक मैने अपने ग्रन्थ को दिया है उसके अधिक उपयुक्त होता, किन्तु मेरे पास अपूर्ण सूचनाएँ होने के कारण उसे ग्रहण करना कठिन

ही था। .... यदि मैने काल क्रमवाली पद्धति ग्रहण की होती तो अनेक विभाग स्थापित करने पड़ते। पहले मैं उन लेखकों को रखता जिनका काल अच्छी तरह ज्ञात है; दूसरे में उनको जिनका काल संदेहात्मक है; अन्त में तीसरे में उन्हें जिनका काल अज्ञात है। यही विभाजन उन रचनाओं के लिए करना पड़ता जिन्हें इस ग्रन्थ के प्रधान अंश में स्थान नहीं मिल सका। अपना कार्य सफल बनाने और पाठक की सहूलियत- दोनों दृष्टियों से मुझे यह पद्धति छोड़ने के लिए बाध्य होना पडा। यह तो हुई सामग्री के न मिलने की समस्या, लेकिन जहाँ सामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। वहाँ भी समस्या उठती है कि उसका वर्गीकरण कैसे किया जाय। कुछ इतिहासकारों के मतानुसार ऐतिहासिक परिस्थितियों को आधार बनाया जाना चाहिए, जैसे अंग्रेजी साहित्य में 'विक्टोरिया युग' या हिन्दी साहित्य में 'ब्रिटिश युग'। कुछ के मतानुसार साहित्यिक प्रवृत्तियाँ या साहित्यिक व्यक्तित्वों का आधार अपनाना चाहिए जैसे 'भक्तिकाल' या 'द्विवेदी युग' कुछ इतिहासकारों ने 'आदिकाल', 'मध्याकाल' आदि प्रस्तावित किया जो कि बहुत तर्कसंगत नहीं है। कई इतिहासकारों ने दो तीन आधारों को मिलाकर काल विभाजन किया, जैसे जार्ज ग्रियर्सन ने अपने 'दि माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान' में कहीं कवि का आधार अपनाया जैसे 'तुलसीदास युग', कहीं प्रवृत्ति का जैसे 'रीतिकाव्य' तो कहीं ऐतिहासिक स्थितियों का जैसे 'कम्पनी के शासन में हिन्दुस्तान'। हिन्दी साहित्येतिहास में काल विभाजन का पहला व्यवस्थित प्रयत्न करते हुए शुक्ल जी ने ऐतिहासिक परिस्थितियों और साहित्यिक प्रवृत्तियों को मिलाकर चार कालों में इसे विभाजित किया आदिकाल (वीरगाथाकाल) भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल। शुक्ल जी का दिया हुआ यह ढांचा बाद के इतिहासों में भी थोड़े बहुत परिवर्तनों के साथ यथावत् चला आ रहा है। तीसरी समस्या है साहित्यिक मूल्यांकन की। यहाँ पर साहित्येतिहासकार को केवल इतिहासकार ही नहीं बल्कि आलोचक भी होना पड़ता है। उसमें ऐतिहासिक दृष्टि ही नहीं आलोचनात्मक विवेक भी होना चाहिए। उदाहरण के लिए यह जॉर्ज ग्रियर्सन ही थे जिन्होंने रामचरित मानस को धार्मिक ग्रन्थ की संकीर्ण परिधि से हटाकर साहित्यिक ग्रन्थ के रूप में मूल्यांकित किया और तुलसीदास का पहली बार महत्व-निरूपण करते हुए उन्होंने लिखा "भारत में बुद्ध देव के बाद सबसे बड़ा लोकनायक तुलसीदास हैं॥" रामचन्द्र शुक्ल को तुलसी, जायसी और सूरदास को साहित्यिक रूप से प्रतिष्ठित करने का श्रेय प्राप्त है तो हजारी प्रसाद द्विवेदी को कबीर के साहित्यिक मूल्यांकन का श्रेय दिया जाता है।

स्वपरीक्षणार्थ प्रश्न :

1) साहित्येतिहास-लेखन की प्रमुख समस्याओं का विवरण कीजिए।
2) हिन्दी साहित्येतिहास में काल विभाजन की समस्या पर प्रकाश डालिए?

1.3.4 साहित्येतिहास लेखन की पद्धति

साहित्येतिहास लेखन की विभिन्न पद्धतियाँ प्रचलित है जिनमें सबसे पहली है वर्णानुक्रमी प्रणाली। इसके अन्तर्गत लेखकों के नामों के प्रथम अक्षर के अनुसार सूची में उसका स्थान निर्धारण किया जाता है। निश्चय ही यह प्रणाली वैज्ञानिक नहीं है और इससे कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती लेकिन इस प्राणाली का प्रयोग इतिहासकारों ने तभी किया जब समुचित ऐतिहासिक विवरण नहीं मिल सका जैसे गार्सा-द-तासी ने इसका प्रयोग किया जो कि उनकी विवशता थी। दूसरी प्रणाली है कालानुक्रमी जिसके अन्तर्गत लेखकों की जन्मतिथि के आधार पर उनका या उनकी रचनातिथि के आधार पर रचनाओं का वर्गीकरण किया जाता है। हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन में सबसे पहले इसका प्रयोग डा. ग्रियर्सन ने किया। अगली पद्धति है विधेयवादी, जिसके पीछे एक सिद्धान्त है। जब साहित्य की प्रवृत्तियों का विवेचन करते हुए उनके जन्म और विकास का कारण बाहरी परिस्थितियों में खोजा जाता है तो वह विधेयवादी सिद्धान्द और पद्धति का उपयोग होता है। उदाहरण के लिए 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' म रामचन्द्र शुक्लजी ने इसका उपयोग किया और बताया कि "प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिम्ब होता है। तब यह भी निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।" ...."जनता की चित्तवृत्ति में परिवर्तन राजनैतिक सामाजिक परिस्थितियों के कारण होता है"। इस प्रकार शुक्ल जी ने परिस्थिति, जनता की मानसिकता और साहित्य के बीच कारण कार्य का सम्बन्ध बैठाया। अगली प्रणाली है मार्क्सवादी जिसके अन्तर्गत साहित्य, साहित्यकारों उनकी सामाजिक - आर्थिक स्थितियों के बीच द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध

BRAOU

देखते हुए उसका विवेचन किया जाता है उदाहरण के लिए भक्ति काव्य में एक ओर लोक मंगल की भावना और दूसरी ओर वैराग्यवृत्ति, या छायावादी काव्य में एक ओर राष्ट्रीय जागरण और दूसरी ओर पलायन की परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों की व्यख्या इस पद्धति के आधार पर की जाती है।

1.3.5 साहित्येतिहास और इतिहास दृष्टि

साहित्येतिहास के समुचित मूल्यांकन के लिए निरूपित इस विषय के समुचित मूल्यांकन के लिए निरूपित करना आवश्यक है। इतिहास समय के अविच्छिन्न प्रवाह को घटनाओं, तिथिक्रमों और देशकाल बद्ध स्थितियों में बांधने का क्रम है, तो साहित्येतिहास किसी सभ्यता की साहित्यिक गतिविधियों का काल और प्रवृत्ति के अनुसार विवेचन है। इतिहास दृष्टि दोनों ही का प्रेरणा और परिचालक तत्व है इतिहास दृष्टि अर्थात इतिहासकार की दृष्टि नहीं होती, इसके पीछे उसका युगीन परिवेश उसकी सामाजिक स्थिति, उसकी मान्यताँए, जीवन दर्शन, नैतिक मूल्य और संस्कार जुड़े होते हैं। इस प्रकार प्रत्येक इतिहासकार की दृष्टि उसे प्रेरित और परिचालित करती है कि वह तथ्यों की व्यख्या करे, मूल्यांकन करे और उनके आधार पर कुछ सामान्य सिद्धान्तों का निर्देश करे। साहित्येतिहासकार के लिए यह दृष्टि और अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि साहित्येतिहासलेखन में उसे एक ओर इतिहासलेखन जैसा निरपेक्ष (Objective) कार्य करना पड़ता है तो दूसरी ओर साहित्यिक मूल्यांकन जैसा सापेक्ष (Subjective) कार्य भी। साहित्येतिहासकार की दृष्टि उसके सामग्री चयन से लेकर वर्गीकरण और मूल्यांकन तक में महत्वपूर्ण भूमिका सम्पन्न करती है, यहाँ तक कि जिस पद्धति का वह प्रयोग करता है उसमें भी उसकी दृष्टि झलकती है। इसीलिए साहित्यका एक इतिहास दूसरे इतिहास से अलग होता है। हिन्दी साहित्य के विभिन्न इतिहासों में दृष्टिकोणों के इस वैभिन्न, वैषम्य और टकराव को देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए जार्ज ग्रियर्सन की इतिहास दृष्टि में वैज्ञानिकता और साहित्यिकता थी किन्तु प्रामाणिक सामग्री के अभाव में उनके पूर्व मिश्रबन्धु शिवसिंह सेंगर और गार्सा-द-तासी के पास सामग्री की सीमा तो थी ही, अपेक्षित ऐतिहासिक दृष्टि ही नहीं थी। इसका पता इस बात से चलता है कि मिश्रबन्धुओं ने कई प्राचीन कवियों के साथ जुड़ी अलौकिक कथाओं को भी स्थान दिया, उनकी सत्याता की छानबीन उन्होने नहीं की। शुक्ल जी ने पहली बार व्यवस्थित वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया जो कि विधेयवादी दृष्टिकोण था। इसके विपरीत हजारीप्रसाद द्विवेदी का दृष्टिकोण सांस्कृतिक और मानववादी था। इन दोनों इतिहासकारों के दृष्टिकोण भक्तिकाल के प्रसंग में टकराते हैं। शुक्ल जी ने हिन्दी भक्तिकाव्य की रचना के लिए भक्ति आन्दोलन को कारण बताया, और भक्ति आन्दोलन का कारण उन्होने ढूँढा उस समय इस्लाम के आक्रमण के कारण हिन्दू जाति की हताश मनोवृत्ति में। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसका विरोध करते हुए बतलाया कि भक्तिकाव्य और भक्ति आन्दोलन भारत की प्राचीन भक्ति परम्परा की एक कड़ी है, किसी बाहरी आक्रमण की प्रतिक्रिया नहीं। आगे चलकर हिन्दी साहित्य के जो विभिन्न इतिहास लिखे गए उनमें भी अलग अलग दृष्टियाँ मिलती हैं जैसे गणपति चन्द्र गुप्त का वैज्ञानिक इतिहास, प्रकृति में व्याप्त वैज्ञानिक नियमों के आधार पर इतिहास लेखन का समर्थन करता है। डा.रमस्वरूप चतुर्वेदी का हिन्दी साहित्य; संवेदना और स्वरूप साहित्य की भीतरी संवेदनाओं के आधार पर लिखा गया इतिहास है। इसी प्रकार डा. रामविलास शर्मा के ग्रन्थ हिन्दी साहित्य के इतिहास को मार्क्सवादी ढंग से प्रस्तुत करते हैं। साहित्य में शिल्प को प्रमुखता देने वाले इतिहासकारों ने रीतिकाल को सर्वोत्कृष्ट कालं बताया है इस प्रकार सौन्दर्य शास्त्रीय, समाज शास्त्रीय आदि दृष्टियों से लिखे गए इतिहासों के निष्कर्ष अलग अलग होते हैं।

1.3.6 मूल्यांकन

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि साहित्य इतिहास लेखन में इतिहास दर्शन का समुचित योगदान होता है साहित्येतिहास लेखन की समस्याओं को सुलझाने में इतिहासकार जिस पद्धति का उपयोग करता है वह उसकी दृष्टि से ही परिचालित होती हैं। हिन्दी साहित्य के अद्यतम इतिहास ग्रन्थों में भी कुछ समस्याएँ अनसुलझी रह गई है, जैसे- एक ऐसी वर्गीकरण पद्धति का अविष्कार अभी तक नहीं हो सका जिसके अन्तर्गत किसी काल विशेष की विभिन्न प्रवृत्तियों का समानान्तर विश्लेषण किया जा सके। उदाहरण के लिए रीतिकाल कहते ही रीति की प्रवृत्ति मुख्य हो जाती हैं, अन्य प्रवृत्तियाँ अपने आप गौण। केशवदास और विद्यापति का अबतक सही स्थान निर्धारण नहीं हो सका। छायावादयुग

BRAOU

कहते ही उसके समानान्तर चलता प्रेमचन्द का साहित्य अमहत्वपूर्ण हो जाता है। हिन्दी साहित्य में यह भी प्रश्न अनुत्तरित है कि इसके सभी कालों में भक्ति की आद्यन्त परम्परा के होते हुए भी केवल एक काल को भक्तिकाल क्यों कहा जाता है। कबीर को ज्ञानमार्गी ही क्यों कहा जाय जबकि उनमें प्रेम का भी तत्व प्रचुर मात्रा में है। आज तक यह भी निश्चयपूर्वक बताया नहीं जा सका कि हिन्दी साहित्य का आरम्भ कहाँ से माना जाय। लेकिन यह समस्याए केवल हिन्दी की नहीं अन्य इतिहासों के साथ भी अलग अलग रूपों में उठती हैं। इतिहास लेखन तो एक अविच्छिन्न परम्परा है जो अपने अपने युगीन सन्दर्भों, मानदण्डों और दृष्टिकोणों के आधार पर लिपिबद्ध होती चलती है।

स्वपरीक्षणार्थ प्रश्न :

1. साहित्येतिहास लेखन की कितनी पद्धतियाँ है?
2. साहित्येतिहास लेखन की वर्णानुक्रमी प्रणाली अवैज्ञानिक क्यों है?
3. कालानुक्रमी प्रणाली अपनाने में क्या कठिनाइयाँ है।
4. विधेयवादी दृष्टिकोण का परिचय देते हुए बतलाइए कि हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन में किसने उस पद्धति को अपनाया।

1.4 पाठ का सारांश

आधुनिक युग इतिहास लेखन का युग है। इतिहास लेखन एक पूर्णतयः वैज्ञानिक प्रवृत्ति है जिससे प्रेरित होकर कोई भी देश या जाति अपने अतीत अनुभूतों को लिपिबद्ध करती है, वर्तमान दृष्टि से उनका मूल्यांकन करती है और भविष्ट के लिए मार्ग खोजती है। यह इतिहास सभी प्रकार के मानवीय ज्ञान विज्ञान का होता है, साहित्य का भी। साहित्य का इतिहास साहित्य की विकासमान परम्परा के जन्म से लेकर अद्यतम स्थिति तक का क्रमबद्ध अध्ययन है। साहित्येतिहास लेखन के मार्ग में अनेक कठिनाइयाँ हैं जो मुख्यतः तीन स्थितियों से सम्बन्धित हैं- सामग्री संकलन, काल विभाजन और साहित्यिक मूल्यांकन। सामग्री संकलन में प्राचीन रचनाओं का संकलन और उनकी प्रामाणिकता के निर्णय का कार्य है हिन्दी साहित्य के इतिहास में इस तरह की कठिनाइयाँ स्पष्ट है दूसरी स्थिति कालविभाजन की है। उपलब्ध सामग्री का वर्गीकरण इसके अन्तर्गत आता है इसके लिए एक विशेष दृष्टि और पद्धति की आवश्यकता होती है। तीसरी स्थिति में साहित्येतिहासकाल को रचनाओं का मूल्यांकन भी करना होता है साहित्येतिहास लेखन की कई पद्धतियाँ है जैसे वर्णानुक्रमी कालानुक्रमी, विधेयवादी और मार्क्सवादी इत्यादि। साहित्येतिहास लेखन में इतिहासकार की दृष्टि प्रमुख होती है। इसीलिए एक इतिहास दूसरे से अलग होता है हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन के प्रमुख प्रयत्न करने वालों में से गार्सा-द-तासी, ग्रियर्सन, मिश्रबन्धु, रामचन्द्रशुक्ल, हजारीप्रसाद द्विवेदी गणपतिचन्द्र गुप्त इत्यादि।

BRAOU

1.5 पारिभाषिक शब्द-अर्थ

अद्यतन	=	आजतक
स्पेंगलर	=	पूरानाम ओखवाल्द स्पेंगलर, जर्मन इतिहास-दर्शनकार (1880-1936)
प्रामाणिकता-निर्णय	=	रचना और रचनाकार की सही जानकारी
उपादान	=	उपकरण, साधन
दानपत्र	=	वहलेखया पत्र जिसके द्वारा कोई संपत्ति किसी को सदा के लिए देदी जाए।
अभिलेख	=	लिपिबद्ध राजकीय या आधिकारिक पत्र।
शिलालेख	=	शिलाओं पर लिखे गए राजकीय आदेश।
वर्णानुक्रम	=	वर्ण अर्थात अक्षर-अनुसार चलनेवाला क्रम
अविच्छिन्न	=	अटूट

1.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न

निम्न लिखित प्रश्नो का उत्तर लगभग 250 शब्दों में दीजिए।

1. साहित्येतिहास लेखन की प्रमुख समस्याओं पर प्रकाश डालिए।
2. हिन्दी साहित्येतिहास लेखन की प्रमुख समस्यायें क्या है और इतिहासकारों ने इन्हें कैसे सुलझाया है?

1.6.2 'ब' श्रेंणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर लगभग 125 शब्दों में दीजिए।

1. साहित्येतिहास लेखन की पद्धतियों का विवेचन कीजिए।
2. साहित्येतिहास दृष्टि क्या है? इतिहास लेखन में इसकी क्या भूमिका है? सोदाहरण बतलाइए।

1.7 नमूने के प्रश्नोत्तर

1.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर

निम्नलिखित प्रश्न का उत्तर लगभग 250 शब्दों में दीजिए-

प्रश्न : साहित्येतिहास लेखन की प्रमुख समस्याओं पर प्रकाश डालिए।

उत्तर : किसी भी जाति या सभ्याता का इतिहास वास्तव में उसकी अतीत मानसिकता में प्रवेश करने का प्रयत्न होता है। सामान्य इतिहास में जहाँ घटनाएँ महत्वपूर्ण होती हैं, वहीं साहित्य के इतिहास में रचनाएँ आधार-सामग्री बनती है। सामग्री की खोज दोनों प्रकार के इतिहास लेखन में करनी पड़ती है। साहित्य के इतिहास में प्रचीन से प्राचीन रचनाओं की खोज कर उनकी प्रामाणिकता का निर्णय पहली स्थिति है। इसके बाद उस सामग्री का वर्गीकरण दूसरी स्थिति है। तीसरी स्थिति साहित्यक रचनाओं का मूल्यांकन है। इन तीन स्थितियों के आधार पर साहित्येतिहास-लेखन की तीन प्रकार की समस्याएँ हैं- सामग्री-संकलन, काल-विभाजन और मूल्यांकन। सामग्री की प्राप्ति पहली समस्या है। मुद्रण-प्रकाशन की सुविधा न होने से प्राचीन रचनाएँ भोजपत्र-ताड़पत्र पर लिखी जाती थी। इनका समय के साथ सुरक्षित रहना कठिन है। ऐसी सामग्री मन्दिरों, पुरातात्विक स्थानों और व्यक्तिगत पुस्तकालयों से लेकर उनकी प्रामाणिकता स्थापित कर, सम्पादन कर प्रकाशित करने में कई कठिनाइयां हैं। वर्गीकरण या काल-विभाजन के लिए ऐतिहासिक आधार लेने पड़ते है। रचना और रचनाकार के बारे में जानकारी के लिए उक्त काल के सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक इतिहास का अध्ययन करना होता है। प्राचीन रचनाओं के लिए शिलालेखों, दानपत्रों, अभिलेखों आदि पुरातात्विक के लिए शिलालेखों, दानपत्रों, अभिलेखों आदि पूरातात्विक सामग्री भी देखनी होती है। फिर ऐतिहासिक काल और साहित्यिक प्रकृतियों के आधार पर काल-विभाजन और युग का नामकरण किया जाता है। तीसरी समस्या रचनाओं के साहित्यिक मूल्यांकन की है, जिसमें साहित्येतिहास कार रचना का साहित्यिक आधार जैसे विषय वस्तु, शैली, भाषा आदि के आधर पर मूल्यांकन करता है। रचना के वस्तु-पक्ष और शिल्प-पक्ष का विवेचन कर साहित्य की परम्परा में उसका स्थान निर्धारित करने की समस्या भी इसी के अन्तर्गत है।

BRAOU

1.7.2 'ब' श्रेणी के प्रश्नोत्तर

निम्न लिखित प्रश्न का उत्तर लगभग 125 शब्दों में दीजिए-

प्रश्न : साहित्येतिहास लेखन की पद्धतियों का विवेचन कीजिए।

उत्तर : साहित्येतिहास लेखन की विभिन्न पद्धतियाँ प्रचलित हैं, जैसे वर्णानुक्रमी, कालानुक्रमी, विधेयवादी और मार्क्सवादी। पहली पद्धति का उपयोग तब किया जाता है जब रचनाओं के काल का ठीक पता न हो। हिन्दी साहित्य का पहला इतिहास गार्सा द तासी द्वारा इसी पद्धति में लिखा गया। दूसरी कालानुक्रमी पद्धति में रचनाओं या रचनाकार के काल के अनुसार वर्गीकरण किया जाता है। हिन्दी साहित्यिक के इतिहास में इसका प्रयोग पहले पहल डॉ. ग्रियर्सन ने किया। इतिहासकार की दृष्टि और वैज्ञानिक तर्कशक्ति के साथ जुड़कर तीसरी विधेयवादी पद्धति का विकास हुआ, जिसमें साहित्यिक प्रकृत्तियों के आरम्भ और विकास का विवेचन ऐतिहासिक परिस्थितियों के आधार पर किया गया। शुक्ल जी का इतिहास इसी पद्धति में लिखा गया है। चौथी मार्क्सवादी पद्धति भौतिकवादी दृष्टि और द्वन्द्वात्मक पद्धति से इतिहास का लेखन करती है। हिन्दी में डॉ.रामविलास शर्मा द्वारा विभिन्न ग्रंथ इसी पद्धति से लिखे गए हैं, सम्पूर्ण इतिहास लेखन अभी सामने नहीं आया।

1.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास दर्शन – डॉ. आनन्द नारायण शर्मा, अनुपन प्रकाश, पटना – 800004.
2. हिन्दी साहित्य के इतिहासों का इतिहास – डॉ. किशोरीलाल गुप्त, विभु प्रकाशन, साहिबाबाद – 201005.

BRAOU

इकाई-2: हिन्दी साहित्य का इतिहास: दृष्टिकोण-काल विभाजन और नामकरण

2.0 विषय प्रवेश
2.1 पाठ का उद्देश्य
2.2 पाठ परिचय
2.3 मूल पाठ
    2.3.1 साहित्य का इतिहास
    2.3.2 शुक्ल पूर्व हिन्दी साहित्य का इतिहास लेखन
    2.3.3 शुक्लोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास लेखन
    2.3.4 साहित्येतिहास लेखन की दृष्टि
    2.3.5 हिन्दी साहित्य के इतिहास के विविध विकास चरण
    2.3.6 काल विभाजन और नामकरण: मूलाधार
    2.3.7 हिन्दी साहित्य के इतिहास में काल विभाजन और नामकरण
2.4 पाठ का सारांश
2.5 पारिभाषिक शब्द-अर्थ
2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
    2.6.1 (अ) श्रेणी के प्रश्न (250 शब्दों में)
    2.6.2 (ब) श्रेणी के प्रश्न (125 शब्दों में)
2.7 नमूने के उत्तर
    2.7.1 (अ) श्रेणी के उत्तर (250 शब्दों में)
    2.7.2 (ब) श्रेणी के उत्तर (125 शब्दों में)
2.8 पठनीय पुस्तकें

2.1 पाठ का उद्देश्य

जैसे प्रत्येक प्रांत का, देश का, राष्ट्र का इतिहास होता है उसी प्रकार प्रत्येक भाषा का भी अपना इतिहास होता है। भारत विभिन्न भाषा-भाषी देश है। कुछ भाषाएँ अत्यंत प्राचीन हैं तो कुछ आधुनिक हैं। भाषा का प्रारंभ, उसका विकास, उसकी विविधता के कारण ही इतिहास लिखा जाता है। साहित्य के इतिहास के कारण ही हम विभिन्न विधाओं का पूर्ण स्वरूप जान सकते है। इस पाठ के द्वारा आप हिन्दी साहित्य के इतिहास का प्रारंभ, विभिन्न लेखकों द्वारा लिखा इतिहास का परिचय, काल विभाजन गद्य, पद्य, कहानी, नाटक उपन्यास, आधुनिक काल का साहित्य इतिहास के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

2.2 पाठ-परिचय

किसी भाषा में रचित साहित्य के विकास क्रम को ठीक से जानने के लिए उसके इतिहास का ज्ञान आवश्यक है।

हिन्दी भाषा के साहित्य की परम्परा दीर्घकालीन है। इसके इतिहास को लिपि बद्ध करने के समय समय पर अनेक प्रयास हुए हैं। आकस्मिक प्रयासों में तो केवल रचनाओं और रचनाकारों का विकास ही संकलित रहता था, बाद के प्रयासों में उन्हें क्रमबध्द रूप से प्रस्तुत करने का उत्साह हुआ,

BRAOU

और भी बाद की अवस्था में संपूर्ण इतिहास को साहित्यिक प्रवृत्तियों के अनुसार काल खण्डों में विभाजित करके प्रत्येक काल खंड को उपयुक्त और प्रतिनिधिक नाम देने का कार्य हुआ। प्रस्तुत पाठ में इसीलिए पहले हिन्दी साहित्य के इतिहासों का इतिहास प्रस्तुत किया गया है। इतिहास की सामग्री की पूर्ण वस्तु परक भाव से देखना सभव नहीं होता। इतिहास लेखक की रुचि और संस्कार कभी उसके लेखन में योग रहता है। इसीलिए प्रस्तुत पाठ में इतिहास लेखन की दृष्टि से क्या तात्पर्य है और हिन्दी के साहित्येतिहासों के लेखन में कौन कौन सी दृष्टियाँ रही हैं, इसका विवेचन किया गया है।

इतिहास का काल विभाजन भी मनमाने ढंग से नहीं किया जाता, उसकी तार्किक संगति होती है। एक कालखंड दूसरे कालखंड से किस आधार पर भिन्न है, यह दिखाने के साथ ही, प्रत्येक कालखंड की सीमा निर्धारित करने का औचित्य भी स्पष्ट करना होता है। अतः काल विभाजन और नामकरण का सैध्दान्तिक विवेचन भी इस पाठ में किया गया है।

अन्त में प्रस्तुत पाठ में यह दिखाया गया है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास को किन किन काल खण्डों में विभाजित किया गया है और इनका नामकरण किस प्रकार किया गया है। इस संदर्भ में विभिन्न इतिहास लेखकों के अलग अलग मतों का उल्लेख हुआ है।

2.3 मूल पाठ

2.3.1 साहित्य का इतिहास

पिछले लगभग चौदह सौ वर्षों से हिन्दी भाषा में साहित्यिक ग्रंथों की रचना होती आयी है। यह कहना उचित होगा कि युग परिवर्तन के साथ साहित्यिक चेतना में परिवर्तन होता रहा है और साहित्य चेतना का परिवर्तन युग विशेष में रचित ग्रंथों में प्रतिबिंबित होता रहा है।

साहित्यिक चेतना का ऐतिहासिक दृष्टि से अध्ययन ही साहित्य के इतिहास को जानता है। हिन्दी साहित्य के संबंध में इतिहास लेखन के बहुत से प्रयत्न होते रहे हैं। फलस्वरूप अनेक इतिहास ग्रंथ सामने आते रहे हैं। इनमें से कुछ ग्रंथों में तो केवल रचनाओं और रचनाक्रमों का विकास दिया गया है। और कुछ में युग परिस्थितियों के साथ उनका संबंध स्पष्ट करने का प्रयास भी है। हिन्दी साहित्य के इतिहास के रूप में जो ग्रंथ सामने आयो है उनमें सबसे अधिक व्यवस्थित और सुसंबद्ध रूप में लिखा हुआ ग्रंथ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का, हिन्दी साहित्य का इतिहास है। इस ग्रंथ की विशेषताओं का विचार करने से पहले, हम यह देखे कि शुक्लजी से पूर्व कौन से इतिहास ग्रंथ लिखे गए और फिर यह भी देखेंगे कि शुक्लजी के पश्चात हिन्दी साक्षितय का इतिहास लिखने की दिशा में कौन से कार्य हुए हैं।

BRAOU

2.3.2 शुक्ल पूर्व हिन्दी साहित्य का इतिहास लेखन

1. इस प्रसंग में सबसे पहले "चौरासी वैष्णवन् की वार्ता" और दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता" इन दो ग्रंथों का उल्लेख करना होगा। ये दोनो रचनाएँ गोस्वामी गोकुलनाथ द्वारा रचित कहीं जाती हैं। इनका रचना काल 1568 ई. है। इन ग्रंथों में पुष्टिमार्ग में दीक्षित वैष्णवों की जीवनी पर प्रकाश डाला गया है।
2. "भक्तमाल" के लेखक नाभादास जी है इसका लेखन काल 1685इ. है। इसमें 108 छप्पय छंदों में भक्त कवियों का विवरण है।
3. सन् 1716 में कालीदास हजारा ग्रंथ की रचना हुई जिसके लेखक है कालीदास त्रिवेदी। इसमें 292 कवियों की एक हजार कविताओं का संग्रह है।

उपर्युक्त ग्रंथों की गठना सच्चे अर्थों में साहित्य के इतिहास परक ग्रंथों में करना उचित नहीं होगा। इन ग्रंथों में कालक्रम और सन् संवत आदि का अभाव है।

4. भारत से दूर विदेश में एक फ्रांसीसी विद्वान "गार्सा द तासी" द्वारा फ्रंसीसी भाषा में" इस्त्वार द ला लितरेत्युर ऐन्दुई ऐन्दुस्तानी" ग्रंथ लिखा गया। इसमें हिन्दी और उर्दू के अनेक कवियों का विवरण हैं, उनका क्रम अंग्रजी वर्णमाला के अनुसार रखा गया। इसके दो संस्करण प्रकाशित हुए, द्वितीय संस्करण में पर्याप्त संशोधन परिवर्तन करके ग्रंथ की सामग्री को तीन खंडों में विभक्त किया गया।
5. शिवसिंह सेंगर ने 1883 ई. में "शिवसिंह सरोज" नामक ग्रंथ की रचना की। उन्होंने मुख्यतः "कालिदास हजारा" का आधार लेकर एक हजार भाषा कवियों का जीवन चरित्र उनकी कविताओं के उदाहरणों सहित प्रस्तुत किया। इन ग्रंथों में कवियों के जन्मकाल और रचनाकाल आदि का उल्लेख हैं किन्तु वह सर्वत्र विश्वसनीय नहीं है।

इन तीन ग्रंथों में भी सच्चे अर्थों में साहित्य के इतिहास ग्रंथ नहीं कहे जा सकते। सन् 1888 में एक ऐसा ग्रंथ प्रकाशित हुआ जिसे हिन्दी साहित्य का पहला इतिहास ग्रंथ कहा जा सकता है। इस ग्रंथ का नाम है। "दी मादर्न वर्नेक्युलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान" इनके लेखक है प्रसिध्द विद्वान सर जार्ज ग्रियर्सन। एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल की पत्रिका के विशेषांक के रूप में इस ग्रंथ का प्रकाशन हुआ था। इसमें हिन्दी के कवियों और लेखकों का काल क्रमानुसार वर्गीकरण है। उनकी प्रवृत्तियों को भी स्पष्ट करने का इसमें प्रयास है। इस इतिहास परक ग्रंथ में 952 कवियों और उनकी रचनाओं का परिचय प्राप्त होता है।

संक्षेप में इस ग्रंथ की विशेषताएँ इस प्रकार हैः
1. साहित्य सामग्री को यथासंभव कालक्रमानुसार प्रस्तुत किया गया है। उसे काल खंडों में विभाजित किया गया है।
2. ग्रंथ का प्रत्येक अध्याय काल विशेष का सूचक है।
3. प्रत्येक काल के गौण कवियों का अध्याय के अन्त में उल्लेख किया गया है।
4. विभिन्न युगों की काव्य प्रवृत्तियों की व्याख्या करते हुए उनसे संबंधित सांस्कृतिक परिस्थितियों और प्रेरणा स्त्रोतों के उद्घाटन का भी प्रयास किया गया है।

BRAOU

पाँच हज़ार से अधिक कवियों का वर्णन प्रस्तुत करनेवाला, 2250 पृष्ठ का बृहत ग्रंथ मिश्रबंधु विनोद है। इसके लेखक मिश्रबंधु है। यह ग्रंथ चार भागों में है। प्रथम तीन भाग 1913 में और वर्तमान काल से संबंधित चतुर्थ भाग 1934 में प्रकाशित हुआ। इसमें संपूर्ण हिन्दी साहित्य को आठ से अधिक कालखंडों में विभक्त किया गया है। मिश्रबंधुओं ने कवियों के विकास के साथ साथ साहित्य के विविध अंगों का भी विचार किया है। उन्होंने अनेक अज्ञात कवियों को प्रकाश में लाया और उनका साहित्यिक महत्व स्पष्ट किया है। कवियों का सापेक्षिक महत्व निर्धारित करने के लिए उनका श्रेणी विभाजन भी किया है।

सन् 1929 में आचार्य रामचंद्र शुक्ल के "हिन्दी साहित्य का इतिहास" ग्रंथ का प्रकाशन हुआ। मूलतः इसका लेखन नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित, "हिन्दी शब्द सागर" की भूमिका के रूप में हुआ था। बाद में उसे विस्तृत और परिवर्द्धित करके स्वतंत्र ग्रंथ के रूप में प्रकाशित करवाया गया।

इस इतिहास ग्रंथ के लेखन में आचार्य शुक्ल का एक सुस्पष्ट और सुनिर्धारित दृष्टिकोण रहा। हिन्दी साहित्य के संपूर्ण इतिहास को उन्होने चार कालखंडों में विभाजित किया है, जो कि प्रायः सर्वमान्य रहे है। भक्तिकाल के साहित्य को उन्होंने दो धाराओं में विभक्त करके, प्रत्येक धारा को दो दो शाखाओं में विभाजित किया। यह विभाजन बहुत ही तर्कपूर्ण है।

शुक्लजी का उद्देश्य कवियों और साहित्यकारों का इतिवृत्त प्रस्तुत करना न होकर उनकी रचनाओं के साहित्यिक मूल्यांकन का रहा है। इसीलिए उन्होंने चुने हुए कवियों का ही उल्लेख किया। मिश्रबंधुओं ने जहाँ लगभग पाँच हजार रचनाकारों को अपने इतिहास में स्थान दिया, वहाँ शक्लजी ने केवल एक हजार के लगभग कवियों का ही विचार किया। युगीन साहित्यिक प्रवृत्तियों का निर्धारण भी उनका तर्कसंगत और प्रामाणिक है।

अब तक के इतिहास ग्रंथों में पण्डित रामचन्द्र शुक्ल का स्थान ही सर्वोपरि माना जाएगा। साहित्यिक चेतना प्रवाह के संबंध में उनकी प्रौढ़ दृष्टि, विवेचन और विश्लेषण से पुष्ट रही है। फिर भी यह कहा जा सकता है कि आचार्य शुक्ल की दृष्टि युगीन परिस्थितियों को ही प्रमुखता देकर चली।

2.3.3 शक्लोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास लेखन

युगीन परिस्थितियों के ऊपर साहित्यिक परम्पराओं के महत्व के स्थापित करने का कार्य पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने किया। उनका ग्रंथ "हिन्दी साहित्य की भूमिका" सन् 1940 में प्रकाशित हुआ। यद्यपि इस ग्रंथ में ऐतिहासिक क्रबद्धता नहीं है, किन्तु विभिन्न स्वतंत्र लेखों द्वारा हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन के लिए नयी सामग्री नयी दृष्टि और नयी व्याख्या प्रस्तुत की गई है। आचार्य द्विवेदी की दृष्टि साहित्यिक होने के साथ ही सांस्कृतिक भी रही है। इस ग्रंथ में उन्होंने हिन्दी साहित्य को अखिल भारतीय साहित्य से संबद्ध करके देखने की प्रेरण दी है। इसके आधुनिक काल पर विशेष नहीं लिखा गया है।

हिन्दी साहित्य की भूमिका के बाद द्विवेदी जी की इतिहासपरक अन्य रचनाएँ भी प्रकाशित हुई, जैसे, हिन्दी साहित्य, "उद्भव और विकास", हिन्दी साहित्य का आदि आदिकाल, "मध्यकालीन हिन्दी साहित्य" आदि।

डॉ. रामकुमार वर्मा का "हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास सन् 1938 में प्रकाशित् हुआ। इस ग्रंथ में 693 ई. से 1693 ई. तक के हिन्दी साहित्य का ही विचार किया गया है। आधुनिक काल का विवेचन इसमें नहीं है। डॉ. वर्मा ने सम्पूर्ण ग्रंथ को सात प्रकरणों में विभक्त किया है। कवियों के मूल्यांकन में डॉ. वर्मा ने विशेष सहृदयता और कलात्मकता का परिचय दिया है।

काशी की नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा सोलह खंडों में हिन्दी साहित्य का बृहद इतिहास प्रकाशित किया गया है। प्रत्येक खण्ड अलग अलग विद्वानों के सम्पादन में विभिन्न लेखकों के सहयोग से निर्मित हुआ है। मूल ढाँचा इसमें पं. रामचन्द्र शुक्ल के इतिहास का ही है।

विभिन्न विद्वानों के सामूहिक सहयोग से दो इतिहास ग्रंथ और प्रकाशित हुए हैं, एक डॉ. धीरेन्द्र के सम्पादन में और दूसरा डॉ. नगेन्द्र के सम्पादन में। इन ग्रंथों में सामग्री उपलब्ध हुई है, उसके आलोक में आचार्य शुक्ल द्वारा निर्धारित ढाँचे में बहुत कुछ परिवर्तन आवश्यक हो गया है। इस प्रकार के परिवर्तन के साथ इतिहास लेखन का प्रयास डॉ. गणपति चन्द्रगुप्त द्वारा लिखित "हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास" में देखने को मिलता है। इसमें साहित्येतिहास के विकासवादी सिद्धान्तों की प्रतिष्ठा करते हुए उनके अनुरूप हिन्दी-साहित्य की नवीन व्याख्या प्रस्तुत करने का प्रयास है।

कुछ विद्वानों ने विशिष्ट काल पर ही इतिहास लिखा है जैसे डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय का "आधुनिक हिन्दी साहित्य", डॉ. श्रीकृष्ण लाल का "आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास" आदि।

2.3.4 साहित्येतिहास लेखन की दृष्टी

"इतिहास" का शाब्दिक अर्थ है "ऐसा हुआ" अथवा "ऐसा था"। भूतकाल में जो कुछ घटित हुआ उसके विकास को ही इस अर्थ के आधार पर, इतिहास कहा जाएगा। जो कुछ घटित हुआ उसका अर्थात अतीत की सामग्री का पूर्णतया तटस्थ अथवा निर्वैयक्तिक विवरण देना प्रायः किसी के लिए भी सम्भव नहीं होता। उसका विवरण प्रस्तुत करने में व्यक्ति की अपनी दृष्टि काम करती रहती है। व्यक्ति की दृष्टि का निर्माण उसके अपने संस्कारों से अर्थात उसकी रूचि, उसके युग की चेतनाएं उसके बौद्धिक विकास और उसकी भावात्मक प्रवृत्तियों के समन्वित प्रभाव से होता है। इसलिए इतिहास को देखने की एक व्यक्ति की दृष्टि दूसरे व्यक्ति के दृष्टि से भिन्न हो जाती है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल की दृष्टि सामाजिक, धार्मिक के साथ साथ रसवादी भी रही है। आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी की दृष्टि मानवतावादी सांस्कृत्कि दृष्टि है। मार्क्सवादी दृष्टि में यद्यपि कोई संपूर्ण इतिहास नहीं लिखा गया फिर भी शिवदान सिंह चौहान और रामविलास शर्मा जैसे विद्वानों ने इस प्रकार की इतिहास परक सामग्री प्रस्तुत की है। डॉ. गणपति चन्द्रगुप्त के इतिहास में वैज्ञानिक तथ्यपरक दृष्टि का प्रतिफलन हुआ है। इसे विकासपरक दृष्टि कह सकते हैं।

2.3.5 हिन्दी साहित्य के इतिहास के विविध चरण

हिन्दी साहित्य की दीर्घ परंपरा में विभिन्न युगों की चेतना में परिवर्तन के साथ साहित्य के स्वरूप में परिवर्तन लक्षित होता है। जैसा कि ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है साहित्य के इतिहास में रचनाओं और रचिताओं का स्थूल परिचय मात्र पर्याप्त नहीं होता, रचनाओं को विकास परम्परा में देखना होता है। साहित्यिक चेतना का निर्माण करने वाले तत्वों के परिप्रेक्ष्य में ही विकास परम्परा को सम्भव रूप से देखा जा सकता है, ये तत्व हैं, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियाँ और इनकी अनेक प्रक्रिया से निर्मित मानव चेतना का साहित्यिक चेतना का प्रतिफलन। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में, जब कि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अन्त तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परम्परा को परखते हुए साहित्य परम्परा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है। जनता की चित्तवृत्ति बहुत कुछ राजनीतिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थिति के अनुसार होती है।"

साहित्य की धारा अनवरत प्रवाहित होती रहती हैं, परिवर्तन या क्रम भी उसमें निरन्तर रहता है। विकास के एक ऐसे चरण पर जब उसकी पूर्ववर्ती प्रवृत्तियों की अपेक्षा परवर्ती प्रवृत्तियाँ बहुत अधिक भिन्न दिखाई देने लगती हैं, साहित्य में नए युग का आविर्भाव माना जाता है।

हिन्दी साहित्य के प्रारंभिक युग में अर्थात विकास के प्रथम चरण में सिध्दों नाथों और जैनों के साहित्य के साथ गाथा और श्रृंगार परक लौकिक चरित काव्यों की जो परम्परा रही, चौदहवीं शताब्दी में वह क्षीण पड़ गयी। बदली हुई जीवन परिस्थितियों से जनचेतना में परिवर्तन उत्पन्न हुआ, और वह परिवर्तन एक नए प्रकार के साहित्य में रुपायित हुआ। इस नए प्रकार के साहित्य में भक्तिभावना की प्रधानता थी। भक्ति के अनेकानेक रूपों और आयामों के अनुसार ही उस काल के साहित्य में रूपगत वैविध्य भी रहा। यह हिन्दी साहित्य के इतिहास का द्वितीय विकास चरण था। इसकी स्थिति सत्रहवीं शताब्दी के मध्य तक रही। इसका विस्तार लगभग सवातीन सौ वर्षों का था। इसके बाद भक्ति की चेतना क्षीण पड़ती गयी, वह लौकिक श्रृंगार में परिवर्तन पाती गयी। तद्‌युगीन विलासिता की भावना इसके मूल में थी जिसका प्रतिफलन उस समय के साहित्य के अभिव्यक्ति पक्ष में भी लक्षित होता है। हिन्दी साहित्य के विकास का यह तीसरा चरण था। इसकी स्थिति उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यतक रही। इसका विस्तार लगभग दो सौ वर्षों का था।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में हिन्दी साहित्य का चौथा चरण आरंभ हुआ। पिछले तीन चरणों की अपेक्षा इसमें सर्वथा नूतन परिवर्तन दिखाई दिया। आधुनिक युग की अनेकानेक भावनाओं और विचारधाराओं का इसमें प्रतिबिंबन है। भारतीय नवजागरण की राष्ट्रीय सांस्कृतिक भावना के साथ ही पश्चिम से आए नए विचार, और वैज्ञानिक चेतना का इसमें समावेश है। अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में इस युग में गद्य का महत्व स्थापित हुआ। इस चरण की व्याप्ति वर्तमान काल तक है। इसमें साहित्यिक प्रवृत्तियों का बहुत अधिक विस्तार दिखाई देता है। इससे पहले के तीन चरणों में साहित्यिक प्रवृत्तियाँ सीमित थीं। इस चरण में जीवन के जिन आयामों का साहित्य में चित्रण हो रहा है, उनका वैविध्य बहुत अधिक है। फिर आज के युग में जीवन की विकास गति भी बहुत तीव्र है। पहले जो परिवर्तन शताब्दियों में लक्षित होते थे आज वे दशाब्दियों में लाक्षित होने लगे हैं। इस कारण साहित्य की प्रवृत्तियाँ भी त्वरित गति से बदल रही है।

BRAOU

2.3.6 काल विभाजन और नामकरणः मूलधारा

जिस प्रकार किसी जाति या देश का अथवा किसी भाषा-भाषी जनसमुदाय का जीवन अखंड गति में प्रवाहित रहता है, किन्तु सभ्यता और संस्कृति के विकास के साथ साथ विभिन्न युगों की जीवन पद्धति और जीवन दृष्टि में अन्तर लक्षित होता है। उसी प्रकार जीवन के समानान्तर और उससे प्रभावित साहित्य यद्यपि अखंड धारा के रूप में प्रवाहित रहता है, किन्तु युग भेद से उसमें दिशा परिवर्तन और रूप परिवर्तन लक्षित होता हैं। अतः किसी साहित्य के इतिहास के रूप में, उसकी अखंड परम्परा पर दृष्टि रखते हुए भी उसके विकास क्रम में भिन्न भिन्न दिशा परिवर्तनों और रूप परिवर्तनों को ध्यान में रखकर, उसे भिन्न भिन्न काल खंडों में विभाजित करके देखना आवश्यक होता है, और संपूर्ण साहित्य को देखने के लिए सुविधा प्रदान करता है।

2.3.7 हिन्दी साहित्य के इतिहास में काल विभाजन और नामकरण

नामकरण : हिन्दी साहित्य के कालविभाजन और नामकरण के संबंध में विभिन्न इतिहास लेखक-विद्वानों के बीच थोडा बहुत मतभेद हैं, उसे समझने के लिए आचार्य शुक्लजी ने अपने ग्रंथ "हिन्दी साहित्य का इतिहास" में काल विभाजन और नामकरण का जो ढाँचा रखा है, उसे आधार के रूप में देखकर उसकी सापेक्षता में अन्य विद्वानों के मतों को समझना ठीक रहेगा।

आचार्य शुक्ल द्वारा किया गया विभाजन इस प्रकार है। पहले उन्होंने संपूर्ण इतिहास को आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल के रूप में विभाजित किया है। इस कालक्रमानुसार विभाजन के पश्चात उन्होंने आदिकाल में दो मुख्य प्रवृत्तियाँ निर्धारित की हैं, अपभ्रंश साहित्य की और वीरगाथा साहित्य की। इस प्रकार उसका युग विभाजन, 'अपभ्रंश काल और वीरगाथा काल के नाम से किया है। अपभ्रंश काल का विस्तार उन्होंने 943 ई. से 1143 ई. तक और वीरगाता काल का विस्तार 1143 ई. 1318 ई. तक माना है। अपभ्रंश काल में जैनों, नाथों और बौद्ध सिद्धों का साहित्य है तथा वीरगाथा काल में उन्होंने जिन उपलब्ध बारह रचनाओं का उल्लेख किया है उनमें से अधिकांश रासो परक हैं अथवा वीरगीतात्मक हैं।

मध्यकाल को शुक्लजी ने पूर्वमध्य काल और उत्तर मध्य काल में विभाजित करके, पूर्वमध्य काल को 'भक्तिकाल' और उत्तरमध्य काल को 'रीतिकाल' नाम दिए हैं। भक्तिकाल की समय सीमा उन्होंने 1318 ई. से 1643 ई. तक, और रीतिकाल की सामा 1643 से 1843 निर्धारित की है।

भक्तिकाल की प्रवृत्तियों का निदर्शन करने के उद्देश्य से शुक्लजी ने उस काल के साहित्य को पहले तो निर्गुण भक्तिधारा और सगुण भक्ति धारा में बाँटा है। फिर निर्गुण भक्तिधारा के अंतर्गत, ज्ञानाश्रयी शाखा और प्रेमाश्रयी शाखा तथा सगुण भक्तिधारा के अन्तर्गत रामभक्ति शाखा और कृष्ण भक्ति शाखा का उल्लेख किया है।

आधुनिक काल को "गद्यकाल" नाम देकर, शुक्लजी ने उस काल का प्रारंभ 1843 से माना हे। कहना न होगा कि इस काल का विस्तार अबतक चल रहा है।

आधुनिक काल का उपविभाजन शुक्लजी ने "प्रथम उत्थान", "द्वितीय उत्थान" और "तृतीय उत्थान के रूप में किया है। प्रथम उत्थान को उन्होंने भारतेन्दु युग, द्वितीय उत्थान को आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी नाम पर द्विवेदी युग कहना चाहा है। तृतीय उत्थान को उन्होंने कोई नाम नहीं दिया है।

इस सम्बन्ध में अन्य विद्वानों के मत जानने के लिए पहले आदिकाल का विचार करें। मिश्रबंधुओं ने इसे आदिकाल ही कहा है। शुक्लजी ने आदिकाल के अन्तर्गत जैन साहित्य को धार्मिकता ग्रस्त मानकर नाथों और सिद्धों के साहित्य को साहित्यिक तत्वों से रहित मानकर और फुटकर रचनाओं में विशेष प्रवृत्ति का अभाव मानकर, जिन बारह विचारणीय रचनाओं के बीच वीरगीतात्मक रचनाओं की

BRAOU

प्रचुरता मानी है, उनमें से कुछ तो आजतक अप्राप्य है, कुछ अप्रामाणिक सिद्ध हो गयी है, और कुछ इस काल की विधि के बाहर की है। अतः परवर्ती विद्वान इस काल के लिए "वीरगाथा काल" नाम को असंगत मानते है।

अनेक विद्वानों नें अपने अपने तर्क के आधार पर काल के नामकरण के सम्बन्ध में मत प्रदर्शित किये है जिनमें प्रमुख हैं, डॉ. रामकुमार वर्मा, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पंडित राहुल सांस्कृत्यायन, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त, मिश्रबंधु, आदि।

पूर्व मध्यकाल को 'भक्तिकाल' नाम देने के बारे में सभी विद्वान एकमत हैं। उत्तर मध्यकाल को रीतिकाल नाम शुक्लजी ने इस काल के साहित्य के बहिरंग विधान के आधार पर दिया था, रीतिकाल में काव्य रचना काव्य शास्त्र के लक्षणों से प्रभावित और एक विशेष रीति या शैली में हुई है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने अंतरंग विधान के आधार पर इस काल का नाम श्रृंगार काल प्रस्तावित किया है। इसी नाम को आज व्यापक मान्यता प्राप्त है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने आधुनिक काल को गद्यकाल ही कहना चाहा है। गद्यकाल नाम में इस भ्रांति की गुंजाइश है कि इस काल में केवल गद्य ही लिखा गया है, पद्य का अभाव है। वास्तविकता ऐसी नहीं है। पहले के तीन कालों में गद्य रचना का प्रायः अभाव रहा है, केवल आधुनिक काल में ही उसका विकास हुआ है, एक तो इस कारण से और पद्य की अपेक्षा इस काल में गद्य का महत्व अधिक हैं। अनेकानेक विधाओं (उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध आदि) में उसका विस्तार है। दूसरे इस कारण आधुनिक काल को "गद्य काल" कहना उचित समझा गया है।

नागरी प्रचारिणी सभा के बृहत इतिहास में आधुनिक काल का उपविभाजन इस प्रकार किया गया है।

1. अद्यतन काल (भारतेन्दु काल)
2. परिष्कार काल (द्विवेदी काल)
3. उत्कर्ष काल
4. अभ्युत्थान काल

कतिपय विद्वान इस काल के साहित्य को "स्वातंत्र्यपूर्व युग" और "स्वातंत्र्योत्तर युग" के रूप में भी विभाजित करते हैं। अन्य विद्वानों ने द्विवेदी काल के बाद की अवधि का छायावाद काल, प्रगति प्रयोग काल और नवलेखन काल में बाँटा है। नवलेखन काल में भी सन् 1960 के युग को अलग नाम देकर "साठोत्तरी युग" कहा जा रहा है।

BRAOU

आधुनिक काल के उपविभागों की समय सीमा इस प्रकार है।

भारतेन्दु काल - 1857 से 1900 ई.
द्विवेदी काल - 1900 से 1918 ई.
छायावाद काल - 1918 से 1938 ई.
छायावादोत्तर काल
1. प्रगति प्रयोग काल - 1938 से 1953 ई.
2. नवलेखन - 1953 से 1960 ई.
3. साठोत्र्तरी काल - 1960 से अबतक

2.4 पाठ का सारांश

साहित्यिक चेतना का ऐतिहासिक दृष्टि से अध्ययन ही साहित्य के इतिहास को जानना है। हिन्दी साहित्य के संबंध में इतिहास लेखन के बहुत से प्रयत्न होते रहे। प्रारंभिक कुछ रचना में केवल कविवृत्त वर्णन होने के कारण इन्हें साहित्य के इतिहास के रूप में नहीं माना जाता। जैसे "चौरासी वैष्णवों की वार्ता"।

सर जार्ज ग्रियर्सन और मिश्रबंधु के ग्रंथों को इतिहास के रूप में माना जा सकता है। ई. 1929 में प्रकाशित आचार्य रामचंद्र शुक्ल का हिन्दी साहित्य का इतिहास, सच्चे अर्थों में इतिहास ग्रंथ है। इसमें इतिहास लेखन की एक सुस्पष्ट दृष्टि है। फिर भी शुक्लजी की दृष्टि युगीन परिस्थितियों को प्रमुखता देती है। युगीन परिस्थितियों के ऊपर साहित्यिक परम्पराओं [के इतिहासपरक ग्रंथ है, हिन्दी साहित्य की भूमिका, हिन्दी साहित्य-उद्भव और विकास तथा हिन्दी साहित्य का आदिकाल। डॉ. रामकुमार वर्मा ने "हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास" और डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त ने "हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास" में कुछ नवीनताओं का समावेश हैं। साहित्येतिहास के लेखन की दृष्टि का तात्पर्य इतिहास लेखन की उस दृष्टि से है जिसका निर्माण व्यक्ति की रूचि, युगचेतना, व्यक्ति के बौद्धिक विकास और उसकी भावात्मक प्रवृत्तियों में होता है। हिन्दी साहित्य के उपर्युक्त इतिहास ग्रंथ को भिन्न भिन्न दृष्टियों से लिखे गये हैं।

इतिहास लेखन में काल विभाजन और नामकरण का अनिवार्य महत्व है। साहित्य यद्यपि अखण्ड धारा के रूप में प्रवाहित रहता है किन्तु युग भेद से उसमें दिशा परिवर्तन और रूप परिवर्तन लक्षित होता है। इसी आधार पर विभिन्न कालखंड निर्धारित होते है।

प्रत्येक कालखंड का नामकरण ऐसा होना चाहिए जो उसकी केन्द्रीय साहित्य-चेतना का प्रतिनिधित्व कर सके। कभी युग विशेष की राष्ट्रीय सांस्कृतिक प्रवृत्ति के आधार पर और कभी विशिष्ट व्यक्तित्व सम्पन्न साहित्य नेता के नाम के आधार पर कालखंडों का नामकरण किया जाता है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास को चार कालों में बाँटा गया है। उसका विस्तार मुख्यतः इस प्रकार है

आदिकाल	- सातवीं शताब्दी के मध्य से चैदहवी शताब्दी के मध्य तक।
भक्तिकाल	- चौदहवी शताब्दी के मध्य से सत्रहवीं शताब्दी के मध्य तक।
रीतिकाल	- सत्रहवीं शताब्दी के मध्य से उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक।
आधुनिक काल	- उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से अब तक।

आधुनिक काल का उपविभाजन इस प्रकार होगाः

भारतेन्दु काल - 1857 से 1900 ई.
द्विवेदी काल - 1900 से 1918 ई.
छायावाद काल - 1918 से 1938 ई.
छायावादोत्तर काल
1. प्रगति प्रयोग काल - 1938 से 1953 ई.
2. नवलेखन - 1953 से 1960 ई.
3. साठोत्रत्तरी काल - 1960 से अबतक

BRAOU

2.5 पारिभाषिक शब्द-अर्थ

अगले पाठों में दिये गये है।

2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.6.1 (अ) श्रेणी के प्रश्न (250 शब्दों में)

1. हिन्दी साहित्य के इतिहासों के इतिहास का परिचय दीजिए।
2. हिन्दी साहित्य के इतिहास में काल विभाजन और नामकरण को स्पष्ट कीजिए।
3. साहित्येतिहस लेखन की दृष्टि पर विचार प्रकट कीजिए।
4. साहित्य के इतिहास के अध्ययन से क्या लाभ है? प्रकट कीजिए।

2.6.2 (ब) श्रेणी के प्रश्न (125 शब्दों में)

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल के इतिहास लेखन की विशेषताएँ समझाइए।
2. साहित्येतिहास लेखन की दृष्टि से क्या तात्पर्य है?
3. हिन्दी साहित्य के इतिहास के विविध विकास चरणों का परिचय दीजिए।
4. काल विभाजन को विस्तार से लिखिए।

2.7 नमूने के उत्तर

2.7.1 (अ) श्रेणी के उत्तर (250 शब्दों में)

प्रश्न : हिन्दी साहित्य के इतिहास में काल विभाजन और नामकरण को स्पष्ट कीजिए।
उत्तर : हिन्दी साहित्य के इतिहास को चार कालों में बाँटा गया है। आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिककाल में से मध्यकाल के दो विभाग पूर्वमध्यकाल और उत्तर मध्यकाल माने गए हैं। इनमें से एक एक काल के संबंध में विभिन्न इतिहास लेखकों की सहमति और असहमति का विवरण इस प्रकार है।

आदिकाल : आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस काल की समय सीमा मुख्यतः 1143 ई. से 1318 ई. तक मानी हैं और इस काल की रचनाओं के आधार पर इसे वीरगाथा काल नाम दिया है। इससे पूर्व के काल को भी हिन्दी साहित्य के इतिहास में सम्मिलित करने की स्थिति में उनके अनुसार 943 ई. से 1143 ई. तक को अपभ्रंश काल कहना होगा।

डॉ. रामकुमार वर्मा ने आदिकाल का प्रारंभ 750 ई. में मानकर 750 से 1000 ई. तक को संधीकाल और 1000 से 1200 तक को चारण काल कहा है। कुछ विद्वानों ने इसे वीरकाल सिद्ध सामन्त काल और आरंभिक काल भी कहा है।

पूर्वमध्य काल अर्थात भक्तिकाल की समय क्रिया और नामकरण के बारे में कोई मत भेत नहीं है। इसका विस्तार 1318 से 1643 ई. तक हैं। इस काल में सगुण भक्ति और निर्गुण, भक्ति, इन धाराओं तथा पहली के अन्तर्गत ज्ञानाश्रयी शाखा और प्रेमाश्रयी शाखा और दूसरी के अन्तर्गत रामभक्ति शाखा और कृष्णभक्ति शाखा की प्रवृत्तियाँ भी सर्वमान्य हैं।

उत्तर मध्यकाल अर्थात रीतिकाल के लिए अन्य नाम श्रृंगार काल का प्रस्ताव है और इसके अन्तर्गत रीतिबद्ध काव्य धारा तथा रीतियुक्त काव्यधारा की प्रवृत्तियों की गणना करने का सुझाव है। इसकाल का विस्तार 1643 ई. से 1843 तक प्रायः सभी मानते है।

आधुनिक काल गद्य की प्रमुखता के कारण "गद्यकाल" नाम से अभिहित किया गया। इस बारे में सभी सहमत है। 1943 ई. से इसका आरंभ होकर अबतक इसका विस्तार है। इसी काल के उपविभाजन के रूप में 1857 से 1900 ई. तक भारतेन्दु काल, 1900 से 1918 तक द्विवेदी काल, 1918 से 1938 तक छायावाद काल और उसके बाद के काल को छायावादोत्तर काल कहना सामान्यतः सभी लेखकों द्वारा स्वीकार किया गया है। छायावादोत्तर काल में 1953 ई. तक के काल को "प्रगति प्रयोग काल" और उसके बाद के काल को नवलेखन काल कहना उचित माना गया है। कुछ लोग 1960 के काल को साठोत्तरी काल कहना चाहते हैं।

BRAOU

2.7.2 (ब) श्रेणी के नमूने का उत्तर (125 शब्दों में)

प्रश्न : साहित्येतिहास लेखन की दृष्टि से क्या तात्पर्य है?

उत्तर : इतिहास शब्द का अर्थ है "ऐसा हुआ"। अतीत में जो कुछ घटित हुआ इसका पूर्वतया तटस्थ विवरण देना किसी के लिए भी सम्भव नहीं होता। उसका विवरण प्रस्तुत करने में व्यक्ति की अपनी दृष्टि काम करती रहती है। व्यक्ति की दृष्टि का निर्माण उसके संस्कारों से, अर्थात उसकी रूचि, उसके युग की चेतना, उसके बौद्धिक विकास और उसके भावात्मक प्रवृत्तियों के समान्वित प्रभाव से होता है। इसलिए इतिहास को देखने की एक व्यक्ति की दृष्टि, दूसरे व्यक्ति की दृष्टि से भिन्न होती है।

जातीय परम्पराओं, राष्ट्रीय और सामाजिक वातावरण तथा सामाजिक परिस्थितियों से साहित्य की विकास प्रक्रिया निर्धारित होती है। कुछ विद्वान मानते है कि उच्च तत्वों के साथ ही रचना काल का विशिष्ट व्यक्तित्व भी इसमें योग देता है। कुछ विचारक समाज की आर्थिक परिस्थितियों और वर्ग संघर्ष के आधार पर साहित्य की विकास प्रक्रिया की व्याख्या करते हैं। इन भिन्न मान्यताओं के कारण भी साहित्य के इतिहास लेखन की दृष्टि में भिन्नता आती है।

2.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ. रामचंद्र शुक्ल
2. हिन्दी साहित्य का अतीत (दो भाग) – आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
3. हिन्दी साहित्य की भूमिका – आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
4. हिन्दी साहित्य – उद्भव और विकास – आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
5. हिन्दी साहित्य का आदिकाल – आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
6. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास – डॉ. रामकुमार वर्मा
7. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास – डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त
8. हिन्दी साहित्य का इतिहास – सम्पादक डॉ. नगेन्द्र

BRAOU

इकाई-3: आदिकालः सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ

3.0विषय प्रवेश
3.1उद्देश्य
3.2पाठ परिचय
3.3मूलपाठ
- 3.3.1 राजनीतिक परिस्थिति
- 3.3.2 धार्मिक परिस्थिति
- 3.3.3 सामाजिक एवं पारिवारिक परिस्थिति
- 3.3.4 साहित्यिक परिस्थिति
- 3.3.5 सांस्कृतिक परिस्थिति
- 3.3.6 आदिकालीन साहित्य की सांस्कृतिक पीठिका

3.4 पाठ का सारांश
3.5शब्दार्थ
3.6 आभ्यासार्थ प्रश्न
- 3.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न
- 3.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न

3.7 नमूने के प्रश्नोत्तर
- 3.7.1 'अ श्रेणी के प्रश्नोत्तर
- 3.7.2 'ब' श्रेणी के प्रश्नोत्तर

3.8पठनीय पुस्तकें

BRAOU

3.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ में हिन्दी साहित्य की आदिकालीन सामाजिक-सासंकृतिक परिस्थितियों पर प्रकाश डाला गया है। इस पाठ के अध्ययन से आप

- आदिकाल के साहित्यिक परिवेश को स्पष्ट कर सकेंगे।
- हिन्दी साहित्य के आदिकाल की राजनीतिक परिस्थितियों का विवरण प्रस्तुत कर सकेंगे।
- आदिकालीन साहित्य पर धार्मिक परिस्थितियों के प्रभाव को स्पष्ट कर सकेंगे।
- आदिकाल में सामाजिक एवं पारिवारिक स्थितियों पर विचार कर सकेंगे।
- साहित्यिक दृष्टि से आदिकालीन सांस्कृतिक स्तरों पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- हिन्दी साहित्य के आदिकाल की प्रमुख विशेषताओं को रेखांकित कर सकेंगें।

3.2 पाठ परिचय

युग विशेष में निर्मित साहित्य की चेतना के रूप ग्रहण करने में उस युग की राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक-पारिवारिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों का योग रहता है, क्योंकि इन्हीं के प्रभावों से जनसमाज की चित्तवृत्ति को वाणी देने के प्रयास होते हैं।

इसलिए किसी युग के साहित्य को ठीक-ठीक समझने के लिए उपर्युक्त परिस्थितियों का सम्यक ज्ञान सहायक ही नहीं, आवश्यक भी मानना चाहिए।

फिर किसी युग का साहित्य किस प्रकार के अभिव्यक्ति-साधनों के द्वारा प्रकट हुआ है, किन विधाओं और पद्धतियों को उस युग के लेखकों-कवियों ने अपनाया है, इसके निर्धारण में साहित्य की पूर्व परंपराओं का भी योग रहता है। परंपरा प्राप्त साधनों को अपना कर रचनाकार उनमें नयी आवश्यकताओं के अनुरोध से तथा अपनी प्रतिभा एवं रूचि के सहारे, नवीन उद्भावनाएं करते हैं। अतः उपर्युक्त परिस्थितियों के अध्ययन के साथ ही साहित्यिक क्रम विकास गत परिस्थिति की जानकारी भी आवश्यक होती है।

आदिकालीन हिन्दी साहित्य की साहित्य-धाराओं, साहित्य रूपों और भाषा आदि का ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने (जो कि अगले पाठ का विषय है) के पूर्व भूमिका रूप में प्रस्तुत पाठ में, उपर्युक्त उद्देश्य को ध्यान में रखकर ही विविध परिस्थितियों का विवेचन किया गया है।

साहित्य स्वयं में उत्कृष्ट सांस्कृतिक क्रिया शीलता है। किसी युग के (**सांस्कृतिक**) स्तर के अनुरूप ही उस युग के साहित्य का स्तर लक्षित होता है। आदिकालीन साहित्य मे इस तथ्य का निर्दशन बहुत ही स्पष्ट रूप से मिलता है। व्यापक रूप से उस युग की संस्कृति **ह्रासशील थी**। ह्रास का क्रम उच्चवर्ग में भी वैसा ही था, जैसा निम्न वर्ग में। अतः उस काल के साहित्य की अभिजात्य धारा औरलोकोन्मुख धारा, दोनों में ही जीवंत साहित्योन्मेष का अभाव है। प्रस्तुत पाठ में इस बात को विशेष बल देकर समझाया गया है।

3.3 मूल पाठ

3.3.1 राजनीतिक परिस्थिति

राजनीतिक दृष्टि से भारतीय इतिहास का यह काल सर्वथा ह्रास और क्षय का काल रहा। इस ह्रास का क्रम वर्द्धन साम्राज्य के बाद से आरंभ हुआ। सम्राट हर्षवर्द्धन ने समस्त उत्तर भारत को राष्ट्रीयता के एक सूत्र में बाँधकर एक सुगठित और शांतिपूर्ण राज्य की स्थापना की थी। **हूणों** के रूप में आये उद्दंड आक्रांताओं को पराजित करने में सम्राट हर्षवर्द्धन सफल रहे थे।

उनकी मृत्यु के पश्चात भारत की संगठित सत्ता खंड खंड हो गयी। अनेक छोटे-छोटे राज्य जैसे तोमर, राठौर, चव्हान चालुक्य और चंदेल स्थापित हुए। दुर्भाग्यवश परस्पर स्पर्धा और ईर्ष्या से आपस की लड़ाइयों में अपनी शक्ति का क्षय करने लगे। कोई महत्वपूर्ण विषय उनके बीच युद्धों के कारण नहीं बनते थे; अपितु छोटी मोटी **अनबन** की बातों को लेकर, अथवा विवाह के लिए एक-दूसरे की कन्या के हरण को आधार **बनाकर** वे युद्धरत रहते **थे**। वीरता के दर्प के साथ ही उनमें विलासिता की मात्रा भी कम न थी। वह विलासिता साधारण जनता के शोषण के मूल्य पर ही पल रही थी।

इसी बीच मुसलमानों के तीव्र आक्रमण आरंभ हुऐ। 710-11 में मुहम्मद बिन कासिम के नेतृत्व में मुसमलमानों ने सिंध पर धावा किया। सिंध के राजा दाहिर ने अपने प्रबल पराक्रम से तिल तिल भूमि के लिए शत्रु का सामना किया, किन्तु अंततः उसे पराजित होना पड़ा। दसवीं शताब्दी के अंत में गजनी के सुल्तान गजनवी के आक्रमण प्रारंभ हुए। पंजाब के पदाक्रांत होने के बाद धीरे-धीरे समस्त हिन्दी प्रदेश-दिल्ली, कन्नोज, अजमेर मुसलमान आक्रमणकारियों के हाथ में चला गया।

गजनी में तुर्कों की सत्ता को समाप्त करके शहाबुद्दीन मुहम्मद गौरी ने भारत को जीतने की ठानी। कन्नौज के राजा जयचंद्र ने षड़यंत्र करके मुहम्मद गोरी का पृथ्वीराज चौहांन के विरूद्ध साथ दिया। अनेक बार मुहम्मद गोरी को परास्त करके भगा देने वाले महाराज पृथ्वीराज को अन्ततः उससे पराजित और मृत्यु को प्राप्त होना पड़ा। भारतीय राज-सत्ता के पतन का क्रम बढ़ता ही गया। कन्नोज और कालिंजर भी क्रमशः पतित हुए। दिल्ली में मुसलमानों की सल्तनत स्थापित हुई और धीरे-धीरे उनका विस्तार आरंभ हुआ।

BRAOU

इस प्रकार आठवीं शताब्दी से पंद्रहवीं शताब्दी तक के भारतीय इतिहास की कहानी हिन्दू सत्ता के क्रमशः क्षीण होते जाने और इस्लाम सत्ता के उदय और स्थापित होने की कहानी है।

अपनी पराजय के लिए हिन्दू राजा बहुत हद तक, स्वयं ही जिम्मेदार थे। व्यक्तिगत शौर्य और पराक्रम का उनमें अभाव नहीं था। युद्ध-कौशल भी उनमें भरपूर था। किन्तु अदूरदर्शिता और पारस्परिक कलह के कारण वे बाहरी शत्रु के विरूद्ध संगठित प्रतिरोध करने में सदैव असफल रहे। उनकी असफलता का एक और बड़ा कारण यह भी था कि जिस प्रकार शासकों में समन्वित राष्ट्रीय भावना का अभाव था, उसी प्रकार प्रजा भी देश रक्षा की राष्ट्रीय भावना से नितांत शून्य थीं। जनसामान्य को इतना दबाकर और कुचल कर रखा जाता था कि जीवन यापन के साधन ही उसके लिए दुर्भर थे। "कोउ नृप होउ हमें का हानी" जैसी कुंठित वृत्ति उनमें घर कर गयी थी। युद्ध भी समाज के एक वर्ग विशेष का वेतन भोगी सैनिक वर्ग का ही काम रह गया था। इस कारण वे सभी राजा युद्धों की अग्नि में ध्वस्त होकर इस्लाम साम्राज्य की नींव में समा गए।

इन परिस्थितियों ने किस प्रकार की साहित्यिक गतिविधि को प्रेरणा दी, इसका विचार करने पर पहली प्रवृत्ति चारण कवियों की सामने आती है। युद्ध करना, इस समय के राजाओं की एक प्रकार से विवशता हो गयी थी। वे अपनी स्तुति भी सुनना चाहते थे। अतः एक ऐसे वर्ग की आवश्यकता थीं जो वीरों को अपनी वाणी से निरंतर युद्ध के लिए प्रोत्साहित करता रहे। चारणों द्वारा यही काम किया जाता था। पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में, उनका (चारणों का) काम था "हर प्रसंग में आश्रयदाता के युद्धों-मद को उत्पन्न कर देनेवाली घटना-योजना का आविष्कार। इन कवियों ने राजस्तुति के नाम पर असंभव घटनाओं और अपतथ्यों की योजनाएं कीं। इन काव्यों में व्यापक रूढ़ियों के आधार पर अपने राजा को उत्साह का आश्रय और रति का आलंबन बनाना चाहा है।

रात-दिन की विनाश लीला देखकर, जीवन की नश्वरता और संसार की असारता का भाव भी एक वर्ग में पनपनें लगा। ऐसे कवियों ने लोकोत्तर विषय को अपनी वाणी का लक्ष्य बनाया। संघर्षपूर्ण और अशांतिमय घटनाओं की निरंतरता की प्रतिक्रिया कुछ लोगों के चित्त पर इस रूप में भी होनी स्वाभाविक थी कि जो कुछ भी इन्द्रियोपभोग प्राप्त किया जा सके, वही सार है। वज्रयानी, सहजयानी वामाचारी साधकों की उक्तियाँ इसी भाव की है भले ही उन्हें आलौकिक साधना का छद्म वेश दिया गया हो।

3.3.2 . धार्मिक परिस्थिति

वर्द्धन साम्राज्य के काल तक देश का धार्मिक वातावरण शांत और सौहार्दपूर्ण था। विभिन्न धार्मिक संप्रदायों के बीच पारस्परिक मेल जोल का भाव वृद्धि पा रहा था। एक ओर वैदिक यज्ञ और मूर्तिपूजा तथा दूसरी ओर बौद्ध एवं जैन उपासना पद्धतियाँ साथ-साथ चल रही थी।

उसके बाद धार्मिक क्षेत्र में अशांति और वैमनस्य का युग आरंभ हुआ। बौद्ध धर्म ह्रास के पथ पर बढ़ने लगा। उसकी महायान शाखा का विकास सहजयान और वज्रयान के रूप में हुआ, जिसने और अधिक भ्रष्ट होकर वामाचार का रूप धारण किया। यह धार्मिक साधना के रूप में इन्द्रिय लोलुपता की ही साधना थी। निम्न वर्ग की नारियों को भोग का विषय बनाकर इसमें पंचमकार (मद्य, माँस, मत्स्य, मैथुन और मुद्रा) का सेवन किया जाता था। कमल कुलिश साधना भी इसी प्रकार के यौनाचार का एक रूप थी।

यद्यपि आदि शंकराचार्य (788-820 ई.) के द्वारा ब्राम्हण धर्म के विजय घोष में बौद्ध धर्म का प्रभाव छिन्न भिन्न हो गया, फिर भी वह रूप बदल बदल कर अपना प्रभाव बनाये रखने में लगा था। चौरासी सिद्धों का उदय इसी पतनशील बौद्धधर्म से हुआ। आगे शैवधर्म और हठयोग का सहारा लेकर इसने नाथपंथ का रूप धारण किया।

BRAOU

जैन मत इस युग में जनता के बीच सम्मान पा रहा था। इस धर्म के साधक पौराणिक आख्यानों को नये रूप में गठकर जनता की आस्था पर नया प्रभाव जमाने में लगे थें। पौराणिक कथाओं के नायक एवं अन्य पात्रों की परिणति अंततः जैनधर्म में दीक्षित हो जाने में दिखाई जाती थी। राजपूत राजाओं पर जैनधर्म के अहिंसामूलक आदर्शों का प्रभाव नहीं था। आगे चलकर वामाचार की विकृतियाँ जैन आश्रमों में भी प्रवेश कर गयी। उत्तर[1] भारत की निरंतर युद्धों की अशांति को न झेल पाकर और शंकराचार्य के प्रहारों से भी, यह अवैदिक मत दक्षिण की ओर पलायन कर गया।

शैव मत का भी इस युग में बड़ा प्रभाव था। गंगा और नर्मदा के अंतराल में कलचुरि वंश में इस मत को विशेष प्रश्रय प्राप्त हुआ। इसी वंश के राजा कर्ण के प्रभाव से काशी शैव साधना का केन्द्र बनी हुई थी। धीरे-धीरे स्मार्त मतानुयायी जनता भी शैव होती जा रही थी। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस मत के तत्कालिन अनुयायियों का विवरण इस प्रकार दिया है"- "जैनों की भाँति इन शैव साधकों के संगठित मत नहीं थे, और देशी भाषाओं पर विशेष अनुराग भी नहीं था। फिर इनके उपदेश में साधारण जनता के संबंध में बड़ी अवज्ञा का भाव था। वे इन अधम जीवों को भय ही दिखाते थें। चौरासी लाख यौनियों में निरंतर भटकते रहनेवाले, काम, क्रोध के कीड़े, माया पंक में आजाद मस्तक डूबे हुए अज्ञानी जीव केवल घृणा करने और तरस खाने के पात्र माने जाते थे। गृहस्थ इन योगियों से डरता था। इब्न बतूता ने ग्वालीयर कालिंजर में इन योगियों को देखा था। उन दिनों लोग इनसे भयभीत थे, क्योंकि उनका विश्वसा था कि ये आदमियों को खा जाते हैं। इस प्रकार जनता के प्रति अवज्ञा और घृणा का भाव रखनेवाले लोग लोकभाषा में कुछ लिखते भी हों तो वह लोकमनोहर हो नहीं सकता। कुछ थोडी सी रचनाएं इन योगियों की मिल जाती है।"

मध्य देश के गाहड वार राजा स्मार्त थे। मालवा के राजा वैदिक धर्म के समर्थक थे। दक्षिण से आलवार संतों द्वारा वैष्णव धर्म एक आंदोलन के रूप में आ रहा था। जिसे आगे रामानुज, निंबार्क आदि आचार्यों ने पुष्ट किया, किन्तु इसका पूरा प्रभाव भक्तिकाल से पहले प्रकट नहीं हो सका।

इस धार्मिक अशांति और पतन के बीच भारत में इस्लाम धर्म का प्रवेश हुआ जिसकी मान्यताएं उक्त सभी धार्मिक मतों से भिन्न थीं। धीरे-धीरे इस्लाम की मूर्तिभंजक कट्टरता का दबाव भारतीय जन मानस पर गहरा होकर उसे क्षुब्ध कर रहा था।

सब मिलाकर उस काल में धार्मिक क्षेत्र में अराजकता की सी स्थिति थी। जन आस्था को टिकने का कोई स्वस्थ और दृढ़ आधार नहीं था, सब ओर क्षोभ, असंतेष और भ्रम व्याप्त था।

साहित्य में इसी के अनुरूप खंडन मंडन परक निषेधात्मक स्वर प्रबल था, विध्यात्मक उच्च जीवन मूल्यों और आदर्शों से उस काल का साहित्य वंचित रहा।

BRAOU

3.3.3 सामाजिक एवं पारिवारिक परिस्थिति

राजनीतिक और धार्मिक विश्रृंखलता के ऐसे वातावरण में सामाजिक संगठन का अभाव होना आश्चर्यजनक नहीं। समाजके स्तर पर भी बिखराव के तत्व प्रबल होने लगे। वर्ण व्यवस्था अपने गुण, कर्म, स्वभाव के पुष्ट आधार से विस्खलित होकर अनेकानेक जातियों और उपजातियों के रूप में फैल रही थी। उनके बीच पारस्परिक आहार-व्यवहार में संकुचित वृत्तिका समावेश हो रहा था, और इस प्रकार छुआछूत के बंधन कड़े होते जा रहे थे।

जिस प्रकार धर्म का सच्चा स्वरूप रूढ़िग्रस्त होता जा रहा था, उसी प्रकार उचित शिक्षा संस्कार से वंचित जनसामान्य का चित्त भी अनेक प्राकर के अंधविश्वासों में जकड़ता जा रहा था। ग्रहस्थों पर योगियों का आतंक छाया था, साधुओं और सन्यासियों के शापो-वरदानों से उनका चित्त भयभीत रहता था।

राजन्य वर्ग भोग विलास में आसक्त था। बहुपत्नीत्व के साथ अंतःपुर की रंगरेलियों में ही उनका चित्त विनोद होता था। युद्धों के श्रमपरिहार का, और अनेक बार शौर्य की प्रेरणा का भी यही साधन उसके पास था। सामान्य जनता पर भी उस भोगवृत्ति का प्रभाव पड़ रहा था।

नारी को भोग्या मात्र माना जाने लगा। वह क्रय विक्रय और अपहरण की वस्तु बनती जा रही थी। बाल-विवाह को प्रोत्साहन मिलने लगा। विधवा विवाह होने लगे, इसीसे सती जैसी अमानुषिक प्रथा पनपी। राजपूत वीरगाथाओं के साहसपूर्ण जौहर वृत का यह विकृत रूप था।

जनता के बीच घोर निर्धनता फैली थी। एक ओर राजाओं की विलासिता के लिए, और दूसरी ओर युद्धों के साधन जुटाने के लिए जनता का शोषण होता रहता था। दुर्भिक्ष और महामारी आए दिन की बातें हो गयी थीं। तरह-तरह के पूजा-पाठ, तंत्र-मंत्र और जप-तप करके भी लोग मुक्ति प्राप्त करने में असमर्थ थे।

3.3.4 साहित्यिक परिस्थिति

साहित्यिक दृष्टि से उस काल की तीन धाराएं निर्धारित की जा सकती है।

1. संस्कृत साहित्य धारा
2. प्राकृत एवं अपभ्रंश की धारा
3. लोक भाषा (हिन्दी) की धारा

संस्कृत साहित्य धारा :

सम्राट हर्षवर्द्धन के दरबार में संस्कृत के कवियों और पंडितों का ही बोलबाला था। अपभ्रंश और जनभाषा के कवियों की वहां विशेष पूछ नहीं थी। राजपूतों की राजधानियाँ स्थापित होने पर लोकभाषा के कवियों का आदर अवश्य हुआ। नवीं से ग्यारहवीं शताब्दी तक कश्मीर और कन्नौज संस्कृत साहित्य रचना के ही केन्द्र रहे। अनेक आचार्य, कवि, नाटककार और गद्यलेखक इस बीच वहाँ उत्पन्न हुए। आनंदवर्धन, अभिनवगुप्त, कुतंक, क्षेमेन्द्र भोजदेव, मम्मट, राजशेखर, विश्वनाथ श्री भवभूति, भट्टह तथा जयदेवउसी युग की देन है। इसी युग में शंकर, कुमारिल भास्कर रामानुज आदि आचार्य भी हुए। बाद में भी मध्यदेश में स्थिति बहुत समय तक संस्कृत के अनुकूल बनी रही। वहाँ के प्रतिहार और गायकवाड़ वंशों के शासक वैदिक मतानुयायी थे। अतः संस्कृत के ज्ञाताओं और रचनाकारों का उनके पास सहज सम्मान था। पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में वे बाहर से बुला-बुला कर अनेक ब्राह्मण वंशों को दान दे देकर काशी में बसा रहे थे।

BRAOU

संस्कृत के कवियों और लेखकों को तत्कालीन परिस्थितियाँ अधिक प्रभावित नहीं करती थीं। उनकी प्रतिभा काव्य-शास्त्र विनोद में ही लगी रहती थी।

संस्कृत साहित्य में उच्च वर्ग के ऐश्वर्य का चित्रण ही अधिक हुआ। संस्कृत भाषा अभिजात्य की प्रतीक बन गयी। प्राकृत, अपभ्रंश आदिके प्रति उसका एक प्रकार से विरोधी भाव रहता था। परवर्ती भाषा को प्राकृत और अपभ्रंश नाम देने में ही उनके प्रति संस्कृत पोषकों का तिरस्कार भाव ध्वनित होता है। इस संदर्भ में एक रोचक प्रसंग का उल्लेख अनावश्यक न होगा।

"अक्तिव्यक्ति प्रकरण" गायकबाड नरेश गोविन्दचंद्र के समय पंडित दामोदर की रचना है। इसमें लोकभाषाओं को संस्कृत में किस प्रकार रूपांतरित किया जाए, इस पद्धति का निदर्शन है। इसमें अपभ्रंश को पुनः संस्कृत में परिवर्तित करना रहा है। जिस प्रकार एक पतिता ब्राह्मणी को प्रायश्चित के द्वारा पुनः ब्राह्मणत्व प्रदान किया जा सकता है, वैसे ही तुर्कों के द्वारा भ्रष्ट जनसामान्य की भाषा को पुनः संस्कृत रूप दिया जा सकता है। इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए इस ग्रंथ के लेखक ने भाषा के प्रतिनिधिक नमूने प्रस्तुत किये हैं। इन नमूनों से इतना लाभ अवश्य हुआ है कि हिन्दी के आरंभिक रूप की उनसे सूचना मिलती है।

संस्कृत मे भी धीरे-धीरे रचनात्मकता का ह्रास हो रहा था। अलंकार और वर्णन कौशल को ही कवि कर्तव्य समझा जाने लगा था। बारहवीं शताब्दी का भी हर्ष का नैषध चरित इसका उदाहरण है। कल्हरा की राजतरंगिणी इसका अपवाद है। उसमें मौलिक रचनात्मकता के साथ भाषा और शैली की सरलता है।

प्राकृत-अपभ्रंश साहित्य धारा :

प्राकृत एवं अपभ्रंश का भी श्रेष्ठ साहित्य इसी युग में लिखा गया। प्राकृत में प्रधानतः चरितकाव्यों और मुक्तकों की रचना का महत्व रहा। हेमचंद्र का प्राकृत में लिखा प्रसिद्ध ग्रंथ काव्यानुशासन इसी युग की कृति है। कर्पूर मंजरी और रंभा मंजरी जैसे नाटकों की रचना भी इसी युग में हुई है।

जैनाचार्यों ने मध्यप्रदेश के पश्चिमी सीमांत प्रदेश में रहकर संस्कृत के पुराणों को नयें रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने अधिकतर अपभ्रंश का आश्रय लिया। पौराणिक आख्यानों को लेकर उनके चरित्रों और स्थितियों की वे जैनादर्शपरक परिणति दिखाते थें।

सिद्धों और नाथों का भी संपूर्ण साहित्य अपभ्रंश में लिखा गया। उनकी भाषा का स्वरूप वस्तुतः ऐसा है जिसके नामकरण के विषय में विद्वानों के बीच मतभेद हैं। कुछ विद्वान उसे पूर्णतया अपभ्रंश कहने के पक्ष में हैं। अन्य विद्वानों ने उसे प्राकृतभास हिन्दी, उत्तरकालीन अपभ्रंश और पुरानी हिन्दी आदि नाम दिये हैं। विद्यापति ने जिनका काल ऐतिहासिक दृष्टि से आदि काल के बाद का भक्तिकाल का है, कीर्तिलता और कीर्तिपताका ग्रंथों की रचना इसी भाषा में की है। कीर्तिलता के आरंभ में उन्होंने कहा है:-

देसिल बयना सब जन मिट्ठा।
ते तैसन जंपउँ अवहट्ठा॥

देसिल बयना से उनका तात्पर्य उस मैथिल भाषा से है जिसमें उन्होंने अपने श्रृंगार-भक्ति परक गीतों की रचना की है। अवहट्ट उन्होंने उस भाषा रूप को कहा है जिसे विद्वान पूरानी हिन्दी आदि नाम देते हैं।

विद्वानों के इस प्रकार के विवाद के बीच एक बात स्पष्ट है कि उस काल के अपभ्रंश के दो रूप थें। एक ऐसा रूप था जो अपने प्रकृत रूप में अपभ्रंश था, देशभाषा के आगे के विकास से अछूता था। दूसरा वह रूप था जिसमें देशभाषा के विकास के लक्षण उभररहे थे। पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उन लक्षणों में से एक प्रमुख लक्षण यह माना है कि "शब्दों के रूप तद्भव के स्थान पर तत्समपरक होने लगे थे। तत्सम शब्दों के एकमात्र प्रवेश से पुरानी भाषा एकाएक नवीन रूप में प्रकट हुई"।

इसी आधार पर जैनों, सिद्धों और नाथों के अधिकांश साहित्य को आदिकाल के हिन्दी साहित्य में सम्मिलित किया जाता है।

प्राकृत-अपभ्रंश का साहित्य धर्माश्रय में पल रहा था। इसीलिए उसका बहुलांश आज धार्मिक मठों और ग्रंथागारों में सुरक्षित मिलता है। संस्कृत का साहित्य भी राजाश्रय में सुरक्षित रहा। किन्तु मुख्यतः लोकाश्रय के लोकभाषा साहित्य को ऐसा कोई संरक्षक प्राप्त नहीं हो सका।

लोकभाषा साहित्य की धारा :

जैसा कि ऊपर कहा गया, राजपूत राजाओं की राजधानियाँ स्थापित हो जाने के पश्चात् उनके दरबारों में लोकभाषा के कवियों का आदर हुआ। राजाश्रय में रहनेवाले ऐसे कवि अपने आश्रयदाता राजाओं का अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशस्ति गान करते थे। या तो वे उनके युद्धगत शौर्य का अतिरंजित वर्णन करते थें, अथवा उनमें श्रृंगार भावों को उद्दीप्त करने के लिए अपने प्रेम प्रसंगों की कल्पना करके नायक-नायिकाओं के रूप का और उनकी प्रेम चेष्टाओं का अतिरंजित वर्णन करते थे।

BRAOU

देशभाषा के जो कवि राजाश्रय का वरण नहीं करना चाहते थे, उनकी प्रतिभा के विकास के लिए अनुकूल वातावरण और प्रोत्साहन का अभाव था। इसीलिए उस काल के उपलब्ध साहित्य में इस प्रकार की रचनाएं नगण्य हैं।

राजाश्रित लोकभाषा कवियों की भी जो रचनाएं उस काल की उपलब्ध कही गयी हैं उनमें से अधिकांश की प्रामाणिकता संदिग्ध है। यद्किन्चित प्रामाणिक रचनाओं की भाषा भी डिंगल है। ऐसी भाषा की रचनाएं जिसका परवर्ती विकास अवधी और ब्रजभाषा के साहित्य में हुआ, आज बिलकुल उपलब्ध नहीं है।

3.3.5 सांस्कृतिक परिस्थिति

हिन्दी साहित्य के उदय का काल ऐसा काल था जब भारतीय संस्कृति एक उच्च शिखर से ढ़लान पर तीव्र गति से अधोगमी हो रही थी। वर्द्धन साम्राज्य का परिवेश ही सांस्कृतिक दृष्टि से वह उच्च शिखर था। कला, विद्या, धर्म, राजनीति, समाज व्यवस्था आदि संस्कृति के प्रत्येक आयाम में वर्द्धनकाल में अभूतपूर्ण उत्कर्ष लक्षित हुआ। उस साम्राज्य के पतन के पश्चात् उक्त सभी क्षेत्रों में विकास की गति रूक गयी। और ह्रास का क्रम आरंभ हुआ। मुसलमानों की सत्ता स्थापित हो जाने तक यह क्रम तीव्र रूप से बना रहा।

ह्रास के इस दौर में सबसे अधिक क्षति राष्ट्रीय अथवा जातीय गौरव भावना की हुई। इस देश में समय समय पर आनेवाली विभिन्न जातियों और संस्कृतियों के बीच एक समन्वय की प्रक्रिया विकसित होती रही थी जिसमें सारे भेदभाव स्वतः विलीन होते चलते थे। सम्राट हर्षवर्द्धन के समय में वह प्रक्रिया मानों पूर्णता को प्राप्त हुई थी। व्यापक समन्वय के कारण जीवन की प्रत्येक गतिविधि में राष्ट्रीय गौरव का भाव अनुस्यूत रहता था। संगीत, चित्र, मूर्ति और स्थापत्य आदि कलाओं के माध्यम से उसी भाव को अभिव्यक्ति मिलती रहती थी।

उत्कर्ष की यह गति पर्याप्त समय तक रही, मुसलमानों के आक्रमणों से पहले उसमें गतिरोध आया, फिर क्षय का क्रम घटित हुआ। स्थापत्य (भवन निर्माण कला) का क्षेत्र लें। भुवनेश्वर, खजुराहो, पुरी, सोमनाथ, बेलोर, कांची, तेजौर आदि के भव्य मंदिर भारतीय स्थापत्य कला के अप्रतिम निदर्शन हैं। इनमें स्थापत्य के साथ धर्म भावना का अपूर्व योग हुआ था। वस्तुतः प्रबल धर्म भावना ने ही मंदिरों के स्थापत्य को प्रेरित किया था। उनके विषय में अरब इतिहासकार अलबरूनी का कथन है "वे कला के उच्च सोपान पर आरोहण कर चुके हैं। हमारे लोग जब उन्हें देखते तो आश्चर्य चकित रह जाते हैं। वे न तो उनका वर्णन कर सकते हैं, न वैसा निर्माण ही कर सकते हैं।" किन्तु कला के ये उत्कृष्ट मंदिर मूर्तिभंजक इस्लाम मतानुयायियों के कोप के भाजन बने। उन्हें ध्वस्त करने का क्रम शताब्दियों तक चला रहा।

इसी प्रकार, संगीत, चित्र एवं मूर्तिकलाओं का विकास भी भारतीय सांस्कृतिक श्रेष्ठता का प्रतीक था। महमूद गजनवी जैसा क्रूर आक्रांत भी उस पर मुग्ध हुआ किन्तु उसके विजय लोभ और धार्मिक ज़ुनून के आगे उस भारतीय सांस्कृतिक श्रेष्ठता की रक्षा न हो सकी। बाद में इन कलाओं पर, मुख्यतः, वास्तु, संगीत और चित्र कलाओं पर मुस्लिम संस्कृति की छाप गहरी होती गयी।

यहीं तक नहीं, जन जीवन की संस्कृति के अंग, आहार-विहार, परिधान, उत्सव आदि मनोरंजन के साधनों पर भी मुस्लिम-प्रभाव गहन होता गया।

कुछ काल तक कलात्मक चेतना का मुक्त और जीवंत विकास अवरुद्ध-सा हो गया। बाद में मुस्लिम संस्कृति के साथ समन्वय का भाव धीरे धीरे रूपायित हुआ। स्थापत्य के क्षेत्रों में कुतुब मीनार जैसी ऊँची मीनारों, गुम्बदों और ऊँचे दरवाजों के निर्माण में मुस्लिम कला का स्पष्ट प्रभाव है।

BRAOU

इस्लामी संगीत के माध्यम से कुछ नये वाद्ययंत्रों से भारतीय संगीत का परिचय हुआ जिनमें सारंगी, तबला और अलगोजा मुख्य हैं।

हिन्दु चित्रकार अजंता की शैली को भूलते जा रहे थे। वे अटवटी रंग-रेखाओं में मुस्लिम भावादर्शों की अभिव्यक्ति देने लगे। राजपूत दरबारों में, बाद में, मुस्लिम प्रभाव से चित्रकला की एक विशिष्ट शैली विकसित हुई।

मुस्लिम शासक सब प्रकार के मूर्तीकरण के विरोधी थे। नाटक संबंधी गतिविधियों में भी, क्योंकि मूर्तीकरण रहता है, इसलिए वे उसके भी विरोधी थे। इन कारणों से इन कलाओं का विकास भी उस काल में अवरुद्ध रहा।

3.3.6 आदिकालीन साहित्य की सांस्कृतिक पीठिका

दसवीं शताब्दी से पूर्व के "प्रकृतभास हिन्दी" "उत्तर अपभ्रंश", अथवा "पुरानी हिन्दी" के साहित्य को सम्मिलित करके, आदिकालीन हिन्दी साहित्य की अवधि बहुत दीर्घ-लगभग छह सौ वर्षों की, आठवीं से चौदहवीं शताब्दी तक की है। साथ ही हिन्दी क्षेत्र की विशालता के कारण, इस साहित्य का रचना क्षेत्र भी भौगोलिक दृष्टि से बहुत विस्तृत है। इस दीर्घ अवधि और विशाल रचना क्षेत्र में सांस्कृतिक परिवेश एक सा रहा हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता।

विद्वानों का विचार है कि भारत में आर्यों का आगमन अनेक रूपों में हुआ। उत्तर-पश्चिम की ओर से जैसे जैसे बाद की खेपों के आर्य आते गये, पहले की खेपों के आर्यों को पूर्व और दक्षिण की ओर फैलना पड़ा।

संस्कृत भाषा का विकास जब प्राकृतों और अपभ्रंशों के रूप में हुआ, आर्य के भिन्न समुदायों का यह अंतर न केवल भाषा के रूप के स्तर अपितु जीवन संबंधी दृष्टिकोण से परिचालित साहित्यिक विषयों, आदर्शों और अभिव्यक्ति प्रणालियों के स्तर भी विशेष उभर कर सामने आया। बाद में अपभ्रंश जब देशभाषा का रूप लिया, तो भी यह अंतर बना रहा।

BRAOU

संस्कृत भाषा के रूप में एक ऐसा तत्व था जो पूर्व के और पश्चिम के आर्यों को समान सांस्कृतिक सूत्र में बांधा हुआ था। उस काल के आरंभ में साहित्यिक दृष्टि लोकजीवन परक थी, जिसका प्रमाण रामायण और महाभारत जैसे ग्रंथों में जन जीवन के आदर्शों, आकांक्षाओं, रीतिनीतियों और आचारों के प्रत्यक्ष प्रतिफलन में मिलता है। "किन्तु संस्कृत साहित्य धीरे-धीरे पंडितों की चीज़ बनता गया। इस साहित्य में लोक जीवन से हटे हुए कल्पित जीवन और कल्पित संसार का आभास मिलने लगा। ज्ञान, जो किसी समय प्रत्यक्ष साधना और तन्मय जीवन से उपलब्ध हुआ था, उत्तरकालीन टीकाकारों और ग्रंथकारों के लिए बहस की चीज रह गया" (हजारी प्रसाद द्विवेदी)

तात्पर्य यह कि साहित्य में ऐसी अभिजात्य वृत्ति बढ़ती गयी जिसमें प्रत्यक्ष लोकजीवन की जीवंतता और ताजगी का, जीवन के नैसर्गिक यथार्थ संस्पर्श का ह्रास होता गया। उच्च वर्गीय संस्कृति की कृत्रिमता का स्वर उसमें बढ़ता गया।

संयोग से वर्द्धन साम्रज्य के बाद के युग में एक छत्र राजसत्ता के बिखर जाने पर, जो राजपूत राज्य स्थापित हुए वे विशेषतः पश्चिमी क्षेत्र में कन्नौज, अजमेर अन्हालबाडा आदि में हुए। स्वभावतः उन राज्यों में उस उच्चवर्गीय अभिजात्य संस्कृति को प्रश्रय मिला। पहले अपभ्रंश साहित्य में मुख्य प्रवृत्तियां रहीः राजसंस्तुति, ऐहिकतामूलक श्रृंगारी काव्य और नीतिविषयक सूक्तियाँ। लोक प्रचलित कथानकों पर भी काव्य रचनाएं प्रस्तुत हुई।

इन प्रवृत्तियों से भिन्न प्रवृत्तियाँ पूर्वीक्षेत्र में सामने आयीं। स्मरण रखना होगा कि "पूर्वी प्रदेशों" में भारतीय इतिहास के आदिकाल से रूढ़ियों और परंपराओं के विरुद्ध विद्रोह करनेवाले संत होते रहें हैं। वैदिक कार्मकांड के मृदुविरोधी जनक और याज्ञवल्क्य तथा उग्र विरोधी बुद्ध और महावीर आदि आचार्य इन्हीं पूर्वी प्रदेशों में उत्पन्न हुए हैं। बौद्ध धर्म की महायान शाखा का विकास जिस सहजायान और वज्रयान में हुआ, उसका प्रधान प्रभाव क्षेत्र पूर्वी प्रदेश ही रहे। इस संप्रदाय के अनुयायी सिद्धों के रूप में प्रसिद्ध हुए। उन्होंनें जिस प्रकार की रचनाएँ की उनमें उनकी शासक निरपेक्ष विचार धारा उग्र रूप में मुखरित हुई। उनकी वाणी में पांडित्य की निंदा ही नहीं उसका उपहास है; धार्मिक, सामाजिक सब प्रकार के अभिजात्य के विरूद्ध विद्रोह है, और अंधविश्वासों और निरर्थक रूढ़िरीतियों के उच्छेद के साथ क्रांतिकारी सुधारवादी भावना है।

वस्तुतः सिद्धों में बहुत से मधुएं, चमार, धोबी, डीम, कहार, लकडहारे, दरजी तथा शूद्र कहे जानेवाले लोग थें। ये स्वभावतः अभिजात्याभिमान के प्रति विद्रोही थे। उनकी दृष्टि जनवादी लोकपरक थी।

सिद्धों में से ही नाथ संप्रदाय का उदय हुआ। उसमें भी जनता की नीची और अशिक्षित श्रेणियों के ही लोग आये जो शास्त्र ज्ञान संपन्न नहीं थे। नाथों का क्षेत्र पश्चिम में रहा। हठयोग और शैवागमों के ज्ञान के रूप में उसमें शास्त्रीयता का प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष योग रहा। नाथों का साहित्य बहुत उच्च परिमाण में उपलब्ध है।

निष्कर्ष रूप में कहना होगा कि आदिकालीन साहित्य के सांस्कृतिक संदर्भ की दो स्पष्ट धाराएँ लक्षित होती हैं "पहली दरबारी परिवेश की अभिजात्य वृत्ति संपन्न शास्त्रीयता पोषक धारा, और दूसरी लोकोन्मुखता की सुधारवादी क्रांतिकारी धारा। इन दोनों का विकास परवर्ती भक्तिकालीन साहित्य में अलग-अलग स्वरों में हुआ।

3.4 पाठ का सारांश

हिन्दी साहित्य के आदिकाल का विस्तार आठवीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी तक का है। राजनीतिक दृष्टि से भारतीय इतिहास का यह काल अशांति और बिखराव का काल है। वर्धन साम्राज्य के बाद, विदेशी आक्रांताओं का डर का मुकाबला करने की सामर्थ्य यहाँ के शासकों में न हीं थी। जन समुदाय में भी राष्ट्रीय भावना का अभाव था। छोटे-छोटे देशी राज्य आपस में ही लड़कर अपनी शक्ति का क्षय करते रहते थे। उनके जीवन में विलासिता भी कम न थी। अतः उनके दरबारों में ऐसे चारण कवियों को प्रश्रय मिलता था जो उनकी युद्धवृत्ति और विलासवृत्ति का अतिरंजित वर्णन करके, उन्हें बढावा देते रहे।

धार्मिक दृष्टि से इस युग में बौद्ध, जैन, शैव और ब्रम्हण धर्म की स्थिति का विचार करना होगा। बौद्ध धर्म आचार विचार की दृष्टि से तीव्रता की ओर पतनगामी हो रहा था। उसकी महायान शाखा की परिणति वज्रयान के वामाचार में हुई थी जो इन्द्रिय लोलुपता से ग्रस्त था। जैनधर्म का जनता के बीच आदर था, किन्तु राजपूत राजा इसका अहिंसामूलक आदर्शों में रुचि नहीं रखते थे। आगे चलकर वामाचार की विकृतियाँ जैन धर्म में प्रवेश कर गयीं। शैव धर्म का इस युग में व्यापक प्रभाव था। काशी नगरी शैव साधना का केन्द्र थी। सामान्य जनता के प्रति शैवों में अवज्ञा और तिरस्कार का भाव था।

वैदिक अथवा स्मार्त धर्म का इस काल में पुनरोदय हुआ। आठवीं नवीं शताब्दी में आद्य शंकराचार्य के प्रभाव से इस धर्म का विजय घोष हुआ, जिसके आगे अपनी विकृत अवस्था को प्राप्त बौद्ध और जैन धर्म न टिक सके। दक्षिण से आलवार संतों द्वारा वैष्णव धर्म भी आ रहा था, जिसका गहन-प्रभाव आगे भक्तिकाल में दिखाई दिया।

BRAOU

सामाजिक स्तर पर भी इस काल में बिखराव था। वर्णाश्रम व्यवस्था छिन्न भिन्न होकर जातियों और उपजातियों में परिणत हो रही थी जिनके बीच छुआछूत का भाव बढ़ता जा रहा था। राजन्यवर्ग की विलास वृत्ति का प्रभाव प्रजा पर भी था। नारी का गौरव नहीं रहा गया था, वह भोग्या और अपहरण की वस्तु मात्र रह गयी थी। सामान्य जन समुदाय निर्धनता में ग्रस्त और दुर्भिक्ष महामारी आदि से पीड़ित रहताथा। धार्मिक अंधविस्वासों से भी उसका शोषण हो रहा था।

साहित्यिक दृष्टि से इस युग में तीन धाराएं थी: 1. संस्कृत साहित्य की धारा, 2. प्राकृत एवं अपभ्रंश की धारा और 3. लोकभाषा हिन्दी की धारा। संस्कृत साहित्य अभिजात्य भावनाओं का प्रतिक था, उसमें उच्चवर्ग के जीवन का चित्रण ही अधिक रहता था। प्राकृत में मुख्यतः चरितकाव्यों और मुक्तकों की रचना हुई। अपभ्रंश में एक ओर जैन साधु संस्कृत पुराणों आदि के आख्यानों को जैन आदर्शों में ढाल रहे थे, दूसरी ओर सिद्धों और नाथों की धार्मिक सांप्रदायिक उपदेशपरक रचनाएं उसमें हो रही थी।

सांस्कृतिक दृष्टि से भी वह युग निरंतर ह्रास का युग ही कहा जाएग। भारतीय कलाओं के रूप में जो श्रेष्ठता की साधना होती आ रही थीं; उसकी गति रूद्ध ही नहीं प्रतिगामी हो गयी। सब पर मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव धीरे-धीरे छाने लगा।

उस युग में सांस्कृतिक पीठिका की दृष्टि से साहित्य के दो विभाग स्पष्ट थे- पहला उच्चवर्गीय, अभिजात्य कोटि का साहित्य जिसमें राजस्तुति, लौकिक शृंगार और नीतिपरक सूक्तियों को स्थान मिला था, और दूसरा निम्नवर्ग के आश्रय से लोकोन्मुख कोटि का साहित्य जिसमें शास्त्रीयता के विरुद्ध विद्रोह था ओर रूढ़िरीतियों के उच्छेद के साथ क्रांतिकारी सुधार भावना थी।

3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न (250 शब्दों में)

1) आदिकाल की राजनीतिक परिस्थितियों का विवरण दीजिए।
2) आदिकालीन साहित्य पर धार्मिक परिस्थितियों का प्रभाव किस रूप में लक्षित होता है?
3) आदिकाल के साहित्यिक परिवेश को स्पष्ट कीजिए।

BRPOU

3.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न

1) आदिकाल में सामाजिक एवं पारिवारिक स्थितियाँ किस प्रकार की थीं?
2) आदिकाल में ललित कालाओं की अवस्था का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
3) साहित्यिक दृष्टि से आदिकालीन सांस्कृतिक स्तरों का परिचय दीजिए।

3.7 नमूने के प्रश्नोत्तर

3.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर

प्रश्न :आदिकाल की राजनीतिक परिस्थितियों का विवरण दीजिए-

उत्तर : सम्राट हर्षवर्द्धन ने समस्त उत्तर भारत को राष्ट्रीयता के एक सूत्र में बांधकर एक सुगणित और शांतिपूर्ण राज्य की स्थापनी की थी। उनकी मृत्यु के पश्चात् भारत की राजनीतिक सत्ता विभाजित हो गयी। अनेक छोटे छोटे राज्य स्थापित हुए जो पारस्परिक ईर्ष्या और स्पर्धा के कारण आपस की लडाइयों में अपनी शक्ति का क्षय करने लगे। इसी बीच मुसलमानों के आक्रमण आरंभ हुए। पहले मुहम्मद बिन कासिम ने सिंध पर धावा किया, फिर सुल्तान गजनवी के आक्रमण हुए, उसके बाद मुहम्मद

गोरी ने भारत को जीतने की ठानी। कन्नौज के राजा जयचन्द्र ने षडयंत्र करके पृथ्वीराज चौहन के विरूद्ध उसका साथ दिया। बाद में कन्नौज और कलिंग भी क्रमशः पतित हुए। इसी प्रकार आठवीं से पंद्रहवीं शताब्दी तक भारतीय इतिहास की कहानी हिन्दू सत्ता के क्रमशः क्षीण होते जाने और इस्लामी सत्ता के उदय और स्थापित होने की कहानी है।

हिन्दू राजाओं में शौर्य और पराक्रम का अभाव नहीं था। युद्ध कौशल भी उनमें भरपूर था। किन्तु अदूरदर्शिता और पारस्परिक कलह के कारण वे बाहरी शत्रु के विरूद्ध संगठित प्रतिरोध करने में सदैव असफल रहे। राष्ट्रीय भावना का जिस प्रकार राजवर्ग में अभाव था, उसी प्रकार प्रजावर्ग में भी। देश रक्षा का कार्य केवल वेतनभोगी सैनिक वर्ग का रह गया था।

ऐसी अशांत और अस्थिर परिस्थितियों में राज दरबारों में चारण कवियों को प्रोत्साहन मिला। वे श्रृंगार और नीति के काव्यों के साथ ही ऐसी राजनीतिपरक रचनाएं प्रस्तुत करते थे जिनमें राजाओं के शौर्य-पराक्रम का तथा उनकी रसिकता का अतिरंजना पूर्ण वर्णन रहता था। अपने आश्रयदाताओं में युद्धोन्माद उत्पन्न करने के लिए कभी कभी वे असंभव घटनाओं की भी योजना करते थे।

कलह और संघर्ष से भरी ऐसी परिस्थितियों की प्रतिक्रिया कुछ लोगों के चित्त पर इस रूप में हुई कि वे संसार की आसारता में इन्द्रुयोपभोग का समम्थन करने लगे।

3.7.2 'ब' श्रेणी के प्रश्नोत्तर

प्रश्न :आदिकाल में सामाजिक एवं पारिवारिक स्थितियाँ किस प्रकार थीं?
उत्तर :उस काल में सामाजिक स्तर पर बिखराव के तत्व प्रबल थे। वर्ण व्यवस्था अपने गुण-कर्म-स्वभाव के स्वस्थ आधार से विस्खलित होकर जातियों और उपजातियों के ऊंच-नीच परक भेदभाव में प्रकट हो रही थीं। साधुओं-सन्यासियों के शापों और वरदानों की आशंकाओं से उनका मन भयभीत रहता था।

राजन्य वर्ग भोगविलास में आसक्त था। बहुपत्नीत्व के साथ अन्तःपुर की रंगरलियों में ही उनका चित्त-विनोद होता था। इसका प्रभाव सामान्य जन जीवन पर भी पड़ा। नारी को भोग्य माना जाने लगा। वह क्रय विक्रय और अपहरण की वस्तु बनती गयी। बाल-विवाह को प्रोत्साहन मिलने लगा और विधवा विवाह वर्जित हो चला। सती जैसी अमानुषिक प्रथा पनपी।

जनता के बीच घोर निर्धनता फैली थी। युद्धों और राजाओं की विलासिता के लिए साधन जुटाने के कारण उसका निरंतर शोषण होता रहता था। दुर्भिक्ष और महामारी आए दिन की बातें हो गयी थीं। तरह-तरह के पूजा-पाठ, तंत्र-मंत्र और जप-तप करके भी लोग उनसे मुक्ति प्राप्त करने में असमर्थ थे।

BRAOU

3.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचंद्र शुक्ल
2. हिन्दी साहित्य की भूमिका – आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
3. हिन्दी साहित्य का आदिकाल – आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
4. हिन्दी साहित्यः उद्‌भव और विकास – आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
5. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास – डॉ. रामकुमार वर्मा
6. हिन्दी साहित्यका वैज्ञानिक इतिहास – डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त
7. हिन्दी साहित्य का इतिहास – संपादक- डॉ. नगेन्द्र

इकाई-4: आदिकालः साहित्यिक प्रवृत्तियाँ और काव्यधाराएँ

4.0 विषय प्रवेश
4.1 उद्देश्य
4.2 पाठ परिचय
4.3 मूलपाठ
4.4 सारांश
4.5 शब्दार्थ
4.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
4.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न
4.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न
4.7 नमूने के प्रश्नोत्तर
4.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर
4.7.2 'ब' श्रेणी के प्रश्नोत्तर
4.8 पठनीय पुस्तके

4.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ में हिन्दी के आदिकालीन साहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियों, काव्यधाराओं और काव्य रूपों पर प्रकाश डाला गया है। इस पाठ के अध्ययन से आपः

- आदिकाल में हिन्दी साहित्य की भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- हिन्दी साहित्य के आदिकालीन काव्य रूपों का अध्ययन कर सकेंगे।
- आदिकालीन काव्यधाराओं की विवेचना कर सकेंगे।
- हिन्दी भाषा के आदिकालीन स्वरूप पर प्रकाश डाल सकेंगे।

BRAOU

4.2 पाठ परिचय

हिन्दी साहित्य के आदिकाल के सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ का परिचय प्राप्त करने के बाद, यह जिज्ञासा सहज ही होती है कि उस काल में जो साहित्य निर्मित हुआ वह कैसा था? साहित्य की पूर्व परंपराओं ने, और उस युग की राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक आदि परिस्थितियों ने किस प्रकार की साहित्यिक चेतना का उदय किया? उस चेतना का प्रतिफलन जिस साहित्य में हुआ उसमें कौन सी जीवनादर्शों की अभिव्यक्ति हुई, साहित्यकारों की जीवन दृष्टि कैसी थी, और किस प्रकार की भाषा एवं किस प्रकार के काव्य रूपों के माध्यम से वह साहित्य हमारे सामने आया। साथ ही यह जानने की इच्छा भी स्वाभाविक है कि उस काल के साहित्य ने आगे के युगों के साहित्य के विकास के लिये कैसी भूमिका तैयार की?

इन्हीं जिज्ञासाओं का समाधान प्रस्तुत पाठ में किया गया। पहले, साहित्यिक प्रवृत्तियों का विश्लेषण करते हुए, धार्मिक और लौकिक, दो व्यापक प्रवृत्तियाँ निर्धारित की गयी हैं। इनके अंतर्गत उप प्रवृत्तियों का संकेत करते हुए इस बात का विचार किया गया है कि साहित्य के उच्च आदर्श की सापेक्षता में, आदिकाल में, इन प्रवृत्तियों के संदर्भ में रचित साहित्य में कितनी उत्कर्षशीलता अथवा अपकर्षशीलता है।

आदिकाल की समस्त उपलब्ध साहित्य-सामग्री को, अध्ययन की सुविधा के लिए, कतिपय धाराओं में विभाजित करके देखा गया है जैसे सिद्ध साहित्य, नाथ साहित्य, जैन साहित्य और लोक साहित्य। प्रत्येक धारा की प्रमुख रचनाओं और उनके रचयिताओं का परिचय प्रस्तुतत किया गया है। फिर, इन धाराओं का जीवनोत्कर्ष-परकता एवं कलात्मकता की दृष्टि से संक्षिप्त मूल्यांकन किया गया है।

काव्यरूपों के आधार पर इस काल के साहित्य का विवेचन करने के प्रसंग में, प्रबंध और मुक्तक इन दो प्रधान वर्गों का निर्देश किया गया है। इन वर्गों के अंतर्गत आनेवाली अनेक कोटि की रचनाओं का उल्लेख, उनमें प्रयुक्त छन्दों की विशेषताओं के साथ किया गया है।

आदिकालीन साहित्य की भाषा का प्रश्न बहुत जटिल और विवादास्पद रहता आया है। वस्तुतः आदिकाल के संदर्भ में भाषारूप का प्रश्न इतने महत्व का है कि इसी पर यह निर्णय आधारित है कि कौन-सी साहित्य सामग्री को "हिन्दी साहित्य" के इतिहास में स्थान दिया जाए और कौन सी सामग्री को इस परिधि से बाहर माना जाए। इसके अतिरिक्त भाषा की अनेकरूपता के आधार पर भाषाके अनेक नाम भी प्रचलित रहे हैं जैसे संध्या भाषा, डिंगल भाषा, पिंगल आदि। भाषा संबंधी इन समस्याओं का सरल समाधन भी प्रस्तुत पाठ में उपस्थित किया गया है।

4.3 मूलपाठ

4.3.1 आदिकालीन साहित्यिक प्रवृत्तियाँ

हिन्दी के आदिकालीन साहित्य का युग एक ऐसा युग था जिसमें भारतीय राष्ट्रीय संस्कृति एक उच्च शिखार से ढलान पर नीचे की ओर बढ़ रही थी। जातियों के जीवन में कदाचित् किसी नैसर्गिक नियम से उत्थान-पतन का क्रम-परिवर्तन होता रहता है। हमारा महांन देश अपने अत्यंत दीर्घकालीन जीवन में ऐसे अनेक क्रमों से गुजरा है। फिर भी इसकी अक्षय जीवनी-शक्ति बनी रही है। वर्धन साम्राज्य के अंत के साथ भारतीय सभ्यता और संस्कृति की आरोहण परक प्रगति ने अवरोह की प्रतिगति का रूप धारण कर लिया।

अवरोह का क्रम राष्ट्रीय सांस्कृतिक जीवन के सभी आयामों में समान रूपसे घटित हुआ। चाहे वह धर्म साधना का आयाम हो, चाहे सामाजिक जीवन की संगठित सुव्यवस्था का धरातल हो, चाहे लौकिक प्रेम-साधना का, चाहे राजनीतिक शांति और सुरक्षा की भूमिका, चाहे सामूहिक अभ्युत्थान की आकांक्षा का आदर्श हो, चाहे वैयक्तिक भावोत्कर्ष का मार्ग, जीवन की संपूर्ण गतिविधि, दृष्टि और भावना के संकोच से ग्रस्त हो उठी, सब में अन्तर्विरोध उभरने लगे।

पतन के इस नैसर्गिक क्रम को विदेशी और विधर्मी आक्रांताओं की लूटपाट ने और बढ़ावा दिया। सब ओर भय, आशंका, बिख राव, अराजकता और शुद्ध स्वार्थपरता के लक्षण प्रकट होने लगे।

धार्मिक साधना इस देश की केन्द्रगत साधना रही है। समय-समय पर अनेक मतों और संप्रदायों का धार्मिक क्षेत्र में उदय भी होता रहा है, किन्तु उनके बीच एक उदार समन्वय भावना भी कार्य करती रही है। बौद्ध, जैन जैसे अवैदिक धर्ममत; स्मार्त, शैव शाक्त, वैष्णव आदि वैदिक मतों के रूप कटु संघर्ष के साथ अपनी अपनी विशिष्ट साधना पद्धतियों के अनुसरण में निरत रहे हैं। वर्द्धन काल में धार्मिक समन्वय सौहार्द पूर्ण रूप से वर्तमान था। उसके बाद के युग में ये धर्ममत आध्यात्किम साधना के प्रशस्त पथ से विचलित होकर संकीर्ण रूढ़ियों-रीतियों में भटकने लगे। धर्म का सारतत्व मानो इनमें से पलायन कर गया। बाह्याडंबरों और पाखंड ने उसका स्थान ले लिया। या फिर धार्मिक आदर्शों का जीवन से गहन लगाव नहीं रह गया, वे आदर्श केवल विचार जगत की वस्तु रह गये, उपदेश की सामग्री बन कर रह गये।

BRAOU

आदिकाल में बौद्ध और जैन धर्मों की बहुत कुछ ऐसी ही स्थिति थी। इस काल में बहुत सा धार्मिक साहित्य रचित हुआ, लेकिन उसका अधिकांश प्राणहीन और शुष्क है, लौकिक अथवा आध्यात्मिक जीवन की नवस्फूर्ति के स्पंदन से वह रहित है।

क्षत्रियों के शौर्य का आदर्श प्रजापालन, प्रजारंजन और राष्ट्ररक्षा में चरितार्थ होता है। कर्तव्यनिष्ठ शासक के लिए उसका पद भोगभूमि कम है, त्यागभूमि ही अधिक है। सम्राट हर्षवर्द्धन के चरित्र में यह आदर्श चरितार्थ हुआ था। भारतीय राजनीतिक सत्ता को एक सूत्र में आबद्ध करके उसने शान्तिस्थापना का कार्य किया था; साथ ही विदेशी हूणों का पराभव करके राष्ट्रीय गौरव को उज्जवल बनाया था। उसकी मृत्यु के बाद राजनीतिक सत्ता विखण्डित हो गयी, छोटे-छोटे राज्य स्थापित हुए; उन राज्यों के क्षुद्राशय शासक महत् राष्ट्रीय उद्देश्य से विमुख रहकर, अपनी अहंकारग्रस्त वीरता का प्रदर्शन परस्पर के युद्धों में करने लगे। बाह्य शत्रु के विरुद्ध एकजुट होकर वे खड़े नहीं हो सके। भोग विलास और श्रृंगारचर्या उनके आमोद-प्रमोद बने। प्रशंसा के भूखे ये शासक अपने दरबारों में ऐसे भाटों और चारणों को आश्रय देने लगे जो लेखनी के स्वाभिमान से रहित होकर, अपने पोषकों की वीरता और प्रेम के वास्तविक और कल्पित गाथाओं का खूब बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन करने लगे।

इन भाटों और चारणों ने राजस्तुतिपरक काव्य लिखे हैं। वे व्यापक जीवन की नैसर्गिक सरणियों से दूर एक कृत्रिम जीवन के वैभव विलास की चकाचौंध उत्पन्न करते हैं। साहित्य के प्रकृत उद्देश्य की चरितार्थता इन काव्यों में नहीं देखी जा सकती।

सांस्कृतिक पतनशीलता की अवस्था में, साहित्यकारों और कलाकारों की दृष्टि अपने उस स्वधर्म से च्युत हो जाती है जिसमें जीवन के उन्मुख विशाल प्रांगण में नव नवोन्मेषशालिता का उन्मेष रहता है, परंपराओं और रूढ़ियों के पालन के सीमित दायरों में चक्कर करने में ही वह अपनी सार्थकता समझती है। आदिकालीन साहित्य में लौकिक प्रेमाख्यानों की प्रवृत्ति संयोग-वियोग के रूढ़ नियमों का ही परिचय देती है। नीति और भक्ति के मुक्तक भी इसी परंपरा पालन के परिचायक हैं। उस काल का मनोरंजन और विनोदपरक साहित्य भी महत् आनंद और उल्लास भाव से रहित सीमित आमोद-प्रमोद के साधनों में तुष्टि पाने की दृष्टि की ही संकेत करता है।

4.3.2 काव्य धाराएँ

आदिकाल की समय-सीमा अधिकतर विद्वानों को आठवीं शताब्दी के मध्य से चौदहवीं शताब्दी के मध्य तक मान्य है। इस दीर्घ कालावधि में भाषा की दृष्टि से साहित्य की तीन परंपराएँ थी। 1. संस्कृत साहित्य परंपरा, 2. अपभ्रंश साहित्य परंपरा, 3. देश भाषा (हिन्दी) काव्य परंपरा। कुछ विद्वानों ने संपूर्ण अपभ्रंश साहित्य को हिन्दी के साहित्य के अंतर्गत मानना चाहा है, अन्य कुछ विद्वान उसे हिन्दी साहित्य से बहिर्गत मानते हैं। एक तीसरा मत उन विद्वानों का है जो अपभ्रंश साहित्य के दो विभाग कर लेते हैं- पहला शुद्ध अपभ्रंश साहित्य का और दूसरा उस अपभ्रंश का जो शुद्ध अपभ्रंश के क्रोड से निकल कर देश भाषा का रूप धारण कर रही थी।

इस मत के विद्वानों का कहना है कि अपभ्रंश का यह दूसरा रूप वस्तुतः देशभाषा का ही रूप है, भले ही उसमें साहित्यकारों की संरक्षणशील वृत्ति के कारण पूर्ववर्ती भाषा अपभ्रंश के अनेक प्रयोग साथ चले आये हों। वास्तव में यह उस भाषा का विकसित रूप है जिसे हेमचंद्र ने "ग्राम्य अपभ्रंश" कहा है और जो उस समय की अपभ्रंश से भिन्न जन भाषा थी। इस कारण, इस भाषा को "आट अपभ्रंश", "पुरानी हिन्दी" अथवा "अवहट्ट" आदि नामों से जाना जाता है। शुद्ध अपभ्रंश के कवियों में मुख्यतः स्वयंभु, पुष्पदंत, धनपाल, अब्दुल रहमान (अद्दहमाण), जोइन्दु, रामसिंह, देवसेन आदि हैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हिन्दी-साहित्य के आदिकाल में सामग्री की दृष्टि से एक ओर तो उन रचनाओं का स्थान है जो अपभ्रंश के प्रभाव से मुक्त हैं, और दूसरी ओर अपभ्रंश के प्रभाव से युक्त सिद्ध साहित्य, जैन साहित्य और नाथ साहित्य की रचनाओं का भी स्थान है।

BRAOU

आदिकाल की इस संपूर्ण सामग्री को, अध्ययन की दृष्टि से निम्नलिखित चार धाराओं में रखा जा सकता है:

1. सिद्ध साहित्य
2. जैन साहित्य
3. नाथ साहित्य
4. लौकिक साहित्य

इन धाराओं के साहित्य का क्रमशः विवेचन अपेक्षित है।

सिद्ध साहित्य :

वैदिक कर्मकांड और हिंसापरक यज्ञों के विरोध में ईसापूर्व पाँचवी शताब्दी में बौद्धधर्म का विकास हुआ था। ईसा की पहली शताब्दी में यह धर्म दो संप्रदायों में विभाजित हो गया– हीनयान और महायान। हीनयान में ज्ञानार्जन, पांडित्य और नियमव्रत आदि की कठोर मर्यादाओं को प्ररक्षित रखा गया, अतः उसकी जनपरिधि सीमित रही। महायान ने केवल आचार की पवित्रता के साथ लोक कल्याण की भावना से अपनी ज्ञान परिधि का विस्तार करके सार्वजनिक 'धर्म का रूप ग्रहण किया। न केवल भ्रमण सन्यासियों की, अपितु गृहस्थों की भी उसमें समाई हुई।

यों तो बौद्धधर्म को समय समय पर अनेक विरोधी परिस्थितियों का सामना करना पड़ा, जैसे कि गुप्तवंश के परम भागवत शासकों के समय में, किन्तु आठवीं शताब्दी में कुमारिल और शंकराचार्य द्वारा वैदिक धर्म की पूर्ण प्रतिष्ठा के कारण इस धर्म के विकास को सबसे बड़ा आघात लगा। उसकी जन–स्वीकृति समाप्त होने लगी। यहां तक कि भारत भूमि छोड़कर तिब्बत, नेपाल आदि में उसके शरण लेने की स्थिति आ गयी। इस धर्म के जो अनुयायी भारत में रह गये उन्हें अपने धर्म की लोकप्रियता को किसी तरह बनाए रखने के लिए अनेक उपाय ग्रहण करने पड़े। तंत्र–मंत्र, अभिचार आदि के साधन ऐसे ही उपायों में थे। इसी से बौद्धधर्म में मंत्रायान का आविर्भाव हुआ जिसमें मंत्रों के चमत्कार और सिद्धियों को स्थान मिला। इसी क्रम में भैरवीचक्र के रूप में सदाचार की अवहेलना करके मद्य, मैथुन आदि को साधना के अंग के रूप में स्वीकृति मिली और इसने "वज्रयान" का रूप धारण किया। इसी की साधना वामाचार की (पंचमकार की) साधना थी।

मंत्रों द्वारा सिद्धि प्राप्त करने की युक्ति का प्रचार करने वाले साधक "सिद्ध" नाम से प्रसिद्ध हुए। दक्षिण का श्रीपर्वत इनका केन्द्र बना। जब आठवी शताब्दी में बंगाल और बिहार में बौद्ध धर्म के अनुयायी पाल शासकों का आधिपत्य हुआ तो वहाँ बौद्ध धर्म को प्रमुख संरक्षण प्राप्त हुआ। नालन्दा और विक्रमशिला के बौद्ध विश्वविद्यालय उसी काल में स्थापित हुए। दक्षिण से उत्तर की ओर पुनरागमन के बीच इस धर्म में कदाचार भी कम हुआ; क्रमशः सदाचार का महत्व समझा जाने लगा।

सिद्धों की संख्या चौरासी कही गयी है। इनमें से केवल चौदह ऐसे थे जिन्हों ने अपने धार्मिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन काव्य के माध्यम से किया।

इस साहित्य का सर्वप्रथम पता सन् 1907 में श्री हर प्रसाद शास्त्री को नेपाल में मिला था। शास्त्रीजी ने बौद्धगान ओ दोहा नाम से उन रचनाओं का एक संग्रह बंगला अक्षरों में प्रकाशित करया। बाद में महापंडित राहुल सांकृत्यायन भोट देश से सिद्धों की और बहुत सी रचनाएं लाए।

सिद्ध साहित्य मुख्यतः दो काव्यरूपों में उपलब्ध है– (1) दोहा कोष और (2) चर्यापद। पहले में दोहों से युक्त चतुष्टियों की कडबक शैली है; दूसरे में तांत्रिक चर्या के समय गाये जानेवाले पद हैं। सिद्धमत के प्रमुख कवियों के व्यक्तित्व और उनकी रचनाओं का परिचय इस प्रकार है:

BRAOU

सरहपा :

सरहपाद, सरोजवज्र, राहुलभद आदि कई नामों में उनका परिचय मिलता है। सिद्धों में ये सबसे पुराने हैं। इनका आविर्भाव धर्मपाल के शासन काल में हुआ है राहुल सांकृत्यायन ने इसका समय 769 ई. माना है।

सरहपा द्वारा रचित बत्तीस ग्रंथ कहे गये हैं। उनमें दोहा कोष का विशेष महत्व है।

सरहपा की वाणी में सब प्रकार के दंभ, आडंबर और मिथ्याभिमान का विरोध है। गुरू की महिमा और गुरू सेवा के भावों पर बल दिया गया है। सरहपा की मुख्य विचारधारा है जीवन के सहज मार्ग से महासुख की ओर अभियान। उनकी सहज प्रवाह युक्त भाषा में गेय तत्व विद्यमान है। इनकी रचना का एक उदाहरणः

नाद न बिन्दु न रवि न शशि मंडल
चिअराअ सहाबे मूकल
हाथेरे कांकण या लोउ दापण
अपणे अपा बुझतु निअ-मण

परवर्ती भक्तिकालीन संत साहित्य पर सरहपा की रचनाओं और विचारधारा का विशेष प्रभाव लक्षित होता है।

शबरपाः

इनका जन्म 780 ई. में माना गया है। सरहपा इनके ज्ञान गुरू थे। ये शबरों का सा जीवन व्यतीत करते थे, इसलिए इनका नाम शबरपा पड़ा। इनकी रचनाएँ चर्यापदों के रूप में हैं। सांसारिक मायामोह से दूर रहकर सहज जीवनचर्या से महासुख का मार्ग प्रशस्त होता है, शबरता की मुख्य विचारधारा यही है।

BRAOU

लुइपाः

ये शबरपा के शिष्य थे। इनकी साधना के प्रभाव से उड़ीसा के तत्कालीन शासक और उनके मंत्री इनके शिष्य हो गये थे। उनकी कविता रहस्य भावयुक्त है।
एक उदारहण हैः

काआ तरूवर पंच विडाल, चंचल चीए पहणे काल
दिट करीअ महामुह परिमाण, लुई भरमइ गुरू पुच्छि आजाण।

इसी प्रकार डोम्मिपा, कण्हपा और कक्कुरिपा आदि सिद्धों की अनेक रचनाओं में रूढियों के खंडन और सहजमार्ग से महासुख-प्राप्ति के समर्थन के भावनिहित हैं। इनकी शैली प्रायः साम्प्रदायिक आग्रह से प्रतीकात्मक पूर्ण रहस्यपरक हो गयी है। यों कवित्व का अंश इनकी उक्तियों में कम ही है। हिन्दी के आदि साहित्य के रूप में भाषागत महत्व ही उनकी रचनाओं में अधिक मानना चाहिए। हाँ. इनकी विचार धारा आगे भक्ति काल के साहित्य में अधिक कलात्मक रूप में प्रतिफलित हुई। सन्तसाहित्य की लोकचेतना और शास्त्रागम विरोध को इन सिद्धों की वाणियों से विशेष प्रेरणा मिली।

जैन साहित्यः

बौद्ध सिद्धों के मत का प्रचार देश के पूर्वी अंचलों में अधिक रहा। जैन साधुओं द्वारा अपने मत का प्रचार विशेषतः पश्चिमी क्षेत्रों में किया गया। जैन साहित्य को मुख्यतः तीन विभागों में रखा जा सकता है

1) तीर्थकारों आदि से संबंधित चरित साहित्य। कभी एक ही तीर्थकार के संबंध में रचना की गयी है कभी एक ही रचना में अनेक तीर्थकारों का चरितगान है।

2) श्रावकों (गृहस्थों) के आचार।

3) काव्यात्मक आख्यान

इन लौकिक प्रेम कथाओं के माध्यम से नश्वरता की भावना के आधार पर आध्यात्मिकता की ओर संकेत है। अनेक पौराणिक कथाओं–विशेषतः रामायण और महाभारत की कथाओं को धर्मपरक बनाया गया है। जैन साहित्य की प्रमुख रचनाओं का परिचय इस प्रकार है। इस प्रसंग में रचनाकारों की अपेक्षा रचना को प्रमुखता प्राप्त है।

भाषकाचारः

इस रचना में 250 दोहों में श्रावकधर्म का, गृहस्थ के कर्तव्यों का विस्तार से प्रतिपादन किया गया है। इसके रचयिता प्रसिद्ध जैन आचार्य दवसेन हैं। देवसेन की अपभ्रंश में रचित "दब्ब–सहाव–पयास" (द्रव्य स्वभाव प्रयास) नामक प्रसिद्ध रचना है। हिन्दी में इनकी दो अन्य रचनाए हैं– "लघु नायचक्र" तथा "दर्शनसार"। श्रावकाचार से एक उदाहरणः

जो जिण सासण माषियउ, सो मई कहियउ सास।
जो पालइ सइ माउ करि, सो मरिपावउ पास।।

भरतेश्वर बाहुबली रासः

205 छंदों में रचित यह एक सुंदर खउ काव्य है। इसकी रचना शालिमउ सूरी ने 1184 ई. में की थी। इस रचना में दो चरित नायक है भरतेश्वर और बाहुबली। अयोध्यावासी ऋषभ जिनेश्वर के यहाँ सुंदर और सुमंगला से इनका जन्म हुआ था। भरत को अयोध्या का राज्य मिला, और बाहुबली को तक्षशिला का। इन दोनों के युद्धों का और शौर्य का इस रचना में विस्तृत वर्णन है। वीरता की परिणति विरक्ति और मोक्ष में दिखाई गयी है।

इस रचना को मुनि जिन विजयजी ने जैन साहित्य की रास–परंपरा का प्रथम ग्रंथ माना है। आगे की जैन रास रचनाओं को, और प्रकारांतर से चारणों की रासो रचनाओं को, इस ग्रंथ ने प्रभावित किया। इसकी कविता का एक उदाहरणः

बोलह बाहुबली वलबत्त। लोह खण्डि लउ गरवीउ हंत।
चक्र सरीसउ च्नउ करिउँ। सयलहँ गोत्रह कुल संहरउँ।

चंदनबाला रासः

यह करूणरस प्रधान एक आख्यान काव्य है। पैंतीस छेदोंके इस लघु खंड काव्य की रचना 1200 ई. के लगभग आसगु नामक कवि ने की थी। कथा इस प्रकार है कि चंदनबाला चंपा नगरी के राजा दधिवाहन की पुत्री थी। कौशांबी के राजा शतानीक ने चंपा नगरी पर आक्रमण किया। उसके सेनापति ने चंदनबाला का अपहरण करके उसे एक सेठ के हाथ में बेच दिया। सेठ की पत्नी द्वारा चंदनबाला को घोर कष्ट सहने पड़े। अंत में महावीर से दीक्षा लेकर वह मोक्ष को प्राप्त हुई। इस काव्य में भाव सौंदर्य पर आधरित काव्योत्कर्ष सर्वत्र व्यंजित है।

स्थूलिमडरासः

जिनधर्म सूरिकृत इस कृति का रचनाकाल 1209 ई. माना गया है। इसमें कोशा वेश्या के पास भोग लिप्त स्थूलिमड द्वारा अंत में जैन धर्म की दीक्षा लेने और मोक्ष का अधिकारी बनने का काव्यात्मक वर्णन है। लौकिक प्रेम श्रृंगार के बीच से आध्यात्मकता की ओर प्रस्थान का निर्देशन इस काव्य में अन्य जैन–आख्यान काव्यों के अनुरूप ही है।

BRAOU

रेवत्तगिरिरासः

इस काव्य में रेवत्तगिरि तीर्थकार नेमिनाथ की प्रतिभा का कलात्मक वर्णन है। इसके रचनाकार विजयसेन सूरि हैं। इसका रचनाकाल 1231 ई. के आसपास है प्रकृति के अनेक रम्य चित्र इस काव्य को साहित्यिक महत्व प्रदान करते हैं। एक उदाहरण लेः-

कोयल कल्यलो मोर केंक रयो।
सम्मरा महुअर महुर गुंजारवों।।

नेमिनाथ रासः

58 छंदों की इस रचना में तीर्थकर नेमिनाथ का चरित्र वर्णित है। इसके कवि का नाम सुमति गणि है। इसका रचनाकाल 1213 ई. है। इस काव्य में नेमिनाथ के प्रसंग में श्रीकृष्ण का वर्णन भावपूर्ण ढंग से किया गया है।

नाथ साहित्यः

सिद्ध मत में से ही नाथपंत का उदय हुआ। मत्स्येन्द्रनाथ अथवा गोरखनाथ द्वारा यह मत चलाया गया। गोरखनाथ और उनके गुरू मात्स्येन्द्रनाथ, दोनों की गणना चौरासी सिद्धों में है। वज्रयान की वामाचार साधना में सदाचार हीनता, अश्लीलता और वीभत्सता, गोरखनाथ को स्वीकार्य नहीं थी। अतः उन्होंनें बज्रयानी विचारधारा के साथ शैवदर्शन को अपनाया। साधना पक्ष में उन्होंने हठयोग का आश्रय लिया। इस प्रकार नायपंथ की साधना में संयम, सदाचार और त्याग-तपस्या का महत्व स्थापित हुआ। शिव-शक्ति की भावना के कारण नाथ साहित्य में श्रृंगार की अभिव्यक्ति अवश्य हुई है। गोरखनाथ को नाथ पंथ के बारह संप्रदायों का, प्रवर्तक माना गया है। नाथपंथ की महत्ता डॉ. रामकुमार वर्मा ने इन शब्दों में व्यक्त की है- "गोरखनाथ ने नाथ संप्रदाय को जिस आन्दोलन का रूप दिया, भारतीय मनोवृत्ति के सर्वथा अनुकूल सिद्ध हुआ। उसमें जहाँ एक ओर ईश्वरवाद की निश्चित धारणा उपस्थित की गयी, वहाँ दूसरी ओर धर्म को विकृत करनेवाली समस्त परंपरागत रूढ़ियों पर कठोर आघात भी किया गया। जीवन को अधिक से अधिक संयम और सदाचार के अनुशासन में रखकर आध्यात्किम अनुभीतियों के लिए सहज मार्ग की शक्तिशाली व्यवस्था करने का शक्तिशाली प्रयोग गोरखनाथ ने किया।"

गोरखनाथः

महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन ने गोरखनाथ का समय 845 ई. माना है। शुक्लजी ने उन्हें तेरहवीं शती का कहा है, डॉ. रामकुमार वर्मा उनसे सहमत हैं।

गोरखनाथ की रचनाओं की संख्या चालीस मानी जाती है। डॉ. पीतांबर दत्त बड़थ्वाल ने केवल चौदह रचनाओं को गोरखनाथ द्वारा रचित माना है। उन रचनाओं के नाम हैः सबरी, पंद, प्राणसंकली, सिष्या-दरसन, नरवैबोध, अमैमात्रा जोग, आतम बोध, पंद्रह तिथि, सप्तवार, मछीन्द्र गोरखबोध, रोमावली, ग्यानतिलक, ज्ञानचौतीसी, तथा पंचमात्रा। डॉ. बड़थ्वाल ने "गोरखवानी" नाम से गोरखनाथ की रचनाओं का एक संकलन संपादित किया है।

गोरखनाथ ने अपनी रचनाओं में गुरू-महिमा, इन्द्रिय निग्रह, प्राण-साधना, वैराग्य, मन-साधना, कुंडलिनी-जागरण, शून्य समाधि आदि का वर्णन किया है। इनमें साहित्यकता का अंश कितना माना जाए, इस विषय में विद्वानों के बीच मतभेत है।

गोरखनाथ की रचना का उदाहरण देखें। विकार के कारण उपस्थित रहने पर भी सच्चे योगी का मन विकृत नहीं होता, इस भाव को अभिव्यक्त करनेवाली पंक्तियाँ हैः

नौलख पाती आगे नाचै, पीछे सहज अरबाड़ा।
ऐसे मन लै जोगी खेलै, तब अंतरि बसै भंडारा।

B R A O U

भक्तिकाल के अभिव्यंग्य पक्ष पर ही नहीं, अभिव्यक्ति पक्ष पर भी गोरखनाथ की रचनाओं का प्रभूत प्रभाव पड़ा।

नाथपंत के अन्य कविः

गोरखनाथ के अतिरिक्त नाथ साहित्य में चौरंगीनाथ, गोपीचंद, युणकरनाथ, मरथी, जलन्ध्रीपाद आदि की रचनाएँ भी उल्लेखनीय है। इन की रचनाओं में खंडन-मंडन और उपदेशात्मकता का स्वर ही प्रधान है। बहुत कुछ गोरखनाथ के अनुकरण पर ही इनकी रचनाएँ है, इनकी अपनी मौलिकता कम ही है।

बारहवीं से चौदहवीं शताब्दी तक नाथपंथ का चरमोत्कर्ष रहा।

9.3.3 लौकिक साहित्य

आदिकालीन लौकिक साहित्य के अंतर्गत "रासो" रचनाओं की प्रधानता है। वस्तुतः "रासो" एक विशिष्ट काव्यपद्धति का सूचक है। इस शब्द की व्यत्पत्ति के संबंध में विद्वानों ने अनेक मत प्रस्तुत किये है। रहस्य, रसायन, राजयश, राजसूय आदि से इस शब्द के व्युत्पन्न मानने की कल्पनाएँ की गयी हैं। किन्तु अधिकतर विद्वान अंततः इस बात से सहमत जान पड़ते है कि "रासक" से ही "रास" और "रासो" शब्द बने है। जैसे संस्कृत के "घोटम" शब्द का ब्रजभाषा में "घोटे" खडी बोली में "घोडा" और अवधी में "घोड" रूप होते है, उसी प्रकार रासक से ब्रजरूप "रासो" खडीबोली रूप "रासा" और अवधी रूप हुए है।

मूलतः रासक या रास नृत्यगीत-अभिनयपरक रचनाओं के लिए प्रयुक्त शब्द था। इस कोटि की रचनाओं में जिनदत्तसूरि के "उपदेश रसायन रास" तथा नरपति नाल्ह के "बीसलदेव रास" आदि की गणना है। बाद में यह एक रूढ़ काव्य रूप बन गया, जिसमें ऐतिहासिक और धार्मिक पुरुषों के चरितों का वर्णन किया जाने लगा। जैन साहित्य में इसका अधिकतर "रास" रूप रहा और राजस्थानी के वीरगाथा परक लौकिक साहित्य में यह "रासो" रूप में आया। यों तो दृष्टि कोण और वर्णनशैली के आधार पर इन दोनों कोटि की रचनाओं में कोई सीधा संबंध नहीं माना जा सकता।

आदिकाल का लौकिक साहित्य अधिकतर राजदरबारों में, और आश्रय दाताओं के प्रोत्साहन में लिखा गया। इस काल के धार्मिक साहित्य में भी लौकिक-जीवन की झांकियाँ मिलती है। लेकिन उनका उद्देश्य सर्वथा भिन्न है। वह उद्देश्य है लौकिक जीवन के रूपकों के माध्यम से, उसके श्रृंगारपरक हास-विलास की नश्वरता के निदर्शन से, आध्यात्मिक जीवन की महत्ता का उपदेश। किन्तु राजदरबारों में लिखे गये साहित्य का उद्देश्य लौकिक भाव से युक्त है।

BRAOU

इस लौकिक साहित्य को तीन विभागों में रखकर देखा जा सकता हैः

1. वीरगाथात्मक रासो काव्य
2. लौकिक प्रेमाख्यान और श्रृंगार प्रधानपद
3. मनोरंजन परक रचनाएँ

वीरगाथात्मक रासो काव्यः

इस कोटि के जो ग्रंथ उपलब्ध है, उनकी प्रामाणिकता के विषय में संदेह रहा है। संदेह के अनेक आधार हैं, एक तो यह कि इनमें भाषा का रूप उस काल का न होकर परवर्ती है। दूसरे यह कि इनमें वर्णित घटनाएँ और तथ्य इतिहास संगत नहीं हैं। वस्तुतः इस प्रकार की रचनाएँ मूलतः राजाओं के चरित और उनकी प्रशंसा के लिए लिखी जाती थीं। होता यह था कि जिस राजा के चरित का वर्णन किसी "रासो" में किया जाता था, उस राजा के उत्तराधिकारी अपने आश्रित अन्य किवियों से उस "रासो" में अपना चरित भी सम्मिलित करा लेते थे। इस तरह मूल रचना प्रक्षिप्त अंशों के साथ स्फीत होती चलती थी, और उसकी भाषा में भी अंतर आता रहता था। फिर इन रचनाओं के लेखक चारण होते थे। वे अपने आश्रयदाता के वीरता और प्रेम के कारनामों का बढ़ा चढ़ाकर वर्णन

करने की दृष्टि से अनेक घटनाओं और तथ्यों की कल्पना कर लिया करते थे। ऐसी रचनाओं में इतिहास को खोजना सार्थक प्रयास नहीं है। यह मानना होगा कि इन रचनाओं का मूल प्रामाणिक रूप आदिकाल में ही रचित था, बाद में वह परिवर्तित भले ही होता रहा हो।

इनमें से मुख्य रचनाओं का परिचय प्राप्त करें:

खुमाण रासो:

आचार्य शुक्ल जी ने इसी नवीं शती की रचना माना है। किन्तु इसमें सत्रहवीं शताब्दी के चित्तौड़ नरेश राजसिंह तक के राजाओं का वर्णन देखकर इसके आदिकाल में रचित होने में संदेह किया गया है। सत्य यह जान पड़ता है कि इस काव्य के मूल रूप की रचना आदिकाल में हुई, बाद में वह प्रक्षिप्त होता गया। इसका मूल लेखक नरेश का समकालीन दलपति विजय था।

इस ग्रंथ की प्रामाणिक हस्तलिखित प्रति पूना के संग्रहालय में सुरक्षित है। इसमें राजाओं के युद्धों और विवाहों का सरस वर्णन है। यथा प्रसंग सुंदर प्राकृतिक चित्रण भी है। दोहा, सवैया और कवित्त छंदों में इसकी रचना हुई है। इस रचना का एक उदाहरण देखे:

पिउ चितोड़ न आविऊ, सावण पहिली तीज।
जोवे वाट बिरहिणी, खिण खिण अणवै खीज।।

बीसलदेव रासो:

इस ग्रंथ का रचयिता नरपति नाल्ह है। 1016 ई. इस का रचनाकाल माना गया है। यह अपने मूल रूप में एक गेय काव्य था, जनमुख से इसमें परिवर्तन होता रहा।

इस काव्य में भोज परमार की पुत्री राजमती और अजमेर के चौहान राजा बीसलदेव द्वितीय के विवाह, वियोग और पुनर्मिलन की कथा है। राजा, किन्हीं कारणों से रूष्ट होकर उड़ीसा चला जता हैं। बारह वर्ष तक राजमती उसके वियोग में दुःखी रहती है। वह एक पंडित के हाथ अपने पति के पास संदेश भेजती है, उसके लौट आने पर दोनों का मिलन होता है। श्रृंगार रस के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का इस काव्य में बहुत ही मार्मिक चित्रण हुआ है। एक कुलीन ग्रहणी के स्वाभिमान की इसमें सफल अभिव्यंजना हुई है।

इस रचना की श्रृंगार परंपरा विद्यापति से होती हुई भक्तिकाल के प्रेमाख्यानों तक पहुंची और कृष्णभक्ति तथा रीतिकालीन श्रृंगार काव्य को भी उसने प्रभवित किया।

BRAOU

हम्मीर रासो:

शुक्लजी ने "प्राकृत पैगलम" के कुछ छंदों के आधार पर इस काव्य के अस्तित्व की कल्पना की थी। शार्ङ्गधर को उन्होंने इसका लेखक माना था। आज यह धारणा निर्मूल सिद्ध हो चुकी है।

परमाल रासो:

इस काव्य का रचयिता जगनिक माना गया है जो महोब के राजा परमार्दिदेव का आश्रित था। आल्हा और ऊदल नामक दो वीर सरदारों की वीरतापूर्ण लड़ाइयों का इस काव्य में वर्णन है।

यह रासो लोक गेय काव्य था, इसलिए इसका मूल रूप सुरक्षित नहीं रह सका, उसमें अनेकानेक परिवर्तन होते गये। आज उत्तर भारत में "आल्हाखंड" के नाम से जो ओजस्वी वीररसपूर्ण काव्य अत्यंत लोकप्रिय है, वह "परमान रासो" का विकसित रूप ही है। इसकी विकसनशील परंपरा रही है। 1865 ई. में चार्ल्स इलियट ने इस मौखिक परंपरा पर आधारित "आल्हखंड" का प्रकाशन किया था। इसके आज के रूप से एक उदाहरण देखिये:

बारह बरस लौं कूकर जीवै, अरू तेरह लौं जिये सियार।
बरस अठारह क्षत्रिय जीवै, आगें जीवन को धिक्कार।

पृथ्वीराज रासोः

आदिकालीन ग्रंथों में प्रामाणिकता की दृष्टि से सबसे अधिक विवादस्पद् ग्रंथ पृथ्वीराज रासो रहा है। यों अब तक इसके चार संस्करण प्रकाशित हुए हैं। जो परिमाण में एक दूसरे से बहुत भिन्न हैं। किस संस्करण को प्रमाणिक माना जाए?

अनेक तर्कों के साथ विद्वान इस रचना को पूर्ण तथा अप्रमाणिक मानने के पक्ष में हैं। सम्यक् विवेचन के आधार पर सत्य यही जान पड़ता है कि इस ग्रंथ का लेखक चंदबरदायी राजा पृथ्वीराज का समकालीन था। उसने जिस रूप में इस काव्य की रचना की थी, बाद में उसके साथ बहुत से प्रक्षिप्त अंश जुड़ते चले गये।

कवि चंद जितना प्रतिभाशाली था, उतना ही स्वामिभक्त भी था। महाराज पृथ्वीराज उसे एक विश्वस्त अन्तरंग मित्र के रूप में सदा अपने साथ रखते थे। जब मुहम्मद गोरी पृथ्वीराज को बंदी बनाकर अपने देश ले जा रहा था तब चंद भी महाराज के साथ गया। कहा जाता है कि पृथ्वीराज रासो उस समय तक अधूरा था। चंद ने उसे अपने पुत्र जन्हण को सौंपकर पूरा करने का आदेश दिया। "पुस्तक जन्हण हत्थ दै चलि राज्जन नृप काज"।

पृथ्वीराज रासो का काव्य-सौंदर्य अपनी विशेषता रखता है। पृथ्वीराज चौहान के चरित्र को चंद ने अत्यंत उज्जवल भावपरक रूप में प्रस्तुत किया है। उसके युद्ध पराक्रम का जितना ओजोमय जीवन्त वर्णन कवि ने किया है, उसके प्रेम प्रसंगों का भी उतना ही माधुर्य पूर्ण चित्रण किया है। वस्तु वर्णन की दृष्टि से नगरों, वनों, दुर्गों सरोवरों आदि का वर्णन भी रम्य है। स्थितियों के वर्णन में ध्वनि व्यंजना का गुण सर्वत्र है। युद्ध प्रसंग का एक उदाहरण देखियेः

बज्जिय घोर निसान सन चौहान चहुँ दिसि।
सकल सूर सामत्व समर बल जंत्र मंत्र निसि।
उट्ठि राज प्रथिराज बाग लाग मनहु वीर नर।
कढ़त तेग मन बेग लगत मनहु बीगु झट्ट घट्ट।

वीर और श्रृंगार रस के साथ यथावसर अन्य रसों की व्यंजना भी प्रभावपूर्ण हुई है। अलंकारों का प्रयोग सहज रूप में है। अड़सठ प्रकार के छंदों का इस काव्य में प्रयोग हुआ है।

BRAOU

लौकिक प्रेमाख्यान और श्रृंगार प्रधान पदः

स्वच्छंद रूप में लौकिक विषयों पर आदिकाल में जो ग्रंथ लिखे गये उनमें "ढोला मारू रा दोहा" और "वसंत विल्लसा" उल्लेख्य है। "ढोला मारू रा दोहा" में ढोला नामक राजकुमार और मारवणी नामक राजकुमारी की प्रेमकथा भावपरक शैली में वर्णित है। दोहों में रचित इस काव्य की श्रृंगार परंपरा ही आगे बिहारी के काव्यों में प्रतिफलित हुई। "वसंत विलास" में चौरासी दोहों में वसंत ऋतु और कामिनियों पर उसके विलासपूर्ण प्रभाव का चित्ताकर्षक शैली में वर्णन किया गया है।

श्रृंगार प्रधान पदों के प्रसंग में मैथिल कोकिल विद्यापति के काव्य का उल्लेख आवश्यक है। कालक्रम की दृष्टि से विद्यापति की गणना भक्तिकाल के अंतर्गत होनी चाहिए क्योंकि ये पंद्रहवीं शताब्दी के कवि हैं। किन्तु कीर्तिलता और कीर्तिपताका के रूप में इनकी अवहट्ट (प्रकृताभास हिन्दी या पुरानी हिन्दी) की दो रचनाएँ मिली हैं। उनके कारण विद्वान इतिहास लेखकों ने इन्हें आदिकाल में स्थान देना उचित समझा है। अवहट्ट की उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त विद्यापति ने मैथिल भाषा में बहुत से सरस पदों की रचना की। जिनमें से अधिकांश पद लौकिक श्रृंगारपरक हैं। उन पदों में नायक-नायिका के रूप में राधा और कृष्ण का उल्लेख है, इस कारण अनेक विद्वान विद्यापति को भक्तकवि की मान्यता देना चाहते हैं।

विद्यापति सन् 1403 में तिरहुत के राजा शिवसिंह की सभा में वर्तमान थे। कीर्तिलता में तिरहुत के राजा कीर्तिसिंह की वीरता, उदारता आदि गुणों का विशाद वर्णन है। शिवसिंह ने विद्यापति को "अभिनव" जयदेव की उपाधि दी थी।

डॉ. रामकुमार वर्मा ने विद्यापति के पद-साहित्य का निम्नलिखित तीन वर्गों के अंतर्गत उल्लेख किया है।

1. श्रृंगार संबंधी- इस वर्ग में राधाकृष्ण के मिलन के प्रेमपूर्ण पद हैं।
2. भक्ति संबंधी- इस वर्ग में शिव प्रार्थना आदि है।
3. काल संबंधी- इस वर्ग में तत्कालीन परिस्थितियों के चित्र हैं।

मनोरंजन परक रचनाएँ:

इस प्रकार की रचनाओं में खुसरो की पहेलियाँ महत्वपूर्ण है। खुसरो ने 1283 ई. के आसपास रचना आरंभ की थी। ये बड़े विनोदी स्वभाव के सहृदय व्यक्ति थे। जन मनोरंजन के उद्देश्य से उन्होंने पहेलियों, मुकरियों और गजलों की रचना की थी। इनकी पहेलियों में मनोरंजन के साथ कहीं कहीं जीवन पर गहरा व्यंग्य भी है। इनकी भाषा में खड़ी बोली का रूप देखकर यही अनुमान किया जा सकता है कि आदिकाल में यद्यपि साहित्यिक भाषा व्यापक रूप से खड़ी बोली नहीं थी, किन्तु बोलचाल के रूप में उसका प्रयोग अवश्य होता था। खुसरो की एक पहेली उदाहरण रूप में देखिए:

एक थाल मोतिन सों भरा,
सबके सिर पर औंधा धरा,
चारों ओर वल थाल फिरे
मोती उससे एक न गिरे।

4.3.4 काव्य धाराओं का मूल्यांकन

BRAOU

आदिकालीन काव्यधाराओं का साहित्यिक दृष्टि से मूल्यांकन किया जाए तो किन्हीं विशेष सौन्दर्य शास्त्रीय और कलागत मूल्यों का समावेश इनमें दिखाई नहीं देता। अभिव्यंग्य पक्ष में ऐसे तत्वों की अधिकता नहीं है जो उच्च मूल्यों पर प्रतिष्ठित जीवनोत्कर्ष की प्रेरणा देने वाले हों। ऊपर जिन विविध धाराओं का विवरण दिया गया है उनमें से किसी की भी जीवन परिधि व्यापक नहीं है, सब का जीवन विषयक दृष्टि कोण सीमित है, वे सीमाएँ या तो धार्मिक संप्रदायगत है, या दरबारी परिवेशगत। इनके लेखकों में से किसी की भी दृष्टि जीवन की सर्वागीणता को आत्मसात करके चलनेवाली नहीं है। इसीलिए इन रचनाओं के प्रभाव क्षेत्र भी एकपक्षीय है, संपूर्ण जनसमाज को समान रूप में प्रभावित करने का न, इन रचनाओं का उद्देश्य रहा है और न इनमें वैसी सामर्थ्य है। अभिव्यक्ति पक्ष में भी ऐसा कुछ नया ये कवि नहीं दे पाये, जो संस्कृत काव्यपरंपरा और अपभ्रंश काव्य परंपरा की अपेक्षा में अनूठा कहा जा सके, जिसमें अभिव्यक्ति कौशलों की नवीन उद्भावनाएँ हों।

सिद्धों और नाथों का साहित्य तो वस्तुतः धार्मिक सिद्धांत प्रतिपादन और उपदेश-प्रचार के उद्देश्य से ही लिखा गया है। ऐसे साहित्य में किसी प्रकार का सौन्दर्य संवेदना अथवा रससंवेदना की आशा नहीं की जा सकती। इस दृष्टि से तो उसमें सर्वत्र रूक्षता का ही साम्राज्य है। हां, अभिव्यक्ति शैली में संध्याभाषा या उलटबासी परक रहस्यात्मक उक्तियाँ ऐसी प्रतीक योजना सामने रखती हैं जो सामान्य पाठक में विचित्र कौतुहल उत्पन्न करके उसे चौकाती हैं। ऐसी उक्तियों से उसकी साहित्यिक रुचि उत्प्रेरित होने के स्थान पर विमूढ़ ही होती है।

जैन साहित्य में भी जो अंश सिद्धांत प्रतिपादन और उपदेशपरकता का है, रूक्ष, और नीरस है। चरिताख्यानों में जैन कवियों ने जहाँ सामान्य लौकिक जीवन का चित्रण किया है, वे स्थूल सौन्दर्यपरक और भावप्रेरक हैं। प्रकृति चित्रण विधान भी कहीं कहीं रम्य है।

लौकिक साहित्य धारा के अंतर्गत, लौकिक प्रेमाख्यानों में संयोग और वियोग के मार्मिक चित्र हैं। आदिकाल की ऐसी रचनाओं को ही स्वतंत्र जीवनोन्मेष परक रचनाएं कहा जा सकता है। रूढ़ काव्य परंपराओं और काव्यशास्त्रीय लक्षणों से भी ये रचनाएँ अधिक आबद्ध नहीं है। साहित्य का प्रकृत संवेद्य रूप इन रचनाओं में निहित है। विद्यापति के पदों में एक अपूर्व सौंदर्य दृष्टि और मधुर भाव-व्यंजना मिलती है जिनके कारण उनको "मैथिली कोकिल" और "अभिनव जयदेव" की उपाधियाँ मिली है।

ऐतिहासिक "रासो" काव्यों का सम्यक् साहित्यिक मूल्यांकन तब तक संभव नहीं जब तक कि इस बात का निर्णय न हो जाए कि इन रचनाओं का मूल अंश कौन सा है? और प्रक्षिप्त अंश कौन था? फिर भी समग्र रूप से इन पर विचार किया जाए तो यह धारणा बनती है कि इन रचनाओं के लेखकों की दृष्टि में जीवन संबंधी नयी मूल्य चेतना का अभाव है। युद्धों के संदर्भ में जिस शौर्य का ओजोमय गान इन्होंने किया है, वह किसी उदात्त राष्ट्रीय भावना से प्रेरित नहीं है, आश्रयदाता चरित् नायकों की व्यक्तिगत वीरता का बखान मात्र है। इन रचनाओं के द्वारा उच्च सामाजिक आदर्श या उज्जवल सांस्कृतिक मान व्यंजित नहीं हुए हैं। संघर्षपूर्ण युग में जीवन के तीव्रमंथन में प्राप्त नवीन अनुभव संपदा एवं अभिनव सौन्दर्य बोध को उस युग के साहित्यकार वाणी दें, ऐसी आशा की जा सकती थी, किन्तु इस काल के चारण कवियों से इस दिशा में निराशा ही हाथ लगती है।

खुसरो की पहेलियाँ आदि का मनोरंजन परक साहित्य व्यापक जन रूचि का साहित्य तो है, किन्तु उसका महत्व मनोरंजन से अधिक कुछ नहीं है। भाव प्रेरकता और कलात्मक मूल्य की दृष्टि से वह शून्य है।

4.3.4 काव्य रूप और भाषा

काव्य रूपों की दृष्टि से आदिकालीन साहित्य को दो प्रधान विभागों में रखा जा सकता है।

1. प्रबंध रचनाएं, 2. मुक्त रचनाएं

जैन चरित काव्य अधिकतर प्रबंधात्मक हैं। लौकिक आख्यान काव्यों में भी प्रबंध पद्धति का निर्वाह हुआ है। वीरगाथा परक रासों काव्य भी प्रबंध रचनाएं हैं।

जैन कवियों ने चरितकाव्यों के लिए अधिकतर चौपाई, दोहाशैली को अपनाया है। संपूर्ण प्रबंध रचना इसी शैली पर आधारित रहती है। यह शैली अपभ्रंश से प्राप्त हुई है। वहां इसे पछड़िया बंध कहा जाता है। यह 16 मात्राओं का छन्द होता है। आठ-आठ पंक्तियों के बाद छत्ता देने की पद्दति है जिसे कड़बक कहते हैं। इसी के समानांतर हिन्दी रचनाओं में आठ-आठ चौपाइयों के बाद एक दोहे का प्रयोग मिलता है। कहीं-कहीं दोहे के स्थान पर सोरण भी रहता है। लौकिक प्रेमाख्यानों में भी इसी प्रकार चौपाई दोहा शैली है। कहीं-कहीं हरिगीत का छंद का भी प्रयोग मिलता है।

रासो प्रबंध रचनाएँ कवित्व छप्पय शैली में हैं। उनमें कहीं-कहीं तोटक, तोमर और कुंडलिया छंदों का प्रयोग भी हुआ है। वीरगाथात्मक रचनाओं में पृथ्वीराज रासों का विशेष महत्व है। उसे महाकाव्य कहने की प्रवृत्ति भी रही है। किन्तु जब यह सिद्ध हो चुका है कि वह जिस बृहदाकार में उपलब्ध है, वह अधिकतर प्रक्षिप्त है, इसलिए इस कृति पर महाकाव्य के लक्षणों को घटित करने का कोई औचित्य नहीं है। पृथ्वीराज के युद्धों और प्रेम प्रसंगों का वर्णन करनेवाला इसका मूल रूप प्रबंध काव्य ही रहा होगा। महा काव्यात्मक विराट और उदार चेतना उसमें नहीं रही होगी।

उस काल के प्रबंध काव्य का एक रूप वीरगीतों का भी है। बीसलदेव रासों और परमाल रासों इसके उदाहरण है। ये काव्य मुख्यतः गेय रूप में मौखिक और परंपरा में जीवित रहा हैं, अतः इनकारूप परिवर्तित होता आया है।

BRAOU

मुक्तकों की दृष्टि से आदिकाल में एक तो दोहा साहित्य है, दूसरे गेय पदों के रूप में चर्या पद है।

दोहों का इस युग में व्यापक प्रयोग मिलता है। हिन्दी को दोहा अपभ्रंश से उत्तराधिकार में मिला है। शुक्ल जी के शब्दों में "जैसे गाथा कहने से प्राकृत का बोध होता था, वैसे ही दोहा या दूहा कहने से अपभ्रंश या काव्य भाषा का पद्य समझा जाता था।"

धर्म, नीति,श्रृंगार और वीर सब प्रकार की रचनाओं के लिए दोहा छंद का प्रयोग होता था। शुक्ल जी के ही शब्दों में "आदिकाल की इस दीर्घ परंपरा के बीच प्रथम डेढ़ सौ वर्षों के भीतर तो रचना की किसी विशेष प्रवृत्ति का निश्चय नहीं होता है- धर्म, नीति, श्रृंगार-वीर सब प्रकार की रचनाएं दोहों में मिलती हैं।"

सिद्धों और नाथों के साहित्य में धार्मिक सिद्धांत-कथन और उपदेश परक उक्तियों का माध्यम मुक्तक रूप में दोहा ही रहा है। राजाश्रित चारण कवि भी वीरगाथाओं के अतिरिक्त राजसभाओं में जो रचनाएँ प्रस्तुत करते थे वे नीति और श्रृंगारपरक फुटकर दोहों के रूप में ही होती थीं। जैन कवियों द्वारा भी चरित काव्यों के अतिरिक्त अन्य प्रसंगों के वर्णन में मुख्य रूप में दोहा अपनाया गया है, देवसेन का श्रावकाचार दोहों में ही है।

सिद्ध साहित्य में दोहों के अतिरिक्त मुक्तक गेय रचनाओं के रूप में चर्यापद मिलते हैं। ये पद विशिष्ट राग रागिनियों में लिखे गये हैं। विद्यापति की पदरचना को प्रथम साहित्यिक गेय रचना कह सकते हैं।

4.3.5 भाषा

आदिकालीन हिन्दी साहित्य की जिन विविध काव्यधाराओं का परिचय दिया गया, उनमें व्यापक दृष्टिसे भाषा के दो रूप मिलते हैं। पहला वह रूप है जिसे उत्तर अपभ्रंश, पुरानी हिन्दी, अवहट्ट, अपभ्रंश मिश्रित देशभाषा आदि नाम दिये गये हैं। और दूसरा रूप है देशभाषा हिन्दी का। सिद्धों जैनों, और नाथों के साहित्य में भाषा का पहला रूप है। चारण कवियों की वीरगाथात्मक रासो रचनाओं में भाषा का दूसरा रूप है।

संस्कृत के बाद अथवा उसके समानांतर क्षेत्रीय अनेक प्राकृतें विकसित हुई। इन प्राकृतों का विकास तद्नुरूप अनेक अपभ्रंशों में हुआ। राजस्थान से लेकर बिहारतक के विशाल क्षेत्र में नागर, मागधी और अर्धमागधी अपभ्रंशों का प्रचलन था। राजस्थान और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में शौरसेनी अपभ्रंश, बिहार में मागधी अपभ्रंश और इन दोनों के बीच के क्षेत्र में अर्धमागधी अपभ्रंश का प्रयोग था। इन तीनों से हिन्दी के जो रूप विकसित हो रहे थे, उन में परस्पर भिन्नता थी।

सिद्धोंकाप्रचार क्षेत्र पूर्व में रहा, उनकी भाषा पर मागधी अपभ्रंश काप्रभावहै। अतः उनकी भाषा में "मइलें", "बूढिलि" जैसे पूरबी प्रयोग मिलते हैं। नाथों का प्रचार क्षेत्र पश्चिम में था, इस कारण उनकी भाषा पर शौरसेनी अपभ्रंश का प्रभाव लक्षित होता है। जैनों की भाषा पर अर्धमागधी अपभ्रंश का प्रभाव है।

चारण कवियों के रासो ग्रंथ उस देशभाषा हिन्दी में है जिसका विकास नागर अथवा शौरसेनी अपभ्रंश में हुआ।

आदिकालीन साहित्य के भाषा संबंधी इस विवेचन के पश्चात् उस काल की भाषा के संदर्भ मे कतिपय अन्य नाम भी सामने आते हैं। वे हैं संध्या भाषा, डिंगल और पिंगल। इनका विचार भी यहाँ अपेक्षित हैं।

संध्याभाषाः

जनता पर प्रभाव जमाने के लिए सिद्धों ने ऐसी भाषा का सहारा लिया था जिसमें अटपटापन था। इस भाषा में मंत्रपरकता और गुह्य प्रतिकात्मकता थी। इस भाषा को संध्या भाषा कहा जाता है। इसकी व्यख्या इस प्रकार की गयी है कि जो संध्या के समान अस्पष्ट हो। अन्य विद्वानों ने संधिदेश की (बिहार और बंगाल की सीमा की) भाषा के रूप में इसका अर्थ लिया। कुछ लोगों ने कहा कि यह संधा भाषा है। जिसका अर्थ है (संस्कृत, संधाय-अभिप्रेत) अभिसंधियुक्त अथवा अभिप्रायुक्त भाषा। इस प्रसंग में डॉ. रामकुमार वर्मा का मत अधिक समीचीन जान पड़ता है। उन्होंने संध्या भाषा का अर्थ संधिकाल की भाषा (अपभ्रंश और हिन्दी के मध्य की भाषा) किया है। उनके शब्दों में- "इस भाषा से अपभ्रंश की अंतिम अवस्था ज्ञात होती है।" संध्याकाल का प्रयोग किसी अवस्था के अंतिम भाग की सूचना देने के लिए होता है। अतः इस शब्द को साधारण अर्थ में ही लेना चाहिए।

डिंगल और पिंगलः

पिंगल नाम का संबंध छंदशास्त्र के आदि आचार्य पिंगलाचार्य से है। प्राकृत पैंगलम जैसे छंदशास्त्र के ग्रंथ से भी इसका संबंध जुड़ता है। इस भाषा का अपना व्यकरण और पृथक छंद शास्त्र था, संभवतः इसी कारण से, अपभ्रंश की छंद परम्परा से, इसके छंदों का पार्थक्य बोध कराने के लिए इसे पिंगल कहा जाने लगा। यों, वह वही भाषा है जिसका विकास शौरसेनी अथवा नागर अपभ्रंश से हुआ और जो ब्रजभाषा और खड़ीबोली के निकट हैं। संपूर्ण ब्रजप्रदेश में ही नहीं, पूर्वी क्षेत्रों में भी परिनिष्ठित काव्य भाषा के रूप में इसका व्यवहार होता था।

पिंगल के समानांतर ही, राजस्थान के डिंगलक्षेत्र में काव्यभाषा के रूप में प्रयुक्त भाषा रूप को डिंगल कहा जाने लगा। राजस्थान के चारण, भाट, राव, भोतीसर इत्यादि जातियों के लोगों ने डिंगल में विशेष प्रकार के साहित्य की रचना की। निष्कर्ष यह है कि डिंगल राजस्थान की साहित्य भाषा का नाम था, और पिंगल ब्रजदेश की साहित्य की भाषा का।

विद्यापति की भाषा मैथिली है जो एक और बंगाली ओर दूसरी पूर्वी हिन्दी से मिलती जुलती है। उन्होंने संस्कृत तत्सम शब्दों का प्रयोग करते हुए स्थानीय बोली को साहित्यिक रूप दिया है।

BRAOU

4.4 पाठ का सारांश

हिन्दी के आदिकालीन सहित्य का युग एक ऐसा युग था जिसमें भारतीय राष्ट्रीय संस्कृति एक उच्च शिखर से ढलान पर नीचे की ओर पढ़ रही थी। अवरोह का यह क्रम धर्म, समाज, राजनीति, व्यक्ति और समूह, जीवन के सभी आयामों में लक्षित हो रहा था।

आदिकाल में बौद्ध और जैन धर्मों की ह्रासशील स्थिति थी, अतः इन धर्मों के संदर्भ में इस काल में जो साहित्य रचित हुआउसका अधिकांश प्राणहीन और शुष्क है, जीवन की नवस्फूर्ति से रहित है। दरबारी परिवेश में रचित साहित्य में भी जीवंतता और ऊँचे आदर्शों का अभाव है। भाट और चारणों द्वारा लिखा गया, राजस्तुतिपरक साहित्य, जीवन की स्वाभविक सरणियों से दूर, भोगविलास की चकाचौंध उत्पन्न करनेवालाहै। इस काल में जो लौकिक प्रेमाख्यान लिखे गये उनमें साहित्यिक परंपरा और रूढ़िपालन का भाव ही अधिक है। इसी प्रकार नीति और श्रृंगार के मुक्तक तथा पहेलियाँ आदि का मनोरंजनपरक साहित्य भी साहित्यिक नवोन्मेष और स्फूर्तिमयता से रहित तंग दायरे का साहित्य ही है।

आदिकाल में रचित शुद्ध अपभ्रंश भाषा की रचनाओं को हिन्दी साहित्य में सम्मिलित करना उचित नहीं है। हां, ऐसी भाषा का साहित्य जो अपभ्रंश के क्रोड़ से निकल कर देशभाषा का रूप धारण कर रही थी, और जिसे ग्राम्य अपभ्रंश, उत्तर अपभ्रंश, अवहट्ट अपभ्रंश, पुरानी हिन्दी आदि नामों से जाना गया है, हिन्दी साहित्य में स्थान पाने का अधिकारी है।

आदिकाल की संपूर्ण सामग्री को चार धाराओं में रखा जा सकता है:

1. सिद्ध साहित्य
2. जैन साहित्य
3. नाथ साहित्य
4. लौकिक साहित्य

बौद्ध धर्म की महायान शाखा में मंत्रायान का विकास हुआ। मंत्रों द्वारा सिद्धि प्राप्त करने की युक्ति का प्रचार करनेवाले साधक "सिद्ध" नाम से प्रसिद्ध हुए। सिद्धों की संख्या चौरासी कही गयी है। उनमें से केवल चौदह ने काव्यरचना की है। सिद्ध साहित्य मुख्यतः दो काव्य रूपों में उपलब्ध है। 1. दोहा कोष, 2. चर्यापद। प्रमुख सिद्ध कवियों में सरहपा, शबरपा, लुइपा की गणना है।

जैन साहित्य को मुख्यतः तीन भागों में रखा जा सकता है: (1) तीर्थकारों आदि से संबंधित चरित साहित्य, (2) श्रावकों (ग्रहस्थों) के आचार, (3) काव्यात्मक प्रेमाख्यान। जैन साहित्य की उल्लेख्य रचनाएं हैं: श्रावकाचार, भरतेश्वर, बाहुबलीरास, चंदन वालारास, स्थूलिभद्ररास, रेवंतगिरीरास, नेमिनाथरास आदि।

सिद्धमत से ही नाथपंत का उदय हुआ। इस मत के प्रवर्तक गोरखनाथ ने शैवधर्म और हठयोग का आश्रय लिया। उन्होंने संयम-सदाचार, और त्याग-तपस्या का महत्व स्थापित किया। "गोरखबानी" नाम से गोरखनाथ की रचनाओं का एक संकलन प्रकाशित हुआ है। नाथ पंथ के अन्य कवियों में चौरंगीनाथ, गोपीचंद, चुणकरनाथ, भरथरी, जालन्धनाथ आदि के नाम उल्लेखनीय है।

लौकिक साहित्य के अंतर्गत मुख्यतः "रासो" काव्यों की गणना है। ये दो कोटि के हैं (1) वीरगाथात्मक और (2) लौकिक प्रेमाख्यानपरक। इसके अतिरिक्त मनोरंजनपरक रचनाएं भी लौकिक साहित्य की कोटि में आती है।

रासो काव्यों की प्रामाणिकता के विषय में संदेह किया गया है। वस्तुतः ये इस प्रकार की रचनाएं है जिनको आदिकाल में रचित मूलरूप के साथ आगे के समय में अनेक प्रक्षेपों का योग होता चला है। वीरगाथात्मक रासो काव्यों में प्रमुख है: खुमाण रासो, बीसलदेव रासो, परमाल रासो, और पृथ्वीराज रासो। लौकिक काव्यों के प्रेमाख्यानों में "ढोला मारू रा दोहा" और "बसंत विलास" की गणना है।

मनोरंजन परक साहित्य में खुसरो की पहेलियों का प्रमुख स्थान है, जिनमें मनोरंजन के साथ ही कहीं-कहीं जीवन पर गहरा व्यंग्य भी है। उनकी भाषा में खड़ी बोली के बहुत से प्रयोग मिलते हैं।

विद्यापति की रचना में भक्ति और श्रृंगार का संगम है।

काव्यरूपों की दृष्टि से विचार करने पर आदिकालीन साहित्य को प्रबंध और मुक्तक इन दो व्यापक विभागों में रख सकते हैं। जैन चरित काव्य अधिकतर प्रबंधात्मक है। लौकिक आख्यान काव्यों में भी प्रबंध पद्धति है। वीरगाथात्मक रासो काव्य भी प्रबंध रचनाएं हैं। जैन कवियों के चरितकाव्यों में अधिकतर दोहा-चौपाई शैली है; लौकिक प्रबंध काव्यों में इस शैली के अतिरिक्त हरिगीतका छंद का प्रयोग भी मिलता है। रासो प्रबंध रचनाएं कवित्व छाप्पय शैली में हैं।

मुक्तकों की दृष्टि से आदिकाल में एक तो दोहा साहित्य है, दूसरे गेय पदों के रूप में चर्यापद है। धर्म, नीति, श्रृंगार और वीर सब प्रकार की रचनाएं दोहों में मिलती हैं। सिद्धों और नाथों का अधिकांश धार्मिक साहित्य भी दोहों में ही है। जैन कवियों ने चरितकाव्यों के अतिरिक्त अन्य प्रसंगों के वर्णन में दोहा छंद ही अपनाया है। देवसेन का "श्रावकाचार" दोहों में है। सिद्ध साहित्य में गेय रचनाओं के रूप में "चर्यापद" मिलते हैं जो राग रागिनियों में लिखे गये हैं। विद्यापति ने साहित्यिक पद रचना आरंभ की है।

BRAOU

भाषा की दृष्टि से सिद्धों, जैनों और नाथों का साहित्य अपभ्रंशभास हिन्दी में रचित है। चारणों का रासो साहित्य देशभाषा हिन्दी में है। इस काल की भाषा के संदर्भ में "संध्याभाषा", "डिंगल" और "पिंगल" पद विशेष विचारणीय हैं। विद्यापति के पदों की भाषा मैथिली है।

4.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न

1. आदिकालीन साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों का परिचय दीजिये।
2. आदिकालीन काव्य को किन प्रमुख धाराओं में विभाजित कर सकते हैं? किसी एक धारा का विवरण दीजिये।
3. आदिकालीन साहित्य के काव्यरूपों का परिचय दीजिये।

4.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न

1. सिद्ध साहित्य की विशेषताओं का उल्लेख कीजिये।
2. जैन चरितकाव्यों का संक्षिप्त परिचय दीजिये।
3. रासो ग्रंथों की प्रामाणिकता क्यों संदिग्ध है?

4.7 नमूने के प्रश्नोत्तर

4.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर

प्रश्न : आदिकालीन साहित्य के काव्यरूपों का परिचय दीजिये?
उत्तर : काव्यरूपों की दृष्टि से आदिकालीन साहित्य को दो प्रधान विभागों में रखा जा सकता है (1) प्रबंध काव्य रचनाएँ (2) मुक्तक रचनाएँ

जैन कवियो ने चरित काव्यों के लिये अधिकतर चैपाई-दोहा शैली को अपनाया है। सम्पूर्ण प्रबंध रचना इसी शैली पर आधारित होती है। यह शैली अपभ्रंश से प्राप्त हुई है। वहाँ इसे पछड़िया बंध कहा जाता है। पछड़िया 16 मात्राओं का छंद होता है। आठ-आठ पंक्तियों के बाद छत्ता देने की पद्धति है जिसमें एक दोहे का प्रयोग मिलता है। कहीं कहीं दोहे के स्थान पर सोरण भी रहता है। लौकिक प्रमाख्यानों में भी इसी प्रकार चौपाई दोहा शैली है। कहीं कहीं हरिगीतिका छंद का प्रयोग भी मिलता है।

"रासो" प्रबंध रचनाएं कवित्त छप्पय शैली में हैं। उनमें कहीं कहीं तोटक, तोमर और कुंडलिया छंदों का प्रयोग भी हुआ। वीरगाथात्मक रचनाओं में पृथ्वीराज का विशेष महत्व है। उसे महाकाव्य कहने की प्रवृत्ति रही है।

उस काल के प्रबंध काव्यों का एक रूप वीरगीतों का भी है। बीसलदेवरासो और परमालरासो इसके उदाहरण हैं। ये काव्य मुख्यतः गेय रूप में मौखिक परंपराओं में जीवित रहे हैं। अतः इनका रूप परिवर्तन होता आया है।

मुक्तकों की दृष्टि से आदिकाल में एक तो दोहा साहित्य है। दूसरे गेयपदों के रूप में चर्यापद है।

दोहों का इस युग में व्यापक प्रयोग मिलता है। हिन्दी को दोहा अपभ्रंश से उत्तराधिकार में मिला है। शुक्लजी ने कहा कि जैसे "गाथा" कहने से प्राकृत का बोध होता है, वैसे ही "दोहा" या "दूहा" कहने से अपभ्रंश या काव्य भाषा का पद्य समझा जाता था।

BRAOU

धर्म जाति, नीति, श्रृंगार और वीर सब प्रकार की रचनाओं के लिए दोहा छंद का प्रयोग होता था।

सिद्धों और नाथों के साहित्य में धार्मिक सिद्धान्त में कथन और उपदेशपरक उक्तियों का माध्यम मुक्तक रूप में दोहा ही रहा है। राजाश्रित चारण कवि भी, वीरगाथाओं के अतिरिक्त राजसभाओं में जो रचनाएँ प्रस्तुत करते थे वे नीति और श्रृंगार परक दोहों के रूप में ही होती थीं। जैन कवियों द्वारा भी चरित काव्यों के अतिरिक्त अन्य प्रसंगों के वर्णन में मुक्तक रूप में दोहा अपनाया गया है। देवसेन का "श्रावकाचार" दोहों में ही है।

सिद्ध साहित्य में दोहों के अतिरिक्त मुक्तक गेय रचनाओं के रूप में चर्यापद मिलते हैं।

प्रश्न : रासो ग्रंथों की प्रामाणिकता क्यों संदिग्ध है?
उत्तर : रासो ग्रंथों की प्रामाणिकता के विषय में संदेह के अनेक आधार हैं। एक तो यह कि इन में भाषा का रूप उस काल का न होकर परवर्ती है। दूसरे यह कि इनमें वर्णित घटनाएँ और तथ्य इतिहाससंगत नहीं हैं। वस्तुतः इस प्रकार की रचनाएं राजाओं के चरित और उनकी प्रशंसा के लिए लिखी जाती थीं। होता यह था कि जिस राजा के चरित का वर्णन किसी रासो में किया जाता था, उस राजा के उत्तराधिकारी अपने आश्रित अन्य कवियों से उस रासो में अपना चरित भी सम्मिलित करा लेते थे। इस तरह मूल रचना प्रक्षिप्त अंशों के साथ प्रस्फलित होती चलती थी और उसकी भाषा में भी अन्तर आता रहता था। फिर कारनामों का बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन करने की दृष्टि से अनेक घटनाओं और तथ्यों की कल्पना कर लिया करते थे। ऐसी रचनाओं में इतिहास को खोजना सार्थक प्रयास नहीं है।

4.7.2 'ब' श्रेणी के प्रश्नोत्तर

प्रश्न : गोरखनाथ पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
उत्तर : राहुल सांस्कृत्यायन जी के अनुसार गोरखनाथ का समय 845 ई. है। शुक्लजी ने उन्हें तेरहवीं शताब्दी का कहा है।

गोरखनाथ नाथपंथ के संस्थापक थे। चौरासी सिद्धों में इनकी गणना है। सिद्धों की वाममार्गी साधना का विरोध करके इन्होंने शैवदर्शन और हठयोग के आश्रय से संयम-सदाचार और त्याग-तपस्यापरक धर्ममार्ग का उपदेश दिया। वही नाथ पंथ कहलाया।

गोरखनाथ की रचनाओं का संग्रह डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने गोरखवाणी शीर्षक में प्रकाशित किया है।

BRAOU

4.8 पठनीय पुस्तकें

हिन्दी साहित्य का इतिहास	:	आचार्य रामचंद्र शुक्ल
हिन्दी साहित्य का आदिकाल	:	आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
हिन्दी साहित्य	:	"उद्भव और विकास": आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
हिन्दी साहित्य की भूमिका	:	आचार्य हजीरी प्रसाद द्विवेदी
हिन्दी साहित्य का अतीत (दो भाग)	:	आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	:	डॉ. रामकुमार वर्मा
हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास	:	डॉ. गणपति चंद्र गुप्त
हिन्दी साहित्य का इतिहास	:	संपादक, डॉ. नागेन्द्र

इकाई-1: भक्तिकाल: सामाजिक सांस्कृतिक संदर्भ

1.0 विषय प्रवेश
1.1 उद्देश्य
1.2 पाठ परिचय
1.3 मूल पाठ
  1.3.1 भूमिका
  1.3.2 राजनीतिक संदर्भ
  1.3.3 सामाजिक संदर्भ
  1.3.4 धार्मिक संदर्भ
  1.3.5 सांस्कृतिक संदर्भ
  1.3.6 प्रेरणासूत्र और प्रभाव
1.4 सारांश
1.5 शब्दार्थ
1.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
  1.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न
  1.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न
1.7 नमूने के प्रश्नोत्तर
  1.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर
  1.7.2 'ब' श्रेणी के प्रश्नोत्तर

1.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ में भक्तिकालीन सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ पर प्रकाश डाला गया है। इस पाठ के अध्ययन से आप:

- हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल की सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों पर विचार कर सकेंगे
- तत्कालीन राजनीतिक और धार्मिक परिस्थितियों का अवलोकन कर सकेंगे
- भक्तिकाल की सामान्य विशेषताओं पर प्रकाश डाल सकेंगे
- भक्ति आंदोलन में दक्षिण भारत के योगदान पर प्रकाश डाल सकेंगे

BRAOU

1.2 पाठ परिचय

हिन्दी साहित्य के आदिकाल में सिद्धों, नाथों और जैनों के साहित्य के साथ वीरता और श्रृंगारपरक लौकिक चरित काव्यों (गाथाओं) की जो परंपरा रही, चौदहवीं शताब्दी में वह क्षीण पड़ गयी, बदली हुई जीवन परिस्थितियों से जन-चेतना में परिवर्तन-उत्पन्न हुआ और वह परिवर्त एक नये प्रकार के साहित्य में रूपायित हुआ। इस नये प्रकार के साहित्य को "भक्ति साहित्य" कहा गया क्योंकि वह भक्ति भावना अर्थात् परम सत्ता के प्रति प्रेम भावना पर आधारित था। भक्ति के अनेकानेक रूपों और आयामों के अनुसार इस साहित्य में रूपगत वैविध्य भी रहा। किंतु लगभग सवा तीन सौ वर्षों तक मूल चेतना के रूप में भक्ति की भावना साहित्य को अनुप्रणित करती रही। उसके बाद भक्ति की चेतना क्षीण पड़ने लगी और लौकिक श्रृंगार परक परिणति पायी गयी। इसलिए हिन्दी साहित्य के इतिहास में सन् 1318 से 1648 तक के काल को "भक्ति काल" कहा गया है।

प्रस्तुत प्रसंग में इस काल का अध्ययन हम तीन भागों, चरणों में करेंगे। पहले चरण में हम भक्ति साहित्य के सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ को स्पष्ट करेंगे, दूसरे चरण में उसकी नवीन चेतना और प्रवृत्तियों का विश्लेषण करेंगे, तथा तीसरे चरण में भक्ति साहित्य के अंतर्गत विविध काव्य धाराओं, काव्य-रूपों और भाषा का विचार करेंगे।

इसी क्रम में भक्ति काल से संबंधित तीन पाठों में से पहले पाठ में भक्ति काल की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का विवेचन किया गया है। भक्ति चेतना के प्रेरणा स्त्रोतों का निर्देश भी इस उद्देश्य से किया गया है कि भक्ति साहित्य की प्रवृत्तियों और काव्य धाराओं के सम्यक् आंकलन का पथ प्रशस्त हो।

1.3 मूलपाठ

1.3.1 भूमिका

हिन्दी साहित्य के आदिकाल (आठवीं शताब्दी से तेरहवीं शताब्दी तक) में तत्कालीन परिस्थितियों से प्रभावित साहित्य का जो स्वरूप था, उसमें परिवर्तन के लक्षण उसी काल में दिखाई देने लगे थें। विदेशियों के निरंतर आक्रमणों और आतंक ने जन जीवन को अस्थिर कर दिया था और यह अस्थिरता साहित्य में भी आये बिना न रह सकी थी। मुसलमानी सत्ता का जैसे जैसे विस्तार हो रहा था, इस देश के राजाओं की सत्ता बिखरती जा रही थी। अतः कवियों के लिए आश्रयदाता नहीं रह गये थे। चारणों द्वारा रचित वीरता और श्रृंगार के काव्यों की परंपरा क्षीण पड़ने लगी थी।

मुसलमान यदि केवल लूट पाट करके ही चले जाते तो यहां के जनजीवन में उतना विक्षोभ उत्पन्न नहीं होता। किंतु मुसलमान विजेताओं ने इस देश को अपनी संपत्ति मान कर उस पर शासन आरंभ किया। उनमें विजय दर्प था, इसलिए यहां के जनमानस को आतंकित करने के उद्देश्य से वे अनेक प्रकार के अत्याचार करते रहते थे। फिर, उनका शासन राजनीति के क्षेत्र तक सीमित नहीं था, उसका एक जबरदस्त पक्ष था- इस्लामी धार्मिक उन्माद। इस्लाम धर्म अपने विस्तार क्रम में जहाँ-जहाँ गया, उसके एक हाथ में तलवार थी, और दूसरे हाथ में कुरान। भारत में भी उसकी वही रीति रही। हिन्दु मंदिरों को तोड़ना, केवल उनकी संपत्ति प्राप्त करने के लिए नहीं था, बल्कि मूर्तिपूजा के रूप में कुफ्र को समाप्त करने का उत्साह भी उसमें सम्मिलित था। साथ ही विजेता जाति में विलास-वृत्ति भी बढ़ रही थी। हिन्दु कन्याओं को मनमाने ढंग से उठवा लेना वे अपना अधिकार समझते थे।

BRAOU

बहुत प्राचीन काल से इस देश में अनेकानेक जातियाँ आती रही थीं। यहाँ पर पहले से रह रहे लोगों के साथ उनके संघर्ष भी हुए थे, किंतु कालक्रम से वे यहाँ के जीवन में घुल मिल गयी थी। बहुत पहले व्रात्य, नाग, सुपर्ण, यक्ष, किन्नर, राक्षस, दैत्य, दानव आदि आये थे, बाद के युगों में शक, हूण, कुशाण आदि आये। सबके योग से एक व्यापक संस्कृति विकसित होती रही। किंतु मुसलमानों की रीति-नीति और जीवन दृष्टि बहुत भिन्न थी। उनकी राजनीतिक और धार्मिक महत्वाकांक्षा ने इस देश के निवासियों के अस्तित्व पर प्रश्न चिह्न लगा दिया।

जिन हिन्दू राजाओं में आत्म सम्मान और शक्ति की मात्रा शेष थी, वे उसकी रक्षा का प्रयास कर रहे थे, किंतु जैसी व्यवस्था पहले से चली आ रही थी, उसमें जनजीवन के साथ राजाओं का घनिष्ठ और आत्मीय संबंध नहीं था। हिन्दू-समाज अनेक प्रकार से विभाजित था। देश की रक्षा का दायित्व एक वर्ग-क्षत्रियों तक सीमित रह गया था, अन्य वर्ग उस ओर से उदासीन थे। शूद्रों को इतना अपमानित और पददलित करके रखा गया था कि उनमें देश और जाति की गौरव-रक्षा के प्रति उदासीनता का भाव आ गया था।

इन बदली हुई युग परिस्थितियों ने साहित्य के नये स्वरूप को जन्म दिया। चरित काव्यों के रूप में जो लौकिकता परक रचनाएँ होती आयी थीं, वैसी रचनाओं के लिए अवकाश नहीं रह गया। घोर सांस्कृतिक संकट में जातीय अस्मिता की रक्षा के भाव से जो नया साहित्य लिखा जाने लगा उसे विद्वानों ने भक्ति साहित्य नाम दिया। इस प्रकार का साहित्य लगभग सवा तीन सौ वर्षों तक बहुत उत्साह पूर्वक लिखा जाता रहा। और वह ऐसी उत्कृष्ठता को पहुँचा कि उसके आधार पर उस काल को हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग कहा जाता है। इस काल का सीमा-विस्तार सन् 1318 से 1643 तक है।

परम सत्ता-ईश्वर के साथ श्रद्धापूर्ण प्रेम संबंध ही भक्ति है। इस भाव पर आधारित रचनाएं पूर्ववर्ती काल-आदिकाल में भी सिद्धों, नाथों और जैनों के साहित्य में होती रही थी, और पूर्ववर्ती कालों-रीतिकाल और आधुनिक काल में भी होती रही। किन्तु अन्य कालों के भक्ति साहित्य में भक्ति भाव की न उतनी तीव्रता है, न उतनी सघनता। भक्ति काल में जो साहित्य रचित हुआ उसका एक आंदोलनात्मक रूप रहा। उस आंदोलन में जातीय पुनर्गठन, अस्मिता की रक्षा, धार्मिक और सांस्कृतिक उन्नयन तथा विजातीय शक्ति के साथ सामंजस्य की भावनाएँ निहित थीं।

किन कारणों ने उस काल के साहित्य को ऐसा उत्कर्ष शील आंदोलनात्मक स्वरूप प्रदान किया, इस बात को समझने के लिए हमें उस काल की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के संदर्भ में तत्कालीन साहित्यिक प्रवृत्तियों को समझना होगा।

1.3.2 राजनीतिक संदर्भ

विदेशी आक्रमणकारियों के प्रभाव-विस्तार को रोक पाने में असफल इस देश के राजाओं की सत्ता समाप्त प्राय हो गयी थी। उत्तर भारत के ही नहीं, दक्षिण के हिन्दू राज्य भी एक-एक करके मुसलमानों के आधिपत्य में आते जा रहे थे। खिलजी वंश के अलाउद्धीन ने देवगिरि के यादव राजा रामचंद्र को पराजित कर उसका राज्य अपने अधीन कर लिया था, वरंगल और होयसिल के तथा महाराष्ट्र और कर्नाटक के राजाओं को भी उसने अपने अधीनस्थ कर लिया था।

BRAOU

बाद में केन्द्रीय शक्ति के रूप में क्रमशः तुगलक, सैयद और लोदी वंशों का उत्थान-पतन होता रहा। सन् 1325 से 1412 तक तुगलक वंश, उसके बाद 1451 ई. तक सैयद वंश, और फिर 1526 तक लोदी वंश का दिल्ली के शासक पद पर अस्तित्व रहा। उसके बाद केन्द्रीय सत्ता के रूप में मुगल वंश स्थापित हुआ। इस प्रकार इस युग में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो गया था। तो भी सुदूर प्रांतों के अधीनस्थ शासक, कभी कभी विद्रोह कर उठते रहे और कभी स्वतंत्र भी हो जाया करते थे। सारांश यह है कि उस काल में राजनीतिक उथल-पुथल उग्र रूप में नहीं था, तो भी यह पूर्ण शांति का काल नहीं था।

इस राजनीतिक परिवर्तनों का सीधा प्रभाव उस काल के साहित्य में प्रतिबिंबित नहीं दिखाई देता। विदेशी और विधर्मी शासकों के गुणगान में तो यहाँ के स्वाभिमानी कवि क्या प्रवृत्त होते, उनकी निंदा में भी वे प्रवृत्त नहीं हुए। बात यह है कि इस देश के जन समाज की सहिष्णुता केवल राजनीतिक, आर्थिक आदि भौतिक विषमताओं से विचलित नहीं होती। वह विचलित होती है तब जब उसके धार्मिक आध्यात्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों पर आँच आए। ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर भी उसकी प्रतिक्रिया उग्र और बहिर्मुखी न होकर, गहन अन्तर्मुखी होती है। इसलिए जब उसने राजनीतिक दबाव के अतिरिक्त धार्मिक और सांस्कृतिक दबाव महसूस किया तो अपने आध्यात्मिक मूल्यों में उसका समाधान खोजा। यह कहना उचित नहीं होगा कि इतने सारे राजनीतिक उलट फेर के पीछे हिन्दू जन समुदाय पर बहुत दिनों तक उदासी सी छाई रही। अपने पौरूष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और कुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दुसरा मार्ग ही क्या था। वास्तव में भक्ति साधना के रूप में भगवान की शक्ति और करूणा की ओर ध्यान ले जाने का कारण पौरूष से हताशा या दीनतापूर्ण आर्त भाव नहीं था, अपितु अपनी आन्तरिक शक्ति के केन्द्र से नया ओज और बल प्राप्त करने का अभिनव

उत्साह था। उस काल में रचित संपूर्ण भक्ति साहित्य में विधर्मी और विदेशी के प्रति किसी प्रकार की दुर्भावना का, प्रतिहिंसा का, अथवा दोषारोपण का भाव निहित नहीं है। भक्ति आत्मोपलब्धि का साधन है। अपनी आत्म शक्ति की महानता को पहचानने का साधन कहा गया है। "नारायणात्मा बलहीनेन लक्ष्यः" पौरुषहीन जाति आत्मोपलब्धि नहीं कर सकती। तो उस युग के भक्ति-आन्दोलन के पीछे पराजित जाति की पौरूषहीनता का बोध नहीं था। बल्कि इसके विपरित अपने जीवन मूल्यों पर विजातीय आघात से सचेत होकर नव शक्ति और नव स्फूर्ति प्राप्त करने की महत् साधना थी। इसीलिए तो उस साधना को अभिव्यक्ति देनेवाला भक्ति साहित्य इतना उच्च और उदात्त हो सका। इस साधना के प्रभाव से स्वयं मुस्लिम जनचित्त भी अछूता न रह सका, क्योंकि अलौकिक स्तर पर प्रेमचर्चा के साथ ही वह लौकिक स्तर पर भी प्रेम और सौहार्द का संदेश देनेवाली साधना थी।

1.3.3 सामाजिक संदर्भ

समाज के सुचारू संगठन की दृष्टि से आर्यों में वर्णाश्रम व्यवस्था थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र इन चारों वर्णों के सामाजिक कर्तव्य निर्धारित थे। यह विभाजन एक प्रकार का श्रम विभाजन था, व्यक्तियों की योग्यता, सामर्थ्य और स्वभाव के अनुरूप अर्थात उनके गुण कर्म के अनुसार उन्हें वर्ण-विशेष का माना जाता था। एक वर्ण से दूसरे वर्ण में प्रवेश वर्जित नहीं था। क्योंकि समाज के सामूहिक विकास के लिए सभी वर्णों का समान महत्व और गौरव था। किन्तु वह आदर्श व्यवस्था सदैव नहीं रह सकी। वर्णों के बीच ऊंच नीच का भेदभाव माना जाने लगा। ब्राह्मण, जिनका काम विधा का अध्ययन-अध्यापन और आचार व्यवहार आदि के संबंध में शास्त्रीय व्यवस्था देना था, वे अपने आप को अन्य वर्णों के बीच सर्वश्रेष्ठ मानने लगे। शासन, राज-संचालन और देश की रक्षा का भार क्षत्रियों पर था, उनका स्थान श्रेष्ठता क्रम में दूसरा हुआ। इसी प्रकार वाणिज्य पशुपालन और कृषि आदि के कार्यों में लगे रहनेवाले वैश्य वर्ण को तीसरे स्थान का तथा सब की सेवा चर्या में संलग्न शुद्र वर्ण को चौथे स्थान का अधिकारी माना पाने लगा। फिर व्यक्ति का वर्ण भी जन्म के आधार पर निर्धारित होने लगा; ब्राह्मण पुत्र ब्राम्हण और शुद्रका शुद्र। यह नियम क्रमशः कठोर होता गया और वर्णों का स्थान जातियाँ लेती गयीं। जातियों में भी फिर उपजातियों का विभाजन शुरू हुआ और उनके बीच श्रेष्ठता-अश्रेष्ठता का क्रम बढ़ने लगा।

पहले कहा गया कि इस देश में मुसलमानों के आगमन से पूर्व भी अनेक जातियों के लोग समय-समय पर आते रहे थे। जब यहां का समाज उदार था और वर्ण व्यवस्था कठोर नहीं थी तो नवागत जातियों के लोग अपनी योग्यता, क्षमता और रूचि आदि के अनुसार उपर्युक्त वर्णों में मिलकर भारतीय समाज से एकाकार हो जाते थे। जैसे-जैसे वर्ण व्यवस्था ऊंच-नीच भावना के कारण विकृत होती गयी और जातियों-उपजातियों के बीच क्षुद्र स्वार्थ-दृष्टि और परस्पर संदेह भाव बढ़ता गया। परिणाम यह हुआ कि समाज की सामूहिक शक्ति क्षीण होती गयी। किसी महत्, राष्ट्रीय अथवा जातीय उद्देश्य-सिद्धि के लिए समाज के सभी अंग एकजुट होकर प्रयत्नवान हो ऐसी स्थिति नहीं रह गयी। वस्तुतः इसी सामाजिक ह्रास और शक्ति के बिखराव ने विदेशी आक्रांताओं के लिए सफलता का मार्ग प्रशस्त किया।

विजेता के रूप में आनेवाली विदेसी और विजातीय मुसलमानों का यहाँ के समाज से एकाएक सौहार्द स्थापित नहीं हो सकता था। भिन्न समाजों और जातियों के बीच सामंजस्य की प्रक्रिया बहुत धीमी और बहुकाल सापेक्ष होती है। फिर इस बात पर भी निर्भर करता है कि उन जातियों के आचार-व्यवहारों, जीवन-मूल्यों, आदर्श-विश्वासों में समानता के तत्व कितने हैं?

व्यावहारिक संबंधों के भेद को सूचित करने के लिए मुसलमानों ने यहाँ के निवासियों को हिन्दू कहा। यह शब्द तभी से प्रचलित हुआ, उससे पहले इस शब्द का प्रयोग नहीं था। विजयनगर के राजाओं के पंद्रहवीं शताब्दी वाले शिलालेख में इस शब्द का प्रथम उल्लेख मिलता है। ईरान के आकेमीनियन बादशाहों के अभिलेखों में 'इन्द्र' शब्द का प्रयोग मिलता है जो हिन्दु (सिन्धु) का ईरानी रूप जान पड़ता है। इस शब्द का तात्पर्य "सिंधु नदी के पार रहने वाले लोग" केवल इतना ही था। जाति

BRAOU

अथवा धर्म-संप्रदाय का सूचक यह शब्द मुसलमानों के आने के बाद बना और तब से दोनो समाज के बीच यह विभेदक शब्द रहा है। मुसलमानो से मिले भारत के बहुसंख्यक समुदाय ने इसे अपने लिए स्वीकार भी कर लिया है।

तो, इस्लाम के आघात से हिन्दुओं में आत्मारक्षा की चिंता प्रबल हो उठी। अपनी कुलीनता की रक्षा वे हर कीमत पर करना चाहते थे। शुद्धतावादी संरक्षण-शीलता से आत्मकेन्द्रित होने की संकुचित वृत्ति उनमें उत्पन्न हो रही थी। विजय दर्प और पैगंबरी धर्मोन्माद के कारण मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं के प्रति क्रूर दुर्व्यवहार भी होते रहते थे। इस कारण हिन्दुओं के द्वारा बाध्य होकर स्वयं को सामाजिक स्तर पर मुसलमानों से भिन्न मानना पड़ता था। यों, इस्लाम धर्म भ्रातृभाव का संदेहवाहक माना जाता है। किन्तु अन्य धर्मों के प्रति उसका भ्रातृभाव कुछ कठोर शर्तों के साथ ही प्रकट होता है। इसलिए हिन्दुओं के प्रसंग में वह स्वयं को प्रभावी सिद्ध न कर सका।

नवागत जाति के प्रति संदेह और आशंका से ग्रस्त हिन्दू समाज पहले से चली आती अपनी विकृतियों का भी शिकार बना हुआ था। जातियों-उपजातियों की संख्या बढ़ती जा रही थी और उनमें ऊंचता नीतचा के भाव तीव्र हो रहे थे, यहाँ तक कि शूद्र जाति के विभिन्न वर्गों, के बीच भी छूआछूत का भाव पनप रहा था। समाज में स्त्रियों को पुरुषों जैसा स्तर प्राप्त न था, सती प्रथा भी प्रचलित थी। नयी परिस्थितियों ने बाल-विवाह को बढ़ावा दिया था और पर्दाप्रथा हिन्दुओं के लिए उस समय की आवश्यकता बन गयी थी।

दूसरी ओर भारतीय मुसलमानों की सामाजिक, स्थिति भी बहुत स्वस्थ नहीं थी। शेख, मुगल, सैयद और पठान वंशों के बीच पारस्परिक वैमनस्य की कमी न थी। शेख अधिकतर शिया थे, और मुगल अधिकतर सुन्नी। इन दोनो के बीच सामाजिक भेदभाव हमेशा से उग्र रहा है। बलपूर्वक अथवा स्वार्थवश इस्लाम धर्म स्वीकार करनेवाले हिन्दू भी पूरी तरह मुसलमान-समाज में घुल मिल नहीं पाते थे, उनके अपने हिन्दू संस्कार भी कम अधिक मात्रा में साथ लगे रहते थे। लेकिन हिन्दू और मुसलमानों के बीच सामंजस्य की संभावनाएं भी ऐसे ही लोगों के आचार व्यवहार में निहित थी। दूसरी ओर सामंजस्य की संभावनाएं इस्लाम को उस शाखा में भी थी जिसे "सूफी मत" कहा जाता है। मुसलमान विजेताओं के आगमन से बहुत पहले ही अनेक सूफी संत इस देश में आ गये थे। उनकी रीति नीति में इस्लामी कट्टरता न होकर उदारता थी और उनका धर्म व्यापक मानवीय प्रेम पर आधारित था। साहित्य के क्षेत्र में कबीर आदि निर्गुणधारा के सन्त उपर्युक्त पहली कोटि के और जायसी हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच सामंजस्य का सेतु तैयार करने में इन साहित्यकारों का योगदान सबसे अधिक रहा। दैनिक जीवन के रहन-सहन और रीतिरिवाज आदि की दृष्टि से उस समय का भारतीय समाज दो स्पष्ट वर्गों में विभाजित था पहला सुविधा संपन्नवर्ग और दूसरा असुविधाग्रस्त वर्ग। पहले वर्ग में शासक, उनके सामंत और सेठ-साहुकार थे; दूसरे वर्ग में अर्थात् सुविधाभोगी वर्ग में वैभाव प्रदर्शन की लालसा थी और विलासिता की ओर बढ़ती हुई प्रवृत्ति। शासकों की विलासीनता का अनुकरण सामंत वर्ग और सेठ-साहुकार वर्ग भी करने में पीछे न था। निश्चय ही वह शोषण पर आधारित विषमता पूर्ण समाज था। आर्थिक दृष्टि से नीचे स्तर के लोगों का शोषण करके ही, उन्हें जीवन की सुविधाओं से वंचित रखकर ही, उच्च संपन्न वर्ग सब प्रकार की सुविधाओं का भोग कर रहा था। तुलसीदास की निम्नलिखित पंक्तियों में उस समय के असुविधाग्रस्त समाज की विवशता और दयनीयता का चित्रण बहुत ही मार्मिक रूप में हुआ है:

खेती न किसान को, भिखारी को न भीख भली,
बनिक को बनिज न, चाकर को चाकरी।
जीविका विहीन लोग सद्यिमान सोच बस
कहैं एक एकन सो कहाँ जाई, का करी।।

पारिवारिक संगठन की दृष्टि से उस काल में युक्त परिवार प्रणाली थी; किंतु परिवार के सभी सदस्यों को जीविकोपार्जन के अवसर और साधन नहीं मिल जाते; इसलिए असंतोष और खिन्नता रहना स्वाभाविक था। बहुत से लोग इसी कारण घर बार छोड़कर साधु बन जाते थे। साधुओं के उपयुक्त ज्ञान और विवेकपूर्ण सदाचार के अभाव में वे समाज मे पाखंड ही फैलाते थे।

BRAOU

पारिवारिक संबंधों की टूटती हुई मर्यादाओं ने ही तुलसीदास को इस बात के लिए प्रेरित किया कि रामचरित मानस के माध्यम से वे आदर्श सौहार्दपूर्ण पारिवारिक संबंधों का दृष्टांत उपस्थित करें। पिता-पुत्र, भाई-भाई, पति-पत्नी, सेवक-स्वामी के स्वस्थ संबंधों पर ही समाज और राष्ट्र की दृढ़ सुव्यवस्था आधरित रहती है।

इन सामाजिक परिस्थितियों की साहित्यिक प्रतिक्रिया भक्ति काव्य में अनेक रूपों में प्रकट हुई। इस्लाम धर्म का प्रबल आघात भारतीय समाज में जागरूकता और संगठन के भाव उत्पन्न करनेवाला सिद्ध हुआ। इन भावों को भक्ति-संबंधी साधना के रूप में अभिव्यक्ति मिली। भक्ति-साधना के रूप में धर्मचर्या, व्यक्तिगत और ऐकांतिक मात्र न रहकर लोकोन्मुखी विस्तार पाया। पहले से चली आती बौद्धों और जैनों की धर्मचर्या का क्षेत्र जन सामान्य और विशेषतः समाज के निम्नस्तर के लोगों के बीच ही अधिक था। भक्ति काल में भक्ति साधना का नेतृत्व प्रधानतः वैष्णव मतानुयायियों के हाथ में रहा। उस मत में तत्कालीन जातीय हित के अनुरोध से बहुत अधिक मात्रा में उदारता और सहिष्णुता के साथ सामंजस्य वृत्ति उत्पन्न हुई। समाज के सभी वर्गों को साथ लेकर चलनेका उत्साह था। भक्ति के उदार मंच पर वर्णगत और संप्रदायगत भेदभावों का परिहार होने लगा। "हरि को भजे सो हरि का होई, जात पाँत पूछे नहीं कोई।" इस भावना का व्यापक प्रचार हुआ। भक्ति के साध्य के रूप में ही हरि के जिस रूप ने साहित्य में व्यापक प्रतिष्ठा प्राप्त की वह दीन-दुखियों, निर्बलों, दलितों और पीडितों के प्रति विशेष प्रेम और दयाभाव रखनेवाले सर्व समर्थ भगवान का रूप था। भक्ति के आनंद के आगे लौकिक सुख भोगों को तुच्छ माना गया। शासक वर्ग की ओर से विलसिता पूर्ण भोगवृत्ति की जो लहर समाज की ओर बढ़ रही थी, उसका बहुत कुछ निराकरण भक्ति के इस उच्च उदात्त भाव ने किया। विषयों के प्रति आसक्ति काम है और ईश्वर के प्रति आसक्ति प्रेम, इस भावना ने भक्ति साहित्य में सर्व अभिव्यक्ति पायी। फिर ईश्वर के प्रति भक्ति का तात्पर्य है, सभी प्रणियों में ईश्वर को देखना और उनके प्रति निःस्वार्थ प्रेम अनुभव करना। इस प्रकार तत्कालीन सामाजिक ह्रासक्रम को रोकने में भक्ति साहित्य का महत् योगदान रहा।

1.3.4 धार्मिक संदर्भ

भक्ति काल से पूर्व का युग धार्मिक दृष्टि सेभी ह्रसशीलता का काल थाँ। व्यापक जन समाज के बीच धर्म का सच्चा रूप प्रायः लुप्त हो गया था और चारों ओर पाखंड एवं दुराचारर फैला था। देश के पूर्वी भागों में बिहार, बंगाल और उड़ीसा में बौद्धधर्म के वज्रयानी साधकों का बोलबाला था। उनमें तरह तरह की विकृतियों के साथ वामाचार पल रहा था। उन्हीं वज्रयानियों में "सिद्ध" हुए जो अनेक प्रकार के तंत्रमंत्रों की शुद्ध और रहस्यात्मक साधनाओं को ही वास्तविक धर्म मांनकर अनेक प्रकार की सिद्धियों और चमत्कारों से जनचित्त को भ्रमित कर रहे थे। उनके निवृत्तिपरक विचार लोक .....धर्म और ग्रहस्थ जीवन को विच्छिन्न करने में लगे थे।

सिद्धों की संख्या चौरासी कही जाती है। उनमें सरहपा, कण्हपा आदि के नाम अधिक प्रसिद्ध हैं। गोरखनाथ भी इन्ही सिद्धों में से एक थे। उन्होंने अपनी साधना को वज्रयानियों की साधना से अपनाया। इस साधना में वामाचार की विकृतियों के लिए स्थान नहीं था और परमात्मा-साक्षात्कार के रूप में उसका लक्ष्य भी बहुत उच्च था। गोरखनाथ ने अपने पंथ का प्रचार, देश के पश्चिमी भागों, विशेषतः राजपूताने और पंजाब में किया।

इस्लामी एकेश्वरवाद से भारतीय धर्म विश्वास के समन्वय की संभावना गोरखनाथ को अपने निर्गुण पंथी विचारों में दिखाई दी। मूर्तिपूजा और बहुदेवोपासना इस्लामी विश्वास के विपरित थे और गोरखनाथ इनको अलग रखकर चले थे। इसलिए हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच धार्मिक, विद्वेष का शासन करने वाले एक सामान्य धर्म मार्ग की भूमिका गोरखनाथ ने तैयार की। उनका पंथ "नाथ पंथ" के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उस पंथ का स्वरूप भी निवृत्ति मार्गी ही रहा।

ज्ञानपरक हठयोग की साधना पर बल देने के कारण नाथपंथी जोगियों की धर्म साधना हृदय के भावों से शून्य थी। ऐसी शुष्क साधना सामान्य जन को आकर्षित नहीं कर सकती थी, जीवन के प्रति सहज उमंग, आनंद और उल्लास देने में वह असमर्थ थी। जन-चित्त की रही सही धर्म-भावना भी इसके बोझ से दब रही थी, क्योंकि इस प्रकार की साधना में मंदिरों, तीर्थों, प्रथानुष्ठानों आदिका भी विरोध था।

इस प्रकार उस काल का धार्मिक परिवेश निराशाजनकथा। पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में- "जिस समय मुसलमान भारत में आये, उस मय सच्चे धर्मभाव का बहुत कुछ ह्रास हो गया था। प्रतिवर्तन के लिए बहुत बड़े धक्के की आवश्यकता थी। कहना न होगा कि इस्लाम का पैगम्बरी धर्मोन्मद ही वह बड़ा धक्का सिद्ध हुआ जिसने भारतीय जनता को अपनी हीनावस्था को पहचानने की प्रेरण दी और अपनी अस्थिता की रक्षा की आकांक्षा से युक्त किया। प्रतिवर्तन के इसी क्रम ने भक्ति साहित्य में संपूर्ण-ओज के साथ अभिव्यक्ति पायी"।

एक ओर तो सामान्य जनता के बीच धर्म की यह स्थिति थी, जिसमें शास्त्रानुवर्तन के लिए कोई स्थान नहीं था,। दूसरा ओर ऐसे शस्त्रज्ञ विद्वानों के बीच, जिन पर सिद्धों और नाथ पंथी योगियों का कोई प्रभाव नहीं था, धर्म चर्चा की परंपरा जीवित थी। उनके बीच धार्मिक शास्त्रार्थ होते रहते थे, और दार्शनिक खंडन मंजन के ग्रंथों की रचना भी होती रहती थी। विशेषतः वेदांत उनकी चर्चा का विषय रहता था। प्रस्थानत्रयी के रूप में प्रसिद्ध ब्रह्मसूत्रों, उपनिषदों और गीता पर विविध भाष्य भी लिखे जाते थे। महाभारत, गीता और भागवत आदि में प्रतिपादित भक्ति मार्ग के सिद्धान्त पक्ष की अनेक नूतन व्याख्याएं भी उनकी चर्चा का विषय थीं।

1.3.5 सांस्कृतिक संदर्भ

BRAOU

संस्कृति किसी जाति की वह साधना है जिसमें मानवीय पूर्णता की चरितार्थता के लक्ष्य से वह उत्तरोत्तर उच्चतर की ओर अग्रसर होने में लगी रहती है। पशुसुलभ स्तर से ऊपर उठकर मानवीय गुणों के अधिक से अधिक विकास का प्रयत्न इसमें निहित रहता है। इस साधना की अभिव्यक्ति राजनीति, समाजनीति, धर्म, शिक्षा, साहित्य तथा ललित कलाओं के माध्यम से होती है। इन क्रियाशीलताओं में ही सांस्कृतिक मान और मूल्य प्रकट होते हैं, व्यष्टि एवं समष्टि के आदर्शों एवं आकांक्षाओं का द्योतक होता है।

अपने लंबे इतिहास में भारतीय संस्कृति विकास और ह्रास के अनेक क्रमों से गुजरती आयी है। इस देश की संस्कृति का मूलाधार है आध्यात्मिकता और उसकी सबसे बड़ी विशेषता है समन्वय वृत्ति। समय समय पर आनेवाले अनेक बाहरी प्रभावों और तत्वों का सामना इस देश की संस्कृति ने अपनी उत्तम भीमि पर प्रतिष्ठित रह कर किया है। इसलिए नये प्रभावों और तत्वों से उसे शक्ति और ओज प्राप्त होता रहा है। स्वयं उसके भीतर से फूटनेवाले नये विचारों के वाहक अनेक मतों से भी समन्वय के आधार पर उसने स्वयं को समृद्ध ही किया है। बौद्ध, जैन, सिख, आदि मत इसके उदाहरण हैं।

सम्राट हर्षवर्धन के शासन-काल के बाद से भारतीय संस्कृति के विकास क्रम में अवरोध उत्पन्न हो गया। उससे पहले के युगों में सास्कृतिक उन्नयन के उच्च शिखर स्थापित हुए थे। नये विचारों और आदर्शों को खुलेपन से ग्रहण करके पचाने की उसकी वृत्ति असीम थी। इसलिए नयी सृजन शीलता का उसमें उन्मेष बना हुआ था। इसलिए हर्षोत्तर काल से तरहवीं शताब्दी तक वह अपने इस गुण से वंचित रहीं, नव निर्माण की प्रवृत्तियाँ समाप्त हो गयी, हर क्षेत्र में संकुचित वृत्ति का प्राधान्य हो गया, केवल शास्त्रार्थों और टीकाओं आदि के रूप में ज्ञान की जुगाली होती रही। साहित्य और कलाओं में नये उद्‌भव के लिए अवकाश नहीं रह गया।

मुसलमानों के द्वारा आयी विजातीय इस्लामी संस्कृति ने भारतीय संस्कृति की उस जड़ होती हुई स्थिति को झकझोर दिया। भारतीय संस्कृति ने उसे एक चुनौती के रूप में स्वीकार किया, उसमें नया चैतन्य स्फुरित हुआ।

इस सांस्कृतिक नव जागरण में जीवन-मूल्यों की नयी व्याख्याएँ विकसित हुई। भौतिकता पर आध्यात्मिक श्रेष्ठता का उद्घोष हुआ, काम पर प्रेम ने वरीयता पायी, साहित्य और ललित कलाओं में नयी समन्वयवादी वृत्ति लक्षित हुई।

भक्ति के आधार पर रचित चौदहवीं से सत्रहवीं शताब्दी तक का साहित्य नये सांस्कृतिक मूल्यों से अनुप्राणित है। उसमें सर्वत्र एक उदारता का भाव है। व्यक्ति और समाज के सभी पक्षों के उन्नयन का स्वर है, और कहीं भी संकुचित वृत्ति को प्रश्रय नहीं मिला है। चाहे निर्गुणोपासक भक्त कवियों की रचनाएं हो; चाहे सगुणोपासकों की, सबमें उपास्य अर्थात् ईश्वर का रूप उच्चतम मानवीय वृत्तियों का प्रेरक और प्रकाशक रहा है।

वास्तुकला, चित्रकला और संगीतकला, उस काल में भारतीय और इस्ला द्वारा आगत तत्वों के समन्वय से नये नये रूपों में विकसित हुई।

1.3.6 प्रेरणा सूत्र और प्रभाव

भक्ति के आंदोलन और उसकी साहित्यिक परिणति का संपूर्ण श्रेय मुसलमानों के शासन और उसके साथ इस्लाम धर्म के दबाव को ही देना उचित नहीं होगा। वास्तव में मुसलमानों के आने में जो परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई, उनसे पहले ही भक्ति के विकास का वातावरण बन रहा था। भक्ति आंदोलन का विकास दो धाराओं में हुआ - सगुण और निर्गुण। सगुण भक्ति की लहर दक्षिण भारत से उत्तर की ओर आ रही थी। दक्षिण में भक्ति साधना जीवंत रूप में बहुत पहले से पुष्ट हो रही थी। पाँचवी से दसवीं शताब्दी के बीच तमिल देश में ऐसे भक्तों का प्रादुर्भाव हुआ था जो भक्ति के आवेश में एक मंदिर से दूसरे मंदिर तक भजन गाते फिरते थे। अपने इष्ट देव की मूर्ति का वियोग इनके लिए असह्य था। इस भाक्तों में शैव और वैष्णव दोनों थे। वैष्णवों में दस आलवार सन्त अधिक प्रसिद्ध हुए। उनके भजन रामायण, महाभारत और पुराणों के भावों से युक्त रहते थे। उन आलवार संतों की भक्ति-चर्या उच्च वर्णों तक ही सीमित नहीं थी। आस्पृश्यों के बीच भी वे समान रूप से भक्ति का प्रचार करते थे, कई आलवार सन्त तो स्वयं अस्पृश्य जातिओं में उत्पन्न हुए थे।

श्रीमद्भागवत में स्वयं भक्ति के मुख से कहलवाया गया है कि मेरा जन्म द्रविड़ देश में हुआ। कहा जाता है कि- "भक्ति द्रविड़ ऊपजी, ल्याये रामानंद।" उत्तर भारत की तत्कालीन परिस्थितियों में उसे व्यापक और उर्वर क्षेत्र प्राप्त हुआ। रामानुजाचार्य और मध्वाचार्य द्वारा प्रवर्तित सगुण भक्ति की ओर उत्तर भारत के लोगों का चित्त पहले से ही आकर्षित था। देश के पूर्वी भागों में जयदेव के "गीतगोविंद" में व्यंजित कृष्ण प्रेम की माधुरी छाई थी, मैथिल कोकिल विद्यापति के गीतों में उसकी अनुगूँज सुनाई दे रही थी। रामानुजाचार्य की शिष्य-परंपरा में रामानंद जी हुए, उन्होंने विष्णु के अवतार राम की उपासना का संप्रदाय प्रवर्तित किया। फिर वल्लभाचार्य ने रसराज कृष्ण की प्रेमाभक्ति का व्यापक प्रचार किया। इस प्रकार सगुण भक्ति के क्षेत्र में रामोपासक और कृष्णोपासक भक्तों की परंपराए चलीं। इन भक्तों में उच्च कोटि के कवि हुए। इन्होंने राम के रूप में परिपूर्ण मानव चरित्र का आदर्श उपस्थित किया, और कृष्ण के रूप में परिपूर्ण प्रेममूर्ति सामने रखी। भगवान के इन दोनों रूपों में जनचित्त को सहज रसमग्न करने की सामर्थ्य थी। इसलिए हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों को अपने भेद-भावों को पीछे छोड़कर समाज मानवीय आधार पर हार्दिक समन्वय के स्तर पर मिलने की प्रेरणा मिली।

सगुणोपासना के इस क्षेत्र के समानान्तर ही निर्गुणोपासना का भी क्षेत्र तैयार हुआ।

BRAOU

गोरखनाथ द्वारा मूर्तिपूजा और बहुदेवोपासना से अलग रहकर नाथपंथ की निर्गुण वादी साधना पद्धति में हिन्दुओं और मुसलमानों के लिए एक समान धर्म मार्ग की भूमिका तैयार की गयी थी। उसमें कमी यही थी कि वेदांत और हठयोग के आश्रय से वह एक शुष्क पद्धति हो गयी थी। हार्दिक भावों के लिए उसमें अवकाश नहीं था। तुलसीदास ने इसलिए कहा थाः

गोरख जगायो जोग, भगाति भगायो लोग। कबीरदास ने गोरखनाथ की उस साधना पद्धति के साथ प्रेम तत्व का योग कर दिया। इस प्रेम तत्व की प्रेरणा उन्हें "सूफी साधकों" से मिली। इस्लाम धर्म की एक शाखा के रूप में सूफी साधना- पद्धति विकसित हुई थी। एकेश्वरवादी मान्यता से किंचित् भिन्न रूप में सूफी साधक ईश्वर को प्रेम से उपलभ्य मानते थे।

महाराष्ट्र प्रदेश में प्रसिद्ध भक्त नामदेव (1277-1351) ने जिस भक्ति मार्ग का प्रचार किया वह भी मुख्यतः निर्गुण परक था। कबीर आदि संतों को उनसे भी पर्याप्त प्रेरणी मिली।

भक्ति-साधना को प्रेरित करनेवाले महान ग्रंथों में "भागवत पुराण" का स्थान सर्वोपरि है। कृष्णोपासक भक्त कवियों का तो यह आधार ग्रंथ ही है। दूसरा महत्वपूर्ण ग्रंथ है रामानुजाचार्य का "श्रीभाष्य" फिर, पंचरात्र संहिताओं और विष्णु-पुराण का भी गहन प्रभाव पड़ा।

आगे चलकर भागवत और संहिताओं के इन उत्सों से भक्ति के चार वैष्णव सम्प्रदायों का प्रादुर्भाव हुआ है।-

1. आचार्य रामानुज का, विशिष्टद्वैत दर्शन पर आधारित श्री वैष्णव संप्रदाय
2. आचार्य मध्व (आनंदतीर्थ) का, द्वैत दर्शन पर आधारित ब्रम्ह संप्रदाय
3. आचार्य विष्णुस्वामी और उनके अनुयायी वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैत पर आधारित रूद्र संप्रदाय
4. आचार्य निम्बार्क का, द्वैता द्वैत पर आधारित सनक संप्रदाय।

इसके अतिरिक्त चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रवर्तित चैतन्य गौड़ीय संप्रदाय यद्यपि वैष्णव मत की ही एक शाखा है, किंतु उसका अपना विशाल साहित्य है। उसके दर्शन का नाम है "अचिन्त्य भेदा भेदवाद"।

भक्ति साहित्य के सभी रूपों पर इन संप्रदायों की गहरी छाप दिखाई देती है। शंकराचार्य ने अद्वैत दृष्टि से जगत को मिथ्या घोषित किया था. इस दृष्टि से ब्रम्ह की सगुण लीलाओं के लिए आधार ही नहीं रह जाता। भक्ति के इन आचार्यों ने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अद्वैत की नवीन व्याख्याएँ प्रस्तुत कीं। इन्हें शंकरमत्त का विरोधी न मानकर पूरक मानना ही उपयुक्त होगा।

BRAOU

1.4 सारांश

सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भक्ति-आंदोलन की उपलब्धियों का आकलन किया जाए तो कहना होगा कि जीवन और साहित्य दोनों स्तरों पर उच्च उदात्त मूल्यों की प्रतिष्ठा उसके द्वारा हुई। विदेशी जाति से आक्रान्त भारतीय जनता के चित्त से पराजय और अवसाद-भावना को दूर रखकर वह उसके मनोबल को ऊँचा उठाने में सहायक हुआ। भारतीय जनजीवन से मध्यकालीन गतिरोध और जड़ता को उसने दूर किया, और दो विरोधी संस्कृतियों के बीच विद्वेष भाव का शमन करके, हार्दिक आधार पर समन्वय का सेतु तैयार किया। धर्म और संस्कृति की चर्या को उसने शास्त्रीयपरक आभिजात्य किया; जाति पांति के भेदभाव को दूर करके वर्ण और वर्णगत सौमनस्य को प्रेरणा दी तथा दलित और पीड़ित वर्गों में स्वाभिमान और आत्मविश्वास की भावना जाग्रत की। अहिंसा, सदाचार आदि की महत्ता के द्वारा, संपूर्ण समाज के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाया। लोक-आंदोलन होने के कारण उसने लोक प्रचलित भाषाओं को साहित्य में प्रतिष्ठित करके उनका गौरव बढ़ाया और सबसे महत्व की बात यह है कि भाव और कला दोनों दृष्टियों से उस साहित्य का भंडार उत्कृष्ट है।

1.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न

1. भक्तिकाल की राजनीतिक परिस्थितियों का परिचय देते हुए भक्ति आंदोलन में उनका योगदान स्पष्ट कीजिए।
2. भक्ति काल की सामाजिक पृष्ठभूमि स्पष्ट कीजिये।
3. भक्ति काल के धार्मिक परिवेश का विश्लेषण करते हुए स्पष्ट कीजिए कि भक्ति आंदोलन ने उसमें किस प्रकार परिवर्तन किया?

1.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न

1. भक्ति आंदोलन में दक्षिण का योगदान स्पष्ट कीजिये।
2. भक्ति मार्ग के आचार्यों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
3. भक्तिकाल सांस्कृतिक नव जागरण का काल किस अर्थ में था?

1.7 नमूने के प्रश्नोत्तर

1.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर

प्रश्न :भक्तिकाल की सामाजिक पृष्ठभूमि स्पष्ट कीजिये।
उत्तर :मुसलमानों के भारत में आने और अपना शासन स्थापित करने से पूर्व का काल सामाजिक दृष्टि से विकृति और बिखराव का काल था। वर्णाश्रम व्यवस्था अपने स्वस्थ रूप में नहीं रह गयी थी। वर्णों के बीच ऊँच-नीच का भेदभाव कठोर होता जा रहा था। समाज अनेकानेक जातियों और उपजातियों में बांटा गया था। निम्न वर्णों को अस्पृश्य मानकर, उनके प्रति उच्च वर्णों का व्यवहार अन्यायपूर्ण हो रहा था। ऐसे विभाजित समाज में संगठन शक्ति का अभाव था। सामूहिक दृष्टि से समाज दुर्बल होता जा रहा था। किसी महत् उद्देश्य के लिए संकल्पवान होकर प्रयत्नरत होने की सामर्थ्य उसमें नहीं रह गयी थी।

BRAOU

इस्लाम के आघात से हिन्दुओं में आत्मरक्षा की चिन्ता प्रबल हो उठी। संरक्षण शीलता में आत्मकेन्द्रित होने की संकुचित वृत्ति उनमें उत्पन्न होने लगी।

स्त्रियों को पुरुषों जैसा स्तर समाज में प्रदत्त न था। सती प्रथा भी प्रचलित थी। नयी परिस्थितियों ने बाल-विवाह को बढ़वा दिया था। पर्दा प्रथा हिन्दुओं के लिए उस समय की आवश्यकता बन गयी थी।

भारतीय मुसलमानों की सामाजिक स्थिति भी बहुत स्वस्थ नहीं थी। कहने को तो इस्लाम भातृभाव का सबसे बड़ा हामी है। लेकिन अन्यधर्मों के साथ व्यवहार में उनका भातृभाव पीछे छूट जाता है। भारत में विभिन्न देशों से आये मुसलमानों में भी एक दूसरे के प्रति द्वेष-भाव था। ईरान से आये शेख, तुर्किस्तान से आये मुगल, अरब से आये सैयद और अफगनिस्तान से आये पठान परस्पर बहुत सौहार्द भाव से युक्त नहीं थे।

दैनिक जीवन के रहन-सहन और रीति-रिवाज आदि की दृष्टि से उस समय का भारतीय समाज दो स्पष्ट वर्गों में विभाजित था।
1. सुविधा संपन्न वर्ग, और
2. असुविधा ग्रस्त वर्ग।

पहले वर्ग में शासक, उनके सामन्त और सेठ-साहूकार थे; तथा दूसरे वर्ग में किसान, सैनिक, छोटे राजकर्मचारी, छोटे व्यापारी और हस्तशिली आदि थे। इस प्रकार वह शोषण पर आधारित समाज था, इसलिए उसमें असंतोष पल रहा था।

पारिवारिक दृष्टि से उस समय संयुक्त परिवार प्रणाली थी, किंतु परिवार के सभी लोगों को शिक्षा और जीविकोपार्जन के अवसर उपलब्ध नहीं हो पाते थे, इसलिए खिन्नता से ग्रस्त बहुत लोग घर-बार त्यागकर साधु बन जाते थे और उनसे समाज में पाखंड को आश्रय मिलता था।

भक्ति का आंदोलन समाज की तत्कालीन विकृतियों को दूर करने में सहायक हुआ। "हरि को भजे सो हरि का होइ, जात पाँत पूछे नहीं कोई," की भावना ने समाज में ऊंच-नीच और छूआछूत के भेदभाव को कम किया। भक्ति के सर्वात्मवाद के आदर्श ने न केवल हिन्दुओं के विभिन्न वर्गों के बीच, अपितु मुसलमानों के साथ भी उनके संबंधों को प्रेमपूर्ण बनाने की प्रेरणा दी।

1.7.2 'ब' श्रेणी के प्रश्नोत्तर

प्रश्न :भक्ति आंदोलन में दक्षिण का योगदान स्पष्ट कीजिये।

उत्तर :भक्ति के आंदोलन और उसकी साहित्यिक परिणति का संपूर्ण श्रेय मुसलमानों के शासन और उसके साथ इस्लाम के दबाव को ही देना उचित नहीं होगा। वास्तव में मुसलमानों के आने से जो परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई, उनमें पहले ही भक्ति का वातावरण बन रहा था। भक्ति आंदोलन का विकास दो धाराओं में हुआ- सगुण और निर्गुण। सगुण भक्ति की लहर दक्षिण भारत से उत्तर भारत की ओर आ रही थी। दक्षिम में भक्ति-साधना जीवंत रूप में बहुत पहले से प्रविष्ट हो रही थी। पाँचवी से दसवीं शताब्दी के बीच तमिल देश में ऐसे भक्तों का प्रादुर्भाव हुआ था जो भक्ति के आवेश में एक मंदिर से दूसरे मंदिर तक भजन गाते फिरते थे। अपने इष्टदेव की मूर्ति का वियोग इनके लिए असह्य था। इन भक्तों में शैव और वैष्णव दोनों थे। वैष्णवों में दस आलवार संत अधिक प्रसिद्ध हुए। उनके भजन रामायण, महाभारत और पुराणों के भावों से युक्त रहते थे। उन आलवार संतों की भक्ति चर्या उच्च वर्णों तक ही सीमित नहीं थी। अस्पृश्यों के बीच भी वे समान रूप से भक्ति का प्रचार करते थे। दक्षिण से आयी भक्ति की इस लहर ने उत्तर भारत के भक्ति आंदोलन को पुष्ट किया।

1.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचंद्र शुक्ल
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. नगेन्द्र (संपादक)
3. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास: डॉ. रामकुमार वर्मा
4. मध्य कालीन धर्म साधना : पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी
5. हिन्दी साहित्य का अतीत भाग-1 : पंडित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
6. हिन्दी साहित्य : उद्‌भव और विकास : पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी
7. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास : डॉ. गणपति चंद्र गुप्त

BRAOU

इकाई-2: भक्तिकालः साहित्यिक चेतना और प्रवृत्तियां

2.0 विषय प्रवेश
2.1 उद्देश्य
2.2 पाठ-परिचय
2.3 मूलपाठ
2.3.1 नवीन साहित्यिक चेतना
2.3.2 व्यापक जीवनाधार
2.3.3 जीवन मूल्यों का पोषण
2.3.4 सामान्य मानवीय भाव भूमि
2.3.5 नवीन सौंदर्य दृष्टि
2.3.6 भक्ति साहित्य की प्रवृत्तियाँ
2.4 सारांश
2.5 शब्दार्थ
2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
2.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न
2.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न
2.7 नमूने के प्रश्नोत्तर
2.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर
2.7.2 'ब' श्रेणी के प्रश्नोत्तर
2.8 पठनीय पुस्तकें

2.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ में हिंन्दी साहित्य के भक्तिकाल की साहित्यिक चेतना और प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला गया है। इस पाठ के अध्ययन से आपः

- भक्तिकालीन साहित्यिक चेतनाओं पर विचार कर सकेंगे
- भक्ति साहित्य की सौंदर्य चेतना को स्पष्ट कर सकेंगे
- भक्ति साहित्य की इस व्यंजना की विसेषताओं को रेखांकित कर सकेंगे
- भक्तिकालीन साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाल सकेंगे
- मध्यकालीन जीवन मूल्यों को स्पष्ट कर सकेंगे

BRAOU

2.2 पाठ परिचय

युग परिवर्तन के साथ, जनसामान्य की चित्तवृत्ति में भी परिवर्तन होता रहता है। चित्तवृत्ति का परिवर्तन उस काल में रचित साहित्य हमें प्रतिबिम्बित होता है। युग विशेष की साहित्यिक चेतना से तात्पर्य है, उस युग में रचित साहित्य में जनसमाज की चित्तवृत्ति के प्रतिबिम्बन का समकालीन रूप।

साहित्य के इतिहास के अध्ययन में यह आवश्यक है कि विभिन्न युगों के साहित्य में, एक ही चेतना प्रवाह के अलग अलग रूपों को पहचाना जाए और उन कारणों को समझा जाये जिन्होंने युग विशेष की चेतना की अन्य युगों की चेतना से भिन्न रूप प्रदान किया है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल की साहित्यिक चेतना का महत्व इसीलिए अधिक है उस चेतना के अनेक ऐसे व्यापक और सूक्ष्म पहलू हैं जिनका अस्तित्व उसके पूर्ववर्ती साहित्य में और परवर्ती साहित्य में नहीं दिखाई देता।

भक्तिकालीन साहित्यिक चेतना विस्तृत जीवनाधार, उच्च मूल्यपरकता, विशद् मानवीय भावभूमि, उदात्त सौंदर्य दृष्टि और गहन रस-संवेदना को लेकर चली। उस चेतना का तेवर क्रांतिमय था; उसमें शास्त्रीय नियमबद्धता की अवहेलना करके चलनेवाली स्वच्छन्द वृत्ति की स्फूर्ति थी।

प्रस्तुत पाठ में भक्तिकालीन साहित्यिक चेतना के इन्हीं तत्वों का विवेचन किया गया है, और यह समझाने का प्रयत्न किया गया है कि उन तत्वों की नवीनता का क्या स्वरूप है, तथा उसने उस काल के साहित्य को कितनी जीवन्तता प्रदान की है।

2.3 मूलपाठ

2.3.1 नवीन साहित्यिक चेतना

हिन्दी साहित्य के इतिहास में जिस काल को "भक्तिकाल" नाम दिया गया है, वह इस देश के जीवन में नवीन सांस्कृतिक चेतना का काल था। धार्मिक और सामाजिक नव चेतना उसी सांस्कृतिक नवजागरण के अंग थे। उससे पहले की कई सौ वर्षों की जड़ता और गतिरोध से ग्रस्त जीवन ने मानों अंगड़ाई ली, और जीवन के सभी पक्षों में एक नये सर्जनात्मक उन्मेष का क्रम आरंभ हुआ।

इस नये जीवनोन्मेष की प्रेरक भक्ति के रूप में, कितना श्रेय परम्परा के स्वाभाविक रूपान्तरण को दिया जाए और कितना विदेशी सत्ता की स्थापना से उत्पन्न परिस्थितियों को, यह विद्वानों के बीच किंचित् विवाद का विषय है। एक मत यह है कि जातियों के जीवन में उत्थान-पतन के सजगता-उसजगता के, गतिमयता और गतिहीनता के क्रम नैसर्गिक नियम से आते रहते हैं। इसीलिए वर्धन साम्राज्य तक रहनेवाले सांस्कृतिक उत्थान की परिणति, जिस प्रकार कई सौ वर्षों के सांस्कृतिक ह्रास में हुई, उसी प्रकार, उस ह्रास की परिणति स्वभावतः उत्थान में होनी ही थी। शायद इसी बाद को दृष्टि में रखकर पण्डित हजारी प्रसाद द्विवेदी ने यह मत व्यक्त किया है कि यदि मुसलमान इस देश में न भी आये होते तो भी भक्ति-आंदोलन के रूप में जो जीवनोन्नयन घटित हुआ, वह हूबहू वैसा ही होता। अन्य लोग भक्तिकालीन जीवनोत्कर्ष का पूरा श्रेय मुस्लिम सत्ता के स्थापन और इस्लाम के दबाव की प्रतिक्रिया को देना चाहते हैं। सत्य शायद इन दोनों मतों के बीच में है।

BRAOU

हमारे लिए, साहित्यिक दृष्टि से प्रसंग-प्राप्त तथ्य यह है कि उस नवीन सांस्कृतिक चेतना का, जीवन के नये सर्जनात्मक उन्मेष का, गहन प्रतिफलन उस काल में रचित साहित्य में दिखाई दिया, या, यों कहिये कि उस काल की नयी जीवन-चेतना ने नवीन साहित्यिक चेतना का रूप धारण किया। साहित्य स्वयं में उत्कृष्ट सांस्कृतिक क्रियाशीलता है। जिस प्राकर युग का सांस्कृतिक उन्मेष, साहित्यिक उन्मेष के रूप में प्रतिबिम्बित होता है, उसी प्राकर साहित्य की नवस्फूर्ति अपने युग के ही नहीं आगे के युगों के भी सांस्कृतिक मूल्यों और मानों को प्राणवान् करती है। कहने का तात्पर्य यह है कि भक्तिकाल में नये जीवनोन्मेष ने साहित्य की श्रेष्ठता का जितना निर्माण किया, उस काल के उदात्त साहित्य ने जीवनादर्शों को उदात्त बनाने में उतना ही योगदान दिया।

भक्तिकालीन साहित्यिक चेतना अपने पूर्ववर्ती आदिकाल की साहित्यिक चेतना के विलोम रूप में खड़ी दिखाई देती है। आदिकालीन साहित्यिक चेतना में जीवन प्रेरकता का अभाव था। उस पूर्ववर्ती काल का साहित्य या तो दरबारी परिवेश का ऐसा साहित्य था जिसमें आश्रयदाता राजाओं के वीरतापूर्ण कार्यों और उनके श्रृंगार-प्रसंगों का अतिरंजित वर्णन रहता था, या फिर सिद्धों नाथों, जैनों आदि का धर्म-सम्प्रदाय-बद्ध शुष्क उपदेशपरक साहित्य। वस्तुतः दूसरी कोटि के साहित्य को तो प्राकृत अर्थ में

साहित्य कहा भी नहीं जा सकता, क्योंकि उसमें सम्वेद्यता का नितान अभाव है। पहली कोटि का, अर्थात चारणों आदि के द्वारा दरबारी परिवेश में रचा गया रसोपरक काव्य, आश्रयदाता राजाओं के चित्त में वीरता अथवा श्रृंगारिकता के भावों का संचार करने में भले ही सहायक रहा हो, किन्तु व्यापक जीवन प्रेरकता की दृष्टि से, उसका विशेष महत्व नहीं है।

भक्तिकाल को जीवन और साहित्य में क्रांति का काल कहना अनुपयुक्त न होगा। धार्मिक क्षेत्र में इससे पहले के युगों में कई क्रांतियाँ हो चुकी थीं, जैसे, बौद्धधर्म के द्वारा हुई क्रांति जिसने ब्राह्मण धर्म को परास्त और हतप्रभ कर दिया था; या फिर आद्यशंकराचार्य द्वारा प्रेरित नवीन ब्राम्हण धर्म की क्रांति जिसने बौद्ध धर्म को इस देश से निष्कासित कर दिया। राजनीतिक क्षेत्र में क्रांति भारतीय राजसत्ता की पूर्ण पराजय और मुसलमानी सत्ता की पूर्व प्रतिष्ठा के रूप में हुई। इस राजनीतिक क्रांति के साथ ही साथ इसके प्रभावों से, हिन्दी साहित्य में एक ऐसी भावना को आत्मसात् करनेवाली क्रांति हुई जो उत्तर भारत या हिन्दी-क्षेत्र तक, ही सीमित नहीं थी, अपितु जिसका विस्तार काश्मीर से कन्याकुमारी तक और गुजरात से बंगाल तक था और जिसका प्रभाव जीवन के धार्मिक पक्ष पर ही नहीं, अपितु जीवन के सभी पक्षों पर था। यह क्रांति जिस साहित्यिक चेतना पर आधारित थी उसने साहित्य को नये प्राणों का स्पन्दन और नया ओज प्रदान किया। पण्डित हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में- "यहाँ से (भक्ति युग के आरम्भ) क्या भाव, क्या भाषा और क्या वक्तव्य वस्तु, सब ओर नवीन प्राणों का स्पन्दन दिखाई दिया। सच पूछा जाए तो यहीं से हिन्दी भाषा के साहित्य का वास्तविक सूत्रपात हुआ। .... यहीं से उसमें नवीन आदर्शों के निर्माण का उल्लास और नवीन आशाओं और आकांक्षाओं को रूप देने का उत्साह प्रकट हुआ।"

इस नवीन साहित्यिक चेतना के अनेक आयाम थे। उनमें से यहां मुख्य आयामों का हम विचार करेंगे।

2.3.2 व्यापक जीवनाधार

पहला और सर्वप्रमुख आयाम था व्यापक जीवनाधार। और उनके द्वारा इस्लाम धर्म के कट्टर रूप को जनता पर आरोपित करने के दुराग्रह से, इस देश के जन-जीवन ने बदली हुई परिस्थितियों में स्वयं को अनेक ज्वलंत समस्याओं से ग्रस्त पाया।

उनमें से प्रमुख समस्याएं थीं:

1. धर्मचर्या और आचार के रूप में अपनी सांस्कृतिक अस्मिता की रक्षा।
2. अपने धार्मिक और सामाजिक में निहित दुर्बलताओं का परिहार।
3. नवागत जाति के धार्मिक दंभ और कट्टरता का तिरस्कार।
4. शासक वर्ग और सामन्त वर्ग की वैभव-विलास वृत्ति के प्रभाव से जनजीवन की रक्षा।
5. नवागत जाति के साथ समन्वय की भूमिका का सन्धान।

इन समस्याओं के जो समाधान खोजे गये, उन सब का समाहार एक व्यापक भावना में किया गया, और वह भावना थी "भक्ति"। अपनी प्रसारवादी महत्वाकांक्षा के साथ इस्लाम भारत में आने से पहले जिन जिन देशों में गया था, वहां के धर्म और संस्कृति को ध्वस्त करके उसने अपनी श्रेष्ठता का एक मात्र प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। किन्तु भारतीय धर्म के आगे उसका एकेश्वरवाद अपनी श्रेष्ठता स्थापित नहीं कर सकता था। राजनीतिक स्तर पर परास्त होकर भी यहां का जनमानस इस्लाम से परास्त नहीं हुआ। अपने धर्म की अपनेक्षा उसे इस्लाम में कुछ भी ऐसा आकर्षक नहीं लगा, जिसे ग्रहण करने से उसका हित हो सकता। इसलिए वह अपने धर्म और आचार की संरक्षा में प्राणपण से तत्पर हो उठा। इसके लिए संगठन का भाव नितान्त अपनेक्षित था। यहाँ विद्यमान अनेक धर्म साधनाओं और अपने अपने विश्वासों के साथ वर्तमान अनेक जात-पांतों के बीच एकता का समान सूत्र कौनसा हो सकता है, इसका विचार करने पर भक्ति को ही समान सूत्र कौनसा हो सकता है, इसका विचार करने पर भक्ति को ही समान सूत्र समझा गया- क्योंकि भक्ति एक ऐसी उदार भावना

BRAOU

है जिसमें शास्त्रीय विधि-विधान का महत्व नहीं है। परमसत्ता के प्रति सर्वतोभावेन प्रेम निवेदन के अतिरिक्त उसमें और कुछ नहीं चाहिए। इसलिए इस साधना में अधिकारी-भेद नहीं है; सबके लिए समान रूप से वह सुलभ है, सभी उसके अधिकारी है। फिर भक्ति-भावना में जिस परम सत्ता जीवन और जगत से भिन्न किसी ऊंचे लोक में निवास करनेवाली सत्ता नहीं है, अपितु सम्पूर्ण सृष्टि में सभी हुई सत्ता है, सम्पूर्ण भौतिक प्रसार उसका व्यक्त रूप है। अतः ईश्वर के प्रति प्रेम का अर्थ हो जाता है प्राणि-मात्र के प्रति प्रेम, और उससे भी आगे बढ़कर सम्पूर्ण जड़-चेतन में उस सत्ता का निवास मानकर सब के प्रति प्रेम का अनुभव।

भक्ति के अतिरिक्त धर्म की अन्य साधनाएँ, जैसे ज्ञान, योग आदि की साधनाएँ ऐकान्तिक साधनाएँ थीं, उनमें सार्वजनीनता के लिए स्थान नहीं था। इन साधनाओं पर उच्च वर्णों का ही अधिकार था, निम्न वर्णों को, विशेषतः, शूद्रों और स्त्रियों को उनसे वंचित रखा गया था। भगवद्‌गीता, पांचरात्र आदि भक्ति के प्रेरक ग्रंथों में, और दक्षिण से आती भक्तिचर्या में इन सीमाओं को तोड़ा गया।

इस प्रकार तत्कालीन परिस्थितियों में भक्ति-साधना के रूप में एक ऐसा विस्तृत और दृढ़ मंच उपलब्ध हुआ जिस पर सांस्कृतिक अस्मिता की रक्षा के लिए जातीय संगठन सहज सम्भव हो सका। जनजीवन में भक्ति ने एक आन्दोलन का रूप धारण किया। भक्ति के आचार्यों ने उसी उत्साह से भक्ति को सार्वजनिक बनाया। स्वामी रामानन्द ने शूद्रों को, स्त्रियों को, यहाँ तक कि मुसलमानों को भी भक्ति-साधना में दीक्षित किया।

साहित्य ने इस आन्दोलन का नेतृत्व संभाला। जन-भावना और जनादर्श से उपजीव्य ग्रहण करके, साहित्य ने उस आन्दोलन को बल दिया। भक्ति साहित्य के इसी व्यापक आन्दोलनात्मक रूप को लक्ष्य करके डॉ. ग्रियर्सन ने कहा था- हम (स्वयं को) ऐसे धार्मिक आन्दोलन के सामने पाते हैं, जो उन सब आन्दोलनों से कहीं अधिक विशाल है, जिन्हें भारतवर्ष ने कभी देखा है; यहाँ तक कि बौद्ध धर्म के आन्दोलन से भी अधिक विशाल है। .... इस युग में धर्म ज्ञान का नहीं, बल्कि भावावेश का विषय हो गया था।"

निर्गुणमार्गी-सगुणमार्गी भेद से या फिर ज्ञानाश्रयी, प्रेमाश्रयी, कृष्णाश्रयी और रामाश्रयी भेद से भले ही उस काल के साहित्य ने अलग अलग धाराओं में विकास पाया हो, लेकिन सब मार्गों और धाराओं का लक्ष्य एक ही था- आन्तरिक प्रेम निष्ठा के आधार पर जीवन का उन्नयन और परिष्कार। उस साहित्य में भक्ति-भावना को सर्वोत्तम पुरुषार्थ माना गया; धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से भी ऊपर का पंचम पुरुषार्थ।

उस पुरुषार्थ की साधना लोक-जीवन की अवहेलन करके नहीं चल सकती थी। वह एकांगी साधना नहीं थी। जीवन के सर्वांगीण उन्नयन और परिष्कार पर उसकी दृष्टि थी। सगुण मार्गियों की भावना में तो उनके प्रेमास्पद भगवान धरती पर अवतरित होकर अनेक प्रकार की लीलाओं द्वारा अपने लोकरक्षक या लोकरंजक रूप को चरितार्थ करते ही हैं, निर्गुणमार्गियों की भावना में भी, लोक का तिरस्कार नहीं है; अपने गूढ़ प्रेम की व्यंजना के लिए वे भी लौकिक स्थितियों और कार्यों का आश्रय लेते हैं। तात्पर्य यह कि भक्ति-साहित्य अपनी चेतना में जीवन और जगत् की सर्वांगीणता को समाहित करके चलनेवाला साहित्य था, उसका जीवनाधार व्यापक था।

2.3.3 जीवन मूल्यों का पोषण

भक्तिकालीन साहित्यिक चेतना का दूसरा आयाम था उसके द्वारा जीवन मूल्यों का पोषण।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने "भक्ति" को बहुत ही उपयुक्त शब्दों में "धर्म की भावात्मक अनुभूति" कहा है। धर्म से उनका तात्पर्य, निश्चय ही, लोकधर्म के रूप में जीवन की उस उच्चतर साधना से है जिससे व्यक्ति और समाज दोनों के जीवन का उन्नयन और परिष्कार होता है। जीवन में जो

कुछ भी सत् है महत् है, वरेण्य है, सारभूत है, उस सबकी उपलब्धि और रक्षा ही वस्तुतः धर्मचर्या है। ईश्वर या भगवान की भावना भी इन सब उच्च और उदात्त तत्वों के पुंजीभूत रूप में ही की गयी है। प्रेम, क्षमा, करूणा, शील सेवा, त्याग, अहिंसा, सरलता आदि का प्रश्रय और आचरण ही मनुष्य-जीवन को सार्थकता प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त धर्म का कोई और अर्थ नहीं होता। इसी धर्म की रक्षा के लिए, भक्तों के भगवान पृथ्वी पर अवतरित होते हैं:

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थय सम्भवामि युगे युगे।।

भक्ति-साधना के सभी रूपों में उपस्थ सत्ता में मानवीय मूल्यों को आधार बनाया गया। उपासना की सिद्धि अर्थात परमात्मा की प्राप्ति का मार्ग भी इन्हीं मूल्यों के आचरण का मार्ग निर्धारित हुआ।

ये मूल्य भक्ति-भावना की चेतना का अनिवार्य अंग है। सभी धाराओं के भक्ति-साहित्य ने इन मूल्यों के अधिकाधिक विकास पर बल दिया है, और विरोधी मूल्यों के परिहार तथा विनाश का अपने अपने ढंग से निदर्शन किया है। सामाजिक और नैतिक स्तरों पर इन मूल्यों की जितनी उपयोगिता है, धार्मिक और आध्यात्मिक स्तरों पर भी इसकी उतनी ही महत्ता है।

सभी भक्त कवियों का जीवन त्याग, संयम और पवित्रता से पूर्ण था। उक्त मूल्यों का आचरण करते हुए वे सम्पूर्ण समाज को इन मूल्यों से परिचालित होता हुआ देखना चाहते थे। साहित्य के अन्य किसी भी युग में साहित्यकारों का व्यक्तित्व उनके साहित्य में निदर्शित आदर्शों से इतना एकात्म होकर नहीं चला होगा जितना कि भक्तिकाल में। भक्ति का व्यापक प्रचार उन साहित्यकारों का लक्ष्य था। इसलिए समाज के सभी उच्च जीवन मूल्यों की स्थापना के वे आकांक्षी थे।

2.3.4 सामान्य मानवीय भाव भूमि

भक्तिकालीन चेतना का तीसरा आयाम था सामान्य मानवीय भावभूमि।

भक्ति, प्रेम की साधना है। प्रेम, अर्थात् हार्दिक संबंध-स्थापना। यह उसी के प्रति हो सकता है जो गणधर्म में हमारे समान हो। भक्तिसाधना में प्रेमस्वरूप उपास्य का भावगृहीत रूप मनुष्यता की सामान्य भावभूमि पर ही होता है। संसार के प्रत्येक प्राणी में उस उपास्थ के दर्शन करके सबके प्रति समान अनुराग और प्रीति का संदेश भक्ति देती है। दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य इन चार भावों की भक्ति में से अन्तिम तीन भावों में तो निश्चित रूप से उपास्थ को सामान्य मानवीय भावभूमि पर प्रतिष्ठित करने की भावना निहित है, केवल दास्य-भाव भक्ति का आरंभिक सोपान है; सख्य, वात्सल्य और माधुर्य क्रमशः उत्तरोत्तर सोपान है।

भक्तिकाल से पहले के साहित्य में या तो आश्रयदाता राजाओं के रूप में अभिजात वर्ग के नायकों का गुणगान रहता था, या रहस्य और गुह्य् साधना-लोक का विकार। भक्ति-साहित्य में, सगुण-मार्गियों द्वारा अवतारवादी धारण में ईश्वर का मानवीकरण ही नहीं, कुटुम्बीकरण भी किया गया। नर रूप धारण करके, ईश्वर सामान्य मानवसुलभ आचरण और व्यवहार का ही परिचय देता है। अवतार की समाप्ति के बाद उसका ऐश्वर्यरूप सामान्य लोकदृष्टि कवि भले ही अपनी ओर से उसके ऐश्वर्य और महात्म्य का स्मरण कराता चले।

निर्गुणमार्ग की ज्ञानाश्रयी शाखा में भी उपस्य की भावना सहज मानवीय आधार पर ही है। ज्ञानमार्गी भक्ति का अनुसरण करने वाले संत, ज्ञान के पक्ष की बात कहते समय भले ही रूपातीत की बात करते हों, भक्ति के पक्ष में जिस प्रियतम की भावना रखते हैं वह सामान्य मानवीय क्रिया-व्यापारों से

BRAOU

अछूता नहीं रह पाता। कबीर राम भरतार के लिए प्रेयसी की भावना से श्रृंगार करते हैं और नेत्रों के रास्ते हृदय में लाकर उसे पलकों की चिक के पीछे रिझाते हैं। यह सामान्य मानवीय भावभूमि पर प्रियतम को प्रतिष्ठित करने से ही होता है। सूफी कवियों ने भी रूपक की शैली के सहारे भक्ति के साधक और साध्य को सामान्य मानवीय भूमिपर ही चित्रित किया है।

इस प्रकार, भक्तिकालीन साहित्यिक चेतना में हृदय के सर्वोत्कृष्ट भाव के रूप में भक्ति के आलंबन और आश्रय का जनतांत्रीकरण घटित हुआ; सब प्रकार की उपाधियों से रहित निर्विवेश मनुष्य की प्रतिष्ठा हुई, और सामान्य जन की आशाओं, आकांक्षाओं और जीवन-व्यापारों को रूपयित किया गया।

2.3.5 नवीन सौन्दर्य-दृष्टि

भक्तिकालीन साहित्यिक चेतना का चौथा आयाम है उसकी नवीन सौन्दर्य-दृष्टि।

आदिकालीन कवियों की सौन्दर्य दृष्टि बहुत ही संकुचित और स्थूल थी। वह रूढ़ियों की पगडंडियों पर चलनेवाली अधिक थी, स्वच्छंद सौन्दर्य भावना का उन्मेष उसमें नहीं था। उन कवियों के सौन्दर्य चित्रण में, चाहे वह वस्तु-सौन्दर्य का प्रसंग हो, अथवा मानव-सौन्दर्य (नर नारी सौन्दर्य) का सर्वत्र आडम्बरमयता और कृत्रिमता झलकती है। भाव-सौन्दर्य और चरित्र-सौन्दर्य के लिए उसमें विशेष अवकाश नहीं है। चाहते तो वे लोग वीरता और श्रृंगार के वर्णन में सौन्दर्य-चित्रण के नवीन प्रसंगों की उद्‌भावनाएं कर सकते थे। संकुचित दरबारी परिवेश में रहनेवाले उन कवियों की दृष्टि प्रकृति के नित्य नवीन उन्मुक्त सौन्दर्य की ओर जा ही कैसे सकती थी; प्रकृति केवल रूढ़ उपमानों के रूप में या फिर वर्ग परिपाटीबद्ध ऋतुक्रम-वर्णन के रूप में उनकें काव्य में स्थान पा सकी। लोक जीवन का सहज अकृत्रिम सौन्दर्य भी उनकी दृष्टि से ओझल ही रहा। नाथों, सिद्धों, जैनों आदि की विवृत्तिपरक विचारधारा के साथ सौन्दर्यदृष्टि का योग होता ही कैसे?

भक्त कवियों की सौन्दर्य-दृष्टि जितनी विशाल और उन्मुख है, उतनी ही तीव्र और गहरी थी। विशेषतः सगुणमार्गीय कवियों ने जीवन और जगत् के सौन्दर्य के चित्रण की असंख्य नवीन उद्‌भावनाएँ की हैं।

भक्ति प्रेम की साधना है और प्रेंम का सौन्दर्य से अविनाभाव संबंध है। एक प्रकार से कहा जा सकता है कि प्रेम की प्रतिष्ठा ही सौन्दर्य पर है। सौन्दर्य के प्रति आकर्षण ही प्रेम को जन्म देता है- और फिर विपरीत क्रम से, सौन्दर्य-भावना, प्रेम-भावना का अनुसरण करती है। जिस प्रकार प्रेम के स्तर भेद हैं- तामसिक, राजसिक और सात्विक, उसी संगति में सौन्दर्य के भी सात्विक, राजस और तामस त्सर-भेद हैं। भक्ति परम प्रेम रूपा है, अर्थात प्रेम का सर्वोत्कृष्ट रूप, अत्यंत परिशुद्ध रूप, भक्ति में प्रतिपलित होता है, अतः उससे प्रेरित सौन्दर्य-दृष्टि भी वासनारहित और निष्कलष होती है।

भक्ति के आलंबन भगवान चरम सौन्दर्य के अधिष्ठाता हैं। सम्पूर्ण सृष्टि उनकी आभा से आभासित है- तस्य भासा सर्वमिदं विपाति ऐसी व्यापक दृष्टि रखनेवाले कविहृदय भक्त के लिए सृष्टि के सभी रूप, सभी कार्य व्यापार सौन्दर्य से ओत-प्रोत हैं। फिर वह परम सौन्दर्य सत्ता जितनी बाह्यवर्तिनी है, उतनी ही अर्न्तवर्तिनी भी। इसलिए प्राणियों के सभी भाव और उनके शील के सभी तत्व, उस सौन्दर्य सत्ता की अनुकूलता में होने पर सौन्दर्यमय हैं। हां, तम और रज से आवृत होने पर वे सौन्दर्य-विमुख हो जाते हैं।

भक्तिकालीन साहित्य के निर्गुणमार्गीय ज्ञानाश्रयी सन्तों ने सौदर्य के इस आन्तरिक पक्ष की विशेष अनुभूति की है। उनका प्रियतम साकार न होने पर भी आत्म ज्योति रूप सौन्दर्याभास से परिपूर्ण है। वह घट में ही प्रकट होता है, कबीर की भावना में-

सब घट मेरा साँइयाँ सूनी सेज न कोई।
बलिहारी वा घट की, जामें परगट होई।।

BRAOU

अन्तर्चक्षुओं से घट में ही उसके दर्शन होते हैं और तब वह नयनों में इस प्रकार समा जाता है कि नेत्र सर्वत्र उसी को देखने लगते हैः

कबीर देखा एक अंग, महिमा कही न जाइ।
तेजीपुंज पारस धणीं, नैनूं रहा समाइ।

लाली मेरे लाल की जित देखों तित लाल। बाह्य जगत् में भी संत कवियों की सौन्दर्य-भावना इस रूप में प्रतिफलित दिखाई देती है कि धार्मिक और सामाजिक जीवन के पाखंड, मिथ्याचार और आडंबर से रहित सहज जीवन-मूल्यों और हृदय की सात्विक निष्ठा पर आधारित एक स्वस्थ सुंदर समाज की संरचना के प्रति वे लालायित हैं।

प्रेमाख्यानक कवियों ने प्रेम के प्रसंगों में मानव-सौन्दर्य का और उसके परिवेश के रूप में प्रकृति-सौन्दर्य का चित्रण किया है। सूफियों ने अपने प्रकृति-सौन्दर्य के वर्णन में विराट् आध्यात्मिक रूप का प्रतिबिंब दिखाया है। भाव व्यंजना में नैसर्गिकता और मानवीय स्वाभाविकता है। प्रेम के संयोग और वियोग पक्षों में षड्ऋतु और बारहमासे आदि के वर्णन में तथा अन्य प्रकृतिचित्रण प्रसंगों में वे कभी-कभी रूढ़िग्रस्त दिखाई देते हैं।

सौन्दर्य-चित्रण की नवनवोन्मेषशालिनी वृत्ति का परिचय सगुणमार्ग के कृष्णभक्त और रामभक्त कवियों ने दिया है। अवतार रूप में इष्टदेव की सभी लीलाएं निखिल सौन्दर्यमयी हैं। उनका उद्देश ही लोकरंज है- अपने उदात्त सौन्दर्य से संपूर्ण जीवन और जगत् को सौन्दर्य-रंजित कर देना। लोक संग्रह के उद्देश्य से, कठिन कर्तव्य भाव-युक्त मर्यादा पुरुषोत्तम राम के कार्य-कलाप भी जीवन को उच्च सांस्कृतिक मूल्यों के सुन्दर धरातल पर प्रतिष्ठित करनेवाले हैं।

सगुणोपासक कवियों की सौन्दर्य-दृष्टि इतनी तीव्र और गहन है कि उनके इष्टदेव की छवि करोड़ो कामदेवों को लज्जित करने वाली है। उस दिव्य सैन्दर्य के दर्शन में ही जीवन का परम लाभ है। उस सौन्दर्य-दर्शन के सौभाग्य से वंचित सौकड़ों हजारों वर्षों का जीवन भी निरर्थक है।

सूर स्याम एकौ पल या सुख का सत कल्प जिए।
- सूर

और वह सौन्दर्य, दर्शक की चित्र वृत्ति को शान्त। अचंचल करके अपने में लीन कर लेनेवाला सौन्दर्य है। जिनमें ऐसे सौन्दर्य से प्रभावित होने की सहज सामर्थ्य नहीं है, जिनका चित्त राग-द्वेष आदि विकारों से जड़ित है, उन्हें धिक्कार हैं-

अवलोकहि सोच विमोचन को
ठगी सी रही जे न ठगे धिक से।
- तुलसी

व्यक्ति सौन्दर्य-चित्रण में नखशिख वर्णन की रूढ़ प्रणाली का अनुसरण भक्त कवियों ने प्रायः नहीं किया है। अवयवों के सौन्दर्य का वर्णन न करके वे सुंदर व्यक्तित्व के समवेत प्रभाव की व्यंजना करते हैं। विद्यापति की राधा के सौन्दर्य में समस्त भूतल के सौन्दर्य का सार समाहित है, उसके दर्शन मात्र से करोड़ों कामदेवों के सौन्दर्य को परास्त करनेवाले श्रीकृष्ण भी अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं। सीता के उत्कृष्ट सौन्दर्य की व्यंजना के लिए तुलसीदास ने बड़ सांग रूपक खड़ा किया है- सौन्दर्य-समुद्र के मंथन के उत्पन्न अपूर्व आभामयी लक्ष्मी का सौन्दर्य भी सीता के दिव्य सौन्दर्य का उपमान कदाचित् ही हो सके।

BRAOU

कृष्णभक्त कवियों ने गोचारण आदि के प्रसंग में और राम- के भक्त कवियों ने राम के दीर्घकालीन वन-निवास के प्रसंग में, अपनी स्वच्छंद सौन्दर्य कल्पना के सहारे नैसर्गिक सौन्दर्य-चित्रण की अनेकानेक नवीन उद्भावनाएं की हैं। उन्मुक्त प्राकृतिक परिवेश में मानवीय भाव-सौन्दर्य, चरित्र-सौन्दर्य और कर्म-सौन्दर्य के अनेक सूक्ष्म चित्रण उनकी वाणी में हुए हैं।

भक्तिकालीन कवियों की सौन्दर्य दृष्टि का सबसे उज्जवल पक्ष यह है कि उन्होंने सौन्दर्य की चरम परिणति "शिव" या "मंगल" में मानी है। उच्च सांस्कृतिक मूल्यों से प्रेरित भारतीय सौन्दर्य-दृष्टि का यह सार है। सात्विक सौन्दर्य से चित्त परिशुद्धि होता है- जो भक्ति के साधना-पथ की प्राथमिक आवश्यकता है। उस साधना की चरितार्थता लोकमंगल से पृथक नहीं है। सौन्दर्यचेतना का एक महत्वपूर्ण आयाम है रस-व्यंजना। विभाव (आलम्बन और उद्दीपन) तथा अनुभाव जितने अधिक सौन्दर्य संपन्न होंगे, रस-व्यंजना भी उतनी ही उत्कृष्ट होगी।

भक्तिकालीन कवियों की रस व्यंजना, अपने पूर्ववर्ती कवियों की अपेक्षा अधिक विशद है। आदिकालीन काव्य में मुख्यतः वीर और श्रृंगार रसों की ही व्यंजना होती रही। इन रसों के आलंबन और उद्दीपन भी दरबारी मनोवृत्ति के कारण संकुचित परिधि में ही रहे। जोगियों और जैनियों की वाणियों में यदि किसी रस की स्थिति हो सकती है तो केवल शान्त रस की। भक्ति काव्य में रस का बहुत अधिक परिधि विस्तार हुआ। न केवल अनेकानेक रसों की बहुत ही जीवन्त व्यंजना भक्तिकाल के कवियों ने की, अपितु उनके अवयवों- विभावों, अनुभावों और संचरियों के नये नये और मौलिक रूपों का भी उन्होंने अपने काल में समावेश किया।

यदि वीर रस को ही लें तो, भक्ति काव्य में उसका आलंबन कोई बाहरी शत्रु न होकर भक्त के चित्त के भीतर विकार- काम, क्रोध, लोभ और विषय-वासना आदि हैं। उन पर विजय पाना ही भक्त का पौरूष है, उसकी वीरता है। इस प्रकार भक्ति काव्य की रस-परिकल्पना अधिक आन्तरिक है। कबीरदास ने तो भक्ति के साधक की शूरता और उसकी रस मग्नता, उसके द्वारा काल (मृत्यु) के पराभव में मानी है:

आठहूँ पहर मस्तान माता रहे
आठहूँ पहर की छाक पीवे,
कहै कब्बीर सोइ सन्त जन सूरमा
काल निच्चोर के अमृत पीवै।

भक्तिकाल से पहले "रति" भाव केवल लौकिक श्रृंगार का आधार था। भक्तिकालीन कवियों ने कवियों ने उस परम सत्ता के रूप में अलौकिक आलंबन का रूप प्रदान करके उच्च उदात्त धरातल पर प्रतिष्ठित किया। परिस्परित रस-विचार में भक्ति को स्वतंत्र रस की मान्यता ही प्राप्त नहीं थी। मम्मह जैसे आचार्यों ने भी उसे "रतिर्देवादि विषये" कहकर टाल दिया था। किन्तु भक्तिकालीन कवियों ने भक्ति पर आधारित विपुल और उत्कृष्ट साहित्य की रचना करके उसे काव्यशास्त्र में रस की मान्यता प्राप्त करायी। भक्ति के क्षेत्र में रति की रसात्मक परिणति केवल मधुर रस में ही नहीं होती, अपितु दास्य, सख्य और वात्सल्य के विविध आयामों में भी होती है।

सूरदास द्वारा कृष्ण के और तुलसीदाश द्वारा राम के बालरूप और बालचेष्टाओं के अत्यंत रससंवेद्य वर्णन का परिणाम "वास्तल्य" को भी स्वतंत्र रस की मान्यता प्राप्त कराने में हुआ।

भक्त कवियों ने अपनी मौलिक कल्पना और उद्भावना के सहारे "रस" को परम्परा प्राप्त उस रूढ़िबद्धता मुक्ति दिलाई, जिसमें उसके वर्णन की सीमाएँ नियत निर्धारित सीह हो गयी थीं। तुलसीदास की यह उक्ति भक्त कवियों की इसी उदार चेतना की सूचक है -

भावभेद रसभेद अपारा

BRAOU

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि व्यापक जीवनाधार, सामान्य मानवीय भावभूमि और उदात्त जीवनमूल्यों को लेकर भक्त कवियों ने भारतीय साहित्यिक चेतना को नये रूप में ढाला है। उसमें सौन्दर्य और रस की अवधारणाओं ने जीवन्त नया रूप धारण किया है।

2.3.6 भक्ति साहित्य की प्रवृत्तियाँ

भक्तिकालीन साहित्य की सबसे प्रमुख प्रवृत्ति उसकी क्रर क्रांतिकारी भावना के रूप में प्रतिफलित हुई। धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक स्तरों पर इस काल के साहित्य ने जनमानस में आमूल परिवर्तन के प्रेरित किया। इन क्षेत्रों में व्याप्त ह्रास के क्रम में परिवर्तन लाकर उसने विकास के क्रम को गति-दी।

धार्मिक पाखंड और आडंबर का सहारा लेकर उस काल में पंडितों, पुरोहितों और मौलवियों द्वारा समाज को पथभ्रष्ट करके उसका शोषण किया जा रहा था। धर्म के सच्चे स्वरूप को जनता से ओझल रखकर मनुष्य के बीच भेदभाव को गहरा करने के जितने भी कौशल हो सकते थे उन सबको अपनाकर पंडित पुरोहित वर्ग, अपना उल्लू सीधा करने के साथ साथ, सामन्त वर्ग को शोषण और दमन का चक्र प्रबल करने में सहायता बहुँचा रहा था।

भक्ति साहित्य ने समाज के निम्न वर्गों में आत्म सजगता उत्पन्न की। समाज-रचना में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका का बोध कराकर उनमें आत्मगौरव का भाव भरा। वस्तुतः साहित्य का नेतृत्व, उस युग में उसी तथाकथित निम्नवर्ग के हाथ में रहा।

उससे पहले के युगों में साहित्य की प्रधान प्रवृत्ति शास्त्रीय नियमबद्धता की रही थी। भक्तिकालीन जीवनादर्शों और भावनाओं को वाणी देने के लिए उस नियमबद्धता का अतिक्रमण अनिवार्य था। इसलिए भक्तिकालीन साहित्यिक रचना स्वच्छन्दतावादी वृत्ति को अपनाकर, उसके अनेक पहलुओं में अभिव्यक्ति पाने लगी।

स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति के अनुरोध से पुस्तकीय ज्ञान को महत्व न देकर स्वानुभूति को प्रमाण माना गया। "पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ" कबीर की यह उक्ति तो प्रसिद्ध ही है। तुलसीदास भी आत्मोन्नति के मार्ग में शास्त्र-ज्ञान की उपादेयता को स्वीकार नहीं करते- काव्य-ज्ञात, अत्यंत निपुण, भव पार न पावै कोई।"

शास्त्रीय प्रवृत्ति में अभिव्यक्ति माध्यम के रूप में संस्कृत भाषा की स्वीकृती थी। भक्तिकाल से पहले के युगों में प्राकृत और अपभ्रंश को साहित्याभिव्यक्ति के लिए अपनाया गया था, और आदिकाल में, डिंगल-पिंगल का स्वीकार हुआ था, किन्तु लोक प्रचलित भाषाओं को व्यापक आधार पर भक्तिकाल में ही अपनाया गया। संस्कृत शास्त्रीयता का उपलक्षण बनी, और लोकप्रचलित भाषाएँ स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति का।

स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति के अनुरोध से ही उस काल के सगुणमार्गी कवियों ने ज्ञान और प्रेम की विशद तुलना में प्रेम का ऊंचा स्थान सिद्ध किया। सूरदास ने भ्रमरगीत में, भगवान से भिन्न इस प्रसंग की मौलिक उद्‌भावना में गोपियों द्वारा उद्धव के ज्ञान का उपहास तक कराया। तुलसीदास ने रामचरितमानस के उत्तरकांड में "ज्ञानहिं भक्तिहिं नहीं कछु भदा" कहकर 'ज्ञानदीप' की अपेक्षा भक्तिमणि को अधिक वरणीय ठहराया। ज्ञान और भक्ति का यह अतिरंजित भेद वस्तुतः शास्त्रीय नियमबद्धता के विरुद्ध स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति का निदर्शन करने के उद्‌देश्य से ही है।

भक्तिकालीन साहित्य में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति के साथ, लोक-तात्विक प्रवृत्ति का योग स्वतः स्वाभाविक रूप से हो गया। प्रेममार्गी भक्तों और अन्य प्रेमगाथाकारों ने, लोक प्रचलित कथाओं का आधार लिया। उन कथाओं के साथ अनेकानेक लोक विश्वासों, लोक रूचिओं, लोकादर्शों और लोक सामान्य रीति-नीतियों

BRAOU

का साहित्य में आगमन सहज ही हो गया। कृष्णभक्त ही हो गया। कृष्णभक्त कवियों द्वारा वर्णित बाल लीलाओं के प्रसंग में अनजाने ही लोक तत्वों का समावेश होता चला है। तुलसीदास ने "रामलता नच्छू" "जानकी मंगल", "पार्वतीमंगल" जैसे काव्यों की रचना द्वारा लोकतत्वों की ओर अपनी सजगता का परिचय दिया है।

2.4 पाठ का सारांश

हिन्दी का भक्ति साहित्य जिस काल में पूर्ण उन्मेष के साथ रचा गया, वह सांस्कृतिक नवजागरण का युग था। साहित्य में यह नव जागृति नवीन साहित्यिक. चेतना के रूप में दिखाई दी। पूर्ववर्ती युग की अपेक्षा में इस चेतना को साहित्यिक क्रांति कहा जा सकता है जिसमें व्याप्त नवजीवन के नये आदर्श, नयी आशाएं और आकांक्षाएँ अभिव्यक्त हुई।

इस साहित्यिक चेतना के अनेक आयाम लक्ष्य किये जा सकेत हैं। इनमें प्रमुख हैः

1. व्यापक जीवनाधार
2. उच्चतर जीवन-मूल्यों का पोषण
3. सामान्य मानवीय भावभूमि
4. नवीन सौन्दर्य-चेतना के साथ रस-व्यंजना की नयी दिशाएँ

प्रवृत्तियों की दृष्टि से भक्तिकालीन साहित्य में निम्नलिखित प्रवृत्तियों का समावेश हुआ है।

1. क्रांतिकारी भावना, जिसने ह्रास के क्रम को विकास के क्रम में प्रतिवर्तित किया।
2. शास्त्रीय नियमबद्धता की अवहेलना के साथ स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति का पोषण।
3. स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति के साथ लोक तात्विक प्रवृत्ति का योग स्वभावतः हो गया है।

2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न

1. भक्तिकालीन साहित्यिक चेतना पूर्ववर्ती साहित्यिक चेतना किस प्रकार भिन्न है?
2. भक्तिकालीन साहित्यिक चेतना में कौन से नये जीवन-मूल्य समाहित हैं?
3. भक्तिकालीन की सौन्दर्य चेतना को स्पष्ट कीजिये।
4. भक्ति साहित्य की रस व्यंजना की क्या विशेषताएँ हैं?
5. भक्तिकालीन साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ स्पष्ट कीजिए।

2.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न

1. जीवन की किन प्रमुख समस्याओं का समाधान भक्तिकालीन साहित्य में खोजने का प्रयास है?
2. निर्गुणमार्गी साहित्य की सौन्दर्य दृष्टि किन प्रसंगों में निहित है?
3. आदिकालीन साहित्यकारों की सौन्दर्य-दृष्टि संकुचित क्यों थी?
4. भक्तिकालीन साहित्य को क्रांतिकारी कहने का क्या तात्पर्य है?
5. भक्ति साहित्य में लोकतत्वों के समावेश का उदाहरण दीजिये।

BRAOU

2.7 नमूने के प्रश्नोत्तर

2.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर

प्रश्न :भक्तिकालीन साहित्यिक चेतना, पूर्ववर्ती साहित्यिक चेतना से किस प्रकार भिन्न है?
उत्तर :आदिकालीन साहित्यिक चेतना के दो पक्षों पर दृष्टि जाती है- एक राजाश्रित कवियों का काव्य, जो कि मूलतः चारण कवि थे; और दूसरे, सिद्धों, नाथों और जैनों का काव्य। यह दूसरी कोटि का काव्य वस्तुतः साहित्यिक गुणों से सम्पन्न नहीं है। इसमें अधिकतर धार्मिक सिद्धान्तों का कथन और उपदेशों की अभिव्यक्ति है। उसका महत्व भाषा की दृष्टि से है; युग की विचार धारा का भी परिचय उससे मिलता है।

राजाश्रित कवियों द्वारा रचित साहित्य की चेतना बहुत सीमित और संकुचित थी। उन कवियों ने या तो अपने आश्रयदाता राजाओं के वीरतापूर्ण कार्यों का बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन किया है या फिर उनके श्रृंगार-प्रसंगों का। उसका परिवेश भी संकुचित दरबारी है। इसलिए उसमें जीवन-प्रेरकता का अभाव है।

भक्तिकालीन साहित्य व्यापक सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन पर आधारित है। उसमें उदात्त जीवन-मूल्यों का समावेश है। वे मूल्य मुख्यतः उच्च नैतिकता पर आधारित है।

आदिकालीन साहित्य में अभिजात वर्ग की प्रतिष्ठा है। भक्तिकालीन साहित्यिक चेतना सामान्य मानवीय भावभूमि पर विचरण करने वाली है। "निर्गुणमार्ग" में तो साहित्यिक नेतृत्व ही ऐसे वर्ग के हाथ में था जो मनुष्य-मनुष्य के बीच भेदभाव के प्रति विद्रोह-भाव रखता था। सगुण मार्ग में अवतारवादी दृष्टि से परमसत्ता को सामान्य मानव सुलभ कार्यों और व्यापारों से युक्त व्यक्तित्व प्रदान किया गया। अधिकतर लीलाएँ अलौकिकता से रहित और जनसामान्य के आचार-व्यवहार के निकट हैं। जहाँ अलौकिकता है भी, उसे कोई कोई ही लक्ष्य कर पाते हैं और लक्ष्य करके भी याद नहीं रख पाते।

भक्तिकालीन साहित्य की सौन्दर्य-चेतना भी आदिकालीन साहित्य की सौन्दर्य चेतना की अपनेक्षा अधिक उदार, सूक्ष्म और उच्च स्तरीय है। आदिकालीन साहित्य की सौन्दर्य-चेतना रूढ़िग्रस्त और आडम्बरपूर्ण थी। उसमें भाव सौन्दर्य और चरित्र सौन्दर्य का उद्घाटन नहीं है। साथ ही प्राकृतिक सौन्दर्य की ओर भी वह उन्मुख नहीं है।

BRAOU

भक्तिकालीन साहित्यिक चेतना में रस व्यंजना भी पूर्ववर्ती साहित्य की अपनेक्षा अधिक विस्तृत है। उनमें रस के अवयवों-आलंबन, उद्दीपन, अनुभाव और संचारियों- की नयी नयी उद्भावनाएं हैं। भक्ति और वात्सल्य को नवीन रसो के रूप में भक्ति साहित्य ने ही स्वतंत्र मान्यता प्राप्त कराई।

2.7.2 'ब' श्रेणी के प्रश्नोत्तर

प्रश्न : जीवन की किन समस्याओं का समाधान भक्तिकालीन साहित्य में खोजने का प्रयास है?
उत्तर : विदेशी शासकों की सत्ता स्थापित हो जाने से और उनके द्वारा इस्लाम धर्म के कट्टर रूप को जनता पर आरोपित करने के दुराग्रह से, इस देश के जनजीवन ने बदली हुई परिस्थितियों में स्वयं को अनेक समस्याओं से ग्रस्त पाया। उनमें से प्रमुख समस्याएँ थीं:

1. धर्मचर्या और आचार के रूप में अपनी सांस्कृतिक अस्मिता की रक्षा।
2. धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन में निहित दुर्बलताओं का परिहार।
3. नवागत जाति के दंभ और धार्मिक कट्टरता का तिरस्कार।
4. शासक-वर्ग और सामन्त-वग की वैभव-विलास वृत्ति के प्रभाव से जन-जीवन की रक्षा।
5, नवागत जाति के साथ समन्य की भूमिका का सन्धान।

2.8 पठनीय पुस्तके

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास।
2. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : मध्यकालीन धर्म साधना
3. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्यः उद्भव और विकास
4. डॉ. रामकुमार वर्मा : हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास
5. डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त : हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास
6. डॉ. एस.टी. नरसिंहाचारी : सौन्दर्य तत्व-निरूपण

BRAOU

इकाई-3: भक्तिकालः काव्यधाराएँ और काव्यरूप

3.0 विषय प्रवेश
3.1 उद्देश्य
3.2 पाठ-परिचय
3.3 मूलपाठ
3.3.1 भक्तिकाल का वर्गीकरण
3.3.2 समान तत्व
3.3.3 ज्ञानाश्रयी शाखा
3.3.4 सूफी प्रेमाश्रयी शाखा
3.3.5 रामभक्ति शाका
3.3.6 कृष्णभक्ति शाखा
3.3.7 अन्य काव्य धराएँ
3.4 पाठ का सारांश
3.5 शब्दार्थ
3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
3.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न
3.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न
3.7 नमूने के प्रश्नोत्तर
3.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर
3.7.2 'ब' श्रेणी के प्रश्नोतेतर
3.8 पठनीय पुस्तकें

BRAOU

3.1 उद्देश्य

इस पाठ में भक्तिकाल की प्रमुख काव्य धाराओं और काव्य रसों पर विचार किया गया है। इस पाठ के अध्ययन से आप:

- हिन्दी साहित्य के भक्ति साहित्य की प्रमुख काव्य धाराओं पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- भक्तिकाल के प्रमुख काव्य रसों की विवेचना कर सकेंगे।
- भक्तिकाल के प्रमुख कवियों और उनकी कृतियों पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- भक्ति साहित्य की प्रमुख विशेषताओं को रेखांकित कर सकेंगे।

3.2 पाठ परिचय

हिन्दी साहित्य के इतिहास के अध्ययन के अंतर्गत, द्वितीय काल अर्थात् भक्ति काल के विस्तृत विवेचन-क्रम में गत हो पाठों में भक्ति काल के सामाजिक सांस्कृतिक संदर्भ तथा 'नवीन साहित्यिक चेतना और प्रवृत्तियाँ' का भूमिका रूप में विचार कर लेने के बाद प्रस्तुत पाठ में भक्ति काल की काव्य-सामग्री का परिचय प्राप्त करना हमारा उद्देश्य है। कथ्य और अभिव्यक्ति दोनों दृष्टियों से तो भक्ति काव्य उत्कृष्ट है ही, परिणाम की दृष्टि से भी बहुत विशाल है। कारण यह है कि भक्ति भावना के अनेक रूप है। एक ईश्वर के निर्गुण रूप के प्रति भक्ति है। दूसरी ईश्वर के सगुण रूप के प्रति। फिर निर्गुण के प्रति भक्ति की भी दो पद्धतियाँ है। और सगुण के प्रति भक्ति की भी दो पद्धतियाँ। इस प्रकार भक्ति काव्य का अध्ययन चार उप विभागों के अंतर्गत करना आवश्यक

खुदा एक सर्वशक्तिमान निरपेक्ष सत्ता है। जीव उसके सर्वथा भिन्न है खुदा शासक है। और उसके बंदे (जीव) शासित है। जीव उससे भय मानता है। और उसकी बंदगी करता है। भारतीय अद्वैद वाद के अनुसार जीव साधता द्वारा स्वयं ब्रह्म भाव को प्राप्त हो सकता है। फिर भी व्यवहारिक धरातल पर भारतीय अद्वैतवाद और इस्लामी एकेश्वरवाद के बीच अभिन्नता का दर्शन किया गया।

ज्ञानाश्रयी भक्त कवियों ने भक्ति का ऐसा मानसिक रूप अपनाया है। जिसमें पूजा आदि के बारसोपचारों के लिए स्थान नही है। सगुणोंपासकों में भक्ति के नौ उपचारों का विधान है।

श्रवण कीर्तन विष्णोः स्मरण पादसेपनयू।
अर्थन वंदन दास्य सख्यामात्म निवेदन्य।।

इनमें से निर्गुणो पासकों को केवल के ही उपचार स्वीकार्थ है। जो मानसिक धरातल है या फिर वे इन उपचारों की मानसिक धरातल पर ले जाते है। कबीर द्वारा आरवी का स्वरूप देखिये।

दीपक ग्यान, सबद धृति घंटा।
परम पुरिख तंह देव अन्नता।।

भाव योजनाः

शांत समय, दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य, भक्ति के इन भावों में से ज्ञानाश्रयी भक्ति साहित्य में दास्य और माधुर्य भावों ने अभिव्यक्ति पायी है। कबीर के काव्य में दास्य भाव का उदाहरण है।

मैं तो कूता राम मुतिया मेरा नाऊं।
गले राम की जेवजी, जित खींचे वित जाउं।

माधुर्य भाव को दांपत्य भाव या कांता भाव भी कहा जाता है। प्रतिव्रता पत्नी का अपने पति के प्रति जैसा अनन्य समर्पण युन्त प्रेम भाव होता है। वैसा ही भाव परमात्मा के प्रति जीवात्मा का व्यन्त होते पर माधुर्य भाव की स्थिति होती है पति पत्नी के बीच प्रेमसंबंध में एक निगूढता का भाव स्वतः ही रहता है, फिर निर्गुण-निराकार प्रियतम के प्रति प्रेम निवेदन में यह निगूढता और भी बढ़ जाती है। इसलिए इसे रहस्यवादी भावना कहा जाता है। निराकार प्रियतम से प्रत्यक्ष मिलन कभी संभव नहीं है। इसलिए ऐसे प्रेम संबंध में सैछ विरह की ही स्थित रहती है। इसलिए मिलन की तड़प और मिलन से दूर रहने वाले प्रियतम के प्रति अनेक प्रकार के उलोहने प्रेमिका रूप जीवात्मा द्वारा व्यक्त होते है।

BRAOU

आइ सकौं न तुज्झ पै सकों न तुज्झ बुलाई।
जियरा यों ही लेहुगें, बिरह तपा तपाइ।।

उत्कृष्ट प्रेमोन्मान में कभी-कभी प्रेमिका रूप साधक को मिलन की भावना भी होती है।

दुलहिन - गावहु मंगल चार
हम घर आए राजा राम भरतार।।

सामान्यतः कहा जाता है कि इस शाखा के कवियो ने सूफियों से माधुर्य भाव का प्रेम ग्रहण किया है। किन्तु सूफियों की ईरानी पद्धती में, परमसत्ता की स्थिती पत्नी की ओर जीवात्मा की स्थिति पति की रहती है। जैसे जायसी के पद्मावत काव्य में जीवात्मा रूप रत्नसेन पति की भूमिका में है। और परमात्मा रूप पद्मावती पत्नी की भूमिका में। इसी प्रकार मिलन का प्रयास भी रत्नसेन की ओर से अधिक है, जबकी ज्ञानाश्रयी कवियों में पत्नी (जीवात्मा) की ओर से मिलन का प्रयास अधिक दिखाई देता है। वस्तुतः भारतीय भक्ति परंपरा में माधुर्य प्रसंग में प्रेम का जो रूप निदर्शित

है इन सभी उपविभागों में अनेकानेक कवि और उनकी रचनाएँ है। इन सब में मूल रूप से निहित भक्ति चेतना ने किस प्रकार भिन्न-भिन्न रूप धारण किये है। उनमें पारस्परिक संबंध क्या है। और परंपरा तथा युगबोध ने उन्हें कैसा साहित्यिक स्वरूप प्रदान किया है, इन सब बातों, का ज्ञान भक्तिकालीन साहित्य को समझने के लिए आवश्यक है अध्ययन को व्यवस्थित रखने के लिए भक्ति काव्य की प्रत्येक शाखा का विवेचन।

निम्नलिखित उपशीर्षकों के अंतर्गत किया गया है।

1. शाखा का सामान्य परिचय
2. मूल चेतना
3. भाव योजना
4. वस्तु योजना
5. काव्य रूप
6. भाषा और अभिव्यक्ति
7. प्रमुख कवि।

प्रत्येक शाखा के अंतर्गत आनेवाले अनेक कवियों के उल्लेख के साथ, उस शाखा के एक एक प्रतिनिधि कवि और उसके काव्य का विस्तृत विवरण उपस्थित किया गया है।

अंत में भक्ति काल की अन्य काव्य-धाराओं का संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

3.3 मूल पाठ

भक्ति काव्य का वर्गीकरण:

परम सत्ता से प्रेम संबंध से भक्ति है। परम सत्ता की भावना, भक्तों ने अपनी रूची और मति के अनुसार भिन्न-भिन्न रूपों में की है। परमसत्ता पृथ्वी पर सगुण साकार रूप में अवतरित क्षती है। अलग अलग युगों में अवतार के रूप अलग-अलग रहते है। कभी वराह कभी नरसिंह, कभी राम और कभी कृष्ण रूप में उसका आविर्भाव हुआ है; आगे के युगों में भिन्न रूपों में होता रहेगा।

सगुण साकार रूप में अवतरित होने पर उस सत्ता के द्वारा कोई कार्य होते है। वे उसकी लीलाएँ कहलाते है। उन लीलाओं द्वारा धर्म स्थापना साधुओं का उद्धार और दुष्ट-संहार तो होता ही है। साथ ही वे लीलाएँ जग उत्कृष्ट आचरण का आदर्श स्थापित करती है।

जो भक्ति परमसत्ता के ऐसे सगुण साकार रूप की भावना करके, उससे भक्तिगत प्रेम संबंध स्थापित करना चाहते है। वे सगुण-वादी या सगुणोपासक भक्त कहे पाते है। उनको भक्ति में अपने उपास्य की लीलाओं का स्मरण और कीर्ति प्रधान स्थान रखता है।

निर्गुणवादी भक्तों की धारणा केवल निर्गुण निराकार तक ही सीमित रहती है उनके वह सत्ता दृश्यमान जगत से भिन्न और परोक्ष है। जगत् में जो कुछ विध्यमान है, वह तीन गुणों और उनके असंख्य मिश्रणों से निर्मित है। वे गुण है सत् रज और तय। परम सत्ता इन तीनों गुणों से पटे है। इसलिए वह "निर्गुण" है। सब प्रकाश के आकार का आधार गुण ही है। इसीलिए गुणों से परे निर्गुण सत्ता "निराकार" भी है। तो साधक ऐसी निर्गुण निराकार सत्ता की उपलब्धी भक्तिगत प्रेम के सहारे करना चाहते है वे निर्गुणवादी या निर्गुणोपासक भक्त कहे जाते है।

गुणों से परे रहकर भी वह सत्ता का, सगुण साकार रूप में प्रकट होना, विशेष उद्देश्य वंश होता है। जब संसार में धर्म का हास और अधर्म की अधिकता होने लगती है। और इस कारण धर्म का आचरण करने वाले साधुओं का पराभव होने लगता है। तथा अधर्म परायणता दृष्यों का प्रभाव

BRAOU

बढने लगता है। तब धर्म के पुनस्थार्पन के लिए, वह परमसत्ता पृथ्वी पर सगुण साकार रूप में अवतरित होती है। अलग अलग युगों में अवतार के रूप अलग-अलग रहते है। कभी वराह, कभी नारसिंह, कभी राम और कभी कृष्ण रूप में उसका आविर्भाव हुआ है। आगे के गुणों में भिन्न रूपों में होता रहेगा।

सगुण साकार रूप में अवतरित होने पर उस सत्ता के द्वारा जो कार्य होते है वे उसकी लीलाएं कहलाते है। उन लीलाओं द्वारा धर्म स्थापना माधुओं का उद्धार और दृष्ट संहार तो होता ही है साथ ही वे लीलाएँ जग उत्कृष्ट आचरण का आदर्श स्थापित करती है।

जो भक्ति परमसत्ता के ऐसे सगुण साकार रूप की भावना करके उससे भक्तिगत प्रेम संबंध स्थापित करना चाहते है। वे सगुण वादी या सगुणोंपासक भक्त कहे जाते है। उनकी भक्ति में अपने उपास्य की लीलाओं का स्मरण और कीर्तन प्रधान स्थान रखता है।

निर्गुणवादी भक्तों की धारणा केवल निर्गुण निराकार तक ही सीमित रहती है उनके लिए सगुण-साकार अमात्य है। किन्तु सगुण वादियों की धारणा में निर्गुण निराकार तथा सगुण साकार दोनों रूप मान्य है।

भक्तिकाल में निर्गुणवादी और सगुणवादी दोनों प्रकार के भक्तों द्वारा साहित्य की रचना हुई। दोनों ने अपनी अपनी विशिष्ट धारणाओं और मान्यताओं के काव्य रूप में वाणी दी। इसलिए भक्ति साहित्य के दो प्रधान वर्ग लक्षित होते है।

1. निर्गुणवादी भक्ति साहित्य और
2. सगुणवादी भक्ति साहित्य। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से नदी का रूपक इन पर घटित करते हुए है। इन्हें "धाराएँ" कहा गया है। इस प्रकार भक्ति साहित्य की दो प्रधान धाराएँ हो जाती है।

1. गिर्गुण भक्ति धारा , 2. सगुण भक्ति धारा

निगुणोंपासक भक्तों में दो भिन्न उपासना पद्धतियों के साधक हुए है। एक वे जिनकी उपासना पद्धति में मुख्यतः है। भारतीय अद्वैतवाद का सहारा लिया गया है। दूसरे वे जिन्होंने इस्लाम धर्म के एक विशिष्ट रूप सूफी-प्रेम पद्धति को अपनाया है। इसीलिए इन दोनों पद्धतियों के साधकों द्वारा रचित निर्गुण भक्ति धारा के साहित्य को "ज्ञानाश्रयी" और "प्रेमाश्रयी" भेद दो उप वर्गों में रखा गया है।

BRAOU

सगुणोंपासक भक्तों में भी दो भिन्न वर्गों के उपासक हुए है। एक वे जिनकी "राम" के प्रति एकनिष्ठा व्यक्त हुए है। दूसरे वे जिनकी कृपण के प्रति एकनिष्ठता व्यक्त हुई है इस कारण सगुण भक्ति धारा के साधकों द्वारा रचित साहित्य को "राम" भक्ति और "कृष्ण भक्ति" भेद से दो उप वर्गों में रखा गया है।

"धारा" के रूपको को आगे बढ़ाते हुए इनके अंतर्गत उपवर्गों को "शाखा" के विशेषण भी समझा जा सकता है।

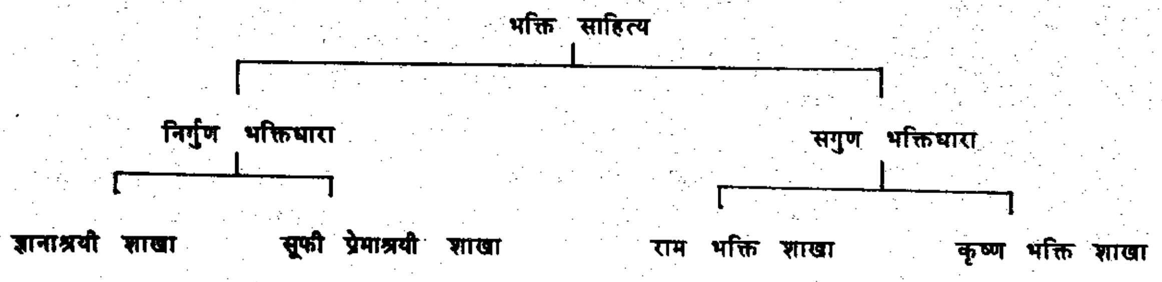

3.2 समान तत्व

भक्ति-साहित्य के उपर्युक्त वर्गों और उपवर्गों में मौलिक समानता यह है कि सभी में परमसत्ता (ईश्वर) की उपलब्धि भक्ति द्वारा स्वीकृत है। अन्त परमात्मा स्वरूप की भिन्न-भिन्न भावना और भक्ति की भिन्न-भिन्न पद्धतियों का है। इस अंतर के साथ सब में काव्य वस्तु काव्य रूप, भाषा और अभिव्यंजना के अपने अपने विशिष्ट रूप दिखाई देते है।

भक्ति भावना रूपी समान तत्व के अतिरिक्त, अनेक अन्य तत्वों को भी उपर्युक्त चारों शाखाओं में समान महत्व प्राप्त हुआ है। चारों शाखाओं के साहित्य का अलग अलग विस्तृत परिचय प्राप्त करने से पहले, उन समान तत्वों का परिचय प्राप्त कर लेना उपयुक्त होगा।

(क) गुरू की महत्ता

भक्ति साहित्य की सभी शाखाओं में गुरू की महिमा उत्कृष्ट भाव से स्वीकार की गयी है भक्ति आध्यात्मिक साधना है। उस साधना दुरह पथ पर साधक की प्रगति बिना गुरू की सहायता के नहीं हो सकती, ऐसा माना गया है गुरू वह है जिसे अध्यात्मिक सिद्धि हो गयी है। जिसने आत्मोपलब्धि कर ली है। जिसे तत्व दर्शन हो गया है। वह कृपा करके साधक का पथ प्रदर्शन करता है। उसे लक्ष्य तक पहुँचता है। क्योंकि ईश्वर की प्राप्ति गुरू की कृपा से ही होती है। इसलिए गुरू का महत्व ईश्वर से भी अधिक है। लौकिक सामान्य गुरू से आध्यात्म पथ के या भक्ति मार्ग के गुरू की श्रेष्ठता का बोध कराने के लिए उसे सद्‌गुरू कहा गया है। ज्ञानाश्रयी शाखा के कबीर की उक्ति है- लोचन अनंत उघरिया अनंत दिखावनहार

गोविंद की अपेक्षा गुरू को उन्होंने वंदनीय माना है। इसी प्रकार, तुलसीदास का कथन है।-

गुरू पदरज मृदु मंजुल अंजन।
नयत अमिय दृगदोष विभजन।।

और वे कहते है।

गुरू बिन होइ नि ज्ञान?

BRAOU

इसी प्रकार, सूफियों और कृष्णोपासकों ने भी गुरू की महिमा गयी है। जायसी ने रत्न सेत (साधक) और पद्मावती (उपस्य) की बीच गुरू रूप हीरामत तोते की अवधारणा की है। सूरदास ने अपने महान गुरू आचार्य वल्लभ के प्रति "भरोसों इन चरनन केरो" पद में श्रद्धा व्यक्त की है।

(ख) नाम की महिमा

भक्ति साधना में माना गया है कि अनेक साधनों के रहते हुए भी केवल नामजप का आश्रय लेते भाग से उपस्य की प्राप्ती हो सकती है। वाल्मीकि के विषय में प्रसिद्ध ही है।

उलटा नाम जपन जब जाना
वाल्मीकि भेय ब्रह्म समान।

तुलसीदास ने इष्टदेव से बढकर उसके नाम को माना है। "नामी" (इष्टदेव) की प्राप्ति उसके नाम द्वारा होती है। उनका कथन है। ब्रह्म राम ते नाम बढा वरदायक वरदाति ईसा प्रकार कबीरदास विहर भावना के आवेश में कहते है।

जीभकिया छाला पड़्या नाम पुकारि पुकारि

भक्तों ने अपने इष्टदेव को अनेक नामों से स्वरण किया है राम, हरि, गोविंद विष्णु, माधव, मुरारी आदि नामों में उन्होंने तात्विक अंतर नहीं माना है। निर्गुणोंपासक कवियों ने ईश्वर के साकारता-सूचक पौराणिक नामों का उल्लेख नहीं किया है।

(ग) विनय भाव

भक्ति की साधना में अहं भाव का पूर्णतया परिहार आवश्यक है। चित्त-शुद्धि के बिना आत्मोंपलब्धि नहीं होती। रागद्वेष आदि बिकार चित्तशुद्ध में बाधक है। और अहंभाव ही इन बिकारों की खान है। इसलिए भक्त साधक विनय भाव अथवा दैन्य भाव धारण करके अहं से मुक्त रहने की आकांक्षा करते है।

दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य इन चार भावों की साधना भक्ति के उत्तरोत्तर सोपानों के रूप में मानी गयी है। "दास्य" में सेवक-सेन्य भाव निहित है। यही भक्ति का पहला सोपान है। तुलसीदास ने कहा है "सेवक सैन्य" भाव बिन भव न तरिय उरगारि। सेवक में विनय भाव अत्यंत उपेक्षित है। इसीलिए सभी कोटि के भक्तों ने इष्ट देव के आगे अपना दैन्य प्रकट किया है कबीर कहते है।

मैं तो कता रांम का गुतिया मेरा नाऊँ।
गले राम की बदेजी जित खींचे तितजाऊँ।

तुलसीदास जी का कथन है।
मो सभ दनि न दनिहित तुम समान रघुवीर
उस विचार रघुवंसमति हरहु विषय भवपीर

इसी प्रकार अहिंसा, सदाचार आत्मसंयम और संसार की असारता का भाव ऐसे तत्व है। जिन्हें सभी शाखाओं के भक्ति साहित्य में समान महत्व मिला है इन्हें भक्ति साहित्य के सामान्य लक्षण भी कहा जा सकता है।

अब भक्ति काव्य की एक-एक शाखा का अलग-अलग विवेचन किया जायेगा।

(उ) ज्ञानाश्रयी शाखा

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भक्ति साहित्य की इस शाखा को यह नाम (ज्ञानाश्रयी शाखा) दिया था। परवर्ती विद्वानों ने "ज्ञानाश्रयी" विशेषण को इस प्रसंग में सार्थक नहीं माना है। उनकी धारणा है कि इन शाखा के कवियों का सामान्य भाव प्रेम पर आधारित भक्ति का ही रहा है, ज्ञान को उसमें प्रधानता नहीं मिली है। इसीलिए इसे "निर्गुण भक्ति साहित्य" या "संत काव्य परम्परा का साहित्य" अथवा "सन्त साहित्य" कहना अधिक उचित है इनमें से पहला मत पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी का है। और दूसरा मत डॉ. रामकुमार वर्मा एवं परशुराम चतुर्वेदी जी का है।

वस्तुतः भारतीय चिंतन परम्परा में ज्ञान और भक्ति के बीच तात्विक अंतर मान्य नहीं रहा है। यह सही है कि "ज्ञान" में बुद्धि का योग रहता है। और "भक्ति" में हृदय का। किन्तु आध्यात्मिक साधना में "ज्ञान" से तात्पर्य परमसत्ता की ज्ञानात्मक अनुभूति से है। अनुभूति के स्तर तक न पहुँचनेवाले ज्ञान पूर्ण नहीं है। इस प्रकार, ज्ञान और भक्ति का अंतिम साध्य एक ही है। आचार्यों द्वारा ज्ञात की चरम उपलब्धि के लिये ज्ञात को सहायक माना गया है। नारद भक्ति सूत्र के अनुसार परम प्रेमरूपा भक्ति की सिद्धि में ईश्वर के महात्म्य-ज्ञान को निश्पवाद कहा गया है। हाँ, मध्ययुग में अनेक कारणों से (तथाकथित ज्ञात साधकों की विकृतियों को देखकर) ज्ञात और भक्ति का पार्थक्य अवश्य खडा किया गया।

BRAOU

इस शाखा के भक्त कवियों ने जिन अनेक स्त्रोतों से प्रेरणा ग्रहण की है उनमें जैसा की इन आंखे देखेगें एक मुख्य स्त्रोत है। शंकराचार्य का अद्वैत दर्शन और वह उपनिषदों के ज्ञान की पीठिका पर आधृत है। कदाचित इसी कारण आचार्य शुक्ल ने इसे ज्ञानाश्रयी कहा है। "निर्गुण भक्ति साहित्य" नाम किंचित अतिव्याप्ति है। क्योंकि यह नाम इस शाखा का और सूफी शाखा का सम्मिलित बोध कराने के लिए ही उपयुक्त है। "संत साहित्य" करने के पक्ष में प्रबल तर्क है। संस्कृत में "संत" "शब्द" विवेकी व्यक्ति या सज्जन के लिए प्रयुक्त हुआ है। कालिदास की उक्तिया "संतः परीक्षालरद भपने" और तसत" श्रोतुमर्हान्वि सज्जन साधु के अर्थ में कबीर ने संत शब्द का प्रयोग किया है "संत न छाजह संतई" जो कोटिक भिलहि असंत"। प्रायः रसी अर्थ में तुलसीदास ने इसका प्रयोग किया है। "कबहुंक ही या रहित रहोगे श्री रघुवीर कृपालु कृपा ते संत सुभाय गहौगो।" महाराष्ट्र में संत शब्द वारकरी संप्रदाय के प्रचारकों के लिए प्रयुक्त होता रहा है। उन प्रचारकों में नामदेव ज्ञानदेव, एकनाथ तुकाराम आदि है। नामदेव की भक्ति-साधना से कबीरदास ने बहुत कुछ ग्रहण किया। नामदेव की कुछ हिन्दी रचनाऍं भी मिलती है, और इस कारण कुछ लोग तो इस शाखा का प्रथम कवि नामदेव को ही मानते है। शायद ईसा कारण "संत" पद इस शाखा के कवियों के लिए विशेषण रूप में प्रयुक्त हुआ है।

इस शाखा के प्रेरणा स्त्रोतों की दृष्टि से पातंजल हठयोग, और निषदिक, अद्वैतवाद (विशेषतः शाकर अद्वैत) वैष्णवीय अहिंसा और प्रपत्तिभाव तथा सूफियों के प्रेमतत्व का उल्लेख किया जा सकताहै।

वज्रयानी सिद्धों के तंग-मंत्र और वामाचार कास्तरस्कार करके गुरू गोरखनाथ ने सिद्धों की साधनों के साथ पातंजल योगदर्शन को जोडकर नाथपंथ चलाया। कबीर आदि ज्ञानाश्रयी संत कवियों ने उसी परंपरा को ग्रहण किया। यम, नियम आसान, प्राणायाम, प्रत्याधार के रूप में हठयोग, तथा धारणा, ध्यान और समाधि के रूप में राजयोग की शब्दावली का यथा प्रसंग प्रयोग इस काव्य में इसी कारण मिलता है। जीव और ब्रह्म की एकता, जगत का मिथ्यात्व, तथा माया की अवधारणा शांकर अद्वैत के मूलधार है- "ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या जीवों ब्रह्मैत्व नापरा"। इस शाखा के कवियों की विचारधारा में इन तत्वों को इसी में ग्रहण किया गया है। अहिंसा की धारणा क्षमा संस्कृति से होती हुई वैष्णव साधना में विकसित हुई; प्रपत्ति अर्थात शरणागति का भाव, ईश्वर के प्रति अनन्य समर्पण के रूप में उपनिषद्ध काल से चला आ रहा था। श्रीमद् भगवदगीता में "ये यथा मॉं प्रपद्यन्ते" जैसे वाक्य इसके समर्थक है। वैष्णव भक्ति में इस भाव के विशेष रूप से अपनाया गया। अन्त दोनों भाव, इस शाखा के काव्य में वैष्णवों से गृहित कहे जा सकते है। इस्लाम धर्म के अनुयायियों के एक विशेष वर्ग में प्रेमाधरित सूफी साधना विकसित हुई। यों, भारतीय भक्ति परम्परा में प्रेम तत्व बहुत पहले से रहा है। बल्कि भक्ति का मूलाधार ही प्रेम माना गया है। नारद ने भक्ति की "परम प्रेमारूपा" और साहित्य ने भक्ति को "परानुरस्तिरीश्वरे" कहा है। फिर भी, इस शाखा के कवियों में प्रेमोन्माद का जो तत्व मिलता है। उसे सूफी प्रेम का विरोष रूप मानना ही उचित होगा।

कबीर की प्रेमोन्मादपरक भक्ति है।
हरि रस पीमा पानियें, जो कबहु न पाय खुमार,
मैमंता घूमत फिरै, नहिन तन की सार।

मूल चेतनाः

ज्ञानाश्रयी शाखा के साहित्य की मूल चेतना ईश्वर की अद्वैतता, उसकी निराकारता और भक्ति द्वारा उसकी उपलब्धि के भावों में निहित है।

इस्लाम के आगमन के पहले से भी इस देश में परमसत्ता के संबंध में अद्वैत का विचार वर्तमान था। वैदिक बहुदवेवाद का समाहार "एक सं विप्राः "बहुधा वदति" कह कर लिया गया था। इस्लाम धर्मानुयायियों के साथ धार्मिक भावना के स्तर पर सामंजस्य स्थापित करने के उद्देश्य से निर्गुणपरक अद्वैत भाव की उपयोगिता के आधार पर बल मिला। यों, भारतीय निर्गुण ब्रह्म संबंधी धारणा और इस्लामी खुदा संबंधी धारणा में तात्विक अंतर है। निर्गुण ब्रह्म सभी जीवात्माओं में व्याप्त है। जबकि

BRAOU

है, इस शाखा के कवियों ने उसी का अनुकरण किया है। नारद भक्ति सूत्र में "यथा ब्रज गोपीनाम" कर कर कृष्ण रूप परमात्मा के प्रति गोपी रूप जीवात्माओं की प्रेमा भक्ति का निरूपण है।

वात्सल्य भाव की भक्ति, सामान्यतः वहाँ मानी गयी है जहा बालक रूप भक्तों का प्रेम भाव व्यक्त हुआ हो, जैसा कि कृष्ण के प्रति नंद-यशोदा आदि का। किन्तु जब कबीरदास कहते है। "हरि जननी मैं बालक होरा" तो वात्सल्य भाव विपरीत क्रम से व्यक्त होता है।

वस्तु योजनाः

राजाश्रयी शाखा के भक्ति साहित्य में जो विषयों को अभिव्यक्ति मिली है। उन्हें छः विभागों में रखा जा सकता है। पहला धार्मिक-आध्यात्मिक और दूसरा सामाजिक। इन दोनों के भी अलग-अलग दो दो उप विभाग किये जा सकते है विध्यात्मक और निषेधात्मक। इन विभागों-- उपविभागों के अंतर्गत विषयों के संक्षिप्त सूची इस प्रकार होगी।

1. धार्मिक आध्याक्मिक

(क) विध्यात्मक-

ईश महिमा, गुरूप महिमा, सत्संग, स्वानुभव।

(ख) निषेधात्मक-

मूर्तिपूजा, बहुदेववाद, शास्त्र ज्ञान, कंचन-कामिनी (माया के अंग रूप) धार्मिक रूढियां और आडंबर, तीर्थाटन, हिंसा, व्रत, रोज़ा, नमाज़।

2. सामाजिक

(क) विध्यात्मक-

सामाजिक और मानवीय समता

(ख) निषेधात्मक-

जातिपांतिमत भेदभाव,

साम्प्रदायिक वैमनस्य।

काव्य रूपः

ज्ञानाश्रयी शाखा के भक्तों ने मुक्तकों के रूप में ही काव्य रचना की है। उन मुक्तकों के साखी, सबद और रमैनी रूप मिलते है। मूलक दास की कुछ रचनाएँ राम, कृष्ण ध्रुव के विषय में प्रबंध काव्यों के रूप में भी है।

साखियों का स्वरूप दोहों का है। इनमें मुख्यतः साम्प्रदायिक शिक्षा और सैद्धांतिक उपदेश व्यक्त हुए हैं। कबीरदास ने साखी को "ज्ञान की आँख" कहा है वह ज्ञान तटस्थ दृष्टा का ज्ञान है। जागतिक विषयों से निर्लिप्त शुद्ध बुद्ध आत्मा, सृष्टि व्यापार के पति "साक्षी" की स्थिति में रहती है। शंकराचार्य की उक्ति है

अहं साक्षीति यो विवेच्येव पुनः पुनः।
स एव मुक्तः स विद्वान इति वेदांत डिण्डिमः।।

या फिर-

द्वंद्वादि साक्षिरूपों हं अचलो हं सनातमः।
सर्वसाक्षिस्वरूपों हं अहमोवाहमत्यः।।

BRAOU

"साखी" शब्द "साक्षी" का ही तद्भव रूप है। साखीकार भक्त कवियों ने स्वयं को साक्षी की भूमिका में रखकर जीवन और जगत् की आलोचना की है।

"सबद" (शब्द) गेय पद है। इनकी रचना शास्त्रीय रागों के आधार पर हुई है। इन रागों में मुख्य है। गौड़ी, आसावरी, बिलवल, टोडी आदि।

रमैनियों की रचना अपभ्रंश की कड़वल शैली पर हुई है। इनमें चौपाइयों की चार, सात, आठ, या बारह अर्धालियों के उपरांत दोहे का प्रयोग किया गया है।

इसके अतिरिक्त कवित सवैया हंसपद और सार छंदों में भी कुछ रचनाएँ मिलती है।

भाषा और अभिव्यंजनाः

काव्य-सौष्ठव और भाषा के परिष्कार, परिमार्जन आदि की दृष्टि से ज्ञानाश्रयी भक्ति काव्य में उच्च साहित्यिक गुणों का अभाव है, फिर भी उसमें सशक्त अभिव्यंजना शक्ति निहित है।

इस शाखा के कवि प्रायः समाज के निम्न वर्गों से आये थे। साधनविहीन परिस्थितियों के कारण वे साहित्य, भाषा और व्याकरण आदि के अनुशीलन से वंचित रहे थे। वास्तव में भक्ति और धर्म के सच्चे रूप का प्रचार करने वाले साधक थे काव्य रचना इनका उद्देश्य नहीं था। मन की उमंग में, अपने भावों और विचारों को सहज सरल वाणी में ये काव्यात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करते थे। ये संत कवि पर्यटनशील थे इसलिए इनकी भाषा में अनेक प्रदेशों की शब्दावली का सम्मिश्रण मिलता है। इनके द्वारा प्रयुक्त ब्रज, अवधी, भोजपुरी, पंजाबी और राजस्थानी के मिले जुले भाषा रूप को विद्वानों ने "सधुक्कड़ी" नाम दिया है। सहज प्रतिमा के कारण, भाषा की शक्ति का दोहन करने में ये कवि किसी भी उच्च साहित्यिक बोध संपन्न कवि की अपनेक्षा का दक्ष नहीं दिखाई देते। सामाजिक और धार्मिक कुरीतियों पर प्रहार करते समय इनकी भाषा में सचेत पुरुषता और तीखी व्यंग्य वृत्ती रहती है, तो भक्ति भावना पूर्ण कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति के प्रसंगों में इनकी भाषा सुकुमार लोच लचक से पूर्ण करती है।

इन कवियों ने यथावसर प्रतीकों, रूपकों और अन्योक्तियों का बड़ा ही सफल प्रयोग किया है। इनसे इनका काव्य भावों की सफल संप्रेषणीयता अथवा साधारणीकरण की विशेषता से युक्त है। उपमान-योजना इन कवियों की अनूठी और मौलिक रहती है उदाहरण देखिये

मत है, तन कागड का पुतरा।
....
यह संसार कगद की पुड़िया।

रूपक का उदाहरण-संतों भाई, आई ज्ञान की आंधी।
अन्योक्ति का उदाहरण-काहे री नलिनी तु उम्हलानी।।

प्रतीकों का एक बहुत ही विशिष्ट प्रकार का प्रयोग इनकी उलट बसियों में मिलता है। इन उलटबासियों में दो पद्धतियों का प्रयोग मिलता है।

1. स्वाभाविक व्यापारों के विपरीत कार्य की कल्पनाः
   पहले पूत पूछों माई माई, चेला के गुरू लागै पाई।।
2. आश्चर्यजनक घटनाओं की सृष्टिः
   पुहुप बिना एक तखर कालिया, बिन कर तूर बजाया।

इन उलटवासियों की रचना जनसाधारण के लिए नहीं है इनका रहस्यपरक अभिव्यक्ति-कौशल शायद इनके संप्रदाय के लोगों की समझ के लिए ही है।

BRAOU

प्रमुख कविः

इस शाखा के प्रमुख कवियों में रामानंद, कबीरदास, रैदास, नानकदेव, जम्मनाथ, हरिदास निरंजनी, लालादास, दादूद थाल, मलूक दास बाबा लाल और सुंरददास की गणना है। इसमें कबीर का महत्व सबसे अधिक है वे ही इस शाखा के प्रतिनिधी कवि है।

कबीर का आविर्भाव-काल तेरहरवीं शताब्दी का अंतिम भाग और चौदहवी शताब्दी का आरंभ माना गया है। लोकश्रुति के अनुसार उनका जन्म एक विधान ब्राम्हणी के गर्भ से हुआ था। परित्यन्त संतान का पालन-पोषण नीरू नामक जुलाहें और उनकी पत्नी नीमा द्वारा हुआ। कहा जाता है कि कबीर की पत्नी का नाम लोई था इनके पुत्र का नाम कमाल और पुत्री का नाम कमाली था।

कबीर को विधिवत् शिक्षा प्राप्त करने का अवसर नहीं मिला था। पतवक पेशे के रूप में जुलाहे का काम करते हुए में सत्संगीत में लगे रैहते थे। कहा जाता है कि इन्होंने रामानंद का शिष्यत्व ग्रहण किया था।

कबीर का व्यक्तित्व एक क्रान्तिकारी विचारक और महान् प्रतिभाशाली कवि का था। अपने युग के सांस्कृतिक संकट को इन्होंने बहुत यथार्थ रूप में पहचाना था और उसका निदान प्रस्तुत किया था। हिन्दु और मुसलमान दोनों समाजों में व्याप्त धार्मिक दंभ और मिथ्याडंबर का प्रबल विरोध करके दोनों के बीच सोहार्दपूर्ण सामंजस्य स्थापित करने का पूर्ण प्रयास इन्होंने किया तेजस्वी निर्भीक स्वभाव के साथ अप्रिय सत्य कहने का अपूर्व साहस इनमें था। धर्म के सच्चे स्वरूप को पहचाने बिना, मन की शुद्धता आर्जित किये बिना, किसी भी प्रकार के धार्मिक विधि-विधान का आचरण मिथ्या है, फिर चाहे वह हिंदुओं का तीर्थाटन व्रत उपवास आदि हो, अथवा मुसलमानों का रोजा नमाज़ हो, इस विचार को कबीरदास ने जोरदार शब्दों में प्रकट किया। जाति और कुल के आधार पर किसी भी प्रकट किया। जाति और कुल के आधार पर किसी भी प्रकार का ऊँच-नीच का भेदभाव मानवता विरोधी है; इस भेद-भाव के पोषक अनेक प्रकार के आडंबर स्वार्थपूर्ण शोषणवृत्ति से परिचालित हैं। इस भावना का प्रचार कबीर के स्वतंत्रचेता व्यक्तित्व ने निर्मय वाणी में किया। रामानंद जैसे आचार्यों ने निम्न जातियों को भक्ति का अधिकारी मानने की उदारता दिखाई थी, कबीरदास ने पातिवाद को ही हमें घोषित किया। इन कारणों से कबीरदास को महान जन-नायक होने का गौरव प्राप्त है।

बुद्धि और ह्रदय का विरक एवं अद्भुत संयोग कबीर के व्यक्तितत्व में था। प्रखर विचारक होने, के साथ ही वे अत्यंत कोमल भावना प्रवण प्रेमी भक्त भी थे। साथ ही, फक्कड मस्तयौलापन भी इनके व्यक्तित्व को जीवंत रोचकता प्रदान करनेवाले तत्व है।

कबीर के काव्य में व्यक्तित्व के इन सभी पक्षों की सफल अभिव्यक्ति हुई है। इनके काव्य का संग्रह "बीजक" कहलाता है उसमें साखी, सबद, और रमैनी, काव्य रचना के ये तीन रूप मिलते है। "मासि कागद छूयों नहीं, कलम गह्यो नहिं हाथ" यह उक्ति इनके पढ़े लिखे न होने का संकेत करती है; किन्तु इनका अनुभव ज्ञान बहुत बढ़ा चढ़ा था, और इनकी प्रतिभा-बहुत सजीव तथा बलवती थी भाषा इनकी साहित्यिक परिष्कार सेयुक्त नहीं थी, तो भी उसका प्रयोग इन्होंने ऐसे अधिकार पूर्ण ढंग से किया है कि पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इन्हें "वाणी का डिक्टेटर" कहा है।

कोमल संवेदनाओं से युक्त इनके काव्य की उत्कृष्टता का बोध डॉ. रामकुमार वर्मा की इन पंक्तियों से होता है।

"कबीर के विरह के पद साहित्य के किसी भी उत्कृष्ट कवि के पदों से हीन नहीं है। उनकी विरहिणी आत्मा की पुकार काव्य-जगत् में अद्वितीय है। रहस्यवाद के दृष्टिकोण से यदि उनका "पतिव्रता को अंग" पढ़ा जाए तो ज्ञात होगा कि उनका कवित्व संसार के किसी भी साहित्य का श्रृंगार हो सकता है।

BRAOU

विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कबीर के इस कोटि के काव्य के प्रचुर प्रेरणा प्राप्त की। गत वर्षों में कबीर के काव्यांशों का अनुवाद संसार की अनेक विकसित भाषाओं में हुआ है। अनेक अर्थों में कबीर का काव्य युग-युग के लिए प्रासंगिक रहेगा।

3.4 सूफी प्रेमाश्रयी शाखा

कहानियों की परंपरा हमारे देश में बहुत प्राचीन काल से रही है वैदिक साहित्य में और अपभ्रंश साहित्य में ऐसी प्रेम कहानियाँ प्रचुर संख्या में मिलती है जिनमें प्रेम मार्ग के अनेक सारसिक अभिमानों का समावेश है लोक के बीच ऐसी कहानियों का प्रचलन अधिक रहा है। "कथा सरित्सागर" और "बृहत्कथा मंजरी" में जिन कथाओं का सम्राट है। उनमें से अधिकतर शायद लोक से ही ली गयी है उक्त संग्रहों की प्रेम कहानियाँ भारत से मध्यपूर्व में गयी और वहाँ से उनका प्रचार यूरोप में अनेक देशों में हुआ।

हिन्दी साहित्य के भक्तिकालीन में ऐसी बहुत सी कहानियाँ काव्य रूप में लिखी गयीं। उन काव्य रचनाओं में अधिकतर तो ऐसी है कि जिनमें लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम का आभास दिया गया है। परोक्ष सत्ता प्रेममूर्ति है, और साधक रूपी जीव के प्रेम की आलंबन हो सकती है, इस धारण के आधार पर ऐसी रचनाओं में नायक, के कार्यों तथा अन्त प्रसंगों के सहारे आध्यात्मिक प्रेम भाव की व्यंजना की गयी है।

ऐसी रचनाओं में प्रेम की साधना का निरूपण सूफियों के आदर्श पर हुआ है। इसीलिए इस शाखा को सूफी प्रेमाश्रयी भक्ति शाखा कहना उपयुक्त है।

भक्ति काल के शुद्ध प्रेमाख्यानों का परिचय इस बाद में प्राप्त करेंगे। यहाँ भक्ति परक प्रेमाख्यानों का संक्षिप्त विवरण उपस्थित करना हमारा उद्देश्य है।

BRAOU

मूल चेतना:

सूफी प्रेमाश्रयी शाखा के काव्य की मूल चेतना लौकिक प्रेम में अलौकिक में का आभास पाने में निहित है। सूफी कवियों ने भारतीय प्रेम कथाओं की लेकर उनके माध्यम से सूफी रहस्य साधना को व्यक्त किया है। सूफी साधना का लक्ष्य प्रेम मार्ग को अपनाकर निर्गुण रहस्यमय ईश्वर की अनुभूति प्राप्त करना है।

भाव योजना:

सूफी कवियों ने जो प्रेम कथाएँ लिखी है। उनमें प्रेम के दोनों पक्षों संयोग और वियोग का बहुत ही मार्मिक चित्रण है। इस चित्रण के अनेकानेक प्रसंगों में वे आद्यात्मिक प्रेम भाव की व्यंजना करते चले हैं। सूफियों के अनुसार संपूर्ण जगत् एक अव्यक्त प्रेमसूत्र में बंधा है। उस प्रेम के सच्चे स्वरूप का अवलंबन करके परमसत्ता तक पहुँचने का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है। वह सत्ता परोक्ष है, निर्गुण निराकार है। किन्तु चेतनामय है और चेतना के सार रूप प्रेमभाव से परिपूर्ण है। उस सत्ता की उपलब्धि से पहले की साधना प्रेम जनित विरह की साधना है। साधक की सबसे बडी संपत्ति वहीं है। उसके बिना साधना के मार्ग प्रवृत्त नही हुआ पा सकता वस्तुतः यही आध्यात्मिक साधना का रहस्य है। इस कोटि के कवियों ने विरह की स्थितियों का अत्यंत तन्मय भाव से वर्णन किया है। यद्यपि वे लौकिक प्रेमावस्थाओं का वर्णन करने से पान पडते है किन्तु जगह जगह ऐसे रहस्यमय संकेत देते चलते हैं कि उनके सहारे अलौकिक प्रेम की व्यंजना सहज ही हो जाती है।

वस्तु योजना:

सूफी प्रेमाश्रयी शाखा के काव्य में जिन प्रेमाख्यानों का आधार किया गया है, उनमें चरित्रों और कथा स्थितियों में अंतर रहते हुए भी, प्रारूपगत बहुत समानता दिखाई देती है। नायक और नायिका

के बीच प्रेम का उद्भव चित्रदर्शन, स्वप्न दर्शन किसी अतिप्राकृतिक माध्यम अथवा किसी पक्षी आदि के संदेश द्वारा होता है। दर्शन, किसी अतिप्राकृतिक माध्यम अथवा किसी पक्षी आदि के संदेश द्वारा होता है। नायिका की प्राप्ति के लिए नायक घरबार छोडकर निकल पड़ता है। मार्ग में अनेक कष्टों, बाधाओं और प्रलोभनों का उसे सामना करना पड़ता है किन्तु धैर्य और साहस-पूर्वक सब पर विजय पाता हुआ वह अंततः नायिका से मिलन के रूप में सिद्ध प्राप्त करता है कथानक को जगह जगह मोड देने में और आगे बढ़ने में, इन प्रेम कथाओं में अनेक रूढ़ तत्वों का सहारा लिया गया है ऐसे तत्वों को विद्वानों ने, कथानक रूढियाँ कहा है। वस्तु वर्णन से प्रसंग को बहुत अधिक विस्तार दे दिया है, जिससे प्रभाव की सभ्यता कम हुई है। प्राकृति के नाना दृश्यों का समावेश करते हुए, उनके द्वारा भी इन्होंने आध्यात्मिक सिद्धांन्तों की व्यंजना की है।

काव्य रूपः

इस शाखा के कवियों की रचनाएँ प्रबंधात्मकता के आधार पर पडी है। प्रबंधपरक चरित काव्यों और प्रेम कथाओं के लेखन की दीर्घ परंपरा विद्यमान रही है प्राकृत अपभ्रंश और देश भाषा के काव्यों में ऐसी रचनाओं के लिए दोहा चौपाई-शैली को अपनाया जाता रहा है इस शाखा के कवियों ने भी उसी पद्धति का अनुसरण किया है चौपाई की चार छह या सात पंक्तियों (अर्धालियों) के बाद एक दोहा रखने. की प्रथा रही है कहीं कहीं दोहें के स्थान पर बखै का प्रयोग भी किया गया है।

विद्वानों का मत है कि सूफी प्रेममार्गी शाखा के काव्यों में फारसी की मसनवी शैली का अनुवर्तन हुआ है। मसनवी के इन लक्षणों की ओर उन विद्वानों ने संकेत किया है- समस्त रचना में अध्याय और सर्ग न होकर घटनाओं के शीर्षकों के आधार पर खण्ड है। कथारंभ के पूर्व ईश्वर स्तुति, पैगम्बर को वंदना और तत्कालीन राजा की प्रशंसा है।

अन्य विद्वान इस मान्यता से मतभेद व्यक्त करते उनके अनुसार इन प्रेम कथाओं में प्रेम का जो स्वरूप चित्रित है, वह फारसी समनवियों के प्रेम का उद्भव स्वप्न दर्शन या चित्र दर्शन से नही होता नायक-नायिका के प्रणय के मध्य प्रतिनायक बाधा बनता है, नायिका का विवाह प्रतिनायक से हो पाता है। और नायक आत्महत्या कर लेता है।

निश्चय ही, यह कहा जा सकता है कि प्रेम का स्वरूप मसनवीगत न रहते हुए भी इन काव्यों में शैली के क्षेत्र में मसनवी-पद्धति का अनुसरण हुआ है। प्रेम के विषय में, इतना तो कहा ही जा सकता है कि इन काव्यों में अलौकिक स्तर पर प्रेम का आदर्श भारतीय आदर्श से भिन्न है, इनमें परमतत्व की भावना पत्नी रूप में है, जबकि भारतीय आदर्श में वह पति रूप में भावित है।

BRAOU

भाषा और अभिव्यंजनाः

सूफी प्रेमाश्रयी काव्यों में अवधी भाषा के ठेठ रूप का प्रयोग हुआ है। परवर्ती कवियों में रामोपासकों ने भी अवधी भाषा और दोहा चौपाई पद्धति को ही मुख्य रूप से अपनाया, किन्तु उन्होंने उसे संस्कृत भाषा का संस्कार प्रदान किया प्रेमाश्रयी कवियों ने अवधी के बोलचाल के टटके रूप की ग्रहण करके साथ फारसी और अरबी के स्वभाविक और प्रचलित शब्दों और मुहावरों का योग किया।

लौकिक वर्णन के सहारे अलौकिक तत्वों की व्यंजना करने में इस शाखा के कवि सिद्ध हस्त है जायसी का सिंहलगढ़ का वर्णन देखिये-

नवौ खण्ड नव पौरी, औ तहँ वसु किवार।
चार बसेरे सो चढ़े, सत सों उत्तरौ पार।।

नव पौरो पर दसम दुआरा।
तेहि पर बाज राज घरियारा।।

ऐसे प्रसंगों में व्यंजना से उपलब्ध अर्थ भारतीय हठयोग साधना की अनुरूपता में है। सूफी संप्रदाय की प्रेमावस्थाओं- शरियत, तरीकत, हकीकत और मारिफत को इनमें खोजना अनुचित है।

जायसी ने पदमावत काव्य की कथा की आध्यात्मिक व्यंजना का समादार इस रूप में किया है-

तन चितउर मन राजा कीन्हा।
हिंस सिंहल, बुद्धि पदमिनि चीन्हा।।
गुरू सुवा जोहि ग्रंथदेखावा।
बिनु गुरू जगत को निरगुन पावा।।

प्रमुख कविः

इस शाखा के कवियों में कुतबन (मृगावतीः, जायसी (पद्मावत), मंझन (मधुमालती), उसमान (चित्रावली) और शेखनबी (ज्ञानदीप) के नाम उल्लेखनीय है। इनमें जायसी का महत्व सबसे अधिक है और वे ही इस शाखा के प्रतिनिधि कवि है।

जायसी का जन्म उत्तर प्रदेश में अमेठी के पास जायस नामक स्थान में 1483 ई. में हुआ था। ये कुरूप और एक आँख से काने थे। किन्तु आत्मविश्वास इनमें भरपूर था। कहा जाता है कि सुलतान के दरबार में जब ये गये, तो इनकी कुरूपता पर वहाँ सब लोक हंस दिये। इन्होंने बोझिसक उत्तर दिया- "मोहि को हँससि कि कोहंरहि" अर्थात् मुझे बनानेवाले ईश्वर पर हँसते हो या मुझ पर?

जायसी महान् सूफी थे अपने समय में बडे संत माने जाते थे।

इनमें तीन ग्रंथ उपलब्ध है, जो फारसी लिपि में लिखे गये थे। अखरावट पदमावत और आखिरी कलाम। .पद्मावत में चित्ताड़ के राजा रत्नसेन और सिंहलद्वीप की राजकुमारी पद्मावती की प्रेमकथा का वर्णन है हीरामन तोते के मुख से रत्नसेन पद्मावती की प्रेम कथा का वर्णन है। हीरामन तोते के सुख से रत्नसेन पद्मावती की प्रेम-कथा का वर्णन है हीरामन तोते के मुख से रत्नसेन पद्मावती के सौंदर्य का वर्णन सुनकर उसे पाने की इच्छा से योगी का भेष धारण करके निकल पडता है। अनेक कष्टों के बाद वह उसे प्राप्त करके चित्तौडगढ़ ले आता है बादशाह अलाउद्दीन पद्मावती के रूप सौंदर्य की चर्चा सुनकर चित्तौड पर चढ़ आता है। और राज को धोखे से कैद करके ले जाता है तथा उसका वध करा देता है। पदमावती जौहर व्रत ले लेती है।

जायसी ने उपर्युक्त संपूर्ण प्रेम प्रसंग की आध्यात्मिक व्यंजना जिस प्राकर की है। उसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है।

सही अर्थों में जिन कतिपय रचनाओं की हिन्दी महाकाव्यों में गणना की जा सकती है, उनमें पदमावत् का समावेश है।

3.3.5 रामभक्ति शाखा

उत्तरी भारत में राम भक्ति के प्रवर्तक का श्रेय आचार्य रामानंद को है। ये स्वामी रामानुजाचार्य की शिष्य परंपरा में थे। रामानुजाचार्य दर्शन के क्षेत्र में विशिष्टाद्वैतवाद के संस्थापक आचार्य थे। इस दार्शनिक सिद्धांत के अनुसार ब्रम्ह की सत्ता चिद्चिद् विशिष्ट है, संसार के प्राणी उसी से उत्पन्न होते है, और उसी में लीन होते हैं; जीव के उद्धार का मार्ग यह है कि वह भक्ति द्वारा ईश्वर का सामीप्य लाभ करे। भक्ति-क्षेत्र में रामानुजाचार्य का संप्रदाय "श्री संप्रदाय" के नाम से प्रसिद्ध हुआ, उसमें विष्णु या नारायण की उपासना का विधान है।

BRAOU

स्वामी रामानंद ने विष्णु के अवतार रूप राम की सगुण भक्ति का प्रचार किया। हिन्दी के राम भक्ति शाखा के कवियों ने उन्हीं से प्रेरणा लेकर महान साहित्य की रचना की है।

दशरथ के पुत्र राम की कथा का वर्णन सर्वप्रथम संस्कृत में वाल्मीकीय रामायण में हुआ। उस ग्रंथ का दृष्टिकोण लौकिक है। वहां राम पूर्णतया मनुष्यत्व की भूमिका पर है, देवत्व की प्रतिष्ठा उनमें नहीं है। हाँ वे धीरोदात्त नायक अवश्य हैं।

लगभग द्वितीय शताब्दी ईसापूर्व में अवतार के रूप में राम की मान्यता हुई। ईसा के दो सौ वर्ष बाद महाभारत में विष्णु के छह अवतारों में राम की गणना हुई। राम को पूर्ण ईश्वरत्व गुप्त काल में "विष्णु पुराण" में प्राप्त हुआ। उसके बाद "पूर्व तापनीय उपनिषद्" और " उत्तर तापनीय उपनिषद्" में, विष्णु रूप ब्रम्ह के अवतार राम की भक्ति का विकास हुआ। उसके बाद "आध्यात्म रामायण" में देवतत्व के सबसे ऊंचे शिखर पर राम की प्रतिष्ठा हुई। फिर भागवत पुराण में उनकी महिमा का विस्तृत गान हुआ। चौदहवीं शताब्दी में रामानंद ने रामभक्ति का व्यापक प्रचार किया।

रामाश्रयी भक्तिशाखा के कवियों ने राम के इसी अवतार रूप को ग्रहण करके उनका चरितगान किया। अवतार के सभी कार्य लीला रूप होते है। इसलिए यह कहना उपयुक्त होगा कि राम भक्त कवियों ने राम की उन लीलाओं का भक्ति भाव से वर्णन किया है जिनमें लोक मंगल का भाव सर्वत्र समाविष्ट है।

मूल चेतनाः

परब्रम्ह के अवतार रूप राम की एकनिष्ठ भक्ति में ही इस शाखा के साहित्य की मूल चेतना निहित है।

इस शाखा के भक्त कवियों के लिए राम की भक्ति ही साध्य है। भक्ति ही साधन है।

कबीरदास ने परम सत्ता को "राम" कहा करउनके प्रति भक्ति की साधना की थी। राम को उन्होंने निर्गुण निराकार माना था, अवतार रूप सगुण-साकार नहीं। उनका कहना था-

दसरथ - सुत तिहुं लोक बखाना।
राम नाम को मर्म न जाना।।

किन्तु तुलसीदास ने राम के निर्गुण निराकार रूप को मानते हुए भी, भक्तों के लिए दसरथ सुत के रूप में अवतरित होने वाले सगुण साकार रूप को उपस्य माना।

जेहि हमि गावहिं वेद बुध, जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दसरथ - सुत भगतहित, कोसलपति भगवान।।

भाव-योजनाः

राम-भक्त कवियों ने राम की लीलाओं का वर्णन जीवनव्यापी ऐसे बृहत् फलक पर किया है कि उसमें सभी प्रकार के मानवीय संबंधों का सहज समावेश हुआ है। पिता-पुत्र, माता-पुत्र, भाई-भाई, पति-पत्नि, मित्र-मित्र, स्वामी-सेवक, गुरू-शिष्य, शत्रु-शत्रु, राजा-प्रजा आदि के पारस्परिक संबंधों का इस काव्य में उच्च आदर्श के धरातर्ल संबंधों का इस काव्य में उच्च आदर्श के धरातल पर भावपरक निरूपण हुआ है।

भक्ति-भावना की दृष्टि से इस साहित्य में प्रधान रूप से दास्य भाव की भक्ति अभिव्यक्त हुई है।

BRAOU

सेवक सेव्य भा बिनु भव न तरिय उरगारि। यह दास्य वृत्ति अनन्य होते हुये भी, इष्ट देव के संदर्भ में विशाल दृष्टि से युक्त है:

सो अनन्य जाके अस मत न टरहि हनुमन्त।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवन्त।।

भक्ति का वात्सल्य भाव कुछ प्रसंगों में इस शाखा के काव्य में व्यक्त हुआ है, सख्य भी स्वल्प मात्रा में है; माधुर्य को इसमें स्थान नहीं मिला है। आगे चलकर इस उच्च भक्ति भावना को विकृति प्रदान करनेवाले कुछ कवियों ने रामभक्ति में रसिक संप्रदाय भी निकाला।

वस्तु योजनाः

रामाश्रयी शाखा के भक्त कवियों का उद्देश्य रामकथा कहना मात्र नहीं रहा है। रामकथा के मर्म में निहित अनेक गूढ़ अर्थों का भी उन्होंने उद्घाटन किया है। तुलसीदास ने कहा है कि मैंने अपने गुरू से वह कथा सुनी, लेकिन उसके मर्म को मैं समझ नहीं पाया। जब गुरू ने बार बार कथा सुनाई, तो मैंने उसके गूढ़ार्थ को हृदयंगम किया।

उस गूढार्थ के दो पक्ष है- पहला, धार्मिक और आध्यात्मिक और दूसरा सामाजिक एवं सांस्कृतिक।

पहले पक्ष में भक्ति केनिरूपण क्रम में अनेक धार्मिक और दार्शनिक सिद्धान्तों का यथा प्रसंग विवेचन किया गया, अवतार और लीलाओं के रहस्य को समझाया गया है। तुलसीदास ने यह भाव प्रकट किय है कि निर्गुण रूप का बोध हो तो सुगम है, सगुण का तत्व दर्शन कठिन है- सामान्य मानव सुलभ दिखाई देने वाले राम और उनके कार्य-कलापों में परमसत्वकता का महात्म्य किस प्रकार निहित है, इस भेद संबंध में बहुतों की बुद्धि मोहाग्रस्त हो जाती है। इसीलिए राम कथा का वर्णन करते हुए थे कवि पाठकों को याद दिलाने चलते है कि जिसका चरित कहा जा रहा है वह सामान्य मानवीय अस्तित्व मात्र नहीं है, अपितु सर्व शक्ति मान सर्व व्यापी, अचिन्त्य, लक्ष्य और परम करुणामय परब्रम्ह तत्व हैं।

दूसरे पक्ष में, अर्थात सामाजिक और सांस्कृतिक धरातल पर, मर्यादा पुरुषोत्तम राम के लोकरक्षक और लोक संग्रहकारी उदात्त गुणों से युक्त महान् आदर्श की इन कवियों ने विवृत्ति की है। राम का चरित शक्तिशील और सौन्दर्य के चरम रूप का एकत्र समन्वय है। लोगजीवन में उससे मंगल का प्रतिपादन होता है। जीवन के उच्चतर विकास के मार्ग की रोधक शक्तियों के विकास की प्रेरणा मिलती है- और मनुष्य में निहित देवत्व के विकास का पथप्रशस्त होता है।

काव्य रूपः

इस शाखा के कवियों की रचनाएं प्रबंध और मुक्तक दोनों रूपों में हुई हैं। संपूर्ण रामचरित को लेकर अथवा उसके भिन्न भिन्न प्रसंगों को लेकर कवियों ने प्रबंधात्मक रचनाएं प्रस्तुत की हैं। प्रबंधात्मक रचनाओं में दोहा-चौपाई पद्धति है। प्रायः चार चौपाइयों (आठ अर्धालियों) के अंत में एक या कहीं कहीं दो दोहे रखे गये हैं। कभी दोहे के स्थान पर सोरठा भी रहता है। बीच बीच में अन्य छंदों का प्रयोग भी रहता है। इस पद्धति का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ तुलसीदास का रामचरित मानस है। उसमें कथा को कांडों में विभाजित किया गया है और इन कांडों के अलग अलग शीर्षक है जैसे- बालकांड, अयोध्या कांड, अरण्य कांड आदि।

मुक्तकों के रूप में कथा के तारतम्य का निर्वाह न करके, रामचरित के अपनेक्षाकृत अधिक मार्मिक प्रसंगों को या तो गेय पदों के रूप में रखा गया है, या कुंडलिया, छप्पय, सवैया, घनाश्री, तोमर, त्रिभंगी आदि छंदों में।

भाषा और अभिव्यंजनाः

रामाश्रयी शाखा के कवियों ने प्रबंध काव्यों में अवधी भाषा का प्रयोग किया है। उनकी अवधी ठेठ रूप में न होकर संस्कृत भाषा के संस्कार से युक्त है। कहीं कहीं उसमें फ़ारसी, अरबी के तथा बुंदेली, भोजपुरी, ब्रज आदि बोलियों के शब्द भी अपनाये गये हैं। मुक्तकों की भाषा ब्रज भाषा है।

अभिव्यंजना सौष्ठव की दृष्टि से हिन्दी साहित्य का चरम कलात्मक विकास इस शाखा की रचनाओं में मिलता है। साधारण वर्णनात्मक कथा-प्रसंगों में अभिधा का प्रयोग है, किंतु गहन सूक्ष्म भावों के प्रसंगों में लक्षणा और व्यंजना का सौंदर्य है। अलंकारों का कृत्रिम प्रयोग इन कवियों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति में कहीं नहीं है। पर अनेक अलंकारों, शब्दालंकारों और अर्थालंकारों- दोनों की उपस्थिति अभिव्यक्ति- सौंदर्य के सहायक रूप में लक्षित की जा सकती है। तुलसीदास की रूचि यथाप्रसंग दीर्घ सांग रूपक खड़े करने की रही है।

प्रमुख कविः

इस शाखा के प्रमुख कवियों में रामानंद, अग्रदास, ईश्वरदास, गोस्वामी तुलसीदास, नाभादास और केशवदास के नाम लिये जा सकते हैं। यों केशवदास की रचना रामचंद्रिका में भक्ति-भावना का अभाव है। इन कवियों में सर्वाधिक महत्व है गोस्वमी तुलसीदास का। वे ही इस शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं।

गोस्वामी तुलसीदास का जन्म उत्तर प्रदेश के राजापुर स्थान में सन् 1532 ई. में हुआ। इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसी था। कहा जाता है कि ये अमुक्तमूल नक्षत्र में पैदा हुए थे, इसलिए पिता ने इन्हें त्याग दिया था। मुनिया नामक दासी ने इनका पालन-पोषण किया। उसका भी शीघ्र देहांत हो जाने पर बाबा नरहरिदास ने इन्हें अपने पास रख लिया। काशी में शेष सनातन नामक विद्वान ने इन्हें वेद, वेदांग, दर्शन और इतिहास, पुराण आदि की शिक्षा दी।

इनकी पत्नी का नाम रत्नावली था। जनश्रुति है कि वे उसके रूप पर मोहासक्त रहते थे। उसी ने इन्हें उपदेश दियाः

अस्थि चर्ममय देह मम तामें जैसी प्रीति।
तैसी जौ श्री राम महँ होति तौ न भवभीति।।

इस पर ये घरबार छोड़कर निकल पड़े और बहुत समय तक तीर्थाटन करते रहे। फिर, काशी और अयोध्या में रहकर इन्होंने साहित्य रचना की।

BRAOU

तुलसीदास के बारह ग्रंथ प्रामाणिक माने गये हैं। उनमें से पाँच बड़े हैं और सात छोटे।

बड़े ग्रंथ - दोहावली, कवितावली, गीतावली, रामचरित मानस और विनय पत्रिका।
छोटे ग्रंथ- रामलला नहछू, पार्वती मंगल, जानकी मंगल, बखै रामायण, वैराग्य संदीपिनी, कृष्ण गीतावली, रामाज्ञाप्रश्न

उपर्युक्त ग्रंथों में से रामचरित मानस, पार्वती मंगल, जानकी मंगल और रामलला नहछू कीभाषा अवधी है, और शेष ग्रंथों की भाषा ब्रज है। दोनों ही काव्य भाषाओं पर तुलसीदास का समान अधिकार दिखाई देता है।

तुलसीदास ,स्वयं रामभक्त साधक होने के साथ रामभक्ति के महान् प्रचारक भी थे। इसलिए समाज कीविविध रुचियों के परितोष के लिए इन्होंने अपने समय में प्रचलित सभी साहित्यिक काव्य शैलियों में भक्ति काव्य की रचना की। यहां तक कि लोक साहित्य की शैली को भी इन्होंने अपनाया।

साहित्य की काव्य-शैलियां, पं. रामचंद्र शुक्ल के अनुसार इस प्रकार हैं-

1. वीरगाथा काल की छप्पय पद्धति
2. विद्यापति और सूरदास की गीत पद्धति
3. गंगा आदि भाटों की कवित्व - सवैया पद्धति
4. कबीर आदि की नीति संबंधी बानी की दोहा पद्धति
5. ईश्वर दास की दोहे-चौपाई वाली प्रबंध-पद्धति

तुलसीदास के व्यक्तित्व में महान् भक्त, महान साहित्यकार और महान् लोकनायकत्व के गुण एक साथ समाहित हैं। अपने समय में ही ये बड़े महात्मा माने जाते थे। डॉ. ग्रियर्सन ने इन्हें भगवान बुद्ध के बाद उत्तर भारत का सबसे बड़ी लोकनायक कहा है। लोक नायक सामाजिक जीवन को सुगठित, समन्वित और प्रगतिसील बनानेवाला होता है। तुलसी ने रूढ़ मध्यायुगीन भारतीय जीवन की ह्रासोन्मुखता दूर करके उसे नया जीवन प्रदान किया है। सामाजिक भेदभाव को दूर करके जीवन में नई शक्ति और चेतना भरने का प्रयत्न किया है। हिन्दी के साहित्यकारों में सर्वोच्च गौरवपूर्ण पद के ये अधिकारी हैं। रामचरित मानस इनका अमर कीर्तिस्तंभ है। उसकी श्रेष्ठता का ही प्रमाण है कि विश्व की अनेक उन्नत भाषाओं में उसका काव्यानुवाद हुआ है। ये सच्चे अर्थों में विश्व कवि हैं।

3.3.6 कृष्ण भक्ति शाखा

सगुणोपासना में परब्रम्ह के अवतार रूप मर्यादा पुरुषोत्तम माना गया है, और उसी ब्रम्ह के अवतार रूप कृष्ण को लीला पुरुषोत्तम। भारतीय इतिहास और पुराण दोनों में कृष्ण-चरित्र का व्यापक वर्णन मिलता है। विद्वानों द्वारा भारतीय इतिहास का सर्वाधिक प्रभावशाली व्यक्ति कृष्ण को माना गया है। भक्तों की भावना में कृष्ण परब्रम्ह के पूर्णावतार है- सोलह कलाओं के अवतार।

महाभारत और भागवतादि पुराणों में से महाभारत में कृष्ण का वह व्यक्तित्व मिलता है जो द्वारिकाधीश हैं; और महाभारत के युद्ध का संचालन करने वाले हैं; पुराणों में कृष्ण की ब्रज-कालीन मनोहर लीलाओं का वर्णन है। हिन्दी के कृष्णभ्कत कवियों ने मुख्यतः ब्रजवासी कृष्ण की लीलाओं का ही गान किया है।

संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में कृष्ण संबंधी काव्य की प्रचुर परिमाण में रचना होती रही। देश भाषाओं में सबसे पहले विद्यापतिकाकृष्ण संबंधी काव्य उल्लेख्य है। चौदहवीं शताब्दी में मैथिल भाषा में विद्यापति ने कृष्ण संबंधी अत्यंत भावपरक गीतों की रचना की। इन गीतों के संबंध में विद्वानों केबीच यह विवाह चलता आया है कि उन्हें लौकिक श्रृंगारपरक गीत माना जाए या कृष्णभक्तिपरक गीत।

भक्तिकाल में ब्रजमंडल में कृष्णभक्ति का काव्य अत्यंत उत्साहपूर्वक रचा गया। श्री कृष्ण के स्वरूप के संबंध में भवना-भेद से कृष्ण-भक्ति के अनेक संप्रदाय सामने आये। इन सभी संप्रदायों में श्रेष्ठ कोटि के कवि हुए। प्रमुख संप्रदायों के नाम हैं- वल्लभ संप्रदाय, निंबार्क संप्रदाय, राधावल्लभ संप्रदाय, हरिदासी संप्रदास और गौड़ीस संप्रदाय।

काव्योत्कर्ष की दृष्टि से वल्लभ संप्रदाय के कवियों का स्थान अधिक महत्वपूर्ण है। इन संप्रदायों के अंतर्गत कवियों का उल्लेख आगे किया जाएगा।

मूल चेतनाः

इस साहित्य की मूल चेतना परब्रम्ह के अवतार रूप कृष्ण की अनन्य भक्ति में निहित है।

इस शाखा के कवियों में भी, ईश्वर के निर्गुण निराकार रूप का निषेध नहीं है। वे यह मानते है कि भक्ति के लिए कृष्ण का सगुण साकार रूप अधिक उपादेय है। परम तत्व की उपलब्धि, उस

BRAOU

तत्व के साथ आत्मा के समत्व की अनुभूति में है किन्तु वह साधना मन से आरंभ होती है। मन का ध्यान टिकाने के लिए साकार आलंबन में सुविधा रहती है। इसी आशय को सूरदास ने व्यक्त किया हैः

रूप रेख गुन जाति जुगुति बिन निरालंब मन चक्रत धावे।
सब विधि अगम विचारहि ताते सूर सगुन लीला पद गावे।।

कृष्ण भक्ति के आचार्यों में यह धारणा भी विद्यमान है कि कृष्ण अवतारी पुरुष न होकर, स्वतः ही परमतत्व है- कृष्णात्परं किमपि तत्वमहं न जाने।

जीव का परम पुरूषार्थ कृष्ण रूप परम तत्व के प्रति भक्ति भाव से आत्यंतिक समर्पण द्वारा सिद्ध होता है। उसकी लीलाओं का श्रवण और कीर्तन भक्ति भाव को गान करने का साधन है।

भाव योजनाः

इस शाखा के कवियों का ध्यान कृष्ण के मुख्यतः बाल और युवा रूपों तक ही सीमित रहा है। इसलिए वात्सल्य और श्रृंगार इन दो भावों का ही इस काव्य में विशेष समावेश हुआ है। भक्ति के स्तर पर इसे वात्सल्य भाव की और माधुर्य भाव की भक्ति कहा जाएगा। कृष्ण के शैशव और बाल्यावस्था की लीलाएँ, ब्रजके उन्मुक्त ग्राम्य वातावरण में नंद-यशोदा और गोप गोपिकाओं केवास्तल्य भाव का उद्रेक करने वाली हैं और उनकी यौवन लीलाएं, गोपियों एवं राधा के माधुर्य भाव का उद्रेक करती हैं। शांत और दास्य भावों की अंतर्धारा तो इन दोनों के मूल में निहितरहती ही है। गोचारण और ब्रजप्रदेश में होने वाली अनेक क्रीड़ाओं के प्रसंगों में गोपसखाओं में कृष्ण के प्रति सख्य भाव की भक्ति है।

जब तक कृष्ण ब्रज में रहते हैं, गोपियों का उनके प्रति रति भाव संयोग की अवस्था का रहता है; कृष्ण के मथुरा चले जाने पर उस रति भाव की परिणति वियोगवस्था में हो जाती है। गोपियों और राधा की इस वियोग-दशा का वर्णन कृष्ण भक्ति काव्य में अत्यंत मार्मिक रूप में हुआ है। इस भावप्रवण वर्णन को संपूर्ण कृष्ण भक्ति-साहित्य का प्राण मानना चाहिए।

BRAOU

वस्तु-योजनाः

भगवान कृष्ण की लीलाओं का वर्णन करने वाला ग्रंथ भागवत महापुराण है। कृष्ण भक्त कवियों ने उसी से प्रेरणा ली है। कृष्ण के अत्यंत मनोहर रूप के वर्णन के अतिरिक्त भागवत अत्यंत मनोहर रूप के वर्णन के अतिरिक्त भागवत में वर्णित कृष्ण की लोकरंजनकारी अनेकानेक लीलाओं को इस शाखा के कवियों ने काव्य का विषय बनाया है। अनेक प्रसंगों में नयी उद्भावनाएं भी उन्होंने की हैं। पूतनावध, आधासुर, बकासुर, शकरासुर आदि का संहार, गोवर्धन धारण, माखन-चोरी, गोचारण, कालिय मर्दन और रासलीला आदि का इन कवियों ने अत्यंत हृदयग्राही वर्णन किया है। कृष्ण के मथुरा चले जाने पर, वहां के कृष्णा प्रसंग और कंसवध आदि का वर्णन संक्षेप में किया गया है। मथुरा से गोपियों की सुधा लेने के लिए कृष्ण उद्धव को गोकुल भेजते हैं। भागवत के दशम स्कंध में इसका जो उल्लेख है, उसकी अपेक्षा कृष्णभक्त कवियों ने, इस प्रसंग के बहुत विशदता प्रदान की है। कृष्ण के प्रेम में रंगी विरह व्यथिता गोपियां, कृष्ण की निर्मम वृत्ति को बहुत से उलाहने देना चाहती है। इन मानोभावों की उद्धव के सामने प्रत्यक्ष अभिव्यक्तिशील-सौजन्य की दृष्टि से उचित नहीं। संयोग से एक भौरा उड़कर वहां आ जाता है। भौरे का रूपरगत और वृत्तिगत साम्य कृष्ण से और उद्धव से भी, स्थापित करती हुई गोपियां उस भौरे को उपलक्ष्य बनाकर, अपने भावों की खुलकर अभिव्यक्ति करती हैं। उद्धव को ज्ञानोपदेशक मान लिया गया है, अतः इस प्रसंग द्वारा कृष्ण भक्ति कवियों ने भक्तिगत प्रेम की श्रेष्ठता के आगे ज्ञान की हेयता भी सिद्ध की है। कृष्ण भक्ति काव्य में यह प्रसंग "भ्रमर गीत" के नाम से प्रसिद्ध है।

काव्य-रूपः

कृष्ण भक्ति साहित्य मुक्तक परक है,प्रबंधत्वउसमेंनहीं है। इसके कारण का निर्देश करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा है- "कृष्ण भक्त' कवियों ने श्री कृष्ण भगवान के चरित का जितना अंश लिया, वह एक अच्छे प्रबंध काव्य के लिए पर्याप्त न था। उसमें मानव-जीवन की वह अनेकरूपता भी थी जो एक अच्छे प्रबंध काव्य के लिए आवश्यक है।"

ये मुक्तक भी प्रायः गीतों के रूप में ही हैं। साहित्य के क्षेत्र में संस्कृत के जयदेव से लेकर बंगला के चंडीदास और मैथिल के विद्यापति के गीतों की परंपरा में ही इन गीतों की रचना हुई है। संगीत के विभिन्न राग रागनियों के आधार पर इन गीतों को गाया जा सकता है।

भाषा और अभिव्यंजनाः

कृष्ण भक्ति काव्य में मुक्तक गीतों की भाषा सर्वत्र ब्रज भाषा ही रही है। ब्रज भाषा का बहुत ही प्रौढ़ और निखरा हुआ रूप इन कवियों के काव्य में मिलता है। लोक संवेदना की अभिव्यंजना में यह भाषा पूर्ण समर्थ रही है। लोकोक्तियों और मुहावरों का इन कवियों ने प्रचुर प्रयोग किया है।

अलंकारों की सायास योजना इस कवियों में नहीं है, फिर भी अप्रस्तुत विधान में इनकी बढ़ी चढ़ी कल्पना शक्ति का प्रमाण मिलता है।

प्रमुख कविः

कृष्ण भक्ति के विभिन्न संप्रदायों के अंतर्गत इस शाखा के कवियों की गणना इस प्रकार की जा सकती है-

वल्लभ संप्रदाय- सूरदास, कुम्भन दास, परमानंददास, कृष्णदास, नंददास, गोविंद स्वामी, छीत स्वामी, चतुर्भुज दास।

निंबार्क संप्रदाय	- श्री भट्ट, हरिव्यासदेव, परशुराम देव, रूपरसिक देव, वृंदावन देव।
राधावल्लभ संप्रदाय	- स्वामी हरिदास (प्रवर्तक) जगन्नाथ गोस्वमी, बीठल विपुल, बिहारिनदास, नागरीदास, सरसदास, बनीटनी जी, भगवत रसिक।
चैतन्य गौडिय संप्रदास	- रामरास, सूरदाय मदनमोहन, गदाधर भट्ट, चंद्रगोपाल, भगवानदास, माधवदास माधुरी।
संप्रदाय निरपेक्ष	- मीरां, रसखानि।

BRAOU

वल्लभाचार्य का इस भक्तिशाखा पर गहन प्रभाव है। उनके द्वारा कृष्ण-भक्ति में पुष्टिमार्ग की स्थापना हुई थी। गोवर्धन पर्वत पर स्थापित श्रीनाथ जी के मंदिर में वल्लभाचार्य के अनेक शिष्ट कृष्णलीला संबंधी पदों का गान करते थे। उनके उत्तराधिकारी पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ ने अपने पिता के शिष्यों में से चार, और अपने शिष्यों में से चार को चुनकर, उनके समुदाय के रूप में अष्टछाप की स्थापना की। उपर्युक्त विवरण में पहले चार कवियों में वल्लभाचार्य के शिष्य हैं, और अंतिम चार विट्ठलनाथ के। पहले चार में सूरदास तथा अंतिम चार में नंददास, काव्योत्कर्ष की दृष्टि से, सर्वश्रेष्ठ हैं।

इस शाखा के प्रतिनिधि कवि सूरदास है। सूरदास के जीवनवृत के संबंध में प्रामाणिक सामग्री का अभाव है। कतिपय साक्ष्यों के आधार पर यह माना गया है कि इनका जन्म दिल्ली के निकट ब्रज की ओर "सीही" नामक गांव में सन् 1478 ई. में हुआ था। ये जन्माध थे, अथवा बाद में अंधे, हुए, इस विषय में अनेक प्रवाद प्रचलित हैं। कहा जाता है कि इन्होंने वैराग्य ले लिया था और गऊघाट पर निवास करते थे। ये विनय के पदों की रचना करके लोगों को सुनाते थे। वहीं, 1509 या 1510 में इनकी भेंट महाप्रभु वल्लभाचार्य से हुई। उनके विनय के पद सुनकर महाप्रभु

ने कहा कि तुम सूर हो, तो छिछियाते क्यों हो। उन्होंने इन्हें शिष्यत्व प्रदान किया और कृष्ण लीला-गान का आदेश दिया। गोवर्धन पर्वत पर स्थापित श्रीनाथ जी के मंदिर में कीर्तन सेवा का कार्य महाप्रभु ने उन्हें सौंपा।

सूरदास द्वारा रचित तीन ग्रंथ प्रसिद्ध हैं- सूरसागर, सूरसारावली और साहित्य लहरी। इनमें से सूरसारावली को कुछ विद्वान प्रामाणिक नहीं मानते। साहित्य लहरी में सूरदास के दृष्टकूट पद संग्रहीत हैं। इन पदों में अर्थगोपन शैली में राधाकृष्ण की लीलाओं का वर्णन है।

सूरसागर की रचना भागवत के अनुसरण पर हुई है। लेकिन सूरदास ने स्वतंत्र उद्भावनों से भी काम लिया है। सूरसागर में वात्सल्य का चित्रण ऐसी सर्वांगीण उत्कृष्टता से युक्त है कि विश्वसाहित्य में उसकी समानता कहीं नहीं मिलती। काव्यशास्त्र में वात्सल्य को स्वतंत्र रस की मान्यता दिलाने का श्रेय बहुत कुछ सूर के इन्हीं पदों को ही है। सूर ने कृष्ण, राधा और गोपिकाओं की संयोग लीलाओं का अत्यंत मधुर वर्णन किया है। उसमें सौंदर्य की अपूर्व छटा देखने को मिलती है। श्री कृष्ण के मथुरा चले जाने के बाद वियोग में राधा और गोपिकाओं की मानसिक अंतर्दशाओं की अत्यंत सूक्ष्म व्यंजना की है। इस तरह सूर ने श्रृंगार का रसराजत्व सिद्ध किया है। भ्रमरगीत प्रसंग से सूरदास की वग्वैदग्ध्य पूर्ण काव्य काव्य कला के चरमोत्कर्ष का निदर्शन है। उसमें दार्शनिकता और आध्यात्मिकता का भी प्रचुरसमावेश है। प्रकृति-सौंदर्य का चित्रण भी सूर के काव्य में अनेक स्थलों पर बहुत सम्य रूप में हुआ है। लोकतत्वों की दृष्टि से ब्रज के पर्वों, त्योहारों आदि का सुंदर वर्णन सूर के पदों में है।

ब्रजभाषा को सूरदास ने महान गौरव प्रदान किया। कृष्णकाव्य रचना की वह सपूर्ण देश में माध्यम-भाषा स्वीकृत हुई। इसका श्रेय सूर को ही है।

3.3.7 भक्तिकाल की अन्य काव्य धाराएं

भक्तिकाल की अन्य काव्य धाराओं में निम्नलिखित की गणना की जा सकती है।

1. सूफी भाव से इतर प्रेमाख्यान काव्य
2. वीर काव्य
3. प्रबंधात्मक चरित काव्य
4. नीति काव्य
5. दरबारी परिवेश का काव्य
6. रीतिपरक श्रृंगारी काव्य

इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार हैः

सूफी प्रेम काव्य से इतर प्रेमाख्यानक काव्यः

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के युग तक प्रेमाख्यानक परंपरा के केवल आठ आख्यान ही उपलब्ध हुए थे, जिनमें से छह सूफी भाव के थे। अब इस परंपरा के तिरपन काव्य उपलब्ध हो चुके हैं। इनमें कुछ मुख्य काव्य इस प्रकार हैः

हंसावली	:	असाइत कवि, 1370 ई.
चांदायन	:	भुतला दाऊद, 1379 ई.
लखमसेन पद्मावती कथा	:	दामोदर कवि, 1459 ई.
सत्यवती कथा	:	ईश्वरदास; 1501 ई.
माधवानल कामकंदला	:	गणपति, 1527 ई.
रसरतन	:	पुहकर, 1618 ई.

BRAOU

वीर काव्यः

भक्तिकाल में धार्मिक भाव की प्रमुखता के कारण वीरकाव्य रचना की प्रवृत्ति क्षीण हो गयी। फिर भी इस कोटि की रचनाएं लिखी जाती रहीं। इस धारा के कवियों में श्रीधर (रणमल्ल छंद), नल्हसिंह (विजयपाल रासो), दरसाजी आढ़ा (विरूद छिहत्तरी), दयाराम अथवा दयाल (राजा रासो), कुंभकर्ण (रतन रासो) न्यमत खां जान (क्याम खां रासो) प्रमुखहैं। "राउ जैतसी रासो" के लेखक का नाम विदित नहीं है।

प्रबंधात्मक चरित काव्यः

आदिकाल के जैन काव्य की परंपरा में रचित, भक्तिकाल के काव्य इस प्रकार हैं- सधारू अगरवाल (प्रद्युम्न चरित), शालिभद्र सूरि (पंचपांडव चरित रास), जाखू मनियार (हरिसंद्र प्रमाण), देवप्रभ (कुमारपाल रासो), पद्मनाभ (कान्हड दे प्रबंध)। गौतमरासके रचयिता का नाम अज्ञानत है।

नीति काव्यः

नीति काव्य की एक समृद्ध परंपरा प्राचीन काल से रही है। संस्कृत में चाणक्य नीति, विदुर नीति, भतृहरि नीतिशतक आदि मिलते हैं। प्राकृत और अपभ्रंश में बौद्धों तथा जैनों के साहित्य में उपदेशपरक नीति साहित्य मिलता है। वज्रयानि सिद्धोंऔरनाथपंथियोंका भीबहुत सा साहित्य इसी प्रकार का है।

भक्तिकाल में नीति काव्य लिखने वाले अधिकतर जैन कवि रहे। इनमें बनारसीदास का प्रमुख स्थान है। उस काल के नीतिपरक काव्य की रचना करनेवालों में रहीम का महत्व अन्यतम है। रहीम की प्रतिभा विविध रूपी थी। काव्य रचना की दृष्टि से इनका स्थान भक्तिकाल के दरबारी कवियों और रीतिपरक श्रृंगारी कविता के बीच भी महत्व रखता है।

साहित्य में ये अब्दुल रहीम खान खाना के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये अरबी-फारसी और संस्कृत के भी अच्छे ज्ञाता थे। हिन्दी में इनकी रचनाओं में दोहावली, नगरशोभा, बरवै नायिका भेद और मदनाष्टक प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि ये गोस्वामी तुलसीद्स केपरम मित्र थे। तुलसीदास ने "बरवै रामायण" की रचना इनसे प्रेरणा लेकरही की थी। इनके नीतिपरक काव्य का एक उदाहरण पर्याप्त होगा।

रहिमन निज मन की बिथा मन ही राखो गोई।
सुनि अठिलै हैं लोग सब, बांटि न लै है कोई।।

BRAOU

दरबारी परिवेश का काव्यः

सम्राट अकबर को हिन्दी भाषा से अनुराग था। वे स्वयंभी हिन्दी काव्य रचना करते थे। उनके दरबार में जिन हिन्दी कवियोंको सम्मान प्राप्त थावे थे चतुर्भुजदास (द्वादशयश), आसकरण, कवि पृथ्वीराज (बोलि किसन रुक्मिनी री), मनोहर कवि (शत प्रश्नोत्तरी), राजा टोडरमल, नरहरी (रुक्मिणी मंगल), बीरबल ब्रह्म, गंग, तानसेन और रहीम।

रीतिपरक श्रृंगारी काव्यः

इस धारा के कवियों में काव्यांग-निरूपण की प्रवृत्ति है। इस दृष्टि से ये रीतिकाल के लक्षणोदाहरणकार कवियों के लिए पथप्रशस्थ करने वाले माने जाएँगे। इन कवियों में उल्लेख्य हैं- कृपाराम (हित-तरंगिणी), केशवदास, रहीम (नायिका भेद और नगर शोभा), सुंदर कविराय (सुंदर श्रृंगार) और न्यामत खां जान। इनमें केशवदास का स्थान सर्वोपरि है।

केशवदास ने यद्धपिरामकथा के आधार पर "रामचंद्रिका" की रचना की, किन्तु उस ग्रंथ में भक्ति भावना विरल है। इनकी अन्य रचनाएं हैं- रसिक प्रिया, कविप्रिया, रतनबावनी, वीरसिंह देव चरित, विज्ञानगीता, जहांगीर जस चंद्रिका, नखसिख और छंद माला। इनमें रसिक प्रिया, कवि प्रिया और छंदमाला रीतिपरक ग्रंथ हैं। इन ग्रंथों के क्रमशः विवेच्य विष्य हैं- नवरस, अलंकार और छंदक्ष निरूपण।

केशवदास के व्यक्तित्व में प्रखर पांजित्य, गंभीर आचार्यत्व, स्वतंत्र चिंतन के गुण थे। काफी समय तक केशवदास को हिन्दीका सर्वश्रेष्ठ कवि माना जाता रहा। पंडित रामचंद्र शुक्ल ने जबयह मत व्यक्त किया कि"केशव को कवि हृदय नहीं मिला था" तब से आलोचकों की धारणा में परिवर्तनहुआ। फिर भी इनके आचार्यत्व औरपांडित्यका लोहा सभी मानते हैं।

पाठ का सारांश:

परम सत्ता से प्रेम संबंध ही भक्ति है। भाक्तों ने परम सत्ता की भावना, अपनी अपनी रुचि और मति के अनुसार भिन्न भिन्न रूपों में की है। कुछ को वह केवल निर्गुण रूप में मान्य है, कुछ को निर्गुण और सगुण दोनों रूपों में। सगुण माननेवालों का अवतारवाद में विश्वास है, अवतार की विभिन्न लीलाओं का उन्होंने सरस वर्णन किया है। प्रमुख अवतार दो हैं- राम और कृष्ण।

नदी के रूपक से "धारा और शाखा" के अनुसार भक्ति काव्य का विभाजन इस प्रकार हुआ है-

निर्गुण भक्ति धारा - 1. ज्ञानाश्रयी शाखा
2. सूफी प्रेमाश्रयी शाखा

सगुण भक्ति धारा - 1. राम भक्ति शाखा
2. कृष्ण भक्ति शाखा

इन अलग शाखाओं में कुछ सामान्य तत्व है, जैसे- गुरू की महत्ता, नाम की महिमा, विनय भाव, अहिंसा, सदाचार, आत्म संयम और संसार की असारता।

ज्ञानाश्रयी शाखा की मूल चेतना है- ईश्वर की अद्वैतता और उसकी निराकारिता। इस शाखा के कवियों ने साखी, सबद और रमैनी रूप में काव्य रचना की है। इस शाखा के प्रतिनिधि कवि कबीरदास है।

सूफी प्रेमाश्रयी शाखा की मूल चेतना है- लौकिक प्रेम में अलौकिक प्रेम का आभास देना। इस शाखा के कवियों ने मुख्यतः दोहा- चौपाई शैली में प्रबंध काव्यों की रचना की है। उनकी भाषा अवधी है। इस शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं मलिक मुहम्मद जायसी।

राम भक्ति शाखा की मूल चेतना है- परब्रम्ह के अवतार रूप राम की भक्ति। इस शाखा के कवियों ने प्रबंध और मुक्तक दोनों पद्धतियों की रचना की है। अवधी और ब्रज दोनों भाषाओं का उन्हों ने प्रयोग किया है। इस शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं गोस्वामी तुलसीदास।

कृष्ण भक्ति शाखा की मूल चेतना है- परब्रम्ह के अवतार रूप कृष्ण की भक्ति। इस शाखा के कवियों की रचनाएऍय पदों के रूप में मुक्तक परक हैं। उनकी भाषा ब्रजभाषा है। सूरदास इस शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं।

भक्तिकाल की अन्य काव्य धाराओं में सूफी काव्य से इतर प्रेमाख्यानक काव्य, वीर काव्य, प्रबंधात्मक चरित काव्य, नीतिकाव्य, दरबारी परिवेश का काव्य, और रीतिपरक श्रृंगारी काव्य की गणना है। नीति काव्य में रहीम का, तथा रीतिपरक श्रृंगार काव्य में केशवदास का महत्वपूर्ण स्थान है।

BRAOU

3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न

1. भक्ति काल के साहित्य के वर्गीकरण का आधार स्पष्टकीजिए।
2. ज्ञानाश्रयी शाखा के काव्य की विशेषताएँ लिखिए।
3. सूफी प्रेमाश्रयी शाखा के काव्य की विशेषताएँ लिखिए।
4. राम भक्ति शाखा के काव्य की विशेषताएँ लिखिए।
5. कृष्ण भक्ति शाखा के काव्य की विशेषताएं लिखिये।

3.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न

1. कबीरदास और उनके काव्य का परिचय दीजिए।
2. जायसी और उनके काव्य का परिचय दीजिए।
3. तुलसीदास और उनके काव्य का परिचय दीजिए।
4. सूरदास और उनके काव्य का परिचय दीजिए।

3.7 नमूने के प्रश्नोत्तर

प्रश्न : भक्तिकाल के साहित्य के वर्गीकरण का आधार स्पष्ट कीजिए।
उत्तर : परम तत्व से प्रेम संबंध ही भक्ति है। परम सत्ता की भावना भक्तों ने अपनी रुचि और मति के अनुसार भिन्न भिन्न रूपों में की है। कुछ ने उसे निर्गुण निराकार माना है, कुछ ने सगुं साकार।

निर्गुण निराकार सत्ता विशेष उद्देश्य को लेकर सगुण साकार रूप में अवतरित होती है। वह उद्देश्य होता है धर्म की स्थापना के लिए, दुष्टों का संहार और साधुओं का उद्धार। साथ ही अवतार की अनेक लीलाओं द्वारा भक्तों का रंजन भी होता है। भिन्न-भिन्न युगों में अवतार के रूप भिन्न भिन्न रहते हैं। ईश्वर के अनेक अवतारों में से राम और कृष्ण का महत्व सबसे अधिक है। इसलिए राम के प्रति विशेष भक्ति रखनेवाले कवि रामोपासक, तथा कृष्ण के प्रति विशेष भक्ति रखनेवाले कवि कृष्णोपासक कहलाते हैं।

BRAOU

निर्गुणवादी भक्त ईश्वर के सगुण साकार रूप को नहीं मानते। वे उसका खंडन करते हैं। लेकिन इनमें भी भक्ति की पद्धति दो प्रकार की है। कुछ भक्त मुख्यतया ज्ञान की भूमिका पर रहकर निर्गुण ईश्वर प्रति प्रेम निवेदन करते हैं और कुछ ऐसे हैं जो शुद्ध प्रेम की साधना करते हैं, उनकी दृष्टि में संपूर्ण विश्व प्रेम के सूत्र में बंधा है, लौकिक प्रेम में भी अव्यक्त रूप से अलौकिक प्रेम निहित है, इसलिए प्रेम में अलौकिक प्रेम का आभास पाना ही भक्ति की साधना है।

ज्ञान की भूमिका पर रहकर भक्ति की साधना करनेवाले भक्तों ने भारतीय अद्वैतवाद का सहारा लिया है और शुद्ध प्रेम साधकों ने सूफी प्रेम भावना का आश्रय ग्रहण किया है।

उपर्युक्त चार कोटि के भक्त साधकों ने अपनी अपनी मान्यताओं की अभिव्यंजना साहित्य के माध्यम से की है, इसलिए भक्ति साहित्य की निम्नलिखित चार शाखाएं लक्षित की जा सकती हैं।

इकाई-4: रीतिकालः सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ

4.0 विषय प्रवेश
4.1 उद्देश्य
4.2 पाठ परिचय
4.3 मूल पाठ
4.3.1 भूमिका
4.3.2 राजनीतिक संदर्भ
4.3.3 सामाजिक संदर्भ
4.3.4 धार्मिक संदर्भ
4.3.5 सांस्कृतिक संदर्भ
4.3.6 युगीन संदर्भ और साहित्य
(अ) सामंती व्यवस्था
(आ) जनजीवन का यथार्थ
(इ) कवि प्रतिभा
(ई) कवित्व, श्रृंगार और नैतिकता
(उ) पांडित्य और कवित्व
(ऊ) कलात्मक सजगता
(ए) अनुभूति की स्पष्टता
4.4 पाठ का सारांश
4.5 पारिभाषिक शब्दावली
4.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
4.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न
4.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न
4.7 नमूने के प्रश्नोत्तर
4.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर
4.7.2 'ब' श्रेणी के प्रश्नोत्तर
4.8 पठनीय पुस्तकें

BRAOU

4.0 विषय प्रवेश

हिन्दी साहित्य के इतिहास में तीसरा महत्वपूर्ण काल है रीतिकाल। इसमें अपने पहले के दो कालों से सर्वथा भिन्न प्रवृत्ति का साहित्य रचा गया। इस काल के अंत के साथ ही हिन्दी साहित्य में मध्याकाल का अंत और आधुनिक काल का आरंभ होता है।

4.1 उद्देश्य

इस पाठ में रीतिकाल के सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ और साहित्य पर उसके प्रभाव पर विचारा गया है। इस पाठ के अध्ययन से आप :

1. रीतिकाल के नामकरण का औचित्य समझ सकेंगे।
2. इस काल की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों से परिचित हो सकेंगे।

3. इन परिस्थितियों के कारण इस काल के साहित्य का जो रूप निर्माण हो सका, उसका विश्लेषण कर सकेंगे।
4. आप आलोचनात्मक दृष्टि से इस तथ्य को भी समझ सकेंगे कि कैसे किसी युग में लिखे गए साहित्य, उस युग की परिस्थितियों और समाज के बीच अन्तःक्रिया घटित हो रही होती है।
5. रीतिकाल के प्रमुख कवियों और उनकी रचनाशीलता से परिचित हो सकेंगे।

4.2 पाठ परिचय

हिन्दी साहित्य के इतिहास में तीसरा काल है– रीतिकाल – जिसका समय ईस्वी सन् 1643 से 1843 तक माना जाता है। इस काल में प्रमुखतः जो साहित्य लिखा गया, वह अपने पूर्ववर्ती भक्ति काल से सर्वथा भिन्न प्रकृति का था। इस काल के साहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति थी – रीति निरूपण की। इसी को दृष्टि में रखकर इस काल का नामकरण रितिकाल किया गया। 'रीति' अर्थात काव्य–रचना की विशिष्ट पद्धति। यह संस्कृत काव्यशास्त्र से हिन्दी में आया लेकिन कुछ भिन्न अर्थ लेकर। इस काल के कवियों ने संस्कृत काव्यशास्त्र में चर्चित नायिका भेद रस, अलंकार, ध्वनि आदि उनके उदाहरण–स्वरूप काव्य–रचना की। ऐसे तमाम कवि रीतिबद्ध या रीति सिद्ध कवि कहलाए और ऐसे ग्रंथ लक्षणग्रंथ कहलाए। जिन कवियों ने रीति के बंधन को अस्वीकार करके स्वतंत्र काव्य–रचना की वे रीतिमुक्त या रीतिस्वच्छंद कवि कहे गए। इस काल के साहित्य में रस की दृष्टि से श्रृंगार एवं प्रवृत्ति प्रधान है। वैसे इस काल में अन्य विषयों जैसे भक्ति, नीति और वीरता आदि को लेकर भी छुटफुट काव्य रचा गया। इस काल की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और धार्मिक परिस्थितियों पर विचारने से स्पष्ट होता है कि अधिकतर रीति कवि किसी न किसी राजा, नवाब या सामंत के आश्रय में थे जिसके फलस्वरूप अपने आश्रयदाता की रुचि के अनुसार काव्य–सृजन उनकी विवशता बन चुकी थी। काव्य धन कमाने का, यश प्राप्त करने का और राजदरबार में अपना स्थान बनाने का साधन बन चुका था। इसी कारण इस काल के काव्य में चमत्कार प्रदर्शन, अलंकरण आदि की प्रमुखता है। भारतीय इतिहास की दृष्टि से यह काल भौतिक समृद्धि और ऐश्वर्य तथा उसके क्रमिक पतन का काल था। सामंती विलास और वैभव के बीच इस काल में अनेक प्रकार की कलाओं का उत्थान तो अवश्य हुआ पर साथ ही जनसामान्य की स्थिति दारुण होती चली गई। रीतिकालीन साहित्य में ये दोनों ही पक्ष स्पष्ट देखे जा सकते हैं।

BRAOU

4.3 मूल पाठ

4.3.1 भूमिका

हिन्दी साहित्य के इतिहास में विक्रम संवत् 1700 से 1900 (ईस्वी सन् 1643 से 1843) तक का काल 'रीतिकाल' के नाम से जाना जाता है। यह नाम आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का दिया हुआ है। शुक्ल जी ने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में युग–विशेष के साहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति को आधार मानते हुए काल–विभाजन और नामकरण किया है। इसी क्रम में रीतिकाल की प्रमुख प्रवृत्ति उन्होंने 'रीति' को माना है। रीति का अर्थ होता है प्राणाली, पद्धति, मार्ग, शैली आदि। यह शब्द संस्कृत से हिन्दी में आया। संस्कृत काव्य–शास्त्र में रीति सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य वामन रीति को काव्य की आत्मा के रूप में मान्यता देते है– 'रीतिरात्मा काव्यस्य' उनके अनुसार रीति का अर्थ है 'विशिष्ट पदसंरचना'। हिन्दी में 'रीति' शब्द का अर्थ लिया गया काव्यशास्त्र में वर्णित अलंकार, रस, ध्वनि, नायिका भेद आदि–प्रणालियों के अनुसार रचना करना। शुक्ल जी के शब्दों में 'कवियों ने कविता लिखने की यह एक प्रणाली ही बना ली कि पहले दोहे में अलंकार या रस का लक्षण लिखना, फिर उसके उदाहरण के रूप में कवित्त या सवैया लिखना।' इस प्रकार उस युग के कवियों में संस्कृत काव्यशास्त्र के विभिन्न सिद्धन्तों की शिक्षा देने, उनकी चर्चा करने और अपना पांडित्य प्रदर्शित करने की परिपाटी चल पड़ी। वस्तुतः इस युग के कवि काव्यांग–चर्चा में उसीप्रकार गौरव का अनुभव करते थे जिस प्रकार भक्तिकाल में ब्रह्मज्ञान विषयक चर्चा गौरव की बात हो चली थी। इस प्रकार

रीतिकाव्य का अर्थ हुआ ऐसा काव्य जो अलंकार रस, गुण, ध्वनि, नायिका भेद आदि की काव्यशास्त्रीय प्रणालियों के आधार पर रचा गया हो। इनके लक्षणों के साथ या इनके आधार पर काव्य–रचना की पद्धति ही रीति नाम से विख्यात हुई और यह पद्धति जिस काल में प्रमुख रही, वह काल रीतिकाल नाम से प्रसिद्ध हुआ।

रीतिकाल को अन्य नाम भी दिए गए। मिश्रबंधुओं ने इसे 'अलंकृत काल' कहा तो विश्वनाथ प्रसाद मिश्रा ने श्रृंगार काल। इनके अतिरिक्त इस काल को 'उत्तर मध्यकाल', 'काव्य कला काल' या 'कला काल' आदि नाम भी दिए गए। जहाँ तक इसे 'अलंकृत काल' कहना केवल एक पक्ष को प्रमुखता देना है। इसी प्रकार 'श्रृंगार काल' कहने के पीछे इसमें वर्णित श्रृंगार की प्रवृत्ति की प्रधानता है। ठीक है कि इस युग की अधिकांश रचनाएँ श्रृंगार रस से परिपूर्ण हैं, लेकिन इसी रस का निरूपण करना नहीं है। अनेक कवियों ने अन्य रसों को लेकर भी रचनाएँ कीं, और ऐसे कवियों तथा श्रृंगार रस को लेकर लिखने वाले कवियों का भी लक्ष्य यही रहा कि वे विभिन्न काव्य–शास्त्रीय सिद्धांतों की चर्चा करके, उनका प्रतिपादन करके और उनके आधार पर कविता रच कर अपने आश्रयदाताओं या आस्वादकों को प्रभावित कर सकें। रीति निरूपण की यही पद्धति इस काल की कविता का लक्ष्य जान पड़ती है। इसी प्रकार इसने 'कला काल' या 'काव्य कला काल' कहना भी एकांकी ही है, और 'मध्यकाल' या 'उत्तर मध्यकाल' कहने से इस युग के साहित्य की आंतरिक प्रवृत्ति का पता नहीं चलता। इसलिए इस युग के लिए 'रीतिकाल'नाम ही सर्वाधिक उपयुक्त माना गया।

साहित्य के इतिहास में किसी युग विशेष का नाम करण बकौल विश्वनाथ प्रसाद मिश्र कृति, प्रवृत्ति एवं व्यक्ति तीनों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। इसमें कृति की अधिकता प्रवृत्ति की प्रधानता को ही सूचित करती है और व्यक्ति के नाम पर नामकरण तब तक नहींहोसकता जब तक वह सर्वमान्य नहीं हो या कोई दूसरा विकल्प नहीं हो। इसीलिए शुक्ल जी द्वारा इस काल के नामकरण के लिए प्रवृत्ति को आधार बनाना तर्क संगत प्रतीत होता है। रीतिकाल के जिन कवियों ने रीति निरूपण की परिपाटी से हटकर अपने लिए कविता की वे रीतिमुक्त या रीति–स्वच्छंद कवि कहलाए। उदाहरण के लिए घनानंद ने लिखा :–

'लोग हैं लागि कवित्त बनावत मोहि तो मेरे कवित्त बनावत' अर्थात लोग तो सप्रयास कविता करते हैं जबकिमेरी कविता हृदय से सहज फूटती है। घनानंद की भाँति ही बोधा, ठाकुर, आलम आदि कवियों की रचनाशीलता भी रीति के स्वेच्छास्वीकृत बंधनों से मुक्त है। फिर भी उस युग में काव्यांगों और उनके प्रयोगों से अपनी अभिव्यक्ति को सजाने–संवारने की प्रवृत्ति इतनी प्रबल थी किरीतिमुक्त कवियों में भी इन काव्यांगों का सुन्दर व सहज प्रयोग दिखलाई देता है। इसलिए इस काल का रीतिकाल नाम इसकी सभी प्रकार की प्रवृत्तियों एवं रचनाकारों का प्रतिनिधित्व करता है।

अब सवाल उठता है कि रीति–निरूपण की यह प्रवृत्ति, कलात्मकता और बाहरी साज–सज्जा के प्रति कवियों का यह आकर्षण, काव्यशास्त्रीय परम्पराओं से ऐसे बंधकर चलने की मनोवृत्ति और श्रृंगार के प्रति विशेष आसक्ति का कारण क्या है? क्यों और कैसे इस युग की कविताओं में ये प्रवृत्तियाँ आईं जो कि इसकी पूर्व की भक्ति–कालीन काव्यप्रवृत्तियों के सर्वथा विपरीत हैं? ऊपर कहा भी जा चुका है कि इस युग में कवि कव्यांग चर्चा में उसी प्रकार कि ब्रह्मज्ञान विषयक चर्चा भक्तिकाल में गौरव की बात समझती जती थी, प्रश्न उठता है कि कविता में आये इस प्रवृत्तिगत परिवर्तन का कारण क्या है?

जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है, साहित्य में प्रवृत्तिगत कोई परिवर्तन अकारण या अकस्मात नहीं होता उसके पीछे कोई पृष्ठभूमि और परिस्थिति जन्य कोई कारण अवश्य होता है। इसीकी व्याख्या करते हुए शुक्ल जी ने बताया था कि किसी भी देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का प्रतिबिम्ब होता है, इसलिए साहित्य में आनेवाला कोई भी परिवर्तन वास्तव में जनता की चित्तवृत्ति में हुए परिवर्तन को सूचित करता है। आगे शुक्ल जी यह भीबताते हैं कि जनता की चित्तवृत्ति में होने

BRAOU

वाला यह परिवर्तन भी अकारण नहीं होता। उसके लिए राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक परिस्थितियाँ उत्तरदायी होती हैं। रीतिकाल के संदर्भ में उपर उठाए गये प्रश्नों का हल पाने के लिए रीतिकालीन सामाजिक सांस्कृतिक संदर्भ को समझना आवश्यक है।

4.3.2 राजनीतिक संदर्भ

राजनीतिक दृष्टि से रीतिकाल भारत में मुगलों के शासन के चरमोत्कर्ष और उसके बाद होने वाले ह्रास और विनाश का काल था। मुगल भारत में केन्द्रीय शक्ति के रूप में जमे थे। जहाँगीर ने अपने शसन-काल में राज्य का जो विस्तार किया था, उसके पुत्र शाहजहाँ ने उसे बढ़ाकर एक विशाल साम्राज्य बना दिया था, जिसकी सीमाएं उत्तर भारत से लेकर दक्षिण में अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुण्डा राज्यों, उत्तरपश्चिम में सिंध के लहरी बंदरगावसे लेकर आसाम में सिलहर नामक प्रदेश तक तथा अफगानिस्तान के विस्त के किले तक फैली हुई थीं। राजपूतों में से अधिकांश मुगलों की अधीनता स्वीकार कर चुके थे। एक स्थिर केन्द्रीय सत्ता होने के कारण देश में सुशासन और शांति थी। राजकोष भरा हुआ था, जिनका उपयोग प्रशासन के अतिरिक्त सुन्दर व कलात्मक निर्माणों के लिए हो रहा था। शाहजहाँ के ही काल में ताजमहल और मयुर सिंहासन का निर्माण इसका प्रमाण है। लेकिन शाहजहाँ की मृत्यु और औरंगजेब के गद्दीपर बैठने से यह राजनैतिक प्रशांति धीरे धीरे बिखरने लगी। स्वयं औरंगजेब ने अपने पिता के साथ दारुण व्यवहार कर तथा भाइयों की निर्मय हत्या कर यह सिंहासन प्राप्त किया था। उसकी धार्मिक कट्टरता और स्वार्थपरता के कारण उसके शासन में जागीरदारों, राजाओं और हिन्दू सामंतों के उपद्रव शुरू हो गए। औरंगजेब की अधिकांश शक्ति इन उपद्रवों के दमन में ही खर्च हो गई। दक्षिण भारत तो उसके लिए शंकरही बना रहा। उसकी मृत्यु के बाद उसके अयोग्य उत्तराधिकारियों के कारण मुगल साम्राज्य का पतन हो गया। केन्द्रीय शक्ति क्षीण हो जाने के कारण छोटे-छोटे सामंत अपने को राजा घोषित कर स्वतंत्र हो गए। सन् 1761 ई. में अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों के फलस्वरूप अब मुगल साम्राज्य दिल्ली और आगरा तक ही सीमित रह गया। इस स्थिति का लाभ उठाकर भारत में व्यापारी के रूप में घुस आने वाले अंग्रेज धीरे-धीरे यहाँ के शासक बन बैठे। केन्द्रीय शक्ति के रूप में उत्थान पतन की यहीं कथा मुगल साम्राज्य से परे अन्य प्रदेशों जैसे अवध, राजस्थान और बुन्देलखण्ड आदि की रही। इन राज्यों में अनेक प्रकार के षड्यंत्रों, सत्ता के लिए अमानवीय छीना झपटी और आंतरिक कलह का ऐसा प्रभाव पड़ा और स्वार्थ, वैभव के उन्मत्त भोग और विलास का ऐसा कारुणिक परिणाम पड़ा कि धीरे-धीरे ये राज-रजवाड़े अपनी स्वतंत्रता खोकर अंग्रेजी शासन के गुलाम बन गए।

4.3.3 सामाजिक संदर्भ

BRAOU

रीतिकाल सामंती व्यवस्था के चरमोत्थान और फिर चरम पतन का युग रहा है। सामंती व्यवस्था अर्थात राजा और प्रजा अर्थात शासक और शासित के सम्बन्धों के आधार पर खड़ी व्यवस्था। इन्हें दूसरे शब्दों में शोषक वर्ग में राजा, जमींदार, सामंत, राजकर्मचारी, राजदरबार से जुड़े अन्य धनी और सम्पन्न लोग आते है जो सदा अपने से ऊपर के वर्गों को प्रसन्न करने में, उनकी गुलामी करने में लगे रहते थे जबकि अपने से नीचे के वर्गों को अपना गुलाम और अपनी सम्पत्ति संभावना, उनका शोषण करना और उन पर अमानवीय अत्याचार करना वे अपना हक समझते थे वस्तुतः यह सुविधा भोगी वर्ग था। शोषित वर्ग में किसान, मंज्दूर आदि श्रामिक और दुकानदार व्यापारी आदि आते थे। शासक वर्ग अनेक प्रकार के कर दोनों ही कोटि के लोगों से वसूलता था। लेकिन इन दोनों प्रकार के लोगों में आपसी अंतर था। व्यापारी शासकों के कर तो देते थे पर किसानों मज्दूरों अर्थात श्रमजीवी जनता से अनेक प्रकार से वसूल कर अपनी क्षतिपूर्ति कर लेते थे। इस तरह हर प्रकार से शोषण श्रमजीवी जनता का ही हो रहा था। इसके अतिरिक्त युद्धों, सेनाओं के प्रयाणों, बेगार प्रथा मानवीय तथा अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि प्राकृतिक विपदाओं के कारण श्रमजीवी सर्वाधिक पीड़ित रहते थे। कुलीन" मिलाकर रीतिकाल का सामाजिक संदर्भ दो वर्गों का अलग-अलग यथार्थ प्रस्तुत करता है। एक ऐसा वर्ग जो बिना श्रम किये अत्याधिक विलास का भोगी है और दूसरा ऐसा वर्ग जो अत्याधिक श्रम करके भी अभाव और अत्याचार का शिकार होने को अभिशप्त है।

स्पष्ट है कि राजमहलों, दरबारों और इन सुविधाभोगी वर्गों के निवास अत्याधिक भोग विलास और सुख पाने के नये नये तरीकों के साथ आंतरिक कलहों, षड्यंत्रों और विकृतियों के केन्द्र बन गए थे। रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचार तो सामान्य प्रचलित बातें थीं। नारी को अपनी सम्पत्ति मानकर उसका केवल भोग की सामग्री के रूप में उपयोग किया जाता था। सुरा और सुन्दरी का उपयोग इस वर्ग के लिए अपरिहार्य था। राजकर्मचारियों, व्यापरियों और कवि-कलाकारों के लिए यह उच्च वर्ग ही आश्रयदाता था और इसे सब प्रकार से प्रसन्न रखना उनका धर्म बन गया था। वेश्याओं, रक्षिताओं और हिजड़ों की भरमार होगई थी और ये लोग शासन-व्यावस्था तक को प्रभावित करने लगे थे। इस स्थिति में और गिरावट ही !आती गई और 18वीं सदी तक आते-आते दशा यह हो गई कि इस युग को इतिहासकारों ने 'वेश्याओं और हिजडों के युग' के रूप में याद किया है। उच्चवर्ग के अनैतिक और खोखले मूल्यों को मध्यवर्ग ने भी अपनाना शुरू किया था। यही कारण है कि स्त्रियों के अपहरण आदि अत्याचारों से बचने के लिए बाल-विवाह और पर्दा प्रथा का प्रचलन अत्याधिक हो गया था। बहुविवाह, अनमेल विवाह, वेश्यागमन आदि सामान्य बातें हो गई थी। सामान्य जनता भी बटेरबजीं तीतरबाजी जैसें निरर्थक शौकों में लगीं रहती थी। शिक्षा की समुचित व्यवस्था नहीं थी। चिकित्सा, सुरक्षा और अन्य प्रकार की सुविधाओं का कोई प्रबंध नहीं रह गया था। पारिवारिक सम्बन्धों में भी नारी के प्रति आदरभाव नहीं रह गया था। इसी कारण दाम्पत्य जीवन की जगह उन्मुक्त प्रेम और विवाहेतर प्रेम सम्बन्धों का प्रचलन हो गया था।

स्वपरीक्षणार्थ प्रश्न :

1. साहित्यिक प्रवृत्ति में परिवर्तन से क्या सूचित होता है?
2. शाहजहाँ का शासन आसाम में कहाँ तक था?
3. रीतिकाल का सामाजिक संदर्भ किन दो वर्गों का अलग-अलग यथार्थ प्रस्तुत करता है?

4.3.4 धार्मिक संदर्भ

राजनीतिक और सामाजिक स्थितियों ने धार्मिक क्षेत्र में भी प्रभाव डाला था। भक्तिकाल में धर्म समाज के उत्थान के लिए था लेकिन रीतिकाल में धर्म का क्षेत्र भी रसिकता, विलास, स्वार्थपरता और बाह्याडम्बरों से ग्रस्त हो चला था। अकबर, जहाँगीर और शहजहाँ की उदारतावादी नीतियों तथा सूफी संतों के प्रभाव से हिन्दू और इस्लाम संस्कृतियों में जो एक स्वच्छ निकटता आई थी वह औरंगजेब की कट्टर नीतियों से छिन्न भिन्न हो गई। हिन्दू धर्म में जो विभिन्न सम्प्रदाय बन गए थे उनमें प्रदर्शन, भोगविलास, रसिकता और अधिकार लिप्सा की गंदगी छा गई थी। कृष्ण भक्ति ही नहीं रामभक्ति शाखा में भी रसिक संप्रदाय बन गया था। मंदिरों में पूजा और लीला के नाम पर ऐश्वर्य प्रदर्शन, साज सज्जा और अर्थहीन आडम्बर होने लगे थे। संक्षेप में धर्म का प्रवाह आध्यात्मिक आदर्शों से हटकर भौतिकता के किनारों में बँध गया था। यह तो हिन्दी भाषी प्रदेशों का हाल था। हिन्दी क्षेत्र में संतों की वाणी प्रचलित थी पर इसका प्रभाव हिन्दी क्षेत्र से था। इस्लाम धर्म में कट्टरता एवं रूढ़ि-वादिता ने जड़ जमा लिया था। धर्म से नैतिकता का सम्बन्ध छूट चुका था इसलिए उच्चवर्ग ने धर्म की आड़ में भी अपनी वासनाओं की तृप्ति की। इसका प्रमाण है भिखारीदास की यह पंक्ति -

> आगे के कवि रीझं है, तौ कविताई न तौ
> राधिका कन्हाई सुमिरन के बहानौ हैं।।

अर्थात राधा-कृष्ण की आड़ में धर्म में अश्लीलता बढ़ गई थी। अपने जमाने में वैराग्य प्रधान निर्गुणमार्गी कबीर और गुरुनानक के दिये गए उपदेशों की जगह अनेक प्रकार के पंथ बन गए थे जैसे कबीर पंथ, दादूपंथ, चरणदासी, गरीबदासी, मलूकदासी, सतनामी, रैदासी आदि अनेक संप्रदाय जिनमें तत्व- चिंतन और आचरण की जगह अंधविश्वास और रूढ़िवादिता ने ले ली थी। पुरोहित और मुल्ला भक्त और भगवान के बीच अपना अधिकार जमाए थे। यह ठीक है कि इस युग में पुरानी परम्परा के सूफी और संत अब भी थे लेकिन उनमें कबीर, नानक या जायसी जैसा व्यक्तित्व और प्रतिभा अब नहीं रह गई थी जो कि जन-जीवन को प्रभावित कर सकती।

BRAOU

4.3.5 सांस्कृतिक संदर्भ

रीतिकाल की सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक स्थितियों से स्पष्ट है कि इस काल में उत्थान और पतन तथा विलास और अभाव के दोनों पक्ष उपस्थित थे। इस काल के साहित्य और कलाओं में प्रथम पक्ष-वैभव और विलास की ही प्रमुखता रही क्योंकि साहित्य और कलाओं का आश्रयदाता व प्रशंसक उच्चवर्ग था। यही कारण है कि साहित्य और कलाओं की दृष्टि से यह युग समृद्ध और सम्पन्न युग है। इस युग की सांस्कृतिक चेतना भौतिक, शृंगारयुक्त, अलंकृत और आडम्बर पूर्ण दिखाई देती है। चाहे वह चित्रकला हो, वास्तुकला हो, नृत्य या संगीत जैसी दूसरी कलाएँ हों या साहित्यिक रचनाएं-सभी में अपने उपभोक्ता वर्ग की रुचि के अनुसार चमक-दमक, प्रदर्शन, अलंकार और कृत्रिमता दिखाई देती है। जहाँगीर और शाहजहाँ दोनों ने कला को आश्रय दिया और विभिन्न कलाओं को इतना बढ़ावा दिया कि यह काल कलाओं का स्वर्णकाल कहा जाता है। कला और साहित्य के प्रति शासक वर्ग के इस अत्यधिक उत्साहने धीरे-धीरे एक दरबारी संस्कृति का निर्माण किया जिसमें आश्रयदाता की रुचि प्रमुख हो गई। उसी के अहं को तुष्ट करने और भोगेच्छा को तृप्त करने के लिए कला का उपयोग होने लगा। स्पष्ट है कि इसके कला के स्तर में गिरावट आने लगी। साहित्य इसका सबसे अधिक शिकार हुआ क्योंकि आश्रयदाता की विलास कामना को पूरा करने के लिए कवि न केवल शृंगार प्रधान रचनाएँ करता था। बल्कि उसके शौर्य और पराक्रम को बढ़ाचढ़ा कर वर्णित करने का काम भी उसी के जिम्मे था। काव्यशास्त्रीय परम्परा से चिपके रहने के कारण भी कविता में पांडित्य प्रदर्शन और अलंकरण की प्रवृत्ति बढ़ी। कवियों की दृष्टि भौतिक और उपभोगपूर्ण होती चली गई। भक्त कवि जहाँ जीवन को क्षणभंगुर मानकर आत्मिक साधना के द्वारा इसी की मुक्ति का द्वार बना लेना चाहते थे, वहाँयेकवि जीवन की क्षणभंगुरता में ही अधिक से अधिक सुखभोग लेने का भौतिक दृष्टिकोण अपनाये हुए थे। जो रीतिमुक्त और दरबारों से मुक्त रहनेवाले कवि थे, उनमें भी शृंगार रस ही प्रमुख था। यद्यपि बिहारी के द्वारा अपने आश्रयदाता कवि राजा जय सिंह को अपनी नई पत्नी के साथ अत्यधिक भोगविलास में डूबकर राजकाज से विरक्त हो जाने पर उनको प्रबोधित करने हेतु –

'नहि पराग नही मधुरमधु, नहि विकास यहि काल
अली कली ही सों बँधौ, अगे कौन हवाल'

जैसे दोहे की रचना और इसका राजा पर पड़ने वाले अनुकूल प्रभाव की घटना इसी काल में हुई थी मगर ऐसे प्रसंग अपवाद ही कहे जा सकते हैं।

स्वपरीक्षणार्थ प्रश्न :-

1. औरंगजेब की धार्मिक नीति कैसी थी?
2. रीतियुगीन कवियों की जीवन दृष्टि क्या थी?
3. रीतिकाव्य में रस की दृष्टि से प्रधान रस क्या है?

4.3.6 युगीन संदर्भ और साहित्य

रीतिकालीन परिस्थितियों के इस संक्षिप्त अध्ययन के बाद यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि इन परिस्थितियों ने तत्युगीन साहित्य को कहाँ तक प्रभावित किया और उसमें उस युग का प्रतिबिम्ब कहाँ तक दिखाई देता है। साथ ही शासक और शासित वर्ग की दो नितांत भिन्न स्थितियों के बीच इस युग के कवि का स्थान कहाँ है? ऊपर सांस्कृतिक संदर्भ में स्पष्ट किया जा चुका है कि साहित्य और अन्य कलाएँ इस युग में उपभोग की वस्तु बन गई थीं, तो स्पष्ट है कि कवि की स्थिति भी इस उपभोक्ता वर्ग की रुचि को संतुष्ट करने वाले रचनाकार के रूप में ही थी। पंडित विश्वनाथ मिश्र के शब्दों में "समाज की कैसी स्थिति थी, इसकी झलक इनकी कविता में यद्यपि बहुत साफ नहीं है, तथापि मिलती अवश्य है। लोभ, कपट, दंभ एवं पाखंडकी वृद्धि हो रही थी समाज में लोग लोभ के फेर में पड़कर निकृष्ट व्यक्तित्वोंकी भी सेवा कर रहे थे। कविता "स्वांतः सुखाय" न होकर "स्वामिनः सुखाय" होने लगी। साधारण व्यक्तित्वों कीभी धन के लोभ से प्रशंसा करना, उनकी कीर्ति से इन्द्र कोकँपादेना,ा, विद्वता से बृहस्पति को पीला बना देना, सुन्दरतासे कामदेव का जल मरना आदि

मामूली बातें थीं। यह रोग इतना बढ़ा कि आगे चलकर देवदत्त जैसे कवि को कहीं "भवानी विलास" की रचना करनी पड़ी तो कहीं "कुशल विलास की। लोभका चश्मा लगाकर लोग छोटों को भी बड़ा देख रहे थे यह कथन इस काल के कवि का एक सामान्य चित्र प्रस्तुत करता है। जो कवि राज्याश्रय के दुखद वातावरण से ऊब कर उसे छोड़ बैठे या जिन्होंने राज्याश्रय स्वीकार ही नहीं किया, ऐसे कवियों की संख्या कम है, लेकिन है अवश्य। इनकी कविताओं में हृदय की सहज अनुभूति व्यक्त हुई और जनसामान्य के अनुभव भी साकार हुए है। काव्यशास्त्र का आधार लेकर लक्षणग्रंथों की रचना करने वाले आचार्य कवि भी इसी युग में हुए और भूषण जैसे राष्ट्रीय चेतना के कवि भी इसी युग की देन हैं। तात्पर्य यह कि उस युग की परिस्थितियाँ उस युग के कवियों को अपने-अपने ढंग से प्रभावित कर रही थीं। उदाहरण के लिए इस युग में लिखी गई नीति और भक्तिपरक रचनाएँ ली जा सकती हैं। संक्षेप में इस युग के वातावरण और साहित्य के आपसी संबंध को निम्नलिखित-उपशीर्षकों में बाँटकर देखा जा सकता है।

(अ). सामंती वातावरणः

समृद्धि या विलास के इस युग में अधिकांश कवि किसी न किसी राजा, नवाब या श्रीमंत के यहाँ आश्रय लिए रहते थे। कई बार आश्रयदाता स्वयं भी कवि और कलाकार हुआ करता था। इसलिए स्पष्ट है कि काव्य में यह सामंती वातावरण किसी न किसी रूप में अवश्य प्रतिफलित होता था। उदाहरण के लिए पद्माकर का यह कवित्त देखा जा सकता है जिसमें उन्होंने राजमहलों के विलासपूर्ण उपकरणों का विवरण दिया है-

गुलगुली गिल में गलीचा है, गुनीजन है,
चाँदनी है, चिक है, चिरागन की माला है।
कहै पद्माकर त्यौं गजक गिजा है सजी
सेज है, सुराही है, सुरा है अरु प्याला है।

तानु तुलताला है, बिनोद के रसाला है,
सुबाला है, दुसाला है, बिसाला चित्रसाला है।

(आ) जनजीवन का यथार्थः

लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि-कवि की दृष्टि इस भोगविलास के साधनों पर ही टिकी रही और सामान्य जन जीवन की वास्तविकता पर उसका ध्यान ही नहीं गया। रीतिकालीन कवि इस सामंती साजश्रृंगार के वातावरण में पल-बढ़कर भी था तो सामान्य नागरिक ही। वह स्वयं सामंत नहीं था बल्कि सामंतों के आश्रय में पलने वाला विशिष्ट सुविधा युक्त कलाकार था। इसलिए सामान्य जीवन के चित्र उसकी कविता में आये अवश्य हैं। विशेषकर सामान्य जनता के शोषण को लेकर इन कवियों ने लिखा है। बिहारी का यह दोहा देखिए :-

दुसह दुराज प्रजानिकों, क्यों न बढ़े दुख दंड।
अधिक अंधेरो जग कियो, मिलिमावस रविचंद।

अर्थात अमावास्य की रात्रि में जैसे सूर्य-चन्द्र दोनों अपनी अनुपस्थिति से रात्रि को और अधिक अंधकार पूर्ण बना देते हैं उसी प्रकार प्रजा दुहरे सामंती शोषण से पीड़ित है, एक तो केन्द्रीय शासक और दूसरे उसके सामंत छोटे राजा-नवाब आदि - प्रजा को इन दोनों के अत्याचार सहने पड़ते हैं। इसी प्रकार बैताल कवि के शब्दों में उस युग का चित्र देखिए -

दया चट्ट है गई, धरम धासिगयो धान में।
राजा करे न न्याय, प्रजा की होत दुखारी।
अब उलटि दान गजपति माँगे, सील संतोष किते गयो।
बैताल कहै विक्रम सुनो यह कलजुग प्रगट भयो।।

(इ) कवि-प्रतिभा और स्वाभिमान :

इससे स्पष्ट है कि कवि पूरी तरह से सामंतों के हाथ बिका नहीं था। बीच बीच में उसका स्वाभिमान सजग होकर उसे उसकी सही स्थिति का ध्यान दिलाता रहता था। बिहारी ने अपने आश्रयदाता राजा को श्रृंगार की सरिता में डुबोया ही नहीं, समय पड़ने पर उसे अपने कर्तव्य का स्मरण भी दिलाया। राज-दरबार में रहकर भी भूषण ने किस प्रकार अपने स्वाभिमान की रक्षा की और अपने वीर रस पूर्ण रचना द्वारा राष्ट्रीय स्वाभिमान की अभिव्यक्ति की- यह सभी जानते हैं। लेकिन यह भी सत्य है कि कवि के लिए अपने स्वाभिमान की रक्षा करने और अपनी प्रतिभा का सुरुचिपूर्ण प्रयोग करने में संकट बहुत थे। एक ओर राजदरबारों का षड़यंत्र पूर्ण वातावरण, दूसरी ओर खुशामद पसंद सामंत, जिसकी 'हाँ' में 'हाँ' मिलाये बिना रहना असंभव था। ऐसे में रहीम जैसे कवि ने भी दुखी होकर लिखा है कि -

रहिमन जो रहिबो चहे, कहै वाहि के दाव।
जो बासर को निसि कहै, तो कचापची दिखाव।।

राजा यदि दिन को रात कहे तो उसका समर्थन करना ही है, ऐसे वातावरण में कई कवि यदि राज दरबारों से दूर रहे या घनानन्द के समान उसे छोड़कर चले गए तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। जिन कवियों ने अपने आश्रयदाता की मांग पूरा करने के लिए ऐन्द्रिक विलास की कविता लिखी, वे भी जीवन में कभी न कभी अपने कृत्य पर पछताये अवश्य। देव, पद्माकर आदि अनेक कवियों का यह अनुभव रहा। प्रशंसा के योग्य वे कवि हैं जो ऐसे वातावरण में रहकर भी अपने स्वाभिमान को बचाए रखने में सफल हुए। उदाहरण के लिए कवि बेनी बंदीजन की ये पंक्तियाँ देखिए -

आदर न देये वहाँ कबहूं न जैये जोऊ,
लाखन हूं पैये पैं न रहिये अयानी में।
नर को बखान करै तोऊन अरथ सेरे,
ऐसी कविताई को बहाय दीजै पानी में।

कवि का कहना है कि मनुष्य का बखान करके भी कविता को अर्थ-प्राप्ति (अर्थ यहाँ अर्थ और धन दोनों के लिए आया है) नहीं होती तो ऐसी कविता को पानी में बहा देना चाहिए। ठाकुर कवि की इन पंक्तियों में तो कवि का आत्माभिमान साकार हो गया है -

ठाकुर कहत हम बैरी बेवकुफनके,
जालिम दमाद है अदानियाँ ससुरके,
चोजिन के चोजी महा मौजिन के महाराज,
हम कविराज हैं, पै चाकर चतुर के॥

BRAOU

(ई) भक्ति, श्रृंगार और नैतिकता:

इस युग के वातावरण के अनुरूप कवि के मानस को तीन भाव बहुत आन्दोलित करते थे- श्रृंगार जो कि उस युग का प्रमुख मनोभाव था, भक्ति जो कि भारतीय जन मानस का अपरिहार्य तत्व है और नैतिकता। रीतिकालीन कवि एक ओर अपने आश्रयदाता से जुड़ा हुआ था, और दूसरी ओर वह स्वयं सामान्य जनता का ही अंग था, इसलिए उसकी नीतिकता दोहरी थी। अर्थ-प्राप्ति के लिए वह जो काव्यरचना करता था, उसके खोखलेपन को समझता भी था। उस समय के सारे परिवेश में यह दोहरी नैतिकता व्याप्त थी। सामाजिक विधि विधान के होते हुए भी वेश्यागमन, बहुविवाह, यहाँ तक कि स्त्रियों के भी विवाहेतर सम्बन्धों से उस समय का साहित्य भरा पड़ा है। यह बात इसी से स्पष्ट हो जाती है कि रीतिकालीन काव्य में परकीया की ही प्रतिष्ठा अधिक थी और दाम्पत्य जीवन की जगह स्वच्छन्द प्रेम को अधिक मान्यता मिली। ऐसे ही सामाजिक वातावरण में नायिका भेद को लेकर काव्य रचा जा सकता है जिसमें स्त्री के अलग-अलग आयु क्रम और मनोभावों का काम-कला के आधार पर वर्गीकरण किया गया हो। भक्ति भी श्रृंगार के लिए आड़ बन गई थी, राधाकृष्ण की ओट लेकर श्रृंगार के वीभत्स अश्लील प्रसंग ऐसे ही वातावरण में रचे जा, सकते थे।

(उ) पाण्डित्य और कवित्व :

इस काल के कवियों में आचार्य और कवित्व का विचित्र मिश्रण मिलता है। संस्कृत में आचार्य और कवि अलग-अलग हुआ करते थे, लेकिन, रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में- "हिन्दी साहित्य में यहा का अनूठा दृश्य खड़ा हुआ। संस्कृत साहित्य में कवि और आचार्य दो भिन्न भिन्न श्रेणियों के व्यक्ति रहे। हिन्दी काव्य क्षेत्र में यह भेद लुप्त सा हो गया।" इसके लिए भी उस समय का वातावरण कारण था। कवि के लिए कविता चमत्कार प्रदर्शन की वस्तु थी। यह चमत्कार पाण्डित्य-प्रदर्शन से ही संभव था। इससे तत्काल अर्थ-प्राप्ति होती थी। कवि दरबार का विशिष्ट सदस्य माना जाता था, वह दरबार की शोभा की वस्तु था, स्पष्ट है कि उसका काव्य भी इस 'शोभा' से युक्त होता। दूसरे, कवि को रचना ही नहीं करनी थी, उस रचना को समझने और आस्वाद करने वाले वर्ग का भी निर्माण करना था। इसलिए इन कवियों द्वारा रचे गए लक्षण ग्रंथों का दोहरा प्रभाव पड़ा एक ओर काव्य की रचनात्मकता पर, दूसरी ओर रसिक या आस्वादक वर्ग की दृष्टि पर।

(ऊ) कलात्मक सजगता :

यह युग कला के उत्कर्ष का काल रहा। इस युग की परिस्थितियों के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि जहाँ समाज के बहुसंख्यक वर्ग का शोषण कर अल्पसंख्यक वर्ग अपने भोग विलास के साधन जमा करता हो, और कवि-कलाकार का भी अपने निजी मान-सम्मान और मनोरंजजन के लिए उपयोग करता हो, वहां के साहित्य और कला में दिखावा, आडम्बर और अलंकरण की प्रधानता हो। रीतिकालीन कवियों में कलात्मकता के प्रति बहुत अधिक आग्रह इसी कारण आया। कवि अर्थ और यश की लालस से विभिन्न दरबारों में घूमते थे, उनमें अपनी प्रतिभा के प्रदर्शन के लिए एक प्रकार की प्रतियोगिता हुआ करती थी, इसमें अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए चमत्कार प्रदर्शन आवश्यक था। इसके अतिरिक्त काव्यशास्त्रीय परम्परा के अनुकरण के कारण वह युग अलंकरण और पाण्डित्य-प्रदर्शन को महत्व देता था।

(ऋ) अनुभूति की सघनता :

ऐसे युग में अनुभूति का महत्व कम होना स्वाभाविक है। जहाँ कला कलाकर के लिए रचना करने का आनन्द देने के बजाय अर्थ और यश देने का साधन बनती हो, और जिस युग में इस प्रकार के कलाकारों की भीड़ लगगई हो, वहाँ अनुभूति-तत्व प्रायः लुप्त हो जाया करता है। वैसे भी काव्य और कला में चमत्कार-प्रदर्शन की प्रवृत्ति आजाने से अनुभूति-पक्ष घटता चला जाता है। राज-दरबारों से जुड़े-अनेक कवियों की रचनाओं में अनुभूति के ऊपर चमत्कार-प्रदर्शन को हावी होते हुए हम देख सकते हैं। बिहारी की कविता इसका उदाहरण है। दूसरे ऐसे लोगों की कमी नहीं थी जो केवल अभ्यास के बलपर प्रतिभा और अनुभूति के न होते हुए भी काव्य-रचना की दौड़ में आगे रहते थे। ऐसे ही लोगों पर व्यंग-करते हुए ठाकुर कवि ने लिखा है -

सीखि लीन्हों, मीन, मृग, खंजन, कमलनैन,
    सीखि लीन्हों जस ओ प्रताप को कहानो है।
सीखि लीन्हों कल्पवृक्ष कामधेनु चिंतामनि
    सीखि लीन्हों मेरु औ कुबेर गिरि आनो है।
ठाकुर कहत याकी बड़ी है कठिन् बात,
    याको नहिं भूलि कहुँ बाँधियत बानो है।
ढेल सो बनाय आय मेलत सभा के बीच
    लोगन कवित्त की बो खेलंकरि जानो है।।

अर्थात कुछ लोग परम्परा से चले आते उपमान रट लेते है और उनका प्रयोग करते हुए अपने आश्रय दाता सामंत को प्रसन्न करने के लिए श्रृंगार और वीररस की झड़ी लगा देते हैं, कविता करना उनके लिए मानो एक खेल बन गया है। यही कारण है कि इस दरबारी संस्कृति से जो कवि बचे रहे, दूर रहे या बाद में त्याग कर चले गए, या ऐसे कवि जिन्होंने जीवन के अन्य पक्षों जैसे भक्ति, नीति और वीरता पर अधिक ध्यान दिया, उनकी कविता में हमें सघन ईमानदार अनुभूति मिलती है। उदाहरणार्थ

BRAOU

घनानंद की कविता ली जा सकती है जिसमें विशेषकर वियोग-वर्णन में अनुभूति की सचाई को ध्यान में रखते हुए रामधारी सिंह दिनकर ने इन्हें 'किराये के रोने वालों की भीड़ में सच्चे आँसू बहाने वाला' कहा है।

4.4 पाठ का सारांश

हिन्दी साहित्येतिहास में सन् 1643 ई. से 1843 तक का समय 'रीतिकाल' कहलाता है। इसके नामकरण का आधार है इस काल के साहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति 'रीति'। हिन्दी में यह प्रवृत्ति संस्कृत से आई जो कि वहाँ एक काव्यशास्त्रीय संप्रदाय है। हिन्दी में विभिन्न काव्यांगों का परिचय देते हुए उनके उदाहरण के रूप में रचित काव्य रीतिकाव्य कहलाया। इस काल में रचनाशील कवियों को रीतिसिद्ध, रीतिबद्ध और रीतिमुक्त इन तीन वर्गों में बाँटा गया। इनके विषय बनाकर काव्य रचना करने वाले कवि भी हैं। रीतिकाल की प्रमुख चेतना श्रृंगारिक है, इसलिए इसे श्रृंगार काल भी कहा जाता है। काव्यकला के उत्कर्ष के कारण कुछ विद्वानों ने इसे 'कला काल भी कहा है।

रीतिकालीन काव्य की प्रवृत्ति एवं प्रकृति अपने पूर्ववर्ती भक्ति काव्य से नितांत भिन्न है। इस परिवर्तित साहित्यिक प्रकृति का कारण तत्युगीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों में निहित है। अतः इनका अध्ययन भी अपरिहार्य है, क्योंकि साहित्य देश-काल सापेक्ष होता है। इस तथ्य को दृष्टि में रखकर इस काल की परिस्थितियों का विवेचन करने से ज्ञात होता है कि यह युग भारत में केन्द्रीय शासन-सत्ता मुगल साम्राज्य के उत्थान और पतन का काल था। राजनीतिक दृष्टि से मुगल साम्राज्य के पतन के साथ भारत का अनेक छोटे-छोटे स्वतंत्र राज्यों में बिखरजाने, उनमें आपसी कलह, षड्यंत्र आदि के कारण जो अस्थिरता, अशान्ति और अराजकता उत्पन्न हुई उसका अंत एक विदेशी शक्ति ब्रिटिश साम्राज्य की अधीनता स्वीकार करलेने में हुआ। सामाजिक दृष्टि से यह सामंती व्यवस्था के चरमोत्थान और फिर चरम पतन का काल था। समाज दो वर्गों में बँटा था- शासक और शासित। शासक वर्ग अतिभोग का शिकार था तो शासित वर्ग अति दारिद्र्य का अधिकतर कवि और कलाकार इस शासक सुविधाभोगी वर्ग के दरबार का अलंकरण बन चुके थे। समाज में अनेक प्रकार की कुरीतियाँ पनप रही थीं। स्त्री केवल उपभोग की सामग्री समझी जाती थी दाम्पत्य जीव की जगह उन्मुक्त प्रेम और विवाहेतर प्रेम सम्बन्धों का महत्व बढ़ गया था। उस, समय के साहित्य ही नहीं, समाज में भी 'परकीया' का गुणगान ही मिलता है। धार्मिक दृष्टि से भी यह काल ऊँचे से नीचे जाने की ही स्थिति में दिखाई देता है। अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ की उदार नीति के बाद औरंगजेबकी कट्टरता धार्मिक सद्भाव को छिन्नभिन्न करने लगी थी। हिन्दू धर्म में भी भक्ति-कालीन औदात्य नहीं रह गया था। यह अनेक सम्प्रदायों और शाखाओं में विभक्त हो चुका था। विश्वास की जगह अंधविश्वास ने ले ली थी, रूढ़िवादिता और बाह्याडम्बर बढ़ गए थे। युगीन विलास भावना का प्रवेश मन्दिरों में भी हो चुका था। संस्कृति के क्षेत्र ओर अतिशय श्रृंगार के चित्रण के कारण साहित्य का सामाजिक आदर्श भंग हो चुका था।

इस प्रकार की परिस्थितियों में रचे गए रीतिकालीन काव्य में रीतिनिरूपण और स्वच्छंदता, अनुभूति और कला, भक्ति और श्रृंगार, नैतिकता और अश्लीलता के अनेक रंग दिखाई देते हैं। इस युग के वातावरण और साहित्य के अन्तः संबन्ध का विवेचन करने से ज्ञात होता है कि इस युग की कविता में एक ओर तो सामंती ऐश्वर्य का खुलकर चित्रण हुआ तो जनजीवन के वास्तविक चित्र भी इसमें मिलते हैं। राज दरबार में रहकर भी कवियों ने वहाँ के दिखावे, छलछंद भरे चाटु कारिता पूर्ण परिवेश के प्रति विरोधी रुख अख्तियार किया है। इस काल के काव्य में पाण्डित्य-प्रदर्शन और अनुभूति प्रवणता के दोनों पक्ष मिलते हैं।

4.5 पारिभाषिक शब्द-अर्थ

नायिका भेद	=	संस्कृत काव्यशास्त्र में नायिकाओं के कई भेद बताए गए हैं। जैसे स्वकीया, परकीया, प्रोषितपातिका आदि।
लक्षण ग्रंथ	=	ऐसे काव्य ग्रंथ जिनमें विभिन्न काव्यशास्त्रीय अंग-उपांगों के लक्षण-उदाहरण निरूपित किये गए हों।
काव्यांग	=	काव्य के विभिन्न तत्व। जैसे रस, छंद अलंकार आदि।
विवाहेतर	=	वैवाहिक संबन्धों से इतर प्रेम संबन्ध
स्वकीया	=	सामाजिक संबन्धों के आधार पर किए नायिकाओं के विभाजन का पहला भेद, पत्नी।
परकीया	=	पत्नी से इतर स्त्री जिससे पुरुष प्रेम संबन्ध रखता है।
उपभोक्ता वर्ग	=	उत्पादित वस्तुओं का उपभोग करने वाला वर्ग।
चमत्कार प्रदर्शन	=	काव्य के भाव पक्ष की जगह कला पक्ष पर विशेष बल देते हुए पाठक एवं श्रोता को चमत्कृत करने की प्रवृत्ति
सुविधाभोगी वर्ग	=	हमेशा व्यवस्था के अलम्बरदारों से जुड़ा रहकर शोषितों की कमाई पर पलने वाला आत्मकेन्द्रित वर्ग।

4.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नो के उत्तर लगभग 250 शब्दों में लिखिए:-

1. रीतिकाल के नामकरण का औचित्य स्पष्ट करें।
2. रीतिकाल के राजनीतिक एवं सामाजिक संदर्भ पर प्रकाश डालें।
3. तत्कालीन परिस्थितियों में साहित्य और कला का स्वरूप कैसा था- स्पष्ट करें।
4. युगीन परिस्थितियों के संदर्भ में रीतिकाव्य का विवेचन करें।

4.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 125 शब्दों में दीजिए:-

1. 'रीति' किसे कहते हैं? हिन्दी में इसका प्रयोग किस रूप में हुआ?
2. रीतिकालीन धार्मिक स्थितियों का परिचय दें।
3. रीतिकालीन काव्य की श्रृंगारेतर प्रवृत्तियों का परिचय दें।
4. रीतिकालीन प्रमुख कवियों और उनकी कृतियों का उल्लेख करें।

BRAOU

4.7 नमूने के प्रश्नोत्तर

4.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर (250 शब्दों में)

प्रश्नः रीतिकाल के नामकरण का औचित्य स्पष्ट कीजिए।

उत्तरः हिन्दी साहित्य के इतिहास में सन् 1643 ई. से 1843 ई. तक के काल को रीतिकाल के नाम से जाना जाता है। इस काल के साहित्य में रस की दृष्टि से श्रृंगार एवं प्रवृत्ति की दृष्टि से कविता में नक्काशी की प्रवृत्ति प्रधान है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास ग्रंथ में प्रवृत्ति को ही

नामकरण का उत्कृष्ट आधार माना है। डॉ. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने थोड़ा और विस्तार से विचार करते हुए कवि, कृति एवं प्रवृत्ति तीनों को ही नामकरण का आधार माना है। इसमें कृति की अधिकता प्रवृत्ति की प्रधानता को ही सूचित करती है। अतः दोनों में कोई मौलिक अन्तर नहीं है। कवि के नाम पर नामकरण तब तक नहीं हो सकता जब तक दूसरा विकल्प न हो या कवि का नाम सर्वमान्य न हो। अतः कुल मिलाकर प्रवृत्ति को आधार मानना ही तर्क संगत प्रतीत होता है।

मिश्र बंधुओं ने इस काल को 'अलंकृत काल' कहा है। ऐसा कहकर उन्होने शायद इस काल के काव्य में अलंकारों के प्रचुर प्रयोग की ओर इशारा किया है। परन्तु अलंकार शब्द की अर्थव्याप्ति पर विचारने से यह स्पष्ट होता है केशवदास ने अपनी 'कविप्रिया' में अलंकार शब्द का प्रयोग वर्ण्यविषय एवं वर्णन शैली दोनों ही अर्थों में किया है। इस प्रकार यदि अलंकार शब्द के व्यापक अर्थ को ग्रहण किया जाए तो इस काल को अलंकार काल कहा जा सकता है।

जिस प्रकार अलंकार का अर्थ व्यापक हो सकता है इसी प्रकार बकौल भिखारीदास 'रीति' का अर्थ भी व्यापक है –

काव्य की रीति सीखी सुकविन सौ
देखी सुनी बहु लोक की बातें

शुक्ल जी ने 'रीति' शब्द को इसी व्यापक अर्थ में ग्रहण करते हुए इस काल को रीतिकाल नाम दिया है।

डॉ. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इस-काल को रीतिकाल की जगह श्रृंगार काल कहने की जोरदार वकालत की है। उनका कहना है कि 'रीति' शब्द काव्य के बाहरी अर्थ का बोधक है। इस काल के कवियों का साध्य श्रृंगार है। रीति में उपविभाग की संकीर्णता है इसलिए यदि इस काल को श्रृंगारकाल कहा जाए तो शुक्लजी द्वारा फुटकल खाते में रखे गए कवि अपने-आप इस काल की मुख्य धारा में चले आते हैं।

यदि 'रीति' का अर्थ हम भिखारी दास से सहमत होकर काव्यरीति मान लें तो यह सम्पूर्ण काव्य का बोधक हो जाता है। इसके साथ ही श्रृंगार काल नाम देने से इस काल के श्रृंगारेतर रसों के कवियों के लिए नया फुटकल खाता खोलना होगा। सच तो यह है कि इस काल के तमाम कवियों में अपनी कविता को सजाने सवाँरने आदि की प्रवृत्ति प्रधान है। कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि वर्ण्य विषय, वर्णन शैली, भाव, भाषा एवं कविता में नक्काशी की प्रवृत्ति की प्रधानता के कारण इस काल को शुक्लजी द्वारा दिया गया रीतिकाल नाम ही अलंकृत काल या श्रृंगार काल की अपेक्षा ज्यादा उपयुक्त और समीचीन है।

BRAOU

4.7.2 'ब' श्रेणी का प्रश्नोत्तर (लगभग 125 शब्दों में)

प्रश्न :रीति किसे कहते हैं? हिन्दी में इसका प्रयोग किस रूप में हुआ?

उत्तर :संस्कृत काव्यशास्त्र में 'रीति' एक संप्रदाय है जिसके प्रवर्तक आचार्य वामन माने जाते हैं। उनके अनुसार 'रीति' का अर्थ विशिष्ट पद संरचना है। उन्होंने 'रीति' को काव्य की आत्मा मानने पर बल दिया है। हिन्दी में भक्तिकाल के बाद जब संस्कृत काव्यशास्त्र के आधार पर हिन्दी काव्यशास्त्र के प्रणयन की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई तो आचार्यों द्वारा संस्कृत के विभिन्न काव्यशास्त्रीय मतवादों के अनुशीलन के क्रम में रीति संप्रदाय का पता चला। आगे चलकर इन आचार्यों ने सैद्धांतिक समीक्षा के लिए 'रीति' संबन्धी संस्कृत काव्यशास्त्रीय चिंतन का उपयोग करना शुरू किया।

हिन्दी में 'रीति' शब्द संस्कृत काव्यशास्त्र का एक विशिष्ट काव्य संप्रदाय या काव्य के बाहरी अर्थ मात्र का बोधक न होकर संपूर्ण काव्य के अर्थ का बोधक है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हिन्दी में इस शब्द का कालांतर में अर्थ विस्तार हुआ है। भिखारी दास जब अपने काव्य निर्णय नामक ग्रंथ में लिखते है-

'काव्य की रीति सीखी सुकविन सौं'

तो वे 'रीति' शब्द का प्रयोग संपूर्ण काव्यरीति के अर्थ में ही करते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी 'रीति' शब्द के इसी व्यापक अर्थ को ग्रहण करते हुए उसका प्रयोग किया है। हिन्दी में उन तमाम कविताओं को रीतिकाव्य के नाम से जाना जाता है जिनमें मीनाकारी की प्रवृत्ति प्रधान है।

4.8 पठनीय पुस्तकें

हिन्दी साहित्य का अतीत (श्रृंगार काल)	- डॉ. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
रीतिकाव्य की भूमिका	- डॉ. नगेन्द्र
रीतिकाल प्रकृति एवं स्वरूप	- डॉ. सत्यप्रकाश मिश्र
हिन्दी साहित्य का इतिहास	- (सम्पादक) डॉ. नगेन्द्र

BRAOU

इकाई–5: रीतिकालः काव्यधाराएँ, काव्य–रूप और भाषा

5.0 विषय प्रवेश
5.1 पाठ का उद्देश्य
5.2 पाठ–परिचय
5.3 मूल पाठ
 5.3.1 भूमिका
 5.3.2 रीतिकाल
 5.3.3 रीतिबद्ध काव्यधारा
 5.3.4 रीतिसिद्ध काव्यधारा
 5.3.5 रीतिमुक्त काव्यधारा
 5.3.6 वीर काव्य
 5.3.7 भक्ति काव्य
 5.3.8 नीतिकाव्य
 5.3.9 काव्य रूप
 5.3.10 काव्यभाषा और छन्द
 5.3.11 मूल्यांकन
5.4 पाठ का सारांश
5.5 पारिभाषिक शब्द–अर्थ
5.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
 5.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न
 5.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न
5.7 नमूने के प्रश्नोत्तर
 5.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर
 5.7.2 'ब' श्रेणी के प्रश्नोतेतर
5.8 पठनीय पुस्तकें

BRAOU

5.0 विषय प्रवेश

पिछले पाठ में हिन्दी साहित्य में रीतिकाल के सामाजिक–सौंस्कृतिक संदर्भ पर विचार करने के बाद इस पाठ में हम रीतिकालीन काव्य की प्रमुख धाराओं, काव्य–रूपों, छन्द और भाषा के विविध प्रयोगों से परिचित होंगे।

5.1 पाठ का उद्देश्य

इस पाठ में रीतिकाल में रचित विभिन्न काव्यधाराओं, काव्य–रूपों, भाषा और शैली का विवेचन किया जाएगा, जिससे आप –

(1) रीतिकालीन साहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियों का परिचय प्राप्तकर सकेंगे;

(2) इस काव्य की वस्तु के अनुरूप काव्य–रूप, छन्द, अलंकार आदि का प्रयोग समझ सकेंगे;

(3) यह समझ सकेंगे कि क्यों रीतिकालीन साहित्य को कलात्मक उत्कर्ष का काल कहाजाता है; तथा–

(4) आप यह भी समझ सकेंगे कि भक्ति काल और रीतिकाल को अलग करने वाली विशेषताएँ कौन सी हैं।

5.2 पाठ-परिचय

रीतिकालीन सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ और उस काल के साहित्य पर पड़े प्रभाव को जानने के बाद यह आवश्यक हो जाता है कि हम रीतिकालीन काव्यधाराओं, उनकी प्रमुख विशेषताओं से परिचित होलें। चूँकि काव्य की वस्तु के अनुरूप ही उसकी भाषा-शैली होती है, इसलिए रीतिकालीन काव्य में प्रयुक्त काव्य-रूप, छन्द, अलंकार और भाषा की विशेषताओं की चर्चा आवश्यक है।

रीतिकालीन काव्य को लेकर साहित्य के आलोचकों में कुछ भ्रम फैले हुए है। कुछ के मतानुसार यह काव्य जीवन और समाज के लिए अनुपयोगी है और अनैतिक है। लेकिन कुछ के मतानुसार इस काव्य का कलात्मक उत्कर्ष इतना अधिक है कि इसे केवल कला-काल के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए। इन दोनों ही अतिवादी दृष्टिकोणों से बचाकर निष्पक्ष आलोचकीय दृष्टि से इस युग के साहित्य का संक्षिप्त अनुशीलन इस पाठ में प्रस्तुत किया गया है। रीतिकाव्य के अतिरिक्त रीतिमुक्त स्वच्छन्द काव्य, भक्ति, नीति और वीरता परक काव्य की रचना इस युग में हुई। इससे यह पता चलता है कि रीतिकाल में केवल श्रृंगार की नहीं, बल्कि अन्य प्रवृत्तियों की भी अभिव्यक्ति की गई। इस युग में कविता की बाहरी साजसज्जा पर बहुत बल दिया गया। इस लिए अलंकारों के विविध प्रयोग मिलते हैं। मुक्तक काव्यरूप का इतने बड़े पैमाने पर और इतने विविध ढंग से उपयोग हिन्दी साहित्य में पहली बार किया गया। संक्षेप में कहा जा सकता है कि इस युग में कवि ने अपनी प्रतिभा को पूरे उत्कर्ष पर पहुँचाया और संस्कृत काव्यशास्त्र की समृद्ध परम्परा को हिन्दी में अवतरित किया।

5.3 मूल पाठ

5.3.1 भूमिका

रीतिकाल के सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ से गुजरने और साहित्य व कला पर पड़े उसके प्रभाव पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि लगभग दो सौ वर्षों की अवधि में रचे गए इस साहित्य का क्षेत्र बहुत व्यापक, बहु स्तरीय और विविध है। इसमें अनेक प्रवृत्तियाँ है, अनेक काव्यधाराएँ हैं, कईकाव्य-रूपों का प्रयोग हुआ है, छन्दो और अलंकारों का विविध प्रयोग है, यही नहीं, इस काल में गद्य रचनाएँ भी लिखी गई। इन विभिन्न प्रवृत्तियों को ध्यान में रखते हुए रीतिकालीन काव्य को पाँच प्रमुख धाराओं में बाँटा जा सकता हैं- रीतिकाव्य, रीतिमुक्त काव्य वीरकाव्य, भक्ति काव्य और रीति काव्य। इन काव्यधाराओं और इनके प्रमुख कवियों और रचनाओं का विवेचन इस प्रकार है:-

BRAOU

5.3.2 रीतिकाव्य

रीतिकालीन साहित्य में यूं तो अनेक प्रवृत्तियाँ मिलती हैं, लेकिन इनमें सर्वप्रमुख प्रवृत्ति है- रीति। इसी के आधार पर इस काल का नामकरण किया गया। 'रीति' शब्द के अर्थ पर पिछले पाठ में प्रकाश डाला जा चुका है। इस काल में संस्कृत काव्यशास्त्र से प्रेरणालेकर, और उसके अनुकरण पर विभिन्न काव्यांगों पर ग्रंथ रचे गए। सामान्य पाठक को संस्कृत काव्यशास्त्र की शिक्षा देना, आश्रयदाता राजा की रुचि के अनुसार प्रचीन काव्यशस्त्रीय परम्परा को उस समय प्रचलित लोक भाषा-ब्रजभाषा में लाना, पाण्डित्य और चमत्कार-प्रदर्शन, अलंकरण और कलात्मक अभिरुचि की संतुष्टि- आदि अनेक उद्देश्यों से ऐसे ग्रंथ लिखे जाते थे। इन ग्रंथों में काव्यांगों के लक्षण बताते हुए उनके उदाहरण-स्वरूप काव्य-रचना की गई इसलिए इन्हें लक्षण-ग्रंथ कहा जाताहै। रीतिकाव्य में भी दो प्रकार के कवि हुए। एक जिन्हें आचार्य कवि कहा गया या रीतिग्रंथकार या रीति-बद्ध कवि कहा गया- और दूसरे रीति सिद्ध कवि कहलाए। रीतिबद्ध कवियों का लक्ष्य काव्य-रचना नहीं था, बल्कि काव्यशास्त्रीय ग्रंथ लिखना था। इन ग्रंथों में विभिन्न काव्यागों का विवेचन करते हुए उनके उदाहरण देने के लिए उन्होंने काव्य-रचना की। इस प्रकार ये आचार्य पहले थे कवि बाद में। दूसरे प्रकार के कवियों ने स्वतंत्र काव्य रचना की,

लेकिन युगीन प्रभाव और काव्यशास्त्र के ज्ञान के कारण उनकी रचनाओं में विभिन्न काव्यांगो जैसे छन्द, अलंकार, ध्वनि, गुण, शब्दशक्तियों आदि का सहज, सुन्दर और विपूल प्रयोग हुआ है। पहले प्रकार के कवियों को रीतिबद्ध और दूसरे वर्ग के कवियों को रीतिसिद्ध कहा गया है। इन दोनों काव्यधाराओं का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है-

5.3.3 रीतिबद्ध काव्यधारा

अपनी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि "हिन्दी रीतिग्रंथों की अखण्ड परम्परा चिन्तामणि त्रिपाठी से चली, अतः रीतिकाल का आरंभ उन्हीं से मानना चाहिए। उन्होंने संवत 1700 के कुछ आगे पीछे 'काव्य विवेक', 'कवि कुल कल्पतरु' और 'काव्यप्रकाश' ये तीन ग्रंथ लिखकर काव्य के सबअंगो का पूरा निरूपण किया और पिंगल या छंदः शास्त्र पर भी एक पुस्तक लिखी। उसके उपरांत तो लक्षण ग्रंथों की भरमार सी होने लगी। कवियों ने कविता लिखने की यह एक प्रणाली ही बनाली कि पहले दोहे में अलंकार या रस का लक्षण लिखना फिर उसके उदाहरण के रूप में कवित्त या सवैया लिखना। हिन्दी साहित्य में यह एक अनुठा दृश्य खड़ा हुआ। संस्कृत साहित्य में कवि और आचार्य दो भिन्न भिन्न श्रेणियों के व्यक्ति रहे। हिन्दी काव्यक्षेत्र में यह भेद लुप्त सा हो गया।" यद्यपि चिन्तामणि त्रिपाटी से लगभग पचास वर्ष पूर्व केशवदास ने अपनी 'कविप्रिया' और 'रसिक प्रिया' जैसी रचनाओं से लक्षणग्रंथों की परम्परा का आरंभ कर दिया था, लेकिन कालक्रम की दृष्टिसे उनका स्थान भक्तिकाल में आता है। रीतिबद्ध कवियों में भी दो कोटियाँ पाई जाती हैं। पहली कोटि के कवियों को सर्वांग निरूपक कहा जा सकता है, अर्थात इन्होंने सभी प्रकार के काव्यांगों का लक्षण-निरूपण किया जैसे चिन्तामणि त्रिपाठी ने 'कविकुल कल्पतरु' में काव्य के दस अंगों का विवेचन किया, कुलपति मिश्र सूरति मिश्र, श्रीपति, देव आदि आचार्य कवि भी इसी कोटि में आते हैं। दूसरी कोटि के कवि विशिष्टांग-निरूपक कहे जा सकते हैं क्योंकि इन्होंने किसी विशिष्ट काव्यांग को लेकर लिखा, जैसे पद्माकर का 'पद्माभरण' केवल अलंकारों का विवेचन प्रस्तुत करता है, बेनीप्रवीन के 'नवरस तरंग' में केवल रस-विवेचन हैं और सुखदेव मिश्र के 'वृत्तविचार' में छन्दों का अध्ययन किया गया है। यद्यपि रीति-निरूपण ही इन कवियों का उद्देश्य था, तथापि इन रीतिबद्ध कवियों की रचनाओं में काव्य-प्रतिभा के भी दर्शन होते हैं। चिन्तामणि त्रिपाठी, देव लक्षण-निरूपण करते हुए सरस, हृदयग्राही कविता के उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। इन कवियों की मुख्य विषय वस्तु है- श्रृंगार। लेकिन यह श्रृंगार काव्यशास्त्र के बनेबनाए नियमों में बँधकर आया है, इसमें हृदय की सहज प्रेमभावना नहीं है। श्रृंगार के नाम पर काम-भावना के अश्लील चित्र भी इसमें प्रस्तुत किए गए हैं। श्रृंगार रस के विभिन्न तत्वों- नायक-नायिका, उनके विभिन्न भेद और उपभेद, उनके हावभाव, विरह-मिलन की दशाओं का वर्णन किया गया है। नारी के प्रति केवल भोगवादी दृष्टिकोण होने के कारण नायिका भेद इन कवियों का प्रिय विषय रहा। नखशिख-वर्णन एक रूढ़ि बन गई। प्रकृति भी विरह या मिलन की दशाओं में उद्दीपक बनकर ही चित्रित हुई। अनेक नारियों के बीच रमण करने वाले नायक के रूप में बहुपत्नी-प्रथा और स्वच्छन्द प्रेम का समर्थन किया गया है। इस धारा के कवियों में केवल भूषण और अमीरदास जैसे अपवाद मिलते हैं जिन्होने अपने रीतिग्रंथों में श्रृंगार रस को छोड़कर वीररस और भक्ति के ही उदाहरण दिए।

BRAOU

स्वपरीक्षणार्थ प्रश्न :-

(1) 'रीतिकाल' नामकरण किस आधार पर किया गया?

(2) रीतिकालीन काव्य की सर्वप्रमुख प्रवृत्ति कौन-सी है?

(3) रीतिकाव्य की प्रेरणाकहाँ से ली गई?

(4) रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध कवियों में क्या अंतर है?

(5) रीतिबद्ध कवियों की रचना का लक्ष्य क्या था?

(6) चिन्तामणि त्रिपाठी से रीतिकाल का आरंभ क्यों माना गया?

(7) सर्वांग निरूपक और विशिष्टांग निरूपक कवियों का भेद स्पष्ट कीजिए।

(8) रीतिग्रंथों में निरूपित प्रमुख रस का परिचय दीजिए।

5.3.4 रीतिसिद्ध काव्यधारा

इस धारा में आनेवाले कवियों का उद्देश्य काव्यशास्त्र की शिक्षा देना कभी नहीं रहा, लेकिन अपने आश्रयदाता की रुचि के अनुसार इन्होंने जो रचना की, उसमें युग के प्रभाव के कारण काव्यांगों का सुन्दर, सहज निर्वहण हुआ है। इस काव्यधारा के सर्वश्रेष्ठ कवि हुए बिहारी। इनकी एकमात्र रचना है 'सतसई'। यह मुक्तक काव्य का श्रेष्ठतम उदाहरण है। 'बिहारी-सतसई' में प्रेम, विरह-व्यथा, सौन्दर्य, भक्ति, नीति और लौकिक जीवन के अन्य प्रसंगों को लेकर अत्यंत प्रभावशाली दोहेहैं। इन दोहोंमें अलंकार, रस, भाव, नायिकाभेद, ध्वनि, वक्रोक्ति, गुण आदि काव्यांगों का मार्मिक प्रयोग किया गया है। बिहारी अनेक भाषाओं के पंडित थे और शाहजहाँ के कृपापात्र बनकर उन्होंने फारसी भाषा का भी गहरा अध्ययन किया था। बिहारी को अन्य राजाओं से भी, आर्थिक सहायता मिलती थी। बिहारी के ही जीवन का यह प्रसंग बताया जाताहै जिसमें उन्होंने सिद्ध किया कि कविता केवल धन या यश की प्राप्ति के लिए नहीं की जाती, बल्कि सही पथ-प्रदर्शन भी उसका कार्य है। जयपुर के महाराजा जयसिंह जब अपनी नव विवाहिता पत्नी के साथ भोगविलास में डूबकर राजकाज से विरक्त हो गए तो बिहारी ने एक दोहा लिखकर उनकेपास भेजा-

नहीं पराग, नही मधुरमधु, नही विकास इन्ही काल।
अली-कली ही सों बँध्यो, आगे कौन हवाल।।

इससे राजा को अपने कर्तव्य का ध्यान आगया बिहारी ने उनका आश्रय ग्रहण किया और काव्य-रचना करने लगे। कहा जाता है कि इन्हीं राजा से बिहारी को प्रत्येक दोहे पर एक स्वर्णमुद्रा मिला करती थी। इन्हीं दोहों का संग्रह 'सतसई' में किया गया। 'सतसई' में भावना और कलात्मकता का सुन्दर संयोग मिलता है। उदाहरण के लिए यह दोहा देखिए -

तन्त्रीनाद कवित्त रस, सरस राग रति रंग।
अनबूड़े बूड़े तिरे, जे बूड़े सब अंग।।

अर्थात संगीत, काव्य और प्रेम- इन तीनों के रस में जो सच्चे मन से पूरी तरह डूबता है वह तो पार लगता है, लेकिन आधे ज्ञान और आधे मन से डूबने वाला व्यक्ति डूब ही जाता है। इस विरोधाभास से बिहारी ने बताना चाहा है कि येतीनों मनुष्य से पूर्ण समर्पण, अहंकार के त्याग और पूरी समझदारी की माँग करते हैं। 'सतसई' के दोहों में इसी प्रकार की उत्कृष्ट कला और संवेदना का परिचय मिलता है। इसी लिए तो कहा गया है कि-

सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर।
देखन में छोटे लगै, घाव करे गंभीर।।

BRAOU

इस काव्यधारा के अन्य उल्लेखनीय कवि हैं रसनिधि, नवाब, सेनापति आदि।

स्वपीरक्षणार्थ प्रश्न :-

(1) रीतिसिद्ध कवियों का उद्देश्य क्या था? ये किस प्रकार से रीतिबद्ध कवियों से अलग हैं?
(2) 'बिहारी सतसई' की प्रमुख विशेषता क्या है?
(3) बिहारी के जीवन के किस प्रसंग से सिद्ध होता है कि उनका उद्देश केवल धन-प्रप्ति नहीं था?
(4) बिहारी का कोई एक दोहा बतलाइए जिसमें भाव और कला का सुन्दर समन्वय हुआ हो।

5.3.5 रीतिमुक्त काव्य धारा

रीति-निरूपण की परम्परा से हटकर और दरबारी संस्कृति से यथा संभव दूर रहकर जो कविता लिखी गई उसे 'रीतिमुक्त' या स्वच्छन्द काव्य कहा गया। इसे 'स्वच्छन्द' कहने का कारण यही है कि इन कवियों ने अपने हृदय की सच्ची अनुभूति से कविता लिखी, किसी की आज्ञा से या किसी

को प्रसन्न करने के लिए नहीं। धन-प्राप्ति इस कविता का उद्देश्य नहीं था। इस कविता में भी श्रृंगार प्रमुख भाव है। लेकिन रीतिबद्ध कवियों के समान काव्य शास्त्रीय रूढ़ियों में बँधकर नहीं, बल्कि हृदय के सच्चे आवेग के रूप में व्यक्त हुआ है। इसलिए इन कवियों के श्रृंगार वर्णन में विप्रलंभ श्रृंगार या विरह भावना की अत्यंत मार्मिक अभिव्यक्ति मिलती है। उदाहरण के लिए इस धारा के श्रेष्ठ कवि घनानन्द को 'प्रेम का वीर' का कवि कहा गया है और इनके बारे में श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'' का कथन है कि "किराये के रोनेवालों की भीड़ में ये सच्चे आंसू बहाने वाले कवि" हैं। काव्यशास्त्र की शिक्षा देना घनानन्द का उद्देश्य कभी नहीं रहा, लेकिन काव्यकला के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण इनकी कविता में मिलते हैं। घनानन्द को 'लक्षणा का कवि' कहा गया। तीन शब्द शक्तियों- अभिधा, लक्षणा और व्यंजना- में से लक्षणा का ऐसा विलक्षण प्रयोग हिन्दी में घनानन्द से ही पहली बार किया। घनानन्द के काव्य की प्रमुख वस्तु है- सौन्दर्य और प्रेम। सौन्दर्य 'सुजान' का है, एक सुजान अर्थात घनान्द की प्रेमिका जिसके विरह की पीड़ा उनकी कविता की प्रेरणा है, और दूसरे सुजान अर्थात सुज्ञान अर्थात कृष्ण या परमेश्वर। इस प्रकार कवि ने अपनी प्रेमानुभूति को लौकिक स्तर से उठा कर अलौकिक बनाकर प्रस्तुत किया। इस धारा के अन्य कवियों जैसे आलम, ठाकुर, बोधा आदि के लिए भी चरम मूल्य है- प्रेम। यह प्रेम एकनिष्ठ है। इससे बाहरी चमक-दमक, शारीरिक सौन्दर्य और ऐन्द्रिक वासना के लिए कोई स्थान नहीं। नायक-नायिका के रूप-सौन्दर्य का वर्णन इसमें है लेकिन यह वर्णन ऐन्द्रिक लालसा नहीं बल्कि पवित्र एकनिष्ठ प्रेम भावना ही जगाता है। यह प्रेम प्राणों का मूल्य देकर ही निभाया जाता है। बोधा का कहना है कि-

"यह प्रेम को पंथ करला महा, तरवारि की धारवैधावनौ है।"

अर्थात प्रेम का मार्ग तलवार की धारपर चलने के समान विकट है। प्रेम की यह अनुभूति घनानन्द के निम्न लिखित सवैये में देखी जा सकती है।

मन जैसे कधू तुम्हें चाहत है, सो बखनियै कैसे सुजान ही हैं।
इन प्राननि एक सदा गति रावटे, वावरे लौ लगिये नित लौं।।
बुधि औ सुधि नैननि बैननि में, करिबास निरंतर अंतर गौ।
उघरौ जग छाय रहे घनानंद, चायकिलौ तकिये अब तौ।।

अर्थात इसमें प्रियतम को संबोधित करके कहा गया है कि मेरा मन जैसे तुम्हें चाहता है इसे कोई सुजान ही समझ सकता है। मेरे प्राणों में एक तुम्हारी ही गति है, मुझ बाबरे को एक तुम्हारी ही लगन लगी है। तुम मेरी बुद्धि, स्मृति, नैनों और वाणी में निरंतर बसे हुए हो, मेरे हृदय में तुम बसे हो, तुम इस संसार में घनानन्द (आनन्द रूपी बादल) की तरह छाये हुए हो और मैं चातक की तरह तुम्हें ताकता हूँ। ऐसे प्रेम का विषय कोई सांसारिक व्यक्ति भी हो सकता है और परमेश्वर भी। इनकी कविता के इसी गुण को देखकर आचार्य राम चन्द्र शुक्ल इनके बारे में ठीक ही लिखते हैं- "प्रेममार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक तथा जबाँदानी का ऐसा दावा रखने वाला ब्रजभाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ।"

इस धारा के प्रमुख कवि हैं घनानन्द, बोधा, ठाकुर, आलम, लालकवि।

स्वपरीक्षणार्थ प्रश्न :-

(1) 'रीति मुक्त' शीर्षक से क्या आशय है?
(2) रीति काव्य' और रीति मुक्त काव्य में क्या अंतर है?
(3) घनानन्द को 'प्रेम की पीर' का कवि क्यों कहा गया है?
(4) 'सुजान' शब्द का कितने अर्थों में घनानन्द ने प्रयोग किया है?
(5) रीतिमुक्त काव्य में रूप-वर्णन की विशेषता क्या है?

5.3.6 वीर काव्य

रीतिकालीन काव्य की तीसरी प्रमुख प्रकृति है- वीर रसात्मकता की। वैसे भी श्रृंगार और वीर रस सहचर रहे हैं। हिन्दी की आदिकालीन कविता में भी वीर रस और श्रृंगार रस का समन्वय मिलता है। रीतिकालीन वीर काव्य की एक अपनी विशेषता है जो इसे आदिकाल से अलग करती है। वह यह कि जहाँ आदिकालीन कवि चारण या भाट हुआ करते थे और अपने आश्रयदाता राजा की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशस्ति में ही अपने कर्तव्य की इति समझते थे, वहाँ रीति कालीन कवि ने अपने आश्रयदाता राजा और उसके राज्य की प्रशंसा के साथ राष्ट्रीय भावना का भी ध्यान रखा है। इन कवियों में सबसे प्रमुख है- भूषण। भूषण ने महाराज शिवाजी की प्रशंसा में 'शिवाबावनी' और छत्रसाल की प्रशस्ति में 'छत्रसाल दशक' की रचना की। इन दोनों काव्यों में रीतिरहित वीर रसात्मक काव्य का सच्चा उत्कर्ष मिलता है। भूषण राष्ट्रीय भावनाओं के गायक हैं। वे देश की संस्कृति का गान करते हैं, विदेशी आक्रमणों और अत्याचारों से पीड़ित जनता के दुख-दर्द को स्वर देते हैं। उनकी कविता ओज, स्वाभिमान और साहस का संदेश है। भूषण ने जो रीति ग्रंथ लिखा 'शिवराज भूषण' उसमें भी अलंकारों का लक्षण-निरूपण करते हुए उन्होंने वीर रसात्मक काव्य ही रचा है।

रीतिकालीन वीर काव्य के रचयिताओं में भूषण के अतिरिक्त अन्य प्रमुख कवि हैं पद्माकर भट्ट, सूदन, लालकवि, बांलीदास आदि। पद्माकर भट्ट की चर्चा रीतिकाव्य धारा में की जा चुकी है। इन्होंने अपने आश्रयदाता की प्रशंसा में 'हिम्मत बहादुर विरदावली' लिखी। सूदन कवि का 'सुजान चरित', 'बांलीदास का 'सूर छत्तीसी' और 'वीर विनोद' प्रसिद्ध रचनाएँ है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि रीतिकालीन वीर कवियों ने स्वराष्ट्र और स्वधर्म की रक्षा करने वाले वीर पुरुषों की कर्तव्य-भावना को प्रेरणा देने के लिए ही वीर रसात्मक काव्य की रचना की। काव्य-कला की दृष्टि से भी ये उत्तम कवि कहे जा सकते हैं।

स्वपरीक्षणार्थ प्रश्न :-

(1) रीतिकालीन वीर काव्य आदिकालीन वीर काव्य से किन बातों में अलग दिखाई देता है?

(2) भूषण की रचनाओं की क्या विशेषता है?

5.3.7 भक्तिकाव्य

रीतिकालीन साहित्य में भक्तिकाव्य की धारा भी समानान्तर रूप से प्रवाहित होती रही। इस काल में निर्गुण और सगुण दोनों प्रकार का भक्तिकाव्य प्रचुर मात्रा में रचा गया। निर्गुण में संत काव्य या ज्ञानाश्रयी शाखा का जो समारंभ कबीर, दादू, रैदास आदि ने भक्तिकाल में किया था, वह रीतिकाल में भी अबाध ढंग से बढ़ती रही। इन निर्गुण ज्ञानमार्गी संत कवियों में यारी साहब, दरिया साहब, पलटू साहब, चरनदास, तुलसी साहब आदि प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त सिख गुरु तेज बहादूर और गुरु गोबिन्द सिंह की भी रचनायें मिलती है। दयाबाई और सहजोबाई जैसी संत कवयित्रियों इसी युग में हुई। सूफी प्रेम काव्य के अन्तर्गत कासिम शाह, नूर मुहम्मद, शेख निसार आदि प्रसिद्ध कवियों की रचनाएँ मिलती हैं। सगुण भक्ति के अंतर्गत रामकाव्य और कृष्णकाव्य रचा गया। इनमें रामकाव्य की विशेषता यह है कि युगीन प्रभाव के कारण राम भक्ति शाखा में भी रसिकता की भावना आ गई। अर्थात सीता राम की विविध लीलाओं का राधा कृष्ण की लीलाओं के समान श्रृंगार पूर्ण वर्णन किया जाने लगा। ऐसे कवियों में जानकी रसिक शरण, भगवन्तराय खीची, जनक राज किशोरी शरण आदि प्रमुख हैं। इससे भिन्न रामभक्ति का पारंपरिक रूप विश्वनाथ सिंह, नवलसिंह आदि के काव्य में मिलता है। सिख गुरु गोविन्दसिंह वैसे तो निर्गुण संप्रदाय के अन्तर्गत आते हैं, पर उन्होंने अपनी कृति 'गोविन्द रामायण' में राम की कथा बड़े ओजस्वी ढंग से लिखी है।

BRAOU

5.3.9 काव्य रूप

रीतिकाल में प्रमुखतः दो काव्य-रूपों का उपयोग किया गया प्रबन्ध काव्य और मुक्तक काव्य। इनके अतिरिक्त कुछ नाटकों की भी रचना इस युग में हुई मगर इनकी संख्या बहुत कम है। प्रबन्ध काव्यों की विषय वस्तु वीरता और भक्ति है। वीरतापरक प्रबंध काव्य हैं लालकवि रचित छत्र-पारकाश', श्रीधर रचित 'जगनामा' सूदन रचित 'सुजान चरित', ग्वाल कवि रचित 'हम्मीर हठ' और पद्माकर रचित 'हिम्मत-बहादुर विरुदावली'। भक्ति परक प्रबन्ध काव्यों में प्रमुख हैं चिन्तामणि रचित 'रामायण', कृष्ण चरित, गुरु गोविन्दसिंह रचित 'चण्डी चरित्र', सूरति मिश्र रचित 'राम चरित' आदि। यह युग प्रमुखतः मुक्तक काव्य के लिए जाना जाता है। संस्कृत काव्य की मुक्तक परम्परा का जैसा विकास इसकाल के हिन्दी साहित्य में हुआ, वैसा और कभी नहीं दिखाई पड़ता। इसके लिए कारण भी था। इस काल की प्रमुख प्रवृत्ति श्रृंगार-रस निरूपण और चमत्कार प्रदर्शक की रही, और इसके लिए मुक्तक ही सर्वाधिक अनुकूल काव्य रूप है। इसलिए चाहे रीति निरूपण वाले लक्षण-ग्रंथ हो, या रीतिबद्ध कवियों के श्रृंगार-प्रधान ग्रंथ हों, रीतिमुक्त कवियों की 'प्रेम का पीर' वाली रचनाएँ हो या वीर रसात्मक प्रशस्ति का हो, सभी ने मुक्तक ही का प्रयोग किया। यहा तककि भक्ति और नीतिपरक कवियों ने भी मुक्तक काव्य की ही रचना की। चिन्तामणी त्रिपाठी के रीति निरुपक सभी ग्रंथ मुक्तक काव्य में ही हैं। मतिराम, जसवंतसिंह, बिहारी पद्माकर आदि कवियों के ग्रंथ मुक्तक काव्य रूप ही में हैं। घनानन्द का 'बियोगबेलि' 'सुजानहित प्रबंध' आदि सभी रचनाएँ मुक्तक ही में हैं। भूषण ने सभी मुक्तक काव्य ही लिखे। वृन्द, गिरधार कविराज आदि की रचनाए भी मुक्तक काव्य ही के अन्तर्गत आते हैं।

इस काल में जिन नाटकों की रचना हुई, उनमें जसवंत सिंह का लिखा 'प्रबोध चन्द्रोदय', राम का लिखा 'हनुमान नाटक' मेवाजके 'शकुन्तला नाटक', सोमनाथ का 'माधव विनोद नाटक' आदि मुख्य है।

स्वपरीक्षणार्थ प्रश्न :-

(1) रीतिकाल में कितने काव्य रूप मिलते हैं?
(2) मुक्तक काव्य-रूप के अधिक प्रयोग का क्या कारण है?
(3) इसकाल के मुक्त काव्य के प्रमुख विषय कौन से हैं?

5.3.10 काव्यभाषा और छन्द

रीतिकालीन कवियों ने छन्द पर दो रूपों में ध्यान दिया। एक तो छन्दशास्त्र विषयक ग्रंथ लिखकर, जिनमें छन्दों के विभिन्न प्रकार उनके नियम आदि बतलाए। इनमें प्रमुख हैं मुरलीधर 'भूषण' का लिखा 'छन्दोहृदय प्रकाश', सुखदेव मिश्र का 'छन्दो विचार' और 'वृत्त विचार', मतिराम का लिखा 'छन्दसार संग्रह' आदि। छन्द का दूसरा उपयोग इन कवियों ने व्यवहारिक स्तर पर किया। अर्थात काव्य रचना के लिए विभिन्न छन्दों का उपयोग करके। इस काल में मुख्य रूप से कवित्त, सवैया, छप्पय और दोहा इन चारों छन्दों की विशेषता यह है कि प्रबन्ध काव्य से अधिक ये मुक्तक काव्य के अनुकूल पड़ते हैं। इसलिए इन चारों छन्दों का लोकप्रिय होना स्वाभविक है। उदाहरण के लिए सेनापति कवि की जो एकमात्र रचना उपलब्ध है वह 'कवित्त रत्नाकर' है। इन कवित्वों में सेनापति ने श्रृंगार और प्रकृति-सौन्दर्य के अनुपम चित्र प्रस्तुत किए हैं। घनानन्द और उनके साथी रीतिमुक्त कवियों ने सवैया और कवित्त छन्द में ही अपनी अनुभूति को प्रकट किया। दोहा छन्द को उत्कर्ष पर पहुँचाने का श्रेय बिहारी को प्राप्त है जिन्होंने अपनी 'सतसई' में श्रृंगार और नीति की अद्भुत व्यंजना दोहा छंद ही में की। दोहा नीति परक कवियों का भी प्रिय छन्द रहा है। इन्होंने कुंडलिया छंद का भी प्रयोग किया।

BRAOU

काव्यभाषा की दृष्टि से रीतिकालीन काव्य निश्चय ही 'कला काल' कहलाने योग्य है। ब्रजभाषा को माँज कर, सजा-सँवार कर प्रस्तुत करने का श्रेय इन्हीं कवियों को प्राप्त है। ब्रजभाषा के शब्द इन कवियों की कविता में ढलकर मणियों के समान उज्जवल और मूल्यवान हो उठे। सवैया और कवित्त छन्दों के अनुकूल शब्दों को तराश कर इन कवियों ने ब्रजभाषा में अपूर्व माधुर्य और सौन्दर्य भर दिया। इस काव्य भाषा की सबसे बड़ी विशेषता है इसमें विविध अलंकारों का प्रयोग। अनुप्रास जैसे शब्दालंकार का प्रयोग कर इन कवियों ने भाषा में संगीतात्मकता और नाद-सौन्दर्य के गुण भरे। यमक, श्लेष, उपमा, सन्देह, उत्प्रेक्षा आदि अनगिनत अलंकारों के उपयोग से भाषा को अधिक से अधिक अर्थवती बनाया गया। अलंकारों पर रीति निरूपक कवियों ने स्वतंत्र ग्रंथ लिखे और वहाँ उनका उदाहरण बताते हुए काव्य-रचना की। दूसरी ओर बिहारी, घनानन्द, जैसे भावुक कवियों की अभिव्यक्ति में अलंकार अपने आप बहते चले जाते हैं। इन कवियों की भाषा देखने से ऐसा लगता है जैसे शब्दों के द्वारा चित्र ही बना देना चाहते हैं। ये कवि अपने अपूर्व भावों को जैसे ज्यादा से ज्यादा मूर्त कर देना चाहते हैं। उदाहरण के लिए बिहारी का यह दोहा देखिए-

कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलतलजियात।
भरे भौन मेंकरते हैं, नैनन ही सों बात।

इस दोहे में कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक कहने और शारीरिक व्यापारों को चित्रित करने की चेष्टा की गई है। अर्थ यह है कि लोगों से भरे घर में नायक-नायिका हैं। नायक ने आँखों के संकेत से प्रणय-प्रस्ताव किया। नायिका ने मना कर दिया। उसकी इस भंगिमा पर नायक मोहित हो गया, पर नायिका बिगड़ गई। फिर दोनोंकी आँखें मिलीं तो नायक का प्रसन्न मोहित भाव देखकर नायिका लजा गई। इस प्रकार दोनों भरे भावन में आँखों ही से बात करते हैं।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि इस काल में ब्रज भाषा ही प्रमुख रूप से प्रयुक्त हुई, और ब्रजभाषा को अभिव्यंजना की दृष्टि से इन कवियों ने चरम सीमा पर पहुँचा दिया।

स्वपरीक्षणार्थ प्रश्न :-

(1) रीतिकाल में छन्द पर कितने रूपों में ध्यान दिया गया?
(2) इस काल में प्रचलित प्रमुख छन्द कौन से हैं?
(3) इस काल की प्रमुख भाषा कौन सी है?
(4) इस भाषा को सँवारने के लिए इन कवियों ने क्या किया?
(5) अलंकारों का उपयोग इस काल में किस तरह से हुआ?

BRAOU

5.3.11 मूल्यांकन

रीतिकालीन काव्य को लेकर आलोचकों के दो प्रकार के दृष्टिकोण हैं। पहले वर्ग के आलोचक इस काव्य को तुच्छ और निन्दापरक दृष्टि से देखते हैं। इनके अनुसार रीतिकालीन काव्य केवल आश्रय दाताओं को प्रसन्न करने, अपने पाण्डित्य का प्रदर्शन करने, और हृदय की अश्लीलवृत्तियों को जगाने के लिए लिखा गया है, अतः इनमें समाज को प्रगति देने या जन-कल्याण की कोई क्षमता नहीं है। दूसरे वर्ग के आलोचकों के अनुसार रीतिकाल कला के चरम उत्कर्ष का काल है, और इस कलात्मकता के कारण ही इसका महत्व है। वास्तव में ये दोनों ही प्रकार के दृष्टिकोण अतिवादी हैं। इन दोनों से हटकर निष्पक्ष ढंग से विचार करने पर रीतिकाल की निम्न लिखित विशेषताए सामने आती हैं -

(1) रीतिकालीन कवियों ने संस्कृत काव्यशास्त्रीय परम्परा को हिन्दी में सरस रूप में अवतरित किया। इससे हिन्दी काव्य का शास्त्रीय आधार बना।

रीतिकाल में मुख्यतः कृष्ण का चरित्र ही लोकप्रिय रहा। श्रृंगार रस के अन्तर्गत राधा-कृष्ण की लीलाओं का वर्णन इस काल के कवियों का प्रिय विषय रहा है। लेकिन इससे हटकर भक्तिभाव से कृष्ण काव्य की भी रचनाएँ की गई। इनमें गुमान मिश्र का 'कृष्ण चन्द्रिका', ब्रजवासीदास का 'ब्रजविलास', मंचित का 'कृष्णायन' आदि प्रबंध काव्य प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त रूपरसिक देव, नागरीदास, चाचा हितवृन्दावन दास, भगवत रसिक आदि ने मुक्तक काव्य में कृष्ण के चरित्र के विभिन्न पक्षों का वर्णन किया।

इस प्राकर रीतिकालीन भक्ति काव्य में पूर्ववर्ती भक्ति काव्य की सभी प्रवृत्तियों का विकास मिलता है। पिछले युग से इस युग का भक्तिकाव्य इस अर्थ में भिन्न है कि इसमें भक्ति सम्प्रदायों से बँधकर चली। दूसरे, सूफी और निर्गुण संत काव्य को छोड़कर सगुण भक्ति के राम और कृष्ण भक्ति में रसिकता, माधुर्य और श्रृंगार का बहुत अधिक प्रभाव दिखाई देता है। जहाँ भक्तिकाल में रचित भक्तिकाव्य हृदय की पवित्रता, उदारता और भावनाओं की ऊँचाई प्रदर्शित करता है, वहाँ रीतिकालीन भक्ति काव्य सांप्रदायिक सिद्धांतों से अधिक बँधा हुआ है और इस पर श्रृंगारिकता का प्रभाव जनसामान्य के लिए बहुत स्वास्थ्यप्रद नहीं सिद्ध हुआ।

5.3.8 नीतिकाव्य

इस काल की एक और प्रमुख प्रकृति है नीति काव्य की। वैसे तो इससे पूर्व भी हिन्दी साहित्य में नीति विषयक रचनाएँ मिलती हैं। कबीर, तलसी और रहीम की नीति विषयक रचनाएँ प्रसिद्ध हैं। रीतिकाल में इस प्रवृत्ति का समुचित विकास हुआ। इस युग के प्रसिद्ध नीतिकाव्य कवि हैं वृन्द, गिरधर कविराज, बैताल और दीनदयाल गिरि आदि। वृन्द ने 'वृन्द सतसई' के सात सौ दोहों में सरल और कवित्वपूर्ण भाषा में जीवन के छोटे-छोटे अनुभवों को सूक्तिबद्ध किया है। उदाहरण के लिए यह दोहा देखिए-

भले बुरे सब एक सम, जौलौं बोलत नाहिं।
जान परत हैं काग पिक, ऋतु बसंत के माहिं।।

अर्थात वाणी ही मनुष्य के चरित्र का परिचायक होती है। जबतक वाणी का प्रयोग नहीं मनुष्य सब एक ही जैसे लगते हैं,बोलने सेही उनकी भलाई बुराई की पहचान होती है। जैसे कि कौआ और कोयल वसंत ऋतु में एक जैसे रूपरंग के होकर भी अपनी बोली से पहचाने जाते हैं।

गिरधर की कुण्डलियाँ इस काल की प्रमुख रचना है। इसमें गिरधर कवि ने बहुत सूक्ष्मता से बताया है कि मनुष्य को अपने घर, बाहर, गाँव, राजदरबार और समाज के अन्य क्षेत्रों में कब कैसे व्यवहार करना चाहिए। इसमें व्यवहार कुशलता भी है और नैतिकमूल्य भी हैं। भाषा सरल है। गिरधर के अतिरिक्त दीनदयाल की भी कुण्डलियाँ प्रसिद्ध हैं। कुण्डलियाँ छन्द ही में इस काल के बैताल कवि ने व्यावहारिक नीति की शिक्षा दी है। रीतिकालीन नीतिकाव्य की विशेषता है कि पूर्ववर्ती भक्तिकालीन नीतिकाव्य से अलग इसमें जीवन में व्यवहार कुशलता औरनैतिक मूल्यों को ही विषय बनाया गया है। भक्तिकालीन नीतिकाव्य में भक्ति और नीतिका समन्वय था, लेकिन रीतिकालीन नीतिकाव्य में विशुद्ध नीति की बातें हैं। समाज-कल्याण,लोक व्यवहार और नैतिक मूल्यों की दृष्टि से यह उत्तर काव्य है।

स्वपरीक्षणार्थ प्रश्न :-

(1) रीतिकालीन भक्तिकाव्य और पूर्ववर्ती भक्तिकाव्य में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
(2) रीतिकालीन राम भक्तिकाव्य की विशेषता बतलाइए।
(3) रीतिकालीन भक्ति काव्य में निर्गुण शाखा का विकास किस तरह हुआ- बतलाइए।
(4) जनसाधारण पर प्रभाव की दृष्टि से रीतिकालीन भक्तिकाव्य पर विचार कीजिए।
(5) रीतिकालीन नीतिकाव्य पूर्ववर्ती भक्तिकालीन नीति काव्य से किन बातों में अलग है?

(2) संस्कृत काव्यशास्त्र में सर्वमान्य सिद्धान्त ध्वनि सिद्धान्त रहा है। रीतिकालीन कवियों ने हिन्दी काव्य में रस सिद्धान्त की प्रतिष्ठा की, और उसमें भी रसराज श्रृंगार की ऐसी धारा बहाई कि इस काल को 'श्रृंगार काल' ही कहा जाने लगा।

(3) रीतिकालीन साहित्य की इस अत्यधिक श्रृंगारप्रियता के पीछे निश्चय ही वह सामंती व्यवस्था थी जिसके अन्तर्गत ये कवि पल रहे थे। फिर भी इस काव्य में विशेषकर रीतिमुक्त काव्य में श्रृंगार के संयोग और वियोग पक्ष के कुछ बहुत ही मार्मिक चित्र अंकित हुएहैं। मनुष्य-हृदयके इस सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाव-प्रेम-को जीवन के छोटे-छोटे प्रसंगों और अनुभवों में ढालकर इन कवियों ने चित्रित किया।

(4) यह ठीक है कि नैतिक मूल्यों की दृष्टि से रीतिकालीन श्रृंगार-काव्यकी कटु आलोचना की गई है, लेकिन, यह देखा जाना चाहिए कि सभी कवियों ने ऐसा काव्य नहीं लिखा, रीतिमुक्त कवियों ने तो एकनिष्ठ और गहन प्रेम की प्रतिष्ठा की, दूसरे भक्ति, नीति और वीरतापरक काव्य भी इसमें रचा गया, इस कारण सम्पूर्ण काल को अनैतिक मानना ठीक नहीं है।

(5) रीतिकालीन काव्य में केवल दरबारी संस्कृति की अभिव्यक्ति हुई हो, ऐसी बात नहीं है। सामान्य जन-जीवन, प्रकृति और सौन्दर्य के चित्र भी इन कवियों ने अंकित किए। सेनापति का प्रकृति-वर्णन, बिहारी, पद्माकर, देव आदि कवियों द्वारा किए गए होली जैसे उत्सवों के वर्णन आदि इसके प्रमाण हैं। रीतिमुक्त कवियों की दृष्टि तो सामान्य जन की ओर थी ही। नीतिकाव्य में भी सामान्य जनजीवन के व्यवहार की बातें कही गई हैं।

(6) कलात्मकता की दृष्टि से निस्सन्देह इस युग का काव्य उच्चकोटि का है। इन कवियों ने ब्रज भाषा को साज-सँवार कर उसमें ओज, माधुर्य जैसे गुण भरे। अलंकारों का ऐसा बहुविध प्रयोग और किसी काल में नहीं किया गया। इन कवियों ने उस काल के फारसी काव्य-परम्परा से भी प्रभाव ग्रहण किया और इससे प्रभावोत्पादकता, चमत्कार, संक्षेप में अधिक से अधिक बात कहने की कला सीखी। संस्कृत काव्य शास्त्र और तत्कालीन फारसी काव्य-परम्परा का सुन्दर समन्वित प्रयोग इस काल की कविता में मिलता है।

BRAOU

इस प्रकार अपनी कुछ सीमाओं के बावजूद रीति काल हिन्दी साहित्य के इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण है। इसका महत्व इस दृष्टि से भी बढ़ जाता है कि इस काल की समाप्ति के साथ ही हिन्दी साहित्य में मध्यकाल की समाप्ति के साथ ही हिन्दी साहित्य में मध्यकाल की समाप्ति हो जाती है। देश के राजनीतिक इतिहास में जिस प्रकार केन्द्रीय मुगल शासन के अन्त के साथ ही एक नए युग- ब्रिटिश साम्राज्य की विजय और भारत की दासता का युग शुरू होता है और उसके बाद स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए देश की छटपटाहट शुरू होती है, इसी प्रकार, साहित्य के क्षेत्र में मध्ययुगीन प्रवृत्तियों का अंत होता है, और आधुनिक काल के आरंभ के साथ सामाजिक-सांस्कृतिक नवजागरण का आरंभ होता है।

स्वपरीक्षणार्थ प्रश्न :-

(1) रीतिकाल को लेकर आलोचकों का क्या दृष्टिकोण है?
(2) इन कवियों ने संस्कृत काव्यशास्त्र की परंपरा को किस तरह आगे बढ़ाया?
(3) इस काल की कविता को अनैतिक कहना कहाँ तक उचित है?
(4) कलात्मकता की दृष्टि से इस काल की कविता की क्या विशेषता है?

5.4 पाठ का सारांश

रीतिकालीन साहित्य की अनेक प्रवृत्तियाँ है, लेकिन इनमें सर्व प्रमुख प्रवृत्ति है- रीति की। इसी के आधार पर इस काल का नामकरण हुआ रीतिकालीन काव्य को प्रवृत्ति की दृष्टि से पाँच प्रमुख धाराओं में बाँटा जा सकता है- रीतिकाव्य, रीतिमुक्त काव्य, वीरकाव्य, भक्तिकाव्य और नीतिकाव्य। रीतिकाव्य के अन्तर्गत वे कवि आते हैं जिन्होंने संस्कृत काव्यशास्त्रीय ग्रंथों के अनुकरण पर हिन्दी में रस, छन्द अलंकार, गुण, शब्दशक्ति का विवेचन करते हुए उनके उदाहरण स्वरूप काव्य रचना करते हुए ग्रंथ लिखे। इन्हें लक्षण ग्रंथ कहा जाता है। इस प्रवृत्ति से मुक्त रहकर अपने हृदय की सच्ची अनुभूति से जिन्होंने काव्य रचना की वे रीतिमुक्त कवि कहलाए। दोनों ही धाराओं में श्रृंगार प्रमुख भाव है किन्तु पहले में जहाँ श्रृंगार काव्य शास्त्रीय रूढ़ियों में बाँधकर आया है, वहाँ दूसरे में वह सच्ची अनुभूति के रूप मुख्यतः विहर-कथा के रूप में व्यक्त हुआ है। वीरकाव्य में वीररसात्मक रचनाएँ हैं, इनमें भी आश्रय दाता की प्रशस्ति के साथ-साथ राष्ट्रीय चेतना मिलती है। भक्तिकाव्य में सगुण, निर्गुण सभी प्रकार की रचनाएँ की गईं। नीतिकाव्य में विशेष उत्कर्ष दिखाई देता है, जीवन की सरल व्यावहारिक बातों और नैतिक मूल्यों का उपदेश इसमें दिया गया है।

रीतिकाल में मुख्यतः दो प्रकार के काव्यरूप मिलते है प्रबंध और मुक्तक, मगर मुक्तक काव्य ही का चरम विकास इसमें दिखाई देता है। इस काव्य में ऐसे छन्दों का अधिक प्रयोग हुआ जो मुक्तक काव्य के अनुकूल पड़ते हैं जैसे दोहा, कवित, सवैया, छप्पय और कुण्डलिया। भाषा का चरम उत्कर्ष इस काव्य में दिखाई देता है। ब्रज भाषा को सजा-सँवार कर, उसे माधुर्य और आदि गुणों से युक्त कर काव्य भाषा के रूप में चरम बिन्दु को पहुँचाने का श्रेय इन कवियों को प्राप्त है। इस युग को इसलिए 'कला काल' भी कहा गया है।

रीतिकालीन काव्य पर अनैतिकता, कोरी कलात्मकता और समाज-कल्याण से रहित होने का आरोप लगाया जाता है। लेकिन यह ठीक नहीं है। रीतिकाल में लिखी गई कविता के कुछ अंश में ही चमत्कार वृत्ति, पाण्डित्य-प्रदर्शन और अश्लीलता मिलती है। रीतिमुक्त भक्ति, वीर और नीतिपरक कविता में तो लोक जीवन के मार्मिक चित्र, राष्ट्रीय भावनाओं की अभिव्यक्ति, मानवीय अनुभतियों का अंकन और नैतिक मूल्य मिलते ही हैं। रीतिकालीन काव्य का इसी समग्र दृष्टि से मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

BRAOU

5.5 पारिभाषिक शब्द-अर्थ

काव्य-रूप	=	प्रकार, विधा, भेद। काव्य के मुख्यतः दो रूप माने जाते है प्रबन्ध और मुक्तक।
ध्वनि	=	व्यंग्यार्थ। काव्य का गहरा अर्थ जिसे व्यंजन-शब्द-शक्ति से ही प्रकट किया जा सकता है।
शब्द-शक्ति	=	शब्द में छिपे अर्थ को प्रकट करने की शक्ति। शब्द-शक्तियाँ तीन हैं- अभिधा, लक्षणा और व्यंजना।
अभिधा	=	शब्द के मुख्य अर्थ का बोध कराने वाली शक्ति।
लक्षणा	=	शब्द के मुख्य अर्थ के बोधित होने पर उससे सम्बन्ध रखने वाले अन्य अर्थ का बोधकराने वाली शक्ति।
व्यंजना	=	शब्द में छिपे अभिधार्थ और लक्ष्यार्थ को छोड़कर उसके मूल में छिपे अर्थ का बोध कराने वाली शक्ति।
अतिशयोक्तिपूर्ण	=	बहुत बढ़ा चढ़ाकर। अतिशयोक्ति एक अलंकार भी है जिसमें किसी वस्तु या व्यापार का बहुत बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन किया जाता है।

5.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न

निम्न लिखित प्रश्नों के लगभग 250 शब्दों में उत्तर लिखिएः

1. रीतिकाल में 'रीतिबद्ध काव्य' की रचना का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए इसकी विशेषताएँ बतलाइए।
2. रीतिमुक्त काव्यधारा से क्या तात्पर्य है, इसकी प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
3. रीतिकालीन भक्ति काव्य पूर्ववर्ती भक्तिकाव्यों से किस तरह अलग है? इसकी विभिन्न शाखाओं का परिचय दीजिए।
4. क्या रीतिकाल केवल 'कलाकाल' है? रीतिकाल की प्रमुख विशेषताओं के संदर्भ में इस प्रश्न का उत्तर दीजिए।

5.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न

निम्न लिखित प्रश्नों के लगभग 125 शब्दों में उत्तर लिखिएः

1. रीतिसिद्ध काव्य की क्या विशेषता है? यह किस तरह रीतिबद्ध काव्य से अलग है?
2. रीतिकालीन वीर काव्य किन बातों में आदिकालीनवीरकाव्य से आगे दिखाई देता है?
3. रीतिकालीननीतिकाव्य पर प्रकाश डालिए?
4. "किराये के रोने वालों की भीड़ में सच्चे आँसू बहाने वाला कवि" से क्या तात्पर्य है? स्पष्ट कीजिए।

5.7 नमूने के प्रश्नोत्तर

5.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर

निम्न लिखित प्रश्न का उत्तर लगभग 250 शब्दों में लिखिएः–

प्रश्न :रीतिकाल में 'रीतिबद्ध' काव्य की रचना का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए इसकी विशेषताएँ बतलाइए।
उत्तर :रीतिकालीन काव्य कीमुख्य प्रकृति है रीति। इसका अर्थ है प्रणाली या पद्धति। संस्कृत काव्यशास्त्र में चर्चित विभिन्न काव्यांगों जैसे नायिका भेद, वक्रोक्ति, ध्वनि, रस, अलंकार, छन्द आदि की व्याख्या करते हुए और उदाहरण देते हुएजो ग्रंथ लिखे गए उन्हें लक्षण-ग्रंथ या रीति-ग्रंथ कहा जाता है और इन कवियों को आचार्य कवि या रीतिबद्ध कवि कहा जाता है। इन कवियों का उद्देश्य था संस्कृत काव्य शास्त्र के विभिन्न तत्वों की शिक्षा देना, व्याख्या करना और उस समय प्रचलित लोक भाषा– ब्रज भाषा में संस्कृत काव्यशास्त्र की महान परम्पराओं को उतारना। सर्वप्रथम कवि केशवदास ने 'कवि प्रिया' और 'रसिक प्रिया' की रचना कर इस परम्परा का प्रवर्तन किया। केशवदास का समय भक्तिकाल है, उनके लगभग पचास वर्ष बाद हिन्दी में रीतिग्रंथ-लेखन की एक अखण्ड परम्परा चल पड़ी। शुक्ल जी ने चिन्तामणि त्रिपाठी को रीतिकाव्य का प्रवर्तक माना है। इनके अतिरिक्त कृपाराम, कुलपति मिश्र, सूरति मिश्र, श्रीपति, देव, भिखारीदास, पद्माकर, भूषण आदि अनेक कवियों ने रीतिबद्ध काव्य को समृद्ध किया।

रीतिबद्ध काव्यधारा की प्रमुख विषय-वस्तु है श्रृंगार। रीतिकाल की दरबारी संस्कृति, कलात्मक रुचि और विलासी प्रवृत्तियों का स्पष्ट प्रभाव इस धारा के कवियों पर दिखाई देता है। श्रृंगार को रसराज मानकर उसके विभिन्न पक्षों का विस्तार से विवेचन किया गया, लेकिन काव्य-शास्त्र के नियमों में बंधने के कारण इनके श्रृंगार-वर्णन में सच्ची भावुकता और मार्मिकता कम दिखाई देती है। नारी

BRAOU

इनके लिए भोग-विलास का साधन-मात्र है। प्रकृति भी विरह-मिलन की स्थितियों में उद्दीपक बनकर ही आई है, स्वतंत्र रूप से कम। इस धारा में भूषण और अमीरदास जैसे कवि अपवाद-स्वरूप हुए हैं जिन्होंने अपने रीति-निरूपक ग्रंथों में वीर रस और भक्ति-भावना का ही चित्रण किया।

5.7.2 'ब' श्रेणी के प्रश्नोत्तर

निम्न लिखित प्रश्न का उत्तर लगभग 125 शब्दों में लिखिए-

प्रश्न :रीतिसिद्ध काव्य की क्या विशेषता है? यह किस तरह रीतिबद्ध काव्य से अलग है?
उत्तर :रीतिसिद्ध कवियों का उद्देश्य काव्यागों का लक्षण-निरूपण नहीं बल्कि स्वतंत्र काव्य-रचना था। फिर भी आश्रयदाता की रुचि, काव्यशास्त्र के ज्ञान, कलाप्रियता और युगीन प्रभाव के फलस्वरूप इनके काव्य में काव्यांगों का सुन्दर-सहज निरूपण हुआ है। ये मुख्यतः कवि थे, आचार्य नहीं। रीतिसिद्ध काव्य की भी प्रमुख विषयवस्तु श्रृंगार है, किन्तु इसके अधिक मार्मिक, विस्तृत और कलात्मक चित्र इस काव्य में मिलते हैं। इस काव्यधारा की सर्वश्रेष्ठ कृति है- 'बिहारी-सतसई' जिसमें बिहारी ने श्रृंगार, भक्ति, नीति और लोकजीवन के अनेक प्रसंगों का कलात्मक अंकन किया है। रसनिधि, नेवाज, सेनापति आदि इसी धारा में आते हैं। इस काव्य की विशेषताएँ है- व्यापक विषयवस्तु, चमत्कार, बहुज्ञता, कलात्मकता, सरलता, भाव प्रवणता। जहाँ रीतिबद्ध कवियों ने काव्यास्वादन के मानदण्ड बनाये, वहाँ रीतिसिद्ध कवियों ने श्रेष्ठ काव्य की रचना की।

5.8 पठनीय पुस्तके

(1) हिन्दी साहित्य का इतिहास (रीतिकाल) : रामचन्द्र शुक्ल
(2) हिन्दी साहित्य का अतीत (श्रृंगारकाल) : विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
(3) हिन्दी साहित्य का इतिहास : सम्पादक- डॉ. नगेन्द्र
(4) रीतिकाव्य-प्रकृति एवं स्वरूप : डॉ. सत्य प्रकाश मिश्र

BRAOU

आंध्र प्रदेश सार्वत्रिक विश्वविद्यालय

स्नातक परीक्षा - तृतीय वर्ष - हिन्दी पाठ्यक्रम

हिन्दी साहित्य

विषयः हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास

पाठ्यक्रम

खण्ड-1: भाषा का उद्भव और विकास

इकाई-1 : भाषा और साहित्यः सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ

1. भाषा
2. भाषा, समाज और संस्कृति
3. भाषा के प्रकार
4. साहित्य, समाज और संस्कृति
5. साहित्य और साहित्येतिहास
6. मूल्यांकन

इकाई-2 : भारत की बहुभाषिक स्थिति

1. भारत का भौगोलिक स्वरूप
2. भारत की भौगोलिक स्थिति का भारतीय जनजीवन पर प्रभाव
3. भारत में विभिन्न भाषा परिवार और भाषाएँ
4. प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत में भाषाओं की स्थिति
5. आधुनिक भारत में भाषाओं की स्थिति
6. भारत की बहुभाषिक स्थिति और उसमें हिन्दी का स्थान
7. भारत के संविधान में भाषाओं की स्थिति
8. भाषा संघ एवं आधुनिक जीवन में बहुभाषा ज्ञान की आवश्यकता और हिन्दी की भूमिका

BRAOU

इकाई-3 : भारत की प्राचीन और आधुनिक भाषाएँ

1. भारतीय आर्यभाषा
2. प्राचीन आर्यभाषा
3. मध्यकालीन आर्यभाषा
4. आधुनिक आर्यभाषाएँ
5. आर्येतर जातियाँ और भाषाएँ
6. आर्य-अनार्य संपर्क

इकाई-4 : भौगोलिक हिन्दी क्षेत्र का ऐतिहासकि परिप्रेक्ष्य

1. भाषा और साहित्य के साथ भौगोलिक स्थिति और जीवन का संबंध
2. हिन्दी प्रदेश या मध्य देश का भौगोलिक स्वरूप
3. हिन्दी क्षेत्र के भौगोलिक-स्वरूप का हिन्दी भाषा और साहित्य के साथ संबंध
4. हिन्दी प्रदेशः ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य
5. हिन्दी भाषा और साहित्य पर इस्लामी धर्म और संस्कृति का प्रभाव
6. हिन्दी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी शासन, यूरोपीय चिंतन और संस्कृति का प्रभाव

इकाई-5 : हिन्दी की बोलियाँ और विभाषाएँ
1. हिन्दी क्षेत्र
2. हिन्दी की बोलियाँ
3. हिन्दी बोलियों का वर्गीकरण
4. पश्चिमी हिन्दी
5. पूर्वी हिन्दी
6. राजस्थानी वर्ग
7. पहाड़ी वर्ग
8. बिहारी वर्ग

इकाई-6 : हिन्दी की प्रमुख साहित्यिक बोलियाँ: ब्रज और अवधी
1. प्रस्तावना
2. आदिकालीन साहित्यिक बोलियाँ
3. मध्यकाल की साहित्यक बोलियाँ
4. अवधी
5. ब्रजभाषा

इकाई-7 : खड़ीबोली हिन्दी का ऐतिहासक विकास और प्रसार
1. खड़ीबोली के विकास के कारण
2. संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश
3. आदिकाल में विकास
4. मध्यकाल में विकास
5. आधुनिक काल में विकास
6. साहित्येतर क्षेत्रों में प्रयोग
7. संपर्क भाषा, राष्ट्र भाषा, राज्यभाषा

इकाई-8 : हिन्दी के विविध रूप- हिन्दी, उर्दू, हिन्दुस्तानी और दक्खिनी
1. हिन्दी का भाषिक परिवेश, उसके विविध रूप और विविध नाम
2. हिन्दी, उर्दू, हिन्दूस्तानी और दक्खिनी का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य
3. हिन्दी, उर्दू, हिन्दूस्तानी और दक्खिनी और अन्य रूपों का भाषिक संगठन
4. हिन्दी के विभिन्न रूपों पर विभिन्न भाषाओं का प्रभाव तुलनात्यक विवेचन
5. हिन्दी के विविध रूपों का प्रयोग क्षेत्र: साहित्य एवं साहित्येतर क्षेत्र-सीमाएँ एवं संभावनाएँ

इकाई-9 : प्रयोजनमूलक हिन्दी और उसकी विभिन्न शैलियाँ
1. प्रयोजनात्मक भाषा शैली का तात्पर्य
2. प्रयोजनमूलक भाषा-प्रयोग के क्षेत्र
3. प्रशासन का क्षेत्र
4. वैज्ञानिक तकनीकी क्षेत्र
5. विधि और न्याय का क्षेत्र
6. वाणिज्य-व्यापार-बैंकों का क्षेत्र
7. प्रयोजनमूलक शैलियों का विकास: आधारभूत विचारधाराएँ
8. प्रयोजनमूलक प्रयुक्तियों के अन्य क्षेत्र

BRAOU

इकाई-10 : हिन्दी भाषा के आधुनिकीकरण के प्रयत्न

1. भाषा और समाज
2. समाज का विकास और भाषा का विकास
3. दो भिन्न संस्कृतियों का दृष्टिकोण और भाषा के विकास का संदर्भ
4. पुनर्जागरण युग और हिन्दी के आधुनिकीकरण का प्रारंभ
5. भाषा आधुनिकीकरण का पहला संदर्भ- भाषा रूप व प्रतिमान का चयन
6. भाषा आधुनिकीकरण का दूसरा संदर्भ- भाषा के प्रयोग क्षेत्रों का विस्तार
7. भाषा आधुनिकीकरण का तीसरा संदर्भ- पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण व प्रयोग
8. भाषा आधुनिकीकरण का चौथा संदर्भ- मानवीकरण
9. भाषा आधुनिकीकरण का पाँचवा संदर्भ- मशीनीकरण
10. सामाजिक संस्कृति का संदर्भ- हिन्दी भाषा और साहित्य का आधुनिकीकरण

इकाई-11 : हिन्दीतर प्रांतों और विदेशों में हिन्दी भाषा और साहित्य

1. हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी
2. हिन्दीतर प्रांतों में हिन्दी का विकासः दक्खिनी
3. हिन्दी प्रचार आन्दोलन
4. हिन्दी साहित्य को हिन्दीतर प्रांतों की देन
5. विदेशों में हिन्दी का प्रसार

खण्ड-2 : हिन्दी साहित्य का आदिकाल

इकाई-1 : साहित्य का इतिहासः दृष्टिकोण और स्वरूप

1. इतिहास, साहित्येतिहास और इतिहास दर्शन
2. साहित्येतिहास लेखन की समस्यायें
3. हिन्दी साहित्येतिहास लेखन की समस्यायें
4. साहित्येतिहास लेखन की पद्धति
5. साहित्येतिहास और इतिहास-दृष्टि
6. मूल्यांकन

BRAOU

इकाई-2 : हिन्दी साहित्य का इतिहासः दृष्टिकोण-काल विभाजन और नामकरण

1. साहित्य का इतिहास
2. शुक्ल पूर्व हिन्दी साहित्य का इतिहास लेखन
3. शुक्लोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास लेखन
4. साहित्येतिहास लेखन की दृष्टि
5. हिन्दी साहित्य के इतिहास के विविध विकास चरण
6. काल विभाजन और नामकरणः मूलाधार
7. हिन्दी साहित्य के इतिहास में काल विभाजन और नामकरण

इकाई-3 : आदिकालः सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ

1. राजनीतिक परिस्थिति
2. धार्मिक परिस्थिति
3. सामाजिक एवं पारिवारिक परिस्थिति
4. साहित्यिक परिस्थिति
5. सांस्कृतिक परिस्थिति
6. आदिकालीन साहित्य की सांस्कृतिक पीठिका

इकाई-4 : आदिकालः साहित्यिक प्रवृत्तियाँ और काव्यधाराएँ

खण्ड–3 : हिन्दी साहित्य का मध्यकाल

इकाई–1 : भक्तिकालः सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ

1. भूमिका
2. राजनीतिक संदर्भ
3. सामाजिक संदर्भ
4. धार्मिक संदर्भ
5. सांस्कृतिक संदर्भ
6. प्रेरणासूत्र और प्रभाव

इकाई–2 : भक्तिकालः साहित्यिक चेतना और प्रवृत्तियाँ

1. नवीन साहित्यिक चेतना
2. व्यापक जीवनाधार
3. जीवन मूल्यों का पोषण
4. सामान्य मानवीय भाव भूमि
5. नवीन सौंदर्य दृष्टि
6. भक्ति साहित्य की प्रवृत्तियाँ

इकाई–3 : भक्तिकालः काव्यधाराएँ और काव्यरूप

1. भक्तिकाव्य का वर्गीकरण
2. समान तत्व
3. ज्ञानाश्रयी शाखा
4. सूफी प्रेमाश्रयी शाखा
5. रामभक्ति शाखा
6. कृष्णभक्ति शाखा
7. अन्य काव्य धाराएँ

BRAOU

इकाई–4 : रीतिकालः सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ

1. भूमिका
2. राजनीतिक संदर्भ
3. सामाजिक संदर्भ
4. धार्मिक संदर्भ
5. सांस्कृतिक संदर्भ
6. युगीन संदर्भ और साहित्य

इकाई–5 : रीतिकालः काव्यधाराएँ, काव्य-रूप और भाषा

1. भूमिका
2. रीतिकाव्य
3. रीतिबद्ध काव्यधारा
4. रीतिसिद्ध काव्यधारा
5. रीतिमुक्त काव्यधारा
6. वीर काव्य
7. भक्ति काव्य
8. नीति काव्य
9. काव्य रूप
10. काव्य, भाषा और छन्द
11. मूल्यांकन

खण्ड-4: हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल

इकाई-1 : आधुनिक काल: सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ

1. मध्यकालीनता से आधुनिकता की ओर
2. आधुनिक जीवन में परिवर्तन
3. नया आर्थिक ढाँचा
4. यातायात के साधन
5. प्रेस और जनमत
6. भारतीय नवजागरण
7. आधुनिक जीवन में परिवर्तन के कारण
8. नवीन भारत- युरोप संपर्क
9. युवा विद्रोह

इकाई-2 : आधुनिक साहित्य: चिन्तन धाराएँ

1. सुधारवाद
2. पुनरुत्थानवाद
3. नवजागरण और राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम
4. क्रांति की भावना
5. नवीन चिंतन: तकनीकी विकास और औद्योगिक जीवन की समस्याएँ
6. अस्तित्ववाद और नया साहित्य
7. साहित्य में आधुनिक बोध

इकाई-3 : आधुनिक काल: साहित्यिक चेतना और सौंदर्य बोध

1. मध्यकालीन संवेदना बनाम आधुनिक साहित्यिक चेतना
2. साहित्यिक चेतना के विविध आयाम
3. नये साहित्य रूप
4. मध्यकालीन सौंदर्य बोध बनाम आधुनिक सौंदर्य बोध
5. सौंदर्यबोध का विकास
6. स्वच्छंदतावादी सौंदर्य बोध
7. मार्क्सवादी सौंदर्य बोध
8. बौद्धिक चिंतन से उत्पन्न सौंदर्य बोध

इकाई-4 : साहित्य को प्रभावित करने वाले विभिन्न वाद

1. विचारधारा, वाद और साहित्य
2. आदर्शवाद
3. मानववाद
4. राष्ट्रवाद
5. व्यक्तिवाद
6. स्वच्छन्दतावाद
7. प्राकृतवाद
8. यथार्थवाद
9. मार्क्सवाद
10. मूल्यांकन

BRAOU

इकाई–5 : हिन्दी काव्यधाराएः प्रवृत्तिमूलक ऐतिहासिक विश्लेषण

1. भारतेन्दु युग
2. द्विवेदी युग
3. छायावाद युग
4. प्रगतिवाद
5. प्रयोगवाद
6. साठोत्तरी जनवादी कविता
7. मूल्यांकन

इकाई–6 : हिन्दी निबंधः ऐतिहासिक विकास और वर्गीकरण

1. निबंध की परिभाषा और महत्व
2. हिन्दी निबंध साहित्य
3. भारतेन्दु युग
4. भारतेन्दु युगीन निबंधों की विशेषताएँ
5. भारतेन्दु युग के निबंध साहित्य का मूल्यांकन
6. द्विवेदी युग
7. द्विवेदी युगीन निबंध साहित्य की विशेषताएँ
8. द्विवेदी युग के प्रमुख निबंधकार
9. द्विवेदी युग के निबंधों का मूल्यांकन
10. शुक्ल युग
11. वर्तमान युग

इकाई–7 : हिन्दी उपन्यास साहित्यः प्रवृत्तिमूलक ऐतिहासिक विश्लेषण

1. उपन्यास की परिभाषा
2. उपन्यास के तत्व
3. उपन्यास के प्रकार
4. हिन्दी उपन्यासों का प्रवृत्यात्मक विकास
5. मूल्यांकन

BRAOU

इकाई–8 : हिन्दी कहानीः प्रवृत्तिमूलक ऐतिहासिक विकास

1. प्रस्तावना
2. पाश्चात्य प्रेरणा से नई विधा का आरंभ
3. संस्कृत साहित्य में कहानी
4. हिन्दी में कहानी का आरंभ
5. स्वतंत्रता से पूर्व हिन्दी कहानी का विकास
6. नई कहानी
7. अ–कहानी आन्दोलन
8. सचेतन कहानी
9. समान्तर कहानी
10. हिन्दी कहानी की नई दिशाएँ
11. नयी कहानी का शिल्प

इकाई-9 : हिन्दी नाटकः ऐतिहासिक विकास और नये रूप

1. हिन्दी नाट्य साहित्य
2. भारतेन्दु-पूर्व नाट्य परंपरा
3. भारतेन्दु युग
4. द्विवेदी युग
5. प्रसाद युग
6. प्रसदोत्तर युग

इकाई-10 : एकांकी और श्रव्य रूपकः ऐतिहासिक विकास-क्रम

1. एकांकी की परिभाषा
2. एकांकी के तत्व
3. एकांकी के प्रकार
4. हिन्दी एकांकी का विकास
5. श्रव्य-रूपक की परिभाषा
6. श्रव्य रूपक के तत्व
7. रेडियो रूपक के प्रकार
8. हिन्दी में रेडियो-रूपक का विकास
9. मूल्यांकन

खण्ड-5: सामाजिक-साहित्यिक गतिविधि

इकाई-1 : भारतीय सामाजिक जीवन और संस्कृति (पूर्व आधुनिक काल)

1. भारतीय सामाजिक व्यवस्थाः सामंतवाद के परिप्रेक्ष्य में
2. भारतीय संस्कृतिः विकास के संदर्भ में
3. मूल्यांकन

इकाई-2 : आधुनिक भारतीय जीवनः सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ

1. भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन का विकास
2. मध्य युगीन भारतीय सामाजिक जीवन एवं संस्कृति
3. आधुनिक भारतीय सामाजिक जीवन एवं संस्कृति
4. नई शिक्षा के दुष्परिणाम
5. भारतीय संस्कृति का नवोत्थान
6. धार्मिक सुधार
7. समाज सुधार
8. नवीन आध्यात्मिक-सांस्कृतिक चेतना का विकास
9. आधुनिक भारत की नवीन सामाजिक सांस्कृतिक चेतना

इकाई-3 : समसामयिक संदर्भः सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश और चिंतन

1. समसामयिकताः अर्थ और परिधि
2. नया युग
3. नया परिवेश
4. विकृत आधुनिकता
5. नवीन चिंतन
6. समसामयिक चिंतन और साहित्य

BRAOU

इकाई-4 : समसामयिक हिन्दी साहित्यः आधुनिकता बोध

1. आधुनिकताः अर्थ और अवधारणा
2. भारतीय आधुनिकता
3. विश्व की आधुनिकता और भारत
4. साहित्यः आधुनिक दृष्टि
5. साहित्य की नई धाराएँ
6. साहित्य की विधाओं में आधुनिकता

इकाई-5 : लोक संस्कृति और लोक साहित्य

1. लोक संस्कृति
2. भारतीय लोक संस्कृति
3. लोक संस्कृति-अध्ययन की सामग्री
4. हिन्दी क्षेत्र और उसकी संस्कृति
5. लोक साहित्य
6. भारतीय लोक साहित्य
7. लोक साहित्य के प्रकार
8. भारतीय लोक साहित्य और साहित्य

BRAOU

FACULTY OF ARTS

B.A. III Year (3 Year Degree Course) Examination

HINDI LITERATURE

Model Question Paper

PAPER III

Hindi Bhasha Aur Sahitya Ka Itihas

Time 3 Hours] [Max. Marks 100
Min. Marks 35

खण्ड–अ (15 x 4 = 60)

ध्यान दें:- 1. इस खण्ड में से केवल 4 प्रश्नों के उत्तर दें।
2. सभी प्रश्नों के अंक समान हैं।
3. प्रत्येक प्रश्न का उत्तर 250 शब्दों में दें।

1. भारतीय संस्कृति की मूलभूत अवधारणा को समझाइये।
2. हिन्दी क्षेत्र के भौगोलिक स्वरूप को स्पष्ट कीजिये।
3. भारत की प्राचीन और आधुनिक भाषाओं पर प्रकाश डालिये।
4. हिन्दी की विभिन्न विभाषाओं और बोलियों का विवरण लिखिये।
5. खडी बोली हिन्दी का ऐतिहासिक विकास और प्रसार समझाइये।
6. हिन्दी के विविध रूप- हिन्दी, उर्दू, हिन्दुस्तानी और दक्खिनी को स्पष्ट कीजिये।
7. लोक साहित्य और आभिजात्य साहित्य में क्या अंतर है।
8. प्रयोजनमूलक हिन्दी और उसकी विभिन्न शैलियों पर प्रकाश डालिये।

BRAOU

खण्ड–ब (15 x 4 = 60)

ध्यान दें:- 1. इस खण्ड के 5 प्रश्नों के उत्तर दें।
2. प्रत्येक प्रश्न का उत्तर 125 शब्दों में दें।
3. सभी प्रश्नों के अंक समान है।

9. साहित्येतिहास के लेखन की क्या समस्यायें होती है।
10. हिन्दी साहित्य के इतिहास के काल विभाजन और नामकरण पर प्रकाश डालिये।
11. आदि काल की प्रमुख प्रवृत्तियों का विवेचन कीजिये।
12. पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता क्यों संदिग्ध है? तर्क दीजिए।
13. भक्तिकालीन साहित्य में कौन सी नवीन साहित्यिक चेतना उभर कर आई?
14. भक्ति काल की विभिन्न काव्य-धाराओं को स्पष्ट कीजिये।
15. रीति काव्य की प्रवृत्तियों को समझाइये।
16. रीति काव्य के काव्यरूप और भाषा पर प्रकाश डालिये।
17. हिन्दी के कहानी-साहित्य के ऐतिहासिक विकास और वर्गीकरण को समझाइए।
18. हिन्दी के एकांकी और श्रव्य रूपकों के उद्भव और विकास को समझाइए।

BRAOU

FACULTY OF ARTS

B.A. III Year (3 Year Degree Course) Examination
Academic Year 1990-91

First Assignment

HINDI LITERATURE

PAPER III

Hindi Bhasha Aur Sahitya Ka Itihas

खण्ड–अ

ध्यान दें:–

1. सभी प्रश्नों के उत्तर लिखें।
2. प्रश्नों के उत्तर अपने शब्दों में लिखें।
3. उदाहरण देना आवश्यक हो तो सही उद्धरण दें।
4. प्रत्येक प्रश्न का उत्तर 250 शब्दों से कम न हो।

प्रश्न:–

1. हिन्दी साहित्येतिहास–लेखन की प्रमुख समस्याएं क्या हैं और इतिहासकारों ने इन्हें कैसे सुलझाया है।
2. आदिकाल के साहित्यक परिवेश को स्पष्ट कीजिए।

BRAOU

खण्ड–ब

ध्यान दें:–

इस खण्ड के प्रश्न का उत्तर लगभग 125 शब्दों में लिखें।

प्रश्न:–

1. सिद्ध साहित्य की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

BRAOU

FACULTY OF ARTS

B.A. III Year (3 Year Degree Course) Examination
Academic Year 1990-91

Second Assignment

HINDI LITERATURE

PAPER III

Hindi Bhasha Aur Sahitya Ka Itihas

खण्ड-अ

ध्यान दें:-

1. सभी प्रश्नों के उत्तर लिखें।
2. प्रश्नों के उत्तर अपने शब्दों में लिखें।
3. उदाहरण देना आवश्यक हो तो सही उद्धरण दें।
4. प्रत्येक प्रश्न का उत्तर 250 शब्दों से कम न हो।

प्रश्नः-

1. साहित्य का समाज और संस्कृति के साथ सम्बन्ध सोदाहरण निरूपित कीजिए।
2. मध्यकालीन साहित्यिक भाषा पर विचार कीजिए।

BRAOU

खण्ड-ब

ध्यान दें:-

इस खण्ड के प्रश्न का उत्तर लगभग 125 शब्दों में लिखें।

प्रश्नः-

1. हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।

BRAOU

BRAOU

UNIVERSITY AT YOUR DOOR STEP

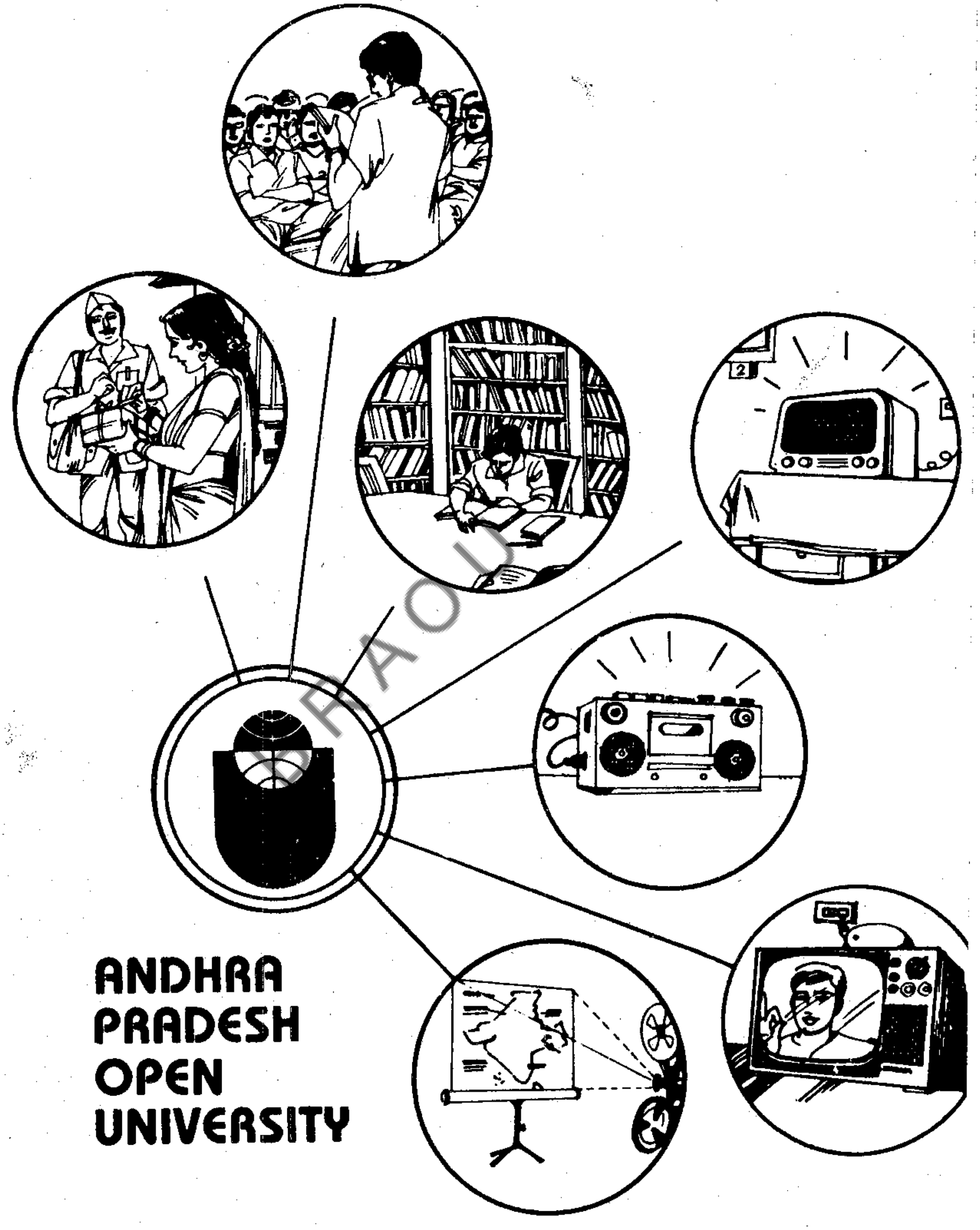

ANDHRA PRADESH OPEN UNIVERSITY

6-3-645, SOMAJIGUDA, HYDERABAD - 500 004.

BRAOU